Part-2

Chap-2

द्वितीय अध्याय

वाजपेयी जी का व्यक्तित्व

: 51 :

द्वितीय अध्याय

वाजपेयी जी का व्यक्तित्व

प्रथम अध्याय में वाजपेयी जी के जीवन-परिचय के संदर्भ में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि किस प्रकार विषम परिस्थितियों ने संघर्षशील जीवन के उपरांत भी वाजपेयी जी के साहित्यकार को प्रगतिशील बनाया। प्रस्तुत अध्याय में उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जायगा।

इससे पूर्व कि वाजपेयी जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाय, पृष्ठभूमि के रूप में 'व्यक्तित्व' की सामान्य चर्चा कर लेना समीचीन प्रतीत होता है। कभी-कभी किसी व्यक्ति को देखते ही हम यह कह उठते हैं -' इसका तो कुछ भी व्यक्तित्व नहीं है।' या 'इसका व्यक्तित्व अच्छा है।' तब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'व्यक्तित्व' क्या है ? इस प्रश्न का अनेक मनोवैज्ञानिकों ने उत्तर देने का प्रयत्न किया है।

मिस्टर अलबर्ट एडवर्ड विग्गम (Albert Edward Wiggam) ने व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा है कि मनुष्य में जो रुचि, प्रभाव तथा दूसरों की सेवा करने की भावना होती है- वही 'व्यक्तित्व' है। इस सम्बंध में उन्होंने डा० हेनरी सी. लिंक को उद्धृत करते हुए बतलाया है कि उनके कथनानुसार हम यह भली-भाँति जान सकते हैं कि अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण कैसे होता है।

उपर्युक्त संदर्भ में व्यक्तित्व की जो परिभाषा दी गई है वह अत्यंत संकुचित है। मनोविज्ञान की दृष्टि में वह सत्य होकर भी अपूर्ण है। व्यक्तित्व की इससे अधिक उचित परिभाषा देने का प्रयत्न सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक म्यूरहेड ने किया है। वे लिखते हैं -

~~'व्यक्तित्व-परिभाषानुसार-सं~~

' व्यक्तित्व में संपूर्ण व्यक्ति का समावेश होता है। व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए हम कह सकते हैं कि वह व्यक्ति के गठन, रुचि के प्रकारों, अभिवृत्तियों, व्यवहार, क्षमताओं योग्यताओं और प्रवणताओं का सबसे निराला संगठन है।'[1]

1- Most people believe you are born with either a good or a poor personality, Eight psychologists however, under the direction of Dr. Henry C. Link of the psychological corporation of America, have concluded, from a nation-wide experiment, that you can learn how to acquire a good personality. These psychologists define personality as 'The degree to which you interest, influence and serve other people'.- New techniques of Hoppiness by Albert Edward Wiggam. P.1. E First Indian Edition./

1- मनोविज्ञान, डा० यदुनाथसिन्हा, अनु. डा० गोवर्धनप्रसाद भट्ट, पृ० 465

/ D.B. Taraporewala Sons & Co. P.Ltd; 210, Hornaby Road, Fort, Bombay-1.

प्रस्तुत परिभाषानुसार व्यक्तित्व के अंतर्गत शारीरिक व्यक्तित्व, रुचिओं, दामताओं आदि का समावेश होता है । इसी परिभाषा को एक अन्य मनोवैज्ञानिक ने विस्तारपूर्वक इस प्रकार कहा है ।

"व्यक्तित्व व्यक्ति के सभी गुणों और प्रतिक्रिया -प्रवृत्तियों की संगठित एकता है । व्यक्तित्व में इन सबका कार्य घनिष्ठ रूप से मिला-जुला होता है । व्यक्तित्व के तत्त्वों को विश्लेषण करके पहिचाना जा सकता है । वे अन्योन्याश्रित भागों की एक अंगागित्वपूर्ण समष्टि बनाते हैं । व्यक्तित्व अलग -अलग भागों का योगमात्र नहीं है । व्यक्तित्व का संकेत लक्षणों (Traits) की एक सूची या समूहमात्र की ओर नहीं है, बल्कि लक्षणों की एक समष्टि (Unity) की ओर है । व्यक्तित्व के लक्षण हमें यह बताते हैं कि व्यक्ति किस प्रकार व्यवहार करता है । वे उसके कार्य करने की विशिष्ट शैली (Style) को प्रदर्शित करते हैं ।"[1]

उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं में यही कहा गया है कि व्यक्तित्व के अंतर्गत कोई एक गुण समाविष्ट नहीं होता, अपितु वह तो व्यक्ति के सभी गुणों की समष्टि है । व्यक्तित्व के अंतर्गत गुणों के अतिरिक्त व्यक्ति की प्रतिक्रिया एवं प्रवृत्तियों का भी समावेश होता है ।

हमारी दृष्टि में व्यक्ति अपने प्रथम परिचय में समग्र रूप से अपना जो प्रभाव सम्पर्क में आनेवाले व्यक्ति पर डालता है, इसी का नाम व्यक्तित्व है । वस्तुत: व्यक्तित्व एक इकाई है।इस इकाई को हम दो पक्षों में विभाजित कर सकते हैं - वाह्य पक्ष एवं अंत: पक्ष । इन्हीं दोनों पक्षों के परिप्रेक्ष्य में हम भगवतीप्रसाद वाजपेयी के व्यक्तित्व का निरूपण करेंगे ।

(1) वाह्य पक्ष

व्यक्तित्व का वाह्य पक्ष शारीरिक गठन, वेशभूषा, रहन-सहन, अभिरुचियाँ, दिनचर्या, व्यसन-व्यवहार, मनोविनोद, आचार-व्यवहार, सेवा-परायणता, स्पष्टवादिता आदि से सम्बद्ध है ; अत: वाजपेयी जी के व्यक्तित्व के वाह्य स्वरूप के विश्लेषण में इन्हें केन्द्र में रखना होगा ।

वाजपेयी जी के वाह्य-पक्ष दर्शन में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके । "स्थूलता की ओर झुकता हुआ उनका शरीर, किंचित् नाटा कद, एक रहस्यमयी

1- मनोविज्ञान, डा0 यदुनाथ सिन्हा, अनु.डा0 गोवर्धनप्रसाद भट्ट, पृ0 465

मुस्कान से आलोकित मोटा मुख और उस मुस्कान के स्रोत वे नयन, उन्हें कोई कैसे भूले ?"[1] वस्तुत: इतने ही वर्णन से उनका संपूर्ण शब्द-चित्र उपस्थित नहीं होता । जिसने एक बार भी उन्हें ध्यान से देखा है, वह उनका शब्द-चित्र इस प्रकार खड़ा कर सकता है । मध्यम श्रेणी का कद, उन्नत ललाट, गम्भीर मुखमुद्रा, आँखों पर चश्मा, नासिका किंचित् मोटी, गंजा सिर, अति स्थूल काया और गेहुआँ वर्ण ।

गंजे सिरवाले पात्र उनके कथा-साहित्य में प्राय: मिल जाते हैं । "निंदिया लागी"[2] कहानी के बेनीमाधव के पात्र के माध्यम से स्वयं वाजपेयी जी ही दृष्टिगोचर होते हैं । इसके अतिरिक्त उनके कई उपन्यासों[3] में भी इसी प्रकार के पात्रों का वर्णन प्राप्त होता है ।

शारीरिक लक्षण समग्र व्यक्तित्व के प्रमुख पहलू हैं । वे अन्य व्यक्तियों पर प्रबल प्रभाव डालते हैं ; किन्तु जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं वाजपेयी जी की वाह्याकृति सामान्य है । इसी में वे अपनी असामान्य हार्दिकता एवं साहित्यकार की उत्कृष्ट प्रतिभा लिये हुए हैं । इसका विवेचन प्रस्तुत अध्याय में हम यथास्थान करेंगे ।

(अ) वेशभूषा :

जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के अनुसार समय-समय पर मनुष्य के परिधान में अन्तर आता रहता है । उस पर ग्राम या नगर के वातावरण, ऋतु, फैशन आदि का भी प्रभाव पड़ता है ।

वाजपेयी जी की बाल्यावस्था अपनी जन्मभूमि मंगलपुर ग्राम में व्यतीत हुई थी, अत: उनकी वेशभूषा का ग्राम्य वातावरण से प्रभावित होना स्वाभाविक था । वे स्वयं अपनी वेशभूषा के विषय में लिखते हैं -" उस समय पोशाक प्राय: यही रहती थी, जो आज-कल है अर्थात् जाड़े में गरम कोट, ग्रीष्म में कमीज़ । कभी-कभी कमीज़ के स्थान पर कुरता-सदरी । धोती प्रत्येक दशा में । हाँ, उस समय टोपी अवश्य रहती थी ।"[4] तब वे देहाती जूता पहनते थे ।

1- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी :भगवतीप्रसाद वाजपेयी मेरी नजर में : श्री विष्णु प्रभाकर का लेख पृ0 119

2- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ- भगवतीप्रसाद वाजपेयी-पृ0 16

3- दे. विश्वास का बल, पृ0 11, स्वप्नों की गोद, पृ0 51,टूटते बंधन, पृ0 54

4- वाजपेयी जी के दिनांक 16-2-70 के पत्र से ।

युवावस्था के आते-आते परिधान में भी पर्याप्त अंतर आ गया । उस समय का युवक आज के युवक जैसा फ़ैशनपरस्त नहीं था । वह देशभक्ति एवं राष्ट्र-प्रेम के रंग में रंगा हुआ था । स्वातंत्र्य का आंदोलन ज़ोर पर था । विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार होता था एवं उनकी होली जलाई जाती थी । खद्दर पहनना उस समय देशभक्ति का प्रतीक था । अत: वाजपेयी जी भी उस वातावरण से प्रभावित होकर खादीधारी बन गये और खादी की कमीज़ तथा धोती धारण करने लगे । बाहर जाते समय कमीज़ पर कोट पहनते थे और सिर पर पगड़ी बाँध लिया करते थे । उस समय वे मूँछें भी रखते थे ।[1] सन् 1944 ई0 से 1948 ई0 तक वे बम्बई के चलचित्र उद्योग में रहे । इस कालावधि में बम्बई के शहरी जीवन एवं चलचित्र उद्योग का उनकी पोशाक पर गहरा प्रभाव पड़ा । इसके परिणामस्वरूप वे उन दिनों सूट पहनते थे ।[2] उस वेशभूषा में उनका व्यक्तित्व अधिक प्रभावशाली लगता था ; किन्तु बम्बई छोड़ने के साथ ही उन्होंने सूट पहनना भी त्याग दिया ।

सम्प्रति वे अपनी बाल्यावस्था के परिधान में देखे जाते हैं अर्थात् श्वेत खादी का कुरता, उस पर खादी की सदरी एवं खद्दर की धोती वे सामान्यत: धारण करते हैं । आवश्यकतावश सिर पर गांधी टोपी और पग में पम्प-शू पहनते हैं । यदि किसी सभा में जाना हुआ, तो खादी के स्थान पर रेशमी कुरता धारण करते हैं । ऋतुओं के अनुसार उनके परिधान में परिवर्तन होता रहता है । घर में ग्रीष्म ऋतु में केवल बनियान-धोती ; शीत ऋतु में बनियान के ऊपर कमीज़ तथा स्वेटर पहनते हैं । बाहर जाते समय सर्दी से बचने के लिए बंद गले का लम्बा कोट, धोती तथा मफलर ; गरमी में कुरता और वर्षा ऋतु में कुरता - सदरी पहनते हैं ।

कानपुर के राजपथ पर पैदल चलते वाजपेयी जी को जिन्होंने ध्यान से देखा है, उन्होंने यह निरीक्षण अवश्य किया होगा कि वे धोती के चुन्नटदार छोर को सदरी की बायीं जेब में खोंसकर चलते हैं । उनकी इस आदत से उनके कथा-साहित्य[3] के पात्र भी प्रभावित हैं ।

वस्तुत: वाजपेयी जी की पोशाक मध्य वर्ग के मनुष्य की पोशाक जैसी ही है । उनकी पोशाक में सादगी देखी जा सकती है । वाजपेयी जी गांधीवाद से प्रभावित हैं ; अत: खादी की पोशाक को उन्होंने अपना लिया है ।

1- तत्कालीन हिंदी पत्रिकाओं- दे. 'संसार', 'माधुरी'- में छपी उनकी तसवीरों से उनकी वेशभूषा का पता चलता है ।

2- इस वेशभूषा के चित्र पं0 लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी जी के पास हैं ।

3- दे. 'टूटा टी सेट', पृ0 97

(आ) रहन-सहन :

प्रथम अध्याय के अंतर्गत यह विस्तारपूर्वक देखा गया है कि विषम आर्थिक परिस्थितियों का वाजपेयी जी को किस प्रकार सामना करना पड़ा था । मुख्य रूप से प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जब उनके कन्धों पर परिवार के भरण-पोषण के उत्तरदायित्व का बोझ आ पड़ा, तब परिस्थितिवश रहन-सहन, वेशभूषा, भोजन आदि में सादगी लाना उनके लिए अनिवार्य हो गया था । तब विवशता थी ; किन्तु आज आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने पर भी घर में उपरीकथित बातों में सादगी ही सादगी प्रतीत होती है । वे भाड़े के मकान में तो सादगी से रहते हैं । भाड़े के मकान में न तो शयन-कक्ष है, वह न ही ड्राइंग-रूम ;. किन्तु रहन-सहन के दूसरे पहलू पर विचार करने से प्रतीत होता है कि बाहर उनका स्वरूप इससे नितान्त भिन्न ही दिखाई देता है । किसी उपन्यास की रचना के लिए घर की अपेक्षा होटल उन्हें अधिक सुविधाजनक लगता है । किसी भव्य होटल में, भले ही वह महँगा हो, एकाध महीना ठहरकर वे उपन्यास पूर्ण कर देते हैं । वहाँ ठाट-बाट से रहते समय व्यय की ओर वे कतई ध्यान नहीं देते । खान-पान में भी वे किसी प्रकार की कोर-कसर नहीं उठा रखते । यह जानने के पश्चात् ऐसा प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि एक ही व्यक्ति की घर और बाहर की रहन-सहन में इतना अंतर क्यों ?

इसके अनेक कारण हो सकते हैं, इसका प्रमुख कारण है अतृप्त इच्छाएँ । जीवन के जिन पथों से उन्हें गुज़रना पड़ा, वे ऐसे न थे, जो उन्हें सुख-सुविधा प्रदान करें । उस समय जिन वृत्तियों को उन्होंने दबाकर रखा था, उन्हीं वृत्तियों ने अवसर प्राप्त होते ही उन्हें भव्य होटलों में रहने के लिए प्रेरित किया हो, यह सम्भव है । इसके अतिरिक्त अन्य साहित्यकारों की भाँति सृजन कार्य में व्यवधान पहुँचाने वालों से बचने के लिए वे होटल का अवलम्ब लेते हों, तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ? कभी-कभी अपनी रचनाओं में निरूपित होटल का वातावरण, पात्रों का अध्ययन तथा संवाद के अभ्यास के लिए भी होटल में ठहरना एक साहित्यकार के लिए अनिवार्य बन जाता है । इसके बिना उसके साहित्य में होटल के वातावरण आदि में स्वाभाविकता कैसे आ सकती है ? बारंबार भव्य होटलों में ठहरने के कारण ही उनके कथासाहित्य[1] में होटलों का यथार्थ वर्णन प्राप्त होता है । कई बार उन्हें निश्चित कालावधि में उपन्यास पूर्ण करके प्रकाशक को देने के लिए भी होटल में

1- दे. 'होटल का कमरा' (कहानी संग्रह) में इसी शीर्षक से लिखी गई पूरी कहानी । विश्वास का बल(उप.) पृ0 2, वासना से परे(उप.) पृ0 170

ठहरना पड़ता है । अत: उनकी सामान्य रहन-सहन सादगीपूर्ण है, ऐसा ही कहा जायगा ।

(ङ) अभिरुचियाँ :

संस्कृत में कहा गया है कि 'भिन्न रुचि हि लोक: ।' तदनुसार दो व्यक्तियों की रुचियों में अंतर होना स्वाभाविक है । वाजपेयी जी के जीवन के अध्ययन से हमें उनकी विभिन्न अभिरुचियों का भी ज्ञान होता है, जिनका उल्लेख हम यहाँ करेंगे ।

वाजपेयी जी अत्यंत सरल एवं सीधे स्वभाव के व्यक्ति हैं । उन्हें अपने जीवन में कभी भी आडम्बर प्रिय नहीं रहा । जो कुछ जीवन के लिए स्वस्थ एवं प्रेरणाप्रद है, वही उनके लिए वरेण्य रहा है । वेश भूषा की चर्चा करते समय हमने देखा ही है कि वे अत्यंत सादे परिधान को सदैव पसंद करते रहे हैं । वस्त्र उन्हें वही प्रिय हैं, जो शरीर को आराम दे सकें, उसे प्रत्येक ऋतु में आवश्यकतानुसार ढक सकें । वस्त्रों के चयन में यही उनकी रुचि अथवा आवश्यकता जानी जा सकती है । भोजन, जो शरीर को पुष्ट कर सके, रसना को सुस्वादु लगे, उसे ही ग्रहण करना वाजपेयी जी अपने लिए श्रेयस्कर मानते रहे हैं । सुन्दर सुस्वादु भोजन उन्हें सदैव प्रिय रहा है । भोजन के चयन में प्रदेश की अपनी विशिष्टताएँ तथा परम्पराएँ भी होती हैं । वाजपेयी जी गंगा की तलहटी की उर्वरा भूमि में जन्मे थे, अतएव विभिन्न प्रकार की हरी सब्जियाँ, आलू, मटर, टमाटर तथा दूध-घी उन्हें बहुतायत से प्राप्त हो जाता था । वे दिन भी खाने-पीने के थे- न मिलावट का भय, न अभाव का डर । वे स्वयं अपने भोजन के विषय में लिखते हुए कहते हैं -" आज तो शुद्ध देशी घी मिलना दुर्लभ है और असल दूध भी सस्ता नहीं मिलता ; किन्तु जब ये वस्तुएँ सस्ती थीं, तब मैं कचौड़ी-पूड़ी, घी में भूने हुए आलू तथा आलू-टमाटर, गोभी-मटर की सब्जी और खीर बहुत पसन्द करता था । मिठाइयों में छेने का रसगुल्ला मुझे बहुत पसन्द रहा है ; किन्तु अब तो डायबिटीज़ के कारण मिठाई, चावल तथा आलू आदि से मुझे वंचित रहना पड़ता है ।"[1] वाजपेयी जी के रुचिकर भोजन के सम्बंध में जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद कहा जा सकता है कि वे पूर्णत: शाकाहारी हैं ।

ताश खेलना एक ज़माने में उन्हें अत्यंत रुचिकर था । इस खेल में वे कुशल भी थे ; किन्तु पारिवारिक उत्तरदायित्व अपने कंधों पर आते ही समयाभाव में यह खेल अपने आप छूट

1- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र से ।

गया । आज लगभग तिहत्तर वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी चलचित्र देखने वे अवश्य चले जाते हैं । कभी-कभी वे चलचित्रों के ऐसे गीत गुनगुना लेते हैं, जो भाव, दार्शनिकता तथा शास्त्रीय-संगीत से युक्त हों । प्राय: देखा गया है कि चलचित्रों के प्रेम-गीत दीर्घ काल के पश्चात् भी उन्हें अत्यंत प्रिय रहते हैं और यदि रेडियो पर सुनाई दिया, तो शीघ्र गुनगुनाना प्रारंभ कर देते हैं । अवकाश के समय वे यदा-कदा हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं । पढ़ने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलने पर उलट-पुलटकर देख लेने से भी कभी-कभी उन्हें संतुष्ट होना पड़ता है ।

साहित्य-रसिकों का अपना कोई न कोई देशी-विदेशी प्रिय लेखक होता है । साहित्यकार भी साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश प्राप्त करने से पूर्व अनेक लेखकों की रचनाओं का अध्ययन करता है । उस समय उसका भी कोई लेखक प्रिय रहता है । उससे वह प्रभावित होता है और लिखने की प्रेरणा प्राप्त करता है । साहित्य के प्रांगण में आने के पूर्व वाजपेयी जी भी अनेक देशी-विदेशी लेखकों की कृतियों का अध्ययन कर चुके थे एवं कुछ साहित्यकारों से प्रभावित भी हुए थे । अपने प्रिय लेखकों के सम्बंध में वाजपेयी जी लिखते हैं -" पहले मुझे विदेशी कहानी-लेखकों में फ्रेन्च कथाकार मोपासाँ अधिक प्रिय थे । फिर मैं रूसी कथाकार एन्टन चेखव और इंग्लिश कथाकार ओ.हेनरी का भक्त बन गया; किन्तु सबसे अधिक प्रभाव डाला जर्मन कथाकार स्टीफिंग ज्वीग ने ।"[1] शरद बाबू भी उनके प्रिय लेखक थे । उनका प्रभाव वाजपेयी जी की 'इन्द्रजाल' कहानी में[2] स्पष्टत: दिखाई देता है । हिन्दी के अनेक लेखकों की रचनाएँ पढ़ने के पश्चात् उन्होंने ऐसा एक भी उपन्यास नहीं पाया, जिसे उन्होंने दुबारा पढ़ा हो ।इस विषय में वे स्वयं लिखते हैं -"एक बार कवि 'अंबल' ने मुझसे प्रश्न किया कि हिन्दी में कौन उपन्यास आपने दुबारा पढ़ा है । सच जानिये, उनके इस प्रश्न पर मेरे हृदय को बड़ा आघात लगा । मुझे दु:ख के साथ यह स्वीकार करना पड़ा कि ऐसा कोई उपन्यास मैंने अपनी भाषा में नहीं पाया ।"[3] किन्तु यह तथ्यपूर्ण प्रतीत नहीं होता । एक अन्य संस्मरण में वे लिखते हैं - 'सन् 1919 ई0 । प्रकाश पुस्तकालय (कानपुर) से जो पुस्तकें मुझे विक्रय के लिए मिलीं, उनमें एक 'सेवासदन' उपन्यास भी था । मैंने उसे दो बार पढ़ा । पहली बार रात भर

1- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र से ।

2- दे. होटल का कमरा, पृ0 93

3- 'साहित्य-संदेश' (उपन्यास विशेषांक), पृ0 182

पढ़ा, दूसरी बार कभी आराम करते-करते और कभी सोते-सोते नींद टूटने पर । सुविधा के लिए उसे खोलकर तकिया के नीचे रख लेता था ।[1] इसमें वाजपेयी जी ने स्वयं अपने कथन का खण्डन किया है ।

साहित्य में वे विशेषत: उपन्यास तथा कहानियाँ पढ़ना अधिक पसंद करते हैं । 'कहानी', 'नई कहानियाँ', 'दिनमान', 'माध्यम', (अब बंद हो गया है)'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आदि हिन्दी की छोटी-मोटी पत्रिकाएँ वे यदा-कदा बाज़ार से ले आते हैं । इनमें से कुछ पत्र-पत्रिकाएँ तो उनकी टेबुल पर हमेशा दृष्टिगोचर होती हैं ।

सामान्यत: साहित्यकार का व्यक्तित्व किसी न किसी व्यसन के घेरे में सीमित रहता है । अपना कार्य करने के लिए उसे योग्य मनोदशा (mood) की आवश्यकता रहती है । 'मूड' बनाने के लिए वह किसी न किसी चीज़ की शरण लेता है । वाजपेयी जी के व्यसन के सम्बंध में यह जानकारी प्राप्त हो सकी है कि उन्हें पान, सिगरेट या तम्बाकू का व्यसन कभी नहीं रहा, किन्तु इसे व्यसन कहें या दुर्बलता, वे अपने को नारी-सौंदर्य से नहीं बचा सके । इसका मूल कारण है उनकी रोमाण्टिक प्रवृत्ति ।

"He is specially romantic.उनका भावक-प्रवाह जो रहा है, वह जीवन के शृंगार-पक्ष को लेकर सदा प्रवाहित हुआ । शृंगार सुख-दु:ख दोनों में उत्पन्न होता है । कुछ-एक लेखकों का मत है कि वे यथार्थवादी हैं; किन्तु मेरी दृष्टि से वाजपेयी जी यथार्थपरक होते हुए भी मूलत: रोमेण्टिक हैं ।"[2] इसी के फलस्वरूप नारी के रूपाकर्षण, मिलन की उत्कट अभिलाषा आदि के वर्णन में उनकी वृत्ति अधिक प्रमाण में रमती दिखाई देती है । परिणामत: उनके कथा-साहित्य में[3] नारी का ब्यौरेवार वर्णन प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त वाजपेयी जी स्वयं कहते हैं कि उन्हें कहानी और उपन्यास पढ़ने का व्यसन है ।

(ई) दिनचर्या :

वाजपेयी जी की दिनचर्या सामान्य मनुष्यों से कुछ-एक बातों में ही भिन्न है । अत: सारे दिन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख ही यहाँ समीचीन होगा । प्रात:काल चार-साढ़े चार बजे शय्या छोड़ने के पश्चात् प्रात: कर्म से निवृत्त होकर कुछ पढ़ना-लिखना, सात बजे

1- साहित्य शिल्पी भगवतीप्रसाद वाजपेयी : साधना और उपलब्धि,प्रधान संपादक - डा0 विश्वनाथ गौड़, पृ0 238

2- श्री अमृतलाल नागर से भेंट-वार्ता, दिनांक 21-10-68

3- दे होटल का कमरा(कहानी संग्रह), पृ0 37, 114-15 'निमंत्रण' (उप.),पृ0 11-45

बज जाने पर साइक्लोसैक की टिकिया घोलकर लेना, इसके उपरान्त ओवल्टीन के साथ चाय लेना, साथ में नमकीन काजू या बिस्कुट नियमित रूप से लेना, इसके बाद आगत-जनों से भेंट-वार्तालाप, लगभग दस बजे स्नानध्यान तथा भोजन करने के पश्चात् शयन ।

उठने पर डाक देख लेते हैं । यदि बैंक का काम निकला, तो आवश्यक कागज़ात तैयार करके लिपिक को शहर भेज देते हैं । उसकी अनुपस्थिति में उसका कार्य वे स्वयं करते हैं । शहर में अपना कार्य निपटाकर वे अपने मित्रों से मिलते हैं, तो उनके साथ साहित्यिक चर्चा तथा विचार-विमर्श करते हैं । संध्या समय घर लौटने के पश्चात् भोजन, उसके बाद पुन: भेंट-वार्ता, यदा-कदा कोई आगन्तुक उनका परामर्श लेता है और कभी-कभी सहायता या सहानुभूति प्राप्त करता है । सभी कार्यों से निवृत्त हो जाने पर वे सो जाते हैं ।

हृदय -रोग से पीड़ित होने के कारण सम्प्रति सभा-समाज में जाकर सभापतित्व या उद्घाटन-कार्य वे प्राय: नहीं कर सकते । अधिक चलने अथवा सीढ़ियाँ चढ़ने पर उन्हें सीने में पीड़ा हो जाने की आशंका रहती है । भाषण देते समय हृत्कम्प बढ़ जाता है । इस दिनचर्या का परिणाम यह होता है कि वे दिन भर प्रसन्न रहते हैं; किन्तु वृद्धावस्था के कारण रात को उन्हें गहरी नींद नहीं आती । इतना ही नहीं, कभी-कभी वे रात को चौंककर जाग जाते हैं । वाजपेयी जी एक साहित्यकार हैं, अत: उनकी सामान्य दिनचर्या के सम्बंध में जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् उनकी साहित्यिक दिनचर्या भी यहाँ देना समीचीन है ।

उनके साहित्यकार होने के कारण वे रचना-विधि कब करते हैं, कैसे करते हैं तथा उसके लिए किसी विशेष स्थान का आग्रह रखते हैं या नहीं आदि प्रश्नों का हमारे मन में उपस्थित होना स्वाभाविक ही है । साहित्य-सृजन के अपने समय के लिए वे लिखते हैं - "उपन्यासों के पहले पृष्ठ मैंने प्राय: रात में लिखे हैं । जब लिखना प्रारंभ हो जाता है, तो फिर समय की कोई मर्यादा नहीं रहती । प्रात:काल, दोपहर, सायंकाल और रात-सभी समय मेरे लिए अनुकूल हो जाते हैं । विशिष्ट चरित्र की प्रेरणा ग्रहण करने के सिलसिले में मैं पहले से कभी कोई दृश्य,स्केच तथा कथोपकथन नोट करके नहीं रखता । मन में जो बसा रहता है , वही- उतना ही मेरे लिए उपयुक्त होता है ।"[1]

इससे ज्ञात होता है कि साहित्य-सृजन के लिए उनका समय निश्चित नहीं है । कभी-कभी तो रात में देर तक जागकर या प्रात:काल शीघ्र उठकर उन्हें उपन्यास पूर्ण करने पड़ते हैं ।

1-2 साहित्य -संदेश (उपन्यास-विशेषांक), पृ0 181

लेखन के लिए वे किसी भी विशेष स्थान का आग्रह नहीं रखते । बच्चों की किलकारियों और शोरगुल के बीच भी उनकी लेखनी अपना कार्य करती रहती है । लेखन-कार्य करते समय वे दत्तचित्त हो जाते हैं । जब कभी उपन्यास पूर्ण करने की उन्हें त्वरा होती है और उस उपन्यास में होटल का वातावरण देना आवश्यक बन जाता है, तब वे होटल में ही जा ठहरते हैं ।साहित्य-सृजन वे कहीं भी कर सकते हैं ।

अपने उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया के सम्बंध में वे लिखते हैं - "उपन्यास-लेखन में मैं पहले करेक्टर चुनता हूँ । इस चुनाव में मुझे कभी कोई विशेष दिक्कत नहीं हुई । मनुष्यत्व का कोई भी असाधारण तत्त्व जब मैं किसी व्यक्ति में देखता हूँ, तो वह मेरे अध्ययन का पात्र हो जाता है । उसके चाल-ढाल, रहन-सहन, वार्तालाप और जीवन-क्रम में एक प्रेरणा पाता हूँ । धीरे-धीरे ऐसे चरित्र मेरी कल्पना के पट पर उतर आते हैं । वातावरण और कथा का चुनाव मैं अपने तत्कालीन चिन्तन के अनुरूप करता हूँ और तदन्तर उपन्यास लिखना प्रारम्भ कर देता हूँ ।"[1]

साहित्य-सृजन के समय साहित्यकार को भिन्न-भिन्न अनुभूतियाँ होती हैं । उस समय वह अपने कार्य में इतना दत्तचित्त हो जाता है कि सब कुछ भूल जाता है । अपने सम्बंध में वाजपेयी जी लिखते हैं -"उपन्यास-लेखन के दिनों में एक बात अवश्य होती है । धीरे-धीरे जब मेरे पात्र अधिक स्पष्ट, साकार और सजीव हो उठते हैं, तब सुषुप्तावस्था में प्राय: मुझे ऐसा जान पड़ता है, जैसे मैं उन्हीं के कुटुंब का प्राणी हूँ और उनकी बातें मेरे कानों में पड़ रही हैं । और सच जानिये, उस समय मुझे जितना आनंद मिलता है, वैसा फिर कभी किसी अवस्था में नहीं मिलता ।"[2]

(उ) आचार-व्यवहार :

वाजपेयी जी लगभग पाँच दशाब्दी पहले के साहित्यकार हैं । उस समय साहित्यकारों से साक्षात्कार करने उनके घर कोई नहीं जाता था । वह ऐसा समय था, जब साहित्यकार जैसे उपेक्षा का पात्र माना जाता था । ऐसी परिस्थिति में यदि कोई उसके यहाँ जाता, तो वह प्रसन्न हो जाता था । आज भी वाजपेयी जी मिलने आने वाले सभी वर्गों के लोगों के साथ

1- साहित्य-संदेश(उपन्यास-विशेषांक), पृ0 181

2- साहित्य-संदेश(उपन्यास-विशेषांक), पृ0 182

सरलतापूर्वक अपनत्व स्थापित कर लेते हैं । किसी को भी प्रथम भेंट में भी ऐसी अनुभूति कभी नहीं होती कि वे उसके लिए अपरिचित व्यक्ति हैं । जो लोग उनके स्नेह. या करुणा के पात्र हैं, उनकी आवश्यकतानुसार वे यथाशक्ति एवं यथोचित सहायता करते हैं । इसका कारण यही हो सकता है कि जिन अभावों में उन्होंने जीवन व्यतीत किया है, वे दिन भूलना उनकी सामर्थ्य के बाहर है और आवश्यकताओं का महत्व वे भली-भाँति समझते हैं । सभी के प्रति उनके सुन्दर व्यवहार का कारण उनके पारिवारिक संस्कार भी हैं ।

उनका साहित्यकार ऊँच-नीच की भावना से ग्रस्त नहीं है । वह मानता है कि सब परमपिता ईश्वर की संतानें हैं । मनुष्य ने ही ऊँच-नीच की दीवार खड़ी की है । इस भाव का प्रतिबिम्बन् उनकी रचनाओं में भी हुआ है ।

" तुम जमीन पर इस भाँति क्यों बैठ गये ? अरे यह भी कोई बात हुई । उठो, खाट पर बैठो !"

"हम गरीब आदमियों के लिए यही ठीक है । मैं अपनी औकात भूल गया था ।"

"नहीं किशन, मैं अपने और तुममें कोई अन्तर नहीं मानता । भगवान ने सबको बराबर बनाया है ।"

"गरीब ही नहीं, मैं अछूत भी हूँ ; चमार ।"

"अछूत नहीं, हरिजन । चमार क्या मनुष्य नहीं होते ? मैं ऊँच-नीच, जाति-पाँति कुछ नहीं मानता । मेरे लिए सब मनुष्य बराबर हैं ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में दो पात्रों के संवादों के माध्यम से लेखक ने अस्पृश्यता-निवारण की अपनी भावना को व्यक्त किया है । इससे प्रतीत होता है कि अछूतों के लिए उसके हृदय में स्थान है ।

(ङ) आतिथ्य भाव :

'अतिथि देवो भव' की भावना वाजपेयी जी में कूट-कूटकर भरी है । अतिथि उनका देवता ही नहीं, उनका स्नेही एवं उनका अपना है । वे अतिथि-सत्कार के लिए सदैव तत्पर रहते हैं । जब कभी कोई अतिथि उनके यहाँ आता है, तो प्रथम साक्षात्कार में ही उसके के मन से अपरिचय का भाव दूर हो जाता है और वह वाजपेयी जी की 'आवभगत' का अनुभव करने लगता है । वे सुस्वाद भोजन तथा नाश्ते से ही अपने अतिथि को संतुष्ट नहीं करते, वरन्

1- अधूरा स्वर्ग, पृ0 173

उसके प्रति सेवापरायणता की चरम सीमा पर पहुँचते हुए उसके जूठे पात्र भी प्रसन्नतापूर्वक उठाकर ले जाते हैं ।[1] अतिथि की सुख-सुविधा का उन्हें सदा ध्यान रहता है । केवल अतिथि के प्रति ही नहीं, मित्रों के प्रति भी वे हमेशा सेवा-परायण रहते हैं । इस सम्बन्ध में उनका एक मित्र अतीत का संस्मरण याद करते हुए लिखता है -" मैं वाजपेयी जी के यहाँ पहले विलेपार्ले में, फिर सांताक्रूज़ जाया करता था । उन्होंने कई बार अपने हाथ से खाना भी बनाकर खिलाया था ।"[2]

(ए) स्पष्टवादिता :

वाजपेयी जी सरल एवं निष्कपट व्यक्ति हैं । ग्राम्य वातावरण में वे पले हैं और वही ग्राम्यत्व उनका आभूषण बन गया है । उनके सरल स्वभाव के कारण उनके हृदय के भावों और वचनों में अंतर नहीं रहता । उनके सतत सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति यह भली-भाँति जानते हैं कि वे स्पष्टवक्ता हैं । किसी की भी चाटुकारी वे पसंद नहीं करते । अपनी निर्बलताओं का उल्लेख भी वे बिना संकोच कर देते हैं । प्रयत्न करने पर भी वे पूर्णत: अंग्रेजी नहीं सीख सके, अत: अवसर आने पर कभी लिखने का प्रयत्न करते हैं, तो सही नहीं लिख पाते, यह सब वे सरलतापूर्वक बतलाते हैं । अपने कथा-साहित्य में भी उन्होंने कहीं-कहीं अंग्रेजी का प्रयोग देवनागरी लिपि में किया है ।[3]

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाजपेयी जी का वाह्य-दर्शन यद्यपि सामान्य-सा, अनाकर्षक प्रतीत होता है, तथापि उनके संपर्क में आनेवाले व्यक्ति उनसे बिना प्रभावित हुए नहीं रहते । उनका वाह्य-दर्शन बिहारी की इस उक्ति के अनुरूप प्रतीत होता है ।

1- अपनी शोध-यात्रा के समय वाजपेयी जी के यहाँ प्रबंध -लेखक को इस बात की अनुभूति हुई है । उनके परिवार में उनके अतिरिक्त अन्य कोई सदस्य न होता, तब यह बात न तो महत्त्वपूर्ण थी, न ही उल्लेखनीय। ऐसी परिस्थिति में उनका इस प्रकार कष्ट उठाना स्वाभाविक भी था ; किन्तु अपनी छोटी लड़की, दामाद, नाती-नातिनों की उपस्थिति में भी भोजन की थाली वे स्वयं लाये-ले गये, तब इस बात का उल्लेख आवश्यकीय माना जाता है । जो कार्य उन्होंने किया, इसके लिए वे स्वजनों में से किसी से कह सकते थे ; किन्तु मेहमान की सेवा करने में रुचि दिखलाकर उन्होंने उस समय अपनी आतिथ्य-भावना का जो परिचय दिया, वह अविस्मरणीय है ।

2- श्री व्रजेन्द्र गौड़ के दिनांक 19-4-70 के पत्र से

3- दे चलते-चलते, पृ0 143, "हफ दैअर वर ड्रीम्स टु सेल, पैरी-एण्ड-सैड टु ट्यल, एण्ड द क्रायर रंग हिज़ बेल, ह्वाट वुड यू बाइ ?

"देखन में छोटो लगै, घाव करै गंभीर ।"

उनके व्यक्तित्व की प्रभावशीलता की पुष्टि उसके अंत:स्वरूप के विश्लेषण से और अधिक हो सकेगी, अतएव यहाँ वाजपेयी जी के व्यक्तित्व के अंत:स्वरूप की विवेचना कर लेना समीचीन ही नहीं, वरन् आवश्यक भी है ।

(2) अंतर्वर्ती स्वरूप

व्यक्तित्व का आंतरिक पक्ष स्वभाव, स्नेह-सद्भाव तथा विविध मनोवृत्तियों से संबंध रखता है, अत: इसके अंतर्गत स्वभाव, बौद्धिकगुण, सहृदयता, मानवता, सहनशीलता, भावुकता प्रकृति-प्रेम, औदार्य, स्नेह-सद्भाव, सामाजिकता, त्याग, दुर्बलताएँ आदि अंतर्तत्त्व लिये जा सकते हैं । इन्हीं अंतर्तत्त्वों की क्रमश: मीमांसा द्वारा वाजपेयी जी के व्यक्तित्व के अंतर्वर्ती पक्ष का निरूपण किया जायगा ।

(अ) स्वभाव (Temperament) :

प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव में कुछ न कुछ वैभिन्न पाया जाता है । कोई शान्त स्वभाव का होता है , तो कोई उग्र । किसी का स्वभाव गंभीर होता है, तो किसी का विनोदी । कोई व्यक्ति साहसी होता है, तो कोई कायर ।" कहा जाता है अंतरासर्गी ग्रन्थियों (endrocrine glands) से निकलने वाले न्यासर्गों (harmones) के कारण स्वभाव में अंतर होते हैं ।"[1] वस्तुत: स्वभाव का समावेश मनोविज्ञान के अंतर्गत होता है, किंतु यहाँ मनोविज्ञान का अवलम्ब वाजपेयी जी के स्वभाव के अध्ययन के लिए लेना अभिप्रेत नहीं है । उनके स्वभाव पर विषाम परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव पड़ा है, यह हम प्रथम अध्याय में देख ही चुके हैं । विषाम अवस्था में कोई भी व्यक्ति संयम खो सकता है । वाजपेयी जी ने यद्यपि बड़े साहस एवं संयम से विषाम परिस्थितियों का सामना किया ; किन्तु जाने - अनजाने परिस्थितियों का विषाम दंश उनके स्वभाव पर लग ही गया । वैसे "स्वभाव उनका सरल है, पर समझना उनको कठिन है ; क्योंकि अभावों की चक्की में पिसते-पिसते वे समरसता खो बैठे हैं । कभी-कभी लोग उन्हें गलत समझ जाते हैं, पर यह उनका स्वभाव नहीं है, एक बाहरी आवरण है । मूलत: वे एक सरल व्यक्ति हैं ।"[2]

1- मनोविज्ञान, डा0 यदुनाथ सिंहा; अनु. गोवर्धनप्रसाद भट्ट, पृ0 466

2- साहित्यिकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री विष्णु प्रभाकर के 'भगवतीप्रसाद वाजपेयी मेरी दृष्टि में' नामक लेख से, पृ0 119

"मनुष्य की तृष्णा का अन्त नहीं है । न आकाश में, न महासागर के अतल में, न गिरि-गह्वर में - संसार में कहीं भी, कोई ऐसा स्थान नहीं मिल सकता, जहाँ पहुँचकर मनुष्य कामना से मुक्त हो सके ।" [1]

अपने चिन्तनशील स्वभाव के फलस्वरूप ही उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज, राष्ट्र, मानवीय गुण-दुर्गुण, संस्कृति आदि विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं । वस्तुत: वाजपेयी जी का स्वभाव बहुत ही सरल, विनोदप्रिय, भावुक तथा चिन्तन-शील है । सरल स्वभाव के कारण ही उनके संपूर्ण कथा-साहित्य में ऐसा एक भी पात्र उपलब्ध नहीं होता, जो पेचीदा हो । प्रारम्भ में जो पात्र दुष्ट स्वभाव के प्रतीत होते हैं, वे भी अंत में पश्चाताप की वह्नि में तपकर सरल स्वभाव के व्यक्ति बन जाते हैं ।

(आ) बौद्धिक गुण :

"मानसिक लक्षण, जैसे बुद्धि, निरीक्षण, स्मृति, कल्पना, ध्यान, निर्णय, तर्क, व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण लक्षण हैं ।----मानसिक सतर्कता का भी बुद्धि के साथ रहना चाहिए ।" [2]

वस्तुत: इन मानसिक लक्षणों का एक साहित्यकार में होना आवश्यक है । बौद्धिक गुणों के अभाव में साहित्य-सृजन असम्भव है । अत: साहित्यकार का एक ओर भावुक होना आवश्यक है , तो दूसरी ओर उसका तर्कशील होना अनिवार्य है । वाजपेयी जी में भी बुद्धि , निरीक्षण, स्मृति, कल्पना, तर्क आदि गुण, उनके कथा-साहित्य के माध्यम से, देखने को मिलते हैं । "बौद्धिक गुण उनमें इतने तो हैं ही जितने किसी अच्छे साहित्यकार में होने चाहिए ।" [3] श्री इलाचन्द्र जोशी के इस कथन से यद्यपि वाजपेयी जी के बौद्धिक गुणों पर पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ता, तथापि वाजपेयी जी में बौद्धिक गुण है ही यह अवश्य मानना पड़ेगा । इसका प्रमाण उनके कथा-साहित्य में मिलते हैं ।

"दूसरे ने उत्तर दिया -'गहराइयों में गये बिना जीवन कभी समझ में नहीं आता ।"

'मगर गहराइयों में जाने से जो संकट उत्पन्न होते हैं, उनसे बचाओ ?"

" हम गहराइयों के खतरे से नहीं डरते ।'

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 12

2- मनोविज्ञान - डा0 यदुनाथ सिंहा, अनु. गोवर्धनप्रसाद भट्ट, पृ0 466

3- इलाचन्द्र जोशी के दिनांक 2-12-69 के पत्र से

कभी-कभी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ बातें करते समय उनके स्वभाव के दूसरे ही रूप पाये जाते हैं । बच्चों के साथ वे बच्चा बन जाते हैं और मीठी-मीठी बातें करने लगते हैं, मित्रों के साथ हँस-हँसकर बातें करते हैं ; किन्तु पत्नी के साथ बातें करते समय जैसे सारी मिठास अदृश्य हो जाती है । इसका कारण उनकी पत्नी का चिड़चिड़ा स्वभाव भी हो सकता है । बच्चों के प्रति उनका जो स्वभाव सदैव रहा है उसका प्रतिबिम्ब 'मिठाईवाला' कहानी में स्पष्ट झलकता है । 'प्रलोभन' कहानी में जिस नारी का चित्रण किया गया है उसकी उपलब्धि लेखक को अपने ही घर से हुई हो, ऐसा लगता है ।

'वाजपेयी जी स्वभाव से सरल, सौम्य, मृदुभाषी, व्यावहारिक, विनोदप्रिय, चिन्तन-अध्ययनशील और भावनायुक्त हैं ।'[1] वे व्यवहार विदग्ध इतने हैं कि व्यावहारिक बातों में कभी पीछे कदम नहीं रखते । विनोद-प्रियता के सम्बंध में तो इतना कहा जा सकता है कि ऐसी छोटी-छोटी बातें जिनकी ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता उनसे वे हास्य निष्पन्न कर लेते हैं । उनका विनोदी स्वभाव अपने साहित्य में भी अप्रकट नहीं रहता । यथा -

'आप आदमी हैं कि पायजामा ?' तब एक मसखरे समालोचक से न रहा गया । बोले , 'मौमजामा कहिये साहब । बारिश के दिन ठहरे ।'[2]

जब वे एकाकी होते हैं तब चिंतन या अध्ययन में डूबे रहते हैं । उनके चिंतन का कोई विषय निश्चित नहीं होता । आज भी उनके इस स्वभाव में अंतर नहीं आया । इसके अतिरिक्त प्रारंभ से ही वे संवेदनशील व्यक्ति रहे हैं । ' वे स्वभाव से ही बहुत अधिक भावुक हैं ।'[3] अपनी एक लड़की के बचपन में निधन हो जाने के पश्चात् सपत्नीक गंगा में उस मृत कन्या के साथ डूब मरने के लिए वे गये थे । बहुत अधिक भावुकता के कारण ही ऐसा सम्भव हो सकता है । इसके अतिरिक्त उनके कथा-साहित्य में उनके कुछ पात्रों का विलासी[4] तथा चिन्तनशील स्वभाव[5] भी मिलता है, किन्तु पात्रों के स्वभाव का अवलम्ब लेकर उनके स्वभाव के लिए अपनी धारणा बना लेना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता । चिन्तन-शील स्वभाव का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

1- डा0 ललित शुक्ल के दिनांक 3-9-69 के पत्र से

2- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 193

3- श्री इलाचन्द्र जोशी के दिनांक 2-12-69 के पत्र से

4- दे. 'चलते-चलते', 'टूटते बन्धन' आदि उपन्यास

5- दे. 'निमन्त्रण' पृ0 10, 'एक प्रश्न' पृ0 50, 'होटल का कमरा' पृ0 118,92, 'बात एक नाते की' पृ0 98,99

'मगर हम तो डरते हैं ।'

'गहराइयों से डरने वाला जीवन से प्यार नहीं कर पाता ।'

'हम गहराइयों की अपेक्षा जीवन को अधिक प्यार करते हैं ।'

'फँस गये न आखिर ? गहराइयों में जाना ही तो जीवन को प्यार करना है ।'[1]

यहाँ दोनों पात्र तर्क करते और अपनी बुद्धि का परिचय देते हैं । वस्तुत: बौद्धिक गुण वाजपेयी जी को अनुवंश में प्राप्त नहीं हुए हैं ; वरन् अध्ययन-चिन्तन से ये गुण उनमें आये हैं । वाजपेयी जी के प्रत्युत्पन्नमतित्व की पुष्टि के लिए एक उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है ।

'यशवन्त कुछ कहना ही चाहता था कि इतने में बरकत मियाँ तश्तरी में पान लेकर आ पहुँचे ।

शमशाद ने तश्तरी उसके हाथ से लेकर यशवन्त के सामने कर दी ।

यशवन्त कुछ चौंकता हुआ -सा बोला-'पान ।'

'जी, पान ।' शमशाद ने तुरंत कह दिया । वह आज उसमें एक परिवर्तन पा रही थी ।

'पर आपको शायद मालूम नहीं है, मैं पान सिर्फ एक ही हाथ का खाता हूँ ।'

यशवंत ने यह बात यों ही कह डाली थी, यद्यपि उसमें यथार्थता न थी । 'खूब ।' शमशाद मुस्कराती हुई बोली-'फिर भी नोश फरमाइए । मैं भी एक ही हाथ से दे रही हूँ ।'[2]

प्रस्तुत उद्धरण में शमशाद के प्रत्युत्पन्नमतित्व के कारण संवाद में रोचकता आ गई है । वस्तुत: यह प्रत्युत्पन्नमतित्व (Presence of mind) वाजपेयी जी का है । ऐसे अनेक उदाहरण उनकी रचनाओं में पाये जाते हैं ।

(इ) सहृदयता :

साहित्यकार सहृदय होता है । जो वाजपेयी जी के निकट सम्पर्क में रहे हैं, जो उनके अन्तरंग मित्र हैं, या एक बार भी जिन्हें उनके साथ रहने का सुयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें उनकी सहृदयता की अनुभूति अवश्य होती है । 'वाजपेयी जी सहृदय बहुत हैं '[3] उनके 'कर्मपथ' उपन्यास

1- एक स्वर आँसू का, पृ0 107

2- टूटते बंधन, पृ0 153-54

3- इलाचन्द्र जोशी के दिनांक 2-12-69 के पत्र से

के ठाकुर साहब, 'छोटे साहब' उपन्यास के डाक्टर साहब. तथा 'सूखी लड़की' कहानी का राय, 'ट्रेन पर' कहानी का राधाकुमुद, 'टिकुली' कहानी का वंशी आदि पात्र वाजपेयी जी के इसी गुण के द्योतक हैं । उनके एक घनिष्ठ मित्र का मानना है - 'वैसे सहृदयता के लिए मैंने मैथिलीशरण और सियारामशरण गुप्त के बाद इन्हीं को पाया है ।[1] वस्तुत: सहृदयता वाजपेयी बनमाली जी के व्यक्तित्व का एक अभिन्न गुण है ।

(ङ) मानवता :

सामान्यत: प्रत्येक मनुष्य में न्यूनाधिक मात्रा में यह गुण विद्यमान रहता है ।साहित्य-कार भी मनुष्य है ; अत: उसमें भी यह गुण होता है । उसके साहित्य में भी यह गुण देखने को मिलता है । कथाकार वाजपेयी जी में भी यह गुण है और उसने उनके साहित्य को भी स्पर्श किया है । उनके संपूर्ण कथा-साहित्य में ऐसी कितनी ही बातें तथा कितने ही प्रसंग उपलब्ध होते हैं, जिनमें से मानवता की सुरभि फैल रही है । यथा -

"उसका गोरा-सा, फूल-सा, पत्ती-सा, सुन्दर, किंतु कुम्हलाया हुआ मुख है, मैली, पंकजवर्ण की धोती मात्र उसके शरीर से चिपकी हुई है, जिसमें यत्र-तत्र रक्त के एकदम पक्के पड़े हुए दाग हैं । एक नवजात शिशु को वह अपनी छाती से चिपकाये हुए है ।--- दो -एक मिनट तो मैं उसे एकटक, स्तब्ध और मूर्तिवत् खड़ा रहकर देखता रहा । फिर जब अस्तव्यस्त हो उठा, तो मैंने उससे पूछा -"बहन , क्या तुम्हारे कोई नहीं है ? क्या अभी-अभी सड़क के किनारे ही तुमने यह बच्चा जना है ? क्या पेट में बहुत पीड़ा है ?---"

---उसने उत्तर में कुछ न कहकर एक बार फिर मुझे देखा, एक बार फिर पीड़ा से विह्वल हो उठी । एक क्षण के अनंतर उसने अपना पेट एक हाथ से दाबे हुए कहा-" भैया, मैं एक दुखिया नारी हूँ, मेरे कोई नहीं है ।" पृ0

---एक तेज इक्का ले आया । उसे उठाकर, सहारा देकर, उस पर बिठाया और अपने घर ले आया ।"[2]

कनक के साथ कहानी के नायक का कुछ सम्बंध नहीं है, न ही पूर्व परिचय है ; फिर भी उस अज्ञाता नारी एवं उसके शिशु को वह मानवता के नाते अपने घर ले जाता है और ठहरने का प्रबन्ध करता है । वाजपेयी जी के इस गुण के सम्बंध में श्री इलाचन्द्र जोशी लिखते हैं ,

---

1- डा0 ललित शुक्ल के दिनांक 3-9-69 के पत्र से ।

2- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 88-89

'यह वाजपेयी जी का विशेष गुण मैं मानता हूँ । उनके साहित्य में यही विशेषता सबसे ऊपर उभरकर सामने आती है ।'[1] उनके उपन्यासों में भी पात्रों के माध्यम से लेखक की मानवत देखी जा सकती है । 'कर्मपथ' के नायक अजय और धन्नीगुरु पूर्व परिचित न थे, फिर भी धन्नीगुरु और उनके साथी भूखे अजय को शक्करकन्दी खाने के लिए देते हैं ।[2] यदि साहित्यकार को मानवता ने स्पर्श नहीं किया है, तो उसके साहित्य में भी इस गुण का नामो-निशान नहीं मिलेगा । वस्तुत: वाजपेयी जी के व्यक्तित्व एवं साहित्य का यह प्रमुख गुण है ।

(उ) सहनशीलता :

वाजपेयी जी मध्य वर्ग से साहित्य के क्षेत्र में आये हैं । आज तक जितना उन्होंने सहन किया है, शायद ही संसार के किसी अन्य साहित्यकार ने सहन किया होगा । श्री अमृतलाल नागर वाजपेयी जी की सहनशीलता के विषय में कहते हैं - सहनशीलता का सबसे बड़ा प्रमाण तो उनका पूरा जीवन है । जो लोग सामाजिक जीवन से साहित्य या कला के क्षेत्र में आया करते हैं, उनमें सहने की मात्रा कम होती है । जो अपने आपको बढ़ाते हैं, उनमें स्वाभिमान और संघर्ष दो गुण होते हैं । धैर्य, लगन निराला जी ने कम करके सहन नहीं किया । कष्टों के कारण उनमें एक प्रकार का औद्धत्य आ गया था ; किन्तु वाजपेयी जी में किसी प्रकार का औद्धत्य नहीं आया ।

'अपनी बड़ी लड़की के विवाह से पूर्व वाजपेयी जी ने बम्बई के चलचित्र उद्योग में काम किया । एक दिन की बात है । हम चार-पाँच मित्र बैठे थे । सब अच्छे साहित्यकार थे । किसी का भी नाम नहीं लूँगा । एक मित्र ने कटाक्ष कर दिया, 'वाजपेयी जी की कहानियों में अधिकतर ट्रेजेडी है, जो उनके छूरे से बच गया, सो बच गया ।---' वाजपेयी जी को बुरा लग गया । वे कुछ भी नहीं बोले । उनका चेहरा इस समय भी हमारे ध्यान में आ रहा है । हम होते, तो तुरन्त चल दिये होते ; किन्तु वाजपेयी जी दस मिनट के पश्चात् चल दिये । दूसरे दिन हमारे यहाँ ठहरे । दिन-रात नींद नहीं आई । Too sensitive-उस बात ने हमको भी पीड़ा पहुँचाई ।'[3]

इसी गुण के कारण उनके कथा-साहित्य में ऐसे कितने ही पात्र देखे जा सकते हैं, जो अपनी सहनशीलता का परिचय देते हैं । उदाहरण रूप में 'मिठाई वाला' कहानी के मिठाई-वाला, 'खाली बोतल' कहानी के केदारबाबू , 'कर्मपथ' उपन्यास के नायक अजय और नायिका

1- इलाचन्द्र जोशी के दिनांक 2-12-69 के पत्र से

2- दे. 'कर्मपथ' पृ0 50

3- श्री अमृतलाल नागर से भेंटवार्ता दिनांक 21-10-68

सुमन आदि को लिया जा सकता है । ये सब सहन करते हैं ; किन्तु अपने मुँह से आह तक नहीं निकलती ।

अपने सहनशील स्वभाव के कारण ही मज़ाक झेलना वाजपेयी जी को आता है । इस सम्बंध में डा0 रामविलास शर्मा का कथन है -" उनके मित्रों में एक श्री श्रीनारायण जी चतुर्वेदी भी थे । वे वाजपेयी जी का खुला मज़ाक किया करते थे, फिर भी वाजपेयी जी चुप ही रहा करते थे ।"[1] जब कोई खुला मज़ाक करता है, तब वे ही व्यक्ति चुप रह सकते हैं, जिनमें सहिष्णुता का गुण होता है । वाजपेयी जी का संपूर्ण जीवन संघर्षमय रहा है । सात दशाब्दियों से भी अधिक वर्षों के अपने जीवन-काल में वाजपेयी जी ने बहुत-कुछ सहा है। उनके सम्बंध में उनके एक मित्र का कथन है -" यदि संघर्षमय जीवन के लिए संसार में किसी साहित्यकार को शील्ड दिया जाय, तो वह वाजपेयी जी को ही मिलना चाहिए ।"[2] श्री अमृतलाल नागर के ये शब्द समीचीन प्रतीत होते हैं । वस्तुत: अपने संघर्षपूर्ण जीवन में उन्होंने अत्यधिक सहन किया है । यदि वाजपेयी जी के विषय में कहा जाय कि वे सहनशीलता के प्रतीक हैं, तो इसमें अत्युक्ति न होगी ।

(ऊ) भावुकता :

लेखक की अपेक्षा कवि अधिक संवेदनशील होता है । वाजपेयी जी का साहित्यिक क्षेत्र-प्रवेश एक कवि के रूप में ही हुआ था । जीवनी से संबंधित अध्याय में हम यह देख चुके हैं । आज भी, जब कि एक कथाकार के रूप में वे प्रसिद्ध हैं, उनकी भावुकता का मुख्य कारण उनका कवि होना है । उनके कवि रूप का विवेचन इसी अध्याय में आगे किया जायगा । वाजपेयी जी के `विश्वास का बल` उपन्यास का राजीव, `"दूखन लागे नैन` उपन्यास का प्रभाकर तथा शाल्मली, `निंदिया लागी` कहानी के बेनीबाबू आदि पात्र भावुक हैं । इसका एकमेव कारण यह है कि कथाकार ने अपनी भावुकता अपनी रचनाओं के पात्रों में उँडेल दी है ।

डा0 रामविलास शर्मा वाजपेयी जी की भावुकता के विषय में कहते हैं - "वाजपेयी जी की भावुकता का यह कोई प्रसंग या घटना नहीं है । जब कभी उनसे भेंट होती थी और बाद में विदा का समय आता था, तब वे गद्गद हो जाते थे और उनकी आँखें आँसू से छलक उठती थीं ।"[3]

1- डा0 रामविलास शर्मा से भेंट-वार्ता, दिनांक 17-10-68

2- श्री अमृतलाल नागर से भेंट-वार्ता, दिनांक 21-10-68

3- डा0 रामविलास शर्मा से भेंट-वार्ता, दिनांक 17-10-68

ऐसी ही अनुभूति प्रबंध-लेखक को उत्तर-प्रदेश की अपनी शोध-यात्रा के दौरान वाजपेयी जी के कानपुर के निवास-स्थान से लखनऊ जाते समय उनकी ओर से हुई थी ।

(ङ) प्रकृति- प्रेम :

कविवर पंत, टैगोर तथा वर्डज़वर्थ आदि संसार के महान् साहित्यकारों ने सृजन की प्रेरणा प्रकृति से पायी है । अत: प्रकृति के प्रति उनका प्रेम होना स्वाभाविक है । कथाकार वाजपेयी जी का शैशवकाल अपनी जन्मभूमि मंगलपुर ग्राम में प्रकृति की गोद में व्यतीत हुआ था । उसी का प्रभाव उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है । नदी, वनश्री, रात, वर्षा, बदली आदि प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों के प्रति वे आत्मीयता का अनुभव करते हैं । उन पर कविता लिखकर तथा कथा-साहित्य में उनका वर्णन करके उन्होंने अपने प्रकृति-प्रेम का सुष्ठु परिचय दिया है । अपने कथा-साहित्य[1] में उन्होंने कहीं-कहीं ऐसा गद्य लिखा है, जिसे पढ़कर पाठकों को काव्य-सा आनन्द प्राप्त होता है । कविता-सा आनन्द प्रदान करने वाला एक गद्य-खण्ड द्रष्टव्य है ।

"रात भीग रही है । इसलिये नहीं कि बूँदाबाँदी हो रही है । इसलिए भी नहीं कि भूमि, वायु और आकाश सब कुछ गीला है ; वरन् इसलिये कि वह गहरी हो रही है और इसलिये भी कि वह अपने आप में समा नहीं रही है । वह यौवन की धार पर खड़ी-खड़ी बह रही है । सिर भर उसका सतह के ऊपर है । वह मौन है, कन्धा लपक उठता है, तो उसकी अलकों से टपकते बूँद चमक उठते हैं ।"[2] इसमें लेखक ने रात का वर्णन करते हुए सजीवा-रोपण (Personification) अलंकार की सहायता से काव्यमय ढंग से यह बताया है कि वह क्यों भीग रही है । इस गद्य-खण्ड में लेखक रात को सुंदरी युवती मानकर उसका वर्णन करता है । वस्तुत: प्रकृति-प्रेम कवि के व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग है । उसके माध्यम से वह अपनी भावुकता प्रकट करता है । अपनी रचनाओं में प्रकृति का वर्णन करके या उसके विभिन्न अंगों पर कविता लिखकर वाजपेयी जी ने अपना प्रकृति-प्रेम प्रकट किया है ।

(च) औदार्य :

अधिकतर साहित्यकारों में यह गुण देखा जा सकता है । हृदय का औदार्य हृदय का महत्त्वपूर्ण गुण है । कथाकार वाजपेयी जी में भी यह गुण विद्यमान है । उनके औदार्य के विषय में डा० रामविलास शर्मा का कथन है -"'लिबर्टी' का उपयोग हम लोग खूब करते थे,

---

1- दे. 'सपना बिक गया', पृ० 328-329 'राजपथ', पृ० 304 ,'गोमती के तट पर' पृ० 192-193

2- निमंत्रण, पृ० 126

फिर भी वे हमारे प्रति यथावत् भाव रखते थे । उनके हृदय में किसी के प्रति भी द्वेष या वैर-भाव नहीं है । सभी के प्रति उनका व्यवहार उदार है ।"[1] मित्र-मण्डली के बीच भी वे हमेशा अपने दरियादिल का परिचय देते हैं ।

किसी भी गरीब विद्यार्थी की फ़ीस वे शीघ्र दे देते हैं । पारिवारिक उत्तरदायित्व का बोझ अपने अध्ययन के दिनों में ही उनके कंधों पर आ जाने से विवश होकर उन्हें शिक्षा से विमुख होना पड़ा था, इस बात का विस्मरण उन्हें कभी नहीं होता । परिस्थितिवश उच्च शिक्षा वे प्राप्त नहीं कर सके, किंतु जीवन में उसका महत्त्व वे खूब समझते हैं । अत: आर्थिक अभाव के कारण कोई होनहार विद्यार्थी शिक्षा से वंचित रह जाय, यह वे कतई पसंद नहीं करते । उसकी बात शांतिपूर्वक सुन लेने के बाद वे उसकी यथाशक्ति सहायता करके पढ़ने के लिए उसे प्रोत्साहित करते हैं ।

वाजपेयी जी के कथा-साहित्य के पात्रों में भी यह गुण दृष्टिगोचर होता है । 'रात और प्रभात' उपन्यास के बड़े भाई का औदार्य अद्वितीय है ।[2] 'ट्रेन पर' कहानी के राधाकुमुद की उदारता भी प्रशंसनीय है, जो अपनी पत्नी को उसके पुराने प्रेमी के साथ विवाह करने की अनुमति प्रदान करता है ।[3] 'खाली बोतल' कहानी में केदारबाबू भी मालती के प्रति अपने स्नेह के कारण उसे अपना सब कुछ दे देते हैं ।[4] वस्तुत: लेखक का औदार्य उसके पात्रों में भी आ गया है ।

(औ) स्नेह-सद्भाव :

मानव युगों से स्नेह के लिए तरस रहा है । सारा संसार आज जब बारूद की राशि पर बैठा है, तब उसे स्नेह का पीयूष पिलाने का पुनीत कार्य साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से कर सकता है । सामान्यत: वाजपेयी जी सभी के प्रति स्नेहशील रहते हैं ; किन्तु बच्चे उनके स्नेह के सर्वाधिक अधिकारी रहे हैं । यह उनके साहित्य से भी प्रमाणित होता है ।[5] इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि अपनी दो वर्ष की लड़की के काल-कवलित हो जाने पर उसके प्रति उनका जो स्नेह था, अपत्य स्नेह का वही स्रोत बच्चों के प्रति प्रवाहमान है ।

1- डा० रामविलास शर्मा से भेंट-वार्ता दिनांक 17-10-68
2- दे. 'रात और प्रभात', पृ० 15
3- दे. लोकप्रिय कहानियाँ, पृ० 128
4- दे. 'मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ० 35
5- दे. 'स्नेह बाती और लौ ' में संगृहीत कहानी 'मिठाई वाला', पृ० 3

उनके निवास-स्थान के निकटवर्ती बच्चे उन्हें सादर 'बाबा' कहते हैं ।

सभी के प्रति सद्भाव की सरिता उनके हृदय से निरन्तर बहती रहती है । किसी ने उन्हें कभी किसी पर रुष्ट होते नहीं देखा । दैवयोग से यदि किसी पर गुस्सा होते हैं, तो भी शीघ्र उनकी उग्रता का शमन हो जाता है । अपने विरोधियों से भी वाजपेयी जी उसी प्रकार विनम्रता से हँस-हँसकर बातें और सौजन्य का व्यवहार करते हैं, जैसे अपने मित्रों से । कटुतम आलोचकों के प्रति भी उनके हृदय से द्वेष की भावना कदापि प्रस्फुटित नहीं होती । इसी के कारण उनके साहित्य के कटु समीक्षक भी व्यक्ति के रूप में उनका आदर करते हैं ।[1]

(आ) सामाजिकता -(Sociability) :

अरस्तू के कथनानुसार मनुष्य सामाजिक प्राणी है । अत: समाज के बिना उसका यथोचित विकास एवं अस्तित्व असंभव है । कुछ-एक दिनों के लिए एकाकी रहना और बात है ; किंतु हमेशा समाज से दूर रहना कल्पनातीत प्रतीत होता है । कभी-कभी साहित्यकार के लिए साहित्य-सृजन के हेतु चिन्तन और चिन्तन के लिए एकान्त अनिवार्य हो जाता है, परन्तु संसारी मनुष्य सदैव समाज से दूर नहीं रह सकता । अपनी सामाजिकता के सम्बंध में वाजपेयी जी का कहना है -" मैं अकेला तो कभी रहा नहीं । भरे घर में भी मेरी क़लम बन्द नहीं होती, जब बच्चे खेलते-चहकते, शोर मचाते और कभी-कभी लड़ते भी हैं । कारण, जब मैं लिखता हूँ, तब आत्मलीन हो जाता हूँ । हाँ, दो-चार दिन होटल के कमरे में अकेले बना रहता हूँ; किन्तु मुझे मित्रों में बैठकर समाज और राजनीति,साहित्य और कला, जीवन-दर्शन और मानवता की नवरचना पर विचार-विनिमय करने में आनन्द आता है ।"[2]

वाजपेयी जी के पात्र भी सामाजिकता से दूर नहीं हैं । यहाँ तक कि इस संसार का त्याग करने वाले उनके 'साधु'[3] पात्र भी समाज से दूर नहीं रह सके । वस्तुत: समाजिकता उनके पात्रों में भी झलकती है ।

(अं) साहसिकता तथा दुर्बलताएँ :

अपने व्यक्तित्व के इसी आन्तरिक गुण के कारण प्रतिकूल परिस्थितियों में भी

1- डा० रामविलास शर्मा से भेंट-वार्ता दिनांक 17-10-68

2- वाजपेयी जी के दिनांक 16-2-70 के पत्र से

3- दे हिलोर, पृ० 150

उन्होंने बड़े साहस से काम लिया । विषम परिस्थितियों से वे कदापि दबे नहीं, अपितु उनसे जूझते रहे । स्वजनों की मृत्यु भी उनकी मुस्कान की दीप्ति को मन्द न कर सकी, उत्तरावस्था की रुग्णता उन्हें अकर्मण्य न बना सकी । आर्थिक अभावों में भी साहसिकता के ही कारण साहित्य-साधना से वे विमुख न हुए । इस गुण के अभाव में उनका साहित्य या व्यक्तित्व ह्रासोन्मुख हो सकता था ; किन्तु इसी साहसिकता के कारण ही उनका व्यक्तित्व निरन्तर विकासोन्मुख और जीवन उत्कर्षशील बना रहा । उनके कथा-साहित्य में पात्रों के माध्यम से उनका यह गुण उभरा है । 'टिकुली' कहानी की टिकुली, 'रजनी' कहानी के प्रकाश तथा 'धरती की सौंस' उपन्यास के नायक निरंजन में साहसिकता देखी जा सकती है।

वाजपेयी जी के व्यक्तित्व के आंतरिक पक्ष का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि वाह्य पक्ष की अपेक्षा उनके व्यक्तित्व का अन्तर्वर्ती पक्ष अधिक उदात्त है । उनमें निहित अनेक गुणों के साथ-साथ कुछ दुर्गुण भी हो सकते हैं । इस विश्व में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसमें कोई दुर्गुण या दुर्बलता न हो । किसी भी व्यक्ति के साथ रहे बिना उसकी दुर्बलता का पता नहीं चल सकता । वाजपेयी जी के सतत संपर्क में रहे बिना उनकी दुर्बलता की सप्रमाण जानकारी भी प्राप्त नहीं हो सकती । अत: स्वयं उनसे, उनके कुछ मित्रों से तथा उनके साहित्य से जो कुछ प्राप्त है, उसके आधार पर उनकी दुर्बलताओं को इंगित किया जा सकता है ।

उनके स्वभाव के अंतर्गत यह देखा गया कि वे बहुत सरल स्वभाव के व्यक्ति हैं ; किंतु उनकी यह सरलता ही कभी-कभी दुर्बलता के रूप में परिवर्तित हो जाती है । इस सम्बंध में उनके एक मित्र कहते हैं -' मैं उनकी किसी भी दुर्बलता से परिचित नहीं हूँ । केवल इतना ही जानता हूँ कि वह अधिक भावुक हैं । और अपनी इस अत्यधिक भावुकता के फलस्वरूप वह धूर्तों की बातों का कभी-कभी विश्वास कर लेते हैं ।'[1]

उनकी इस अत्यधिक भावुकता का कारण उनकी सरलता और भोलापन ही है । उनके सरल स्वभाव के कारण ही धूर्त अपनी बातों में उन्हें फँसा सकते हैं । जब उनकी दुर्बलताओं के सम्बंध में उन्हीं से पूछा गया, तो उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा -" आपने मानवीय दुर्बलताओं की बात पूछी है । मैं समझता हूँ कि मेरे साहित्य का पाठक इस विषय में अंतत्वोगत्वा अपना कोई न कोई मत जरूर स्थिर कर लेता है । अतीव सुन्दर व्यक्तित्व वाली युवतियों और महिलाओं के यौवन-सौंदर्य को देख-देखकर पुलकित होने का वर्णन क्या मैंने अपने उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से नहीं किया है ?"[2]

1- इलाचन्द्र जोशी के दिनांक 2-12-69 के पत्र से

2- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र से

वस्तुत: उनके कथा-साहित्य[1] में नारी-सौंदर्य-वर्णन यत्र-तत्र प्राप्त होता है । उनके पुरुष-पात्र यौवन-सौंदर्य को देखकर पुलकित होते पाये जाते हैं । अपनी दुर्बलताओं के सम्बंध में राजेन्द्रकेपात्र के माध्यम से वे कहते हैं -'जहाँ चलने की बात उठ रही है, वहाँ मेरे लिए अद्भुत आकर्षण है और कुछ ऐसी बात है कि मैं रूप-सौंदर्य को मदिरा से भी अधिक नशीली वस्तु मानता हूँ --- और मैं बहुत विनयपूर्वक यह भी स्वीकार करता हूँ कि सौंदर्य मेरी सबसे बड़ी दुर्बलता है ।'[2]

मनुष्य में दुर्बलताओं का होना स्वाभाविक है ; किंतु उन दुर्बलताओं को इतनी सरलता से सामान्य मनुष्य स्वीकार नहीं करता, परन्तु वाजपेयी जी ने नि:संकोच अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार किया है ।

साहित्यिक व्यक्तित्व

ऊपर वाजपेयी जी के व्यक्तित्व के वाह्य एवं अंतर्वर्ती पक्षों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया ; किंतु वे एक साहित्यकार हैं और हम उनके कथा-साहित्य का प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में अनुशीलन कर रहे हैं, अत: यह नितान्त आवश्यक है कि उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय भी प्राप्त कर लिया जाय ; क्योंकि साहित्यकार के व्यक्तित्व का अध्ययन उसके साहित्यिक व्यक्तित्व से अनभिज्ञ रहने से अपूर्ण ही माना जायगा ।

प्रस्तुत अध्याय के प्रारंभ में ही हम यह देख चुके हैं कि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के अंतर्गत किसी एक गुण का समावेश नहीं होता ; किन्तु उसका व्यक्तित्व व्यक्ति के सभी गुणों की समष्टि है । इसी प्रकार किसी भी साहित्यकार के साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण भी उसके किसी एक साहित्यक रूप से नहीं होता, अपितु वह उसके विभिन्न साहित्यिक रूपों की समष्टि से होता है । साहित्य के माध्यम से पाठकों पर उसके सर्जक का जो प्रभाव पड़ता है, वही है उसका साहित्यिक व्यक्तित्व । यह प्रभाव पाठकों पर अनेक रूपों में पड़ता है ; क्योंकि साहित्यकार का कोई एक रूप नहीं होता ।

वाजपेयी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण भी उनके अनेक रूपों की समष्टि द्वारा हुआ है । उनमें प्रमुख पक्ष है - कवि, तार्किक, हास्य-व्यंग्यकार, नाटककार एवं कथाकार इन रूपों के अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि वे गोष्ठी-रसिक हैं । यहाँ हम उनके

1- दे. निमंत्रण, पृ0 11, 'होटल का कमरा', पृ0 37, 115

2- 'चलते-चलते' पृ0 145

साहित्यिक व्यक्तित्व के सभी पक्षों पर क्रमश: विचार करेंगे ।

(क) वाजपेयी जी : एक कवि के रूप में -

साहित्यकार का संवेदनशील होना स्वाभाविक है । संवेदनशीलता के अभाव में साहित्य-सृजन असम्भव है । वाजपेयी जी भी अत्यधिक संवेदनशील साहित्यकार हैं । उनकी संवेदनशीलता में जीवनगत संघर्षों एवं पारिवारिक करुण घटनाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।यही संवेदनशीलता उनकी कविताओं, उपन्यासों,नाटकों आदि में अभिव्यक्त हुई है ।

सन् 1941 ई0 में वाजपेयी जी का 'ओस के बूँद' नामक एक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ था । इसमें 19 कविताएँ संकलित की गई हैं । उनमें कुछ छायावादी-रहस्यवादी,कुछ रोमांटिक, तो कुछ कविताएँ प्रगतिवादी हैं । इन कविताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं तथा उपन्यासों[1] में बिखरी प्राप्त होती हैं । आज भी साहित्य की सभी विधाओं में उनका कवि विद्यमान है । कवि के रूप में आज भी वे समादृत हैं। इसी कारण हिन्दी की आधुनिक कविता के प्रतिनिधि संकलन 'कवि-भारती' (सं0 डा0 नगेन्द्र, सुमित्रानंदन पंत तथा बालकृष्ण राव) में वाजपेयी जी को भी स्थान दिया गया है ।

(ख) तर्कशील वाजपेयी जी :

वाजपेयी जी के कथा-साहित्य में उनका तार्किक रूप भी दृष्टिगोचर होता है । उनकी तर्कशीलता के कारण ही उनका एक पात्र दूसरे पात्र की बात शीघ्र स्वीकार नहीं करता। पात्रों की तार्किकता लेखक के विचारों एवं व्यक्तित्व को प्रकट करती हैं । उच्चवर्ग के पात्र प्राय: विद्वान और बुद्धिजीवी होते हैं । और यह स्वाभाविक भी है ; किन्तु वाजपेयी जी के कथा-साहित्य में उच्च वर्ग के पात्रों के लिए कम अवकाश रहा है । उनके मध्य वर्ग के पात्रों की बातों का क्षेत्र जहाँ एक ओर घरेलू बातों में ही सीमित रहता है वहाँ दूसरी ओर वे तर्कशील भी पाये जाते हैं । वाजपेयी जी को तार्किक के रूप में समझने के लिए कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

" केशव- तो तुम नहीं मानोगे ?

मोहन - क्या ?

1- दे.'सपना बिक गया', पृ0 327 से 331, 'राजपथ', पृ0 304-305, 'गोमती के तट-पर ', पृ0 192-93, 'एक प्रश्न', पृ0 46, 'चलते-चलते' पृ0 459-60,'विश्वास का बल' , पृ0 231-32

केशव - यही कि तुम्हारा यही हाल रहेगा ।

मोहन - इसमें क्या संदेह है ? हृदय कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि उसे जिधर चाहें, घुमा दें । वह तो जीवन का दर्पण है । जैसे हम हैं, वैसे ही हृदय के आइने में भी देख पड़ेंगे ।

केशव - परंतु आइना गलत भी हो सकता है । जैसे हम हैं, उसकी अपेक्षा कुछ विकृत भी देखे जा सकते हैं ।

मोहन- वह आइना सुरक्षित रखने की नहीं, फोड़ डालने की चीज़ है ।

केशव - और जो संचित रखने की चीज़ हो , उसे कोई फोड़ डालने का उपक्रम करे,तब ?

मोहन ने ठंडी साँस भरकर और कुछ ठहरकर कहा - तो उसका अस्तित्व मिटा देना चाहिए ।'[1]

प्रस्तुत उदाहरण में दोनों पात्र मध्य वर्ग के हैं । मोहन कवि और केशव प्रोफेसर है । दोनों का तार्किक होना स्वाभाविक है । दोनों में से कोई किसी की बात को स्वीकार नहीं करता । अपितु दोनों तर्क करके अपनी बुद्धि का परिचय देते हैं । वस्तुत: यह तर्कशीलता वाजपेयी जी की ही है । 'राजपथ 'कहानी[2] का प्रारंभिक अंश तार्किक शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है । प्रस्तुत कहानी की नायिका अनामिका उच्च वर्गीय है ; अत: उसका तर्कशीला होना अनुपयुक्त प्रतीत नहीं होता ।

अपने उपन्यास-साहित्य में भी पात्रों के माध्यम से वाजपेयी जी एक तर्कशील के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं । हमारे कथन की पुष्टि के लिए यहाँ एक और उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है ।

'करुणा बोली-'अगर तुम शुरू नहीं करोगे, तो मैं सारी रात इसी तरह बैठी रहूँगी।'

'--- सारी रात ।'

करुणा बोली- 'सारी रात ही क्यों, सारा जीवन ।'

' मैंने आज तक किसी से हार नहीं मानी ।'

ऐसा कोई आदमी संसार में कभी पैदा नहीं हुआ । विचारकों का कथन है कि भगवान तथागत जब अपनी पत्नी गोपा और शिशु राहुल को सोता हुआ छोड़कर चल दिये, जीवन के प्रति यह उनकी हार थी ।'

1- 'मधुपर्क' पृ0 167

2- दे 'होटल का कमरा, पृ0 32-33

'ऐसी हार, जो जीत का मूर्धन्य कारण होकर रही।'[1]

उपर्युक्त उद्धरण में भी नायक-नायिका तर्क द्वारा अपनी बातों की पुष्टि करते हैं ; किंतु दोनों में से कोई भी किसी की बात को स्वीकार नहीं करता ।

वाजपेयी जी के कथा-साहित्य के पात्र वहीं तर्कशील दिखते हैं, जहाँ किसी राजनीतिक विषाय की चर्चा हुई है । शंका एवं संदेह राजनीति के विषाय में अधिक हैं और तर्क बिना शंका अथवा संदेह के होता नहीं । यदि संदेह-हीन कोई तथ्य है, तो तर्क के लिए स्थान ही कहाँ ? इसी सत्य को दृष्टिगत करते हुए भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अपने पात्रों को राजनीतिक विषायों की चर्चा में ही तर्कशील दिखलाया है ।

(ग) हास्य -व्यंग्यकार वाजपेयी जी :

सामान्य जीवन में वाजपेयी जी हमेशा प्रसन्न पाये जाते हैं । उन्हें देखकर प्रतीत होता है कि जैसे संघर्षपूर्ण जीवन उन्हें तनिक भी प्रभावित नहीं कर सका है । मित्र-मण्डली में जब कभी वे बैठते हैं, तब अट्टहास और व्यंग्यों के अवसर कभी हाथ से नहीं जाने देते । एक आलोचक का यह मत कि 'उनके साहित्य में हास्य और व्यंग्य का नितान्त अभाव मिलता है ।'[2] सर्वथा सत्य प्रतीत नहीं होता । वाजपेयी जी के कथा-साहित्य में हास्य और व्यंग्य की तीक्ष्णता भले ही न हो ; किन्तु उनकी हलकी पुरहार भी बिना भिगोये नहीं रहती । इसका प्रमुख कारण यही हो सकता है कि वे मूलत: रोमाण्टिक हैं, अत: उनकी इस प्रवृत्ति ने ही उन्हें प्रेम और वेदना का उपासक बनने के लिए विवश किया है । परिणामस्वरूप उनके व्यंग्य की तीक्ष्णता कुण्ठित हो गई है ।

वाजपेयी जी ने अपने कथा-साहित्य में हास्य निष्पन्न करने के अनेक प्रयोग किये हैं । एक स्थान पर उन्होंने ऐसे पात्र का सृजन किया है जो बोलने में 'स' के स्थान पर 'फ' का प्रयोग करता हूँ है ।[3] कहानी की अपेक्षा उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण ही वाजपेयी जी के उपन्यासों में हास्य-व्यंग्य की मात्रा अधिक रही है । पात्रों के नाम, उनकी वाक्पटुता, वर्णन आदि के माध्यम से उन्होंने अपने हास्यकार को रूपायित किया है ।

1- 'सूनी राह', पृ0 64-65

2- 'विश्वास का बल'(आलोचनात्मक अध्ययन), राजनाथ शर्मा, पृ0 19

3- दे. 'टूटा टी सैट', पृ0 14

एक पात्र अपने नाम का इतिहास बतलाते हुए कहता है -' मेरा नाम तो सिर्फ़ मालीराम है । लेकिन लोग मुझे माली ही कहते हैं । वैसे बप्पा ने वनमालीराम रक्खा था । फिर बड़े लोगों ने शुरू का 'वन' शब्द काटकर मालीराम रख छोड़ा । अब राम भी कट गया । माली ही रह गया हूँ ।'[1] हास्य का यह एक सुंदर उदाहरण है । इसे पढ़ने के पश्चात् हँसी अवश्य आती है ।

कहीं-कहीं अपने हास्यकार का रूप प्रकट करने के लिए उन्होंने हास्य शैली का भी अवलम्ब लिया है । यथा -

'खाडिलकर साहब से आपका क्या सम्बन्ध है, मैं जान सकता हूँ ?'

अरुण ने उत्तर दिया -'जनाब, वे मेरी बीवी के भाई के साले के मामू हैं ।'[2]

इसे पढ़कर किसी को भी हँसी आ सकती है । इसके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार से भी वाजपेयी जी ने अपने साहित्य में हास्य-रस निष्पन्न किया है । पात्र का परिचय देते समय उसकी आदत की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करके लेखक पाठकों को हँसने के लिए विवश कर देता है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

प्रात:काल उठते-उठते अ जहाँ अन्य लोग भगवान का नाम लेते ; या धरती-माता की धूल ही मस्तक से लगा लेते हैं, वहाँ उनका हाथ सबसे पहले तबले पर जाता है । प्रात:काल तबला, मध्यान्ह तबला-यहाँ तक कि रात को सोने से पूर्व भी तबला । तबला अर्थात् खुशीराम।[3]

कभी-कभी तो ऐसी परिस्थितियाँ, जिनमें सामान्य मनुष्य उकता जाता है, वाजपेयी जी का हास्यकार उन परिस्थितियों को भी सरल बना देता है । जैसे -

'कमरों के आगे लम्बा सहन है, जिसके पूर्वी किनारे पर पाइप लगा है । यह पाइप जब तक चलता रहता है, तब तक चेष्टा करने पर भी बन्द होना नहीं जानता । कभी-कभी नीचे तबला,ऊपर पाइप, दोनों एक साथ बोलना शुरू कर देते हैं ।'[4]

प्रस्तुत उद्धरण में जिस पाइप का वर्णन है, उसकी प्रेरणा वाजपेयी जी को अपने समीपवर्ती क्वार्टर से मिली हो, यह संभव है ; क्योंकि उनकी बगल के क्वार्टर में ऐसा ही पाइप

1- गोमती के तट पर, प्र.प्र.वा. पृ0 235

2- टूटा टी सेट, " " " पृ0 49

3- ----दूखन लागे नैन, पृ0 5

4- वही, पृ0 6

लगा है । इसके अतिरिक्त उनके 'गोमती के तट पर' उपन्यास में यह देखा जा सकता है कि जब किसी लड़के, युवक या स्त्री को लज्जाराम संकटग्रस्त अवस्था में देखता, तो यथाशीघ्र उसे उलटा-सीधा पाठ पढ़ाकर अपने साथ ले आता । करीमउल्ला के पास उसे दीक्षा दी जाती । उससे जो शपथ ली जाती, उसकी शब्दावली में भी हास्य का पुट दिया गया है । उस शपथ का कुछ अंश यहाँ दे रहे हैं -

" मैं आज भगवान की कसम खाकर कहता हूँ कि

1- मैं जिन्दगी-भर भिखारी ही बना रहूँगा ।

2- भिखारी कहलाने में मुझे कभी शरम न आयेगी ।

3- मैं भिखारी जाति के प्रति सदा विश्वसनीय बना रहूँगा ।

4- सिर्फ़ खाना-कपड़ा लेकर मैं संतोष करूँगा । उसके लिए उस्ताद से जो कुछ भी मिल जायगा, उसे हँसी-खुशी के साथ स्वीकार कर लूँगा --- आदि ।"[1]

यह पढ़ते समय एक-आध क्षण के लिए हमारे ओष्ठ कुछ विकसित होते हैं ; किंतु दूसरे ही क्षण देश के समक्ष भिखारियों की जो समस्या है, उसका भी ध्यान आता है और उस समस्या के समाधान के लिए स्वातंत्र्य की दो दशाब्दियों के अनन्तर भी हमारी सरकार कुछ नहीं कर सकी है , यह विचार आते ही हास्य अदृश्य हो जाता है और उसका स्थान उदासीनता ले लेती है । अपने कथा-साहित्य में वाजपेयी जी हास्य निष्पन्न करने का प्रयत्न नहीं करते हैं, ऐसी बात नहीं है ; किंतु रोमानी स्वभाव के कारण उन्हें अपने प्रयत्न में पर्याप्त सफलता नहीं मिलती । अपनी रोमाण्टिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप प्रसाद जी के साहित्य में भी हास्य-व्यंग्य की स्थिति वाजपेयी जी के हास्य-व्यंग्य जैसी ही है,परन्तु प्रेमचन्द जी के साहित्य में हास्य-व्यंग्य का तीखा और मार्मिक रूप प्रायः होता है ।

हास्य के अतिरिक्त वाजपेयी जी की रचनाओं में यदा-कदा कटु व्यंग्य भी देखने को मिलता है । उनके व्यंग्य के शिकार देश, समाज,कर्मचारी व पुलिस सभी हुए हैं । इस सम्बन्ध में एक उदाहरण देखना समीचीन प्रतीत होता है ।

"मालती बोली-'इस मण्डल की चर्चा मैंने भी सुनी है । लेकिन सुनती हूँ आपस में मतभेदों के कारण यह मण्डल ठीक ढंग से काम नहीं कर रहा है ।'

इसी क्षण विनायक बोल उठा -' आपस का मतभेद और वैमनस्य तो हमारे देश का सनातन धर्म है ।'

1- गोमती के तट पर, पृ0 305

"लेकिन तुमको यह सुनकर आश्चर्य होगा," शर्मा जी ने जैसे कोई नई बात सोचते हुए कहा- "इस तरह के कर्मचारियों के अन्दर एक तीसरी श्रेणी भी है । कार्य-शैली, क्षमता और योग्यता की दृष्टि से देखा जाय, तो इस श्रेणी के लोग यथेष्ट परिस्कृत हैं ; किंतु साधारण जनता के आन्दोलनों के साथ उनका कोई सम्बंध नहीं रहता । समय पर वेतन लेना और कार्यालय में इस ढंग से काम करना कि काम की कमी कभी न होने पाये, उनका मुख्य उद्देश्य रहता है ।"[1]

प्रस्तुत गद्य-खण्ड में लेखक ने देश और कर्मचारी दोनों के प्रति अपना निशाना बाँधा है और लेखक को अपना लक्ष्य सिद्ध करने में सफलता भी मिली है । पुलिस की ओर भी लेखक ने करारा व्यंग्य कसा है । यथा -

"सिपाही को क्या दोष दूँ । जब हमारा साँचा ही ऐसा हीं है, जिससे ढलने वाले पात्रों में छिद्र रह जाना स्वाभाविक है, तब आज़ाद हिन्दुस्तान की पुलिस को पहला पाठ यही क्यों न पढ़ाया जाय कि हर एक आदमी पर संदेह करो । समझ लो कि वह झूठ बोलता है-और मुझे जान-बूझकर धोखा देना चाहता है । हर सभ्य नागरिक को आवारा समझो । जो अपनी नवभार्या को साथ लिये जा रहा हो, उसका चलना रोक दो । उससे कहो-' ठहरो, मुझे तुम पर शक़ है । तुम इस औरत को कहीं से भगा लाये हो । पहले सबूत दो कि यह स्त्री वाक़ई तुम्हारी है !"[2]

इसमें जो सूचनाएँ लेखक ने दी हैं, उनको स्वतंत्र भारत की पुलिस ने वर्षों से व्यवहार में रख दिया है । इसमें जो व्यंग्य है वह चुभता अवश्य है ; किन्तु उसमें और भी तीक्ष्णता की आवश्यकता थी । उपन्यासों के अतिरिक्त कहानियों में भी उनके व्यंग्यकार का रूप हमारे समक्ष उपस्थित होता है ।

"----कुत्ता हूँ : मैं । और वे लोग, जो केवल जीविका, परिवार, पेट, और प्रेम चोचलों के नाम पर किसानों और मज़दूरों की गाढ़ी कमाई का रुपया उनकी आँखों में धूल झोंककर और अपने आपको धोखा देकर, झूठ बोलकर मस्तिष्क का व्यायाम-मात्र दिखलाकर, नित्य डकारते रहते हैं , वे ?

" वे वन्दनीय हैं, क्योंकि नेताओं और महान् व्यक्तित्व के लोगों को अपनी कोठियों में ठहराते हैं और उनको दावतें देते हैं । वे अपनी उस आय का दो-तीन प्रतिशत सार्वजनिक संस्थाओं को दान जो कर देते हैं । छींक भी हो जाने पर उनका समाचार संवाद-पत्रों में छप

1- 'निमंत्रण', पृ0 97

2- 'चलते-चलते,' पृ0 423

जो जाता है । अपनी भाषा के सम्पादक उनके यहाँ दौड़ते जो हैं । साहित्य,संगीत और कला के प्रदर्शन की गोष्ठियाँ जो उनके यहाँ होती हैं ?"[1]

प्रस्तुत गद्य-खण्ड में शोषक वर्ग को वन्दनीय कहकर, वे वन्दनीय क्यों हैं, इसके कारण देकर लेखक ने करारा व्यंग्य किया है । इनके साथ-साथ लेखक ने संवाद-पत्रों एवं उनके सम्पादकों को भी नहीं छोड़ा है । दोनों आजकल कितने सस्ते हो गये हैं, संवाद-पत्रों में आजकल कैसे समाचार प्राप्त होते हैं, इन सब बातों का उल्लेख लेखक ने कुशलतापूर्वक किया है ।

वस्तुत: वाजपेयी जी के लिए व्यंग्य का क्षेत्र उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों में सीमित रहा है, किन्तु जिन पात्रों एवं क्षेत्रों पर उन्होंने व्यंग्य कसा है उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है । उनके कथा-साहित्य में प्राप्त हास्य-व्यंग्य के अध्ययन से उनके हास्य-व्यंग्यकार के रूप का हमें पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है ।

(ख) नाटककार वाजपेयी जी :

साहित्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ वाजपेयी जी ने दो नाटकों-'छलना' तथा 'राय पिथौरा' - का भी सृजन किया है । इनमें 'छलना' एक मनोवैज्ञानिक त्रिअंकी रूपक है । रूपकों का हिन्दी में अभी तक अभाव-सा प्रतीत होता है । इस अभाव की पूर्ति -हेतु वाजपेयी जी ने 'छलना' की रचना करके पथ-प्रदर्शन करने का प्रयत्न किया है । रूपक प्राय: उबा देनेवाले होते हैं ; किन्तु 'छलना' इस दोष से मुक्त है । प्रस्तुत नाटक में वाजपेयी जी ने कल्पना, कामना (इसका ही दूसरा नाम निद्रा है), विलास आदि भाव-वृत्तियों को इसी नाम के पात्रों के माध्यम से प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । इस रूपक के नायक बलराज के अनेक प्रयत्न करने पर भी उसकी पत्नी कल्पना संतुष्ट नहीं होती । वह नारी-स्वातंत्र्य की पक्षपाती है । शारीरिक भोग को ही वह अति महत्त्व देती है । अत: दु:खी है । दूसरी ओर लंगड़ी भिखारिन त्यक्ता चम्पी सुखी-संतुष्ट है ; क्योंकि उसका जीवन कर्महीन, एकाकी, लक्ष्यहीन और उच्छृंखल नहीं है । उसकी अज्ञानता तथा कर्मण्यता के कारण ही उसे सुख उपलब्ध हुआ है । इस रूपक के नारी पात्र टाइप हैं, जो समाज में सदैव विद्यमान रहते हैं ।

दूसरा नाटक 'राय पिथौरा' ऐतिहासिक है । वाजपेयी जी ने इसमें पृथ्वीराज के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित किया है । मुहम्मद गौरी के भतीजे हुसैनखाँ का अपनी प्रेयसी के साथ भागकर पृथ्वीराज की शरण में आना, संयोगिता-पृथ्वीराज का परस्पर आकृष्ट

1- बात एक नाते की, पृ0 97

होना, महामात्य कैमास का राजनर्तकी कनाटिकी के साथ विषयांध होकर अनुचित व्यवहार करना और पृथ्वीराज द्वारा उसका मारा जाना आदि प्रसंगों का इसमें समावेश किया गया है। गौरी के प्रति पृथ्वीराज का औदार्य संसार के इतिहास में अद्वितीय है। इसके अतिरिक्त नाटककार ने आधुनिक राजनीति, भारतीय संस्कृति, शरणागत की रक्षा, मर्यादा-पालन, आतिथ्यसत्कार आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं।

'छलना' एवं 'राय पिथौरा' दोनों नाटक दो प्रकारों के हैं। 'छलना' में नारी की समस्या चिरंतन समस्या के रूप में ग्रहण की गई है, फिर भी उसका धरातल सामाजिक है। उसमें समाज के संघर्षों का यथार्थ-वादी चित्र है। 'राय पिथौरा' सम्राट पृथ्वीराज चौहान के जीवन से सम्बद्ध एक ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटक है। ऐतिहासिक नाटक की दृष्टि से यह एक सफल साहित्यिक कृति है। दोनों नाटकों में गीतों का भी उपयुक्त प्रयोग किया गया है। रंगमंच की दृष्टि से विचार किया जाय, तो दोनों नाटकों में अभिनय का गुण बराबर मिलता है। दोनों नाट्य कृतियों के माध्यम से वाजपेयी जी ने अपनी नाट्य-कला की कुशलता का सुष्ठु परिचय दिया है, तथापि उनका कथाकार का रूप ही आगे रहा। साहित्य की अन्य विधाओं में सृजन करने पर भी अन्य विधाओं के सृजक के रूप में वे उजागर न हो सके, ऐसा ही उनके नाटककार तथा कवि के रूप का हुआ।

(च) कथाकार वाजपेयी जी :

वाजपेयी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व का यह एक प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण रूप है। इसी रूप के कारण आज उन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि तथा लोकप्रियता प्राप्त हुई है। आज वे कथाकार के रूप में ही हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकारों में अपना स्थान निश्चित कर चुके हैं। पूर्व समवेक्षित सभी रूप उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के सहायक हैं, तथापि उन सभी रूपों का सुन्दर समन्वय उनके प्रस्तुत रूप में पाया जाता है।

सन् 1922 ई० में उनकी प्रथम कहानी 'यमुना' प्रकाशित होते ही कहानी-क्षेत्र में उनका प्रवेश हो चुका था। उस समय प्रेमचंद आदि साहित्यकार साहित्यिक क्षेत्र में आ चुके थे। सन् 1929 ई० में वाजपेयी जी का प्रथम कहानी-संग्रह 'मधुपर्क' प्रकाशित होने के पश्चात् आज तक उनके लगभग 17 कहानी -संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। मुख्य रूप से उनकी कहानियों का विषय प्रेम रहा है। उनकी कहानियाँ जीवन के रस को लेकर लिखी गई हैं। शिल्प की दृष्टि से उनकी 'निंदिया लागी', 'मिठाई वाला', 'खाली बोतल', 'अंधेरी रात', 'मैना',

'हार-जीत', 'ट्रेन पर', 'इन्द्रजाल' आदि कुछ कहानियाँ निश्चित रूप से अमर हैं। आज तक उन्होंने लगभग 350 कहानियों की रचना की है। संख्या की दृष्टि से श्रेष्ठ कथाकार के लिए यह गौरव की बात है।

सन् 1926 ई0 में उनका प्रथम उपन्यास 'प्रेमपथ' प्रकाशित हुआ। तब से वे इस क्षेत्र में हैं। उस समय तक प्रेमचंद जी के 'सेवा-सदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'व्यभिचार', बेचन शर्मा 'उग्र' का 'कलकत्ता रहस्य', गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' का 'संदेह' आदि उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। वाजपेयी जी के प्रथम उपन्यास में ही उनके भावि उपन्यासकार का संकेत मिल जाता है। 'प्रेमपथ' के बाद उनके 'अनाथ पत्नी', 'मुसकान', 'प्रेम-निर्वाह', 'पतिता की साधना,' 'पिपासा', 'दो बहनें,' 'निमंत्रण' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए। अपने उपन्यासों की कथावस्तु वाजपेयी जी ने प्रमुख रूप से समाज से ली है। वे मुख्यत: रोमैण्टिक हैं। उन्होंने सामाजिक बंधन तथा रूढ़ियों को शिथिल बनाया, तब वे रोमैण्टिक बने। सन् 1926 ई0 से आज तक उन्होंने लगभग 45 उपन्यासों की रचना की है। उनमें से 'पतिता की साधना', 'दो बहनें', 'निमंत्रण', 'गुप्तधन', 'चलते-चलते', 'भूदान' 'विश्वास का बल', 'सूनी राह', 'गोमती के तट पर', 'सपना बिक गया', 'टूटा टी सेट', आदि उपन्यास उनकी कीर्ति को अक्षय रखने के लिए समर्थ हैं।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाजपेयी जी ने साहित्य की प्राय: सभी विधाओं के सृजन-क्षेत्र में अपने व्यक्तित्व तथा साधना का यथाशक्ति योगदान दिया है और आज भी देते रहे हैं। आज तक उन्होंने जिन कृतियों की रचना की है, उनकी तालिका इस प्रकार है -

1- कविता :- ओस के बूँद (1942)

2- नाटक :- छलना (1939) तथा राय पिथौरा (1958)

3- उपन्यास तथा कहानी :- द्वितीय खण्ड में कृति-परिचय से पूर्व उनके संपूर्ण कथा-साहित्य की सूची दी जायगी।

4- बाल-साहित्य :- आकाश-पाताल की बातें, बालकों का शिष्टाचार, शिवाजी, बालक प्रह्लाद, बालक ध्रुव, हमारा देश, नागरिक शास्त्र की कहानियाँ, शिक्षा की योजना।

5- सम्पादित ग्रन्थ :- हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ, प्रतिनिधि कहानियाँ, नवीन पद्य -संग्रह, युगारंभ, नवकथा, कथा भारती।

6- सम्पादन :- दैनिक विक्रम, संसार (मासिक), माधुरी (मासिक), सम्मेलन पत्रिका, आरती (मासिक)

साहित्यिक सम्मान :

सन् 1924 ई0 में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में उनकी नियुक्ति सहायक मंत्री पद पर हुई थी । तदन्तर सन् 1941 ई0 में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अबोहर अधिवेशन में होने वाली साहित्य-परिषद के वे सभापति चुने गये थे । इसके अतिरिक्त दो बार उत्तर प्रदेशीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में भी उन्होंने सेवाएँ दी हैं । कानपुर के कुछ साहित्यकारों द्वारा 'साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी' नामक एक अभिनन्दन-ग्रन्थ उनकी पचपनवीं वर्षगांठ पर उन्हें भेंट किया गया था । एक और अभिनन्दन-ग्रन्थ उनकी सत्तरवीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में प्रधान मंत्री के हाथों भेंट करने के लिए अभिनन्दन-समिति उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रही थी ; किन्तु प्रधान मंत्री की व्यस्तता के कारण अंत में सन् 1972 ई0 में उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी के कर कमलों द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ वाजपेयी जी को समर्पित किया गया ।

उनका उपन्यास 'गोमती के तट पर' उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुका है । 'कर्मपथ', 'विश्वास का बल', 'गुप्तधन', 'धरती की सौंस', 'राजपथ', 'अधिकार का प्रश्न', 'आगे-आगे,' 'भूदान', आदि उपन्यासों को पाठ्यक्रम में स्थान देकर अनेक विश्वविद्यालयों ने उनका सम्मान किया है । उनकी 'मिठाईवाला', 'निंदिया लागी' तथा 'सूखी लकड़ी' आदि कहानियाँ विद्यालय से लेकर एम0 ए0 तक की विभिन्न परीक्षाओं के लिए स्वीकृत हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से हमने वाजपेयी जी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का परिचय प्राप्त कर लिया है । उनके व्यक्तित्व के सम्बंध में सविस्तार चर्चा करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वाजपेयी जी का हिन्दी कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है और हिन्दी-साहित्य-कोश भरने में उन्होंने अपना अमूल्य योगदान दिया है । सामान्य जीवन में वे जैसे सरल, सीधे तथा स्वाभिमानी हैं, ऐसा ही प्रतिबिम्बन उनके व्यक्तित्व का उनके साहित्य में में भी हुआ है । मानव जीवन की शाश्वत वृत्तियाँ - प्रेम, करुणा, वात्सल्य आदि- उनके साहित्य में देखी जा सकती हैं । उनके कथा-साहित्य में जीवन की ऐसी कितनी ही परिचित बातें आयी हैं, जो हमारी रागात्मक वृत्तियों को प्रकट करती हैं ।

उनका साहित्य उनके व्यक्तित्व के लिए निर्णायक ही सिद्ध नहीं हुआ है, अपितु हिन्दी के पाठकों की भी वह प्रिय वस्तु रही है । जिसने वाजपेयी जी की 'मिठाईवाला' कहानी को एक बार भी पढ़ा है, वह उसे कभी नहीं भूल पाता । इसकी मार्मिकता किसी भी पाठक को प्रभावित कर सकती है । लगभग 45 उपन्यासों तथा 350 कहानियों की रचना करने

वाला यह साहित्यकार अपने जीवन की 72 वसंत देख और समुचित सम्मान प्राप्त कर चुका है । यह जीवन की शत वसंत देखे और साहित्य की अभिवृद्धि करता रहे, यह प्रत्येक साहित्य रसिक की कामना होगी । इन पंक्तियों के साथ इस अध्याय को हम यहीं समाप्त करते हैं । अगले अध्याय में हम वाजपेयी जी की उन कृतियों की चर्चा करेंगे, जिनसे उनके साहित्यकार का सृजन हुआ है । उनकी कृतियों का परिचय प्राप्त करना, वस्तुत: एक प्रकार से उनके व्यक्तित्व का संपूर्ण परिचय प्राप्त कर लेना ही होगा, अत: अगले अध्याय में हम वाजपेयी जी के कथा-साहित्य का अनुशीलन करेंगे ।

द्वितीय खण्ड

वाजपेयी जी का कथा-साहित्य

प्रथम अध्याय

वाजपेयी जी के कथा-साहित्य का वर्गीकरण तथा परिचय

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

वाजपेयी जी के उपन्यास तथा कहानियाँ

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय में हम वाजपेयी जी का जीवन-परिचय प्राप्त कर चुके हैं, किन्तु किसी भी साहित्यकार का परिचय उसकी रचनाओं के अध्ययन के अभाव में अपूर्ण ही माना जायगा ; क्योंकि साहित्यकार का पूर्ण परिचय तो उसकी कृतियाँ होती हैं, अत: यह नितांत आवश्यक है कि वाजपेयी जी के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए उनकी कृतियों का परिचय प्राप्त कर लिया जाय ।

वाजपेयी जी के कुछ उपन्यास दोहरे नाम के हैं, कुछ पॉकेट संस्करण में प्रकाशित हुए हैं,तो कुछ उपन्यास वाजपेयी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं दे सके हैं । ऐसे उपन्यासों को छोड़कर शेष महत्त्वपूर्ण उपन्यासों का परिचय यहाँ हम दे रहे हैं। इससे पूर्व कि वाजपेयी जी के कथा-साहित्य का परिचय प्राप्त कर लिया जाय, यहाँ हम उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य की तालिका दे रहे हैं ।

	उपन्यास	प्रकाशन-काल
1	प्रेमपथ	सन् 1926 ई0
2	मीठी चुटकी[1]	सन् 1928 ई0
3	अनाथ पत्नी	सन् 1928 ई0
4	मुसकान[2]	सन् 1929 ई0
5	प्रेम -निर्वाह[3]	सन् 1934 ई0
6	लालिमा[4]	सन् 1934 ई0

1- इस उपन्यास के प्रारंभ के 11 परिच्छेद (56 पृष्ठ) वाजपेयी जी के, 12 से 22 परिच्छेद (पृ0 57 से 96) श्री विजय वर्मा के तथा 23 से 37 परिच्छेद (पृ0 97 से 170) श्री शंभुदयाल सक्सेना के लिखे हुए हैं ।

2- यह उपन्यास सन् 1932 ई0 में 'त्यागमयी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था ।

3- यह उपन्यास सन् 1955 ई0 में 'नियतिन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था ।

4- इस कृति के लेखक के रूप में वाजपेयी जी के नाम के साथ श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा का नाम भी संलग्न है ।

7	पतिता की साधना	सन् 1936 ई0
8	पिपासा	सन् 1937 ई0
9	दो बहनें	सन् 1940 ई0
10	निमंत्रण	सन् 1942 ई0
11	गुप्तधन[1]	सन् 1950 ई0
12	चलते - चलते	सन् 1951 ई0
13	पतवार[2]	सन् 1952 ई0
14	धरती की साँस[3]	सन् 1954 ई0
15	मनुष्य और देवता	सन् 1954 ई0
16	भूदान	सन् 1955 ई0
17	यथार्थ से आगे[4]	सन् 1955 ई0
18	विश्वास का बल	सन् 1956 ई0
19	सूनी राह	सन् 1956 ई0
20	निरंतर	सन् 1957 ई0
21	रात और प्रभात	सन् 1957 ई0
22	उनसे न कहना	सन् 1957 ई0
23	गोमती के तट पर	सन् 1959 ई0
24	पाषाण की लौच[5]	सन् 1959 ई0
25	दरार और घुंआँ	सन् 1960 ई0
26	सपना बिक गया	सन् 1960 ई0
27	एक प्रश्न	सन् 1961 ई0
28	टूटा टी सैट	सन् 1962 ई0
29	दुखन लागे नैन	सन् 1962 ई0
30	वन्दन और पानी	सन् 1962 ई0

1- यह उपन्यास सन् 1957 ई0 में 'एकदा' नाम से प्रकाशित हुआ था ।

2- इसका पुनर्मुद्रण सन् 1964 ई0 में 'राजपथ' शीर्षक से हुआ था ।

3- इसका संक्षिप्त रूप सन् 1966 ई0 में 'नदी और नाव' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था ।

4- इसका परिवर्द्धित संस्करण सन् 1969 में 'आगे-आगे' नाम से प्रकाशित हुआ था ।

5- यह उपन्यास वाजपेयी जी ने अपने शिष्य हरिशंकर शर्मा के साथ लिखा है ।

31	टूटते बन्धन[1]	सन् 1963 ई0
32	कपट-निद्रा[2]	सन् 1963 ई0
33	अधिकार का प्रश्न	सन् 1965 ई0
34	स्वप्नों की गोद	सन् 1965 ई0
35	मुझे मालूम न था	सन् 1966 ई0
36	एक स्वर आँसू का	सन् 1966 ई0
37	छोटे साहब	सन् 1966 ई0
38	विजय श्री[3]	सन् 1966 ई0
39	अधूरा स्वर्ग	सन् 1966 ई0
40	कर्मपथ	सन् 1967 ई0
41	वासना से परे	सन् 1967 ई0
42	मोह-त्याग	सन् 1967 ई0
43	वासना का इन्द्रजाल	सन् 1969 ई0
44	झरोखे की रानी	--
45	पुष्पगंधा	सन् 1971 ई0

1- पहले इस उपन्यास का नाम 'अभिसंधि' था ; किन्तु बाद में बदल दिया गया ।

2- यह उपन्यास 'कपक' शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ है ।

3- इस उपन्यास का परिवर्द्धित संस्करण सन् 1971 ई0 में 'आज और अभी' नाम से प्रकाशित हुआ है ।

कहानी- संग्रह

	संग्रह का नाम	प्रकाशन-काल
1	मधुपर्क	सन् 1929 ई0
2	हिलोर	सन् 1939 ई0
3	दीपमालिका	सन् 1931 ई0
4	पुष्करिणी[1]	सन् 1939 ई0
5	खाली बोतल	सन् 1940 ई0
6	मेरे सपने	सन् 1940 ई0
7	कला की दृष्टि	सन् 1942 ई0
8	उपहार	सन् 1943 ई0
9	अंगारे	सन् 1944 ई0
10	ज्वार-भाटा[2]	सन् 1944 ई0
11	आदान-प्रदान	---
12	उतार-चढ़ाव	सन् 1950 ई0
13	स्नेह, बाती और लौ	सन् 1957 ई0
14	लोकप्रिय कहानियाँ	सन् 1965 ई0
15	मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ	सन् 1965 ई0
16	होटल का कमरा	सन् 1966 ई0
17	कबाड़ी का ताजमहल	सन् 1966 ई0
18	बात एक नाते की	सन् 1967 ई0

1- 'साहित्य-शिल्पी भगवतीप्रसाद वाजपेयी : साधना और उपलब्धि' में 'पुष्करिणी' का प्रकाशन-काल सन् 1936 ई0 दिया गया है ; किन्तु हमारे पास 'पुष्करिणी' का जो संस्करण है, इसमें प्रथम संस्करण सन् 1939 ई0 दिया गया है, अत: सन् 1939 ई0 को हम मान्यता देते हैं ।

2- 'साहित्य-शिल्पी भगवतीप्रसाद वाजपेयी : साधना और उपलब्धि' में 'ज्वार-भाटा' का प्रकाशन-काल सन् 1940 ई0 दिया गया है ; किन्तु राष्ट्रभाषा प्रचारक मण्डल, सूरत के पुस्तकालय में प्रस्तुत कहानी-संग्रह में प्रथम संस्करण का प्रकाशन-काल सन् 1944 ई0 प्राप्त होता है ।

:91:

वाजपेयी जी का उपन्यास-लेखन कविता-सृजन के साथ साथ सन् 1915 ई0 से आरंभ हो चुका था । पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में ही उन्होंने 'निरुपमा' नामक एक उपन्यास की रचना की थी । मंगलपुर से कानपुर आने के पश्चात् कुछ ही दिनों में उन्होंने उस उपन्यास की पाण्डुलिपि हरिदास एण्ड कम्पनी (कलकत्ता) के स्वामी को प्रकाशनार्थ भेजी थी । दस दिन के बाद कलकत्ता से उक्त कंपनी का पत्र भी उनके पास आ गया था कि 'उपन्यास छापना स्वीकार है, क्या लेंगे ?' इस का उत्तर देते हुए वाजपेयी जी ने लिखा था, " मैं एकदम नया लेखक हूँ । यह मेरी पहली कृति है , इसलिए जो आप देंगे, वही मुझे स्वीकार होगा ।' उनका पत्र कलकत्ता पहुँचते ही हरिदास ने यह # लिखकर कृति लौटा दी कि "मैं नये लेखक की कृति नहीं छापता।"[1] इस तरह उनका प्रथम उपन्यास अद्य पर्यन्त अप्रकाशित ही रहा । तत्पश्चात् सन् 1926 ई0 में उनका प्रथम उपन्यास 'प्रेमपथ' प्रकाशित हुआ । तबसे आज तक उन्होंने लगभग 45 उपन्यासों का सृजन किया है । आज भी 73 वर्ष की वृद्धावस्था में वे गतिशील हैं और निरंतर कहानी तथा उपन्यासों का निर्माण करके हिन्दी कथा-साहित्य की निधि को भरते जा रहे हैं । इस अध्याय में हम वाजपेयी जी के प्रमुख उपन्यासों एवं कहानियों का विवेचन करेंगे -

प्रेमपथ :

यह वाजपेयी जी का प्रकाशित प्रथम उपन्यास है । इसका प्रकाशन सन् 1926 ई0 में, पुस्तक भण्डार, पटना से हुआ था ।

प्रस्तुत उपन्यास का प्रतिपाद्य स्वच्छंद प्रेम है । पति-पत्नी के सीमित संसार तक ही उसका औचित्य नहीं, अपितु पुरुष-स्त्री मात्र के सहज प्रेम को भी स्वीकृति मिलनी चाहिए, यह वाजपेयी जी का मंतव्य है । उनकी दृष्टि में युवा साली और तरुण जीजा का प्रेम-संबंध भी उतना ही पावन है, जितना विवाहित दंपति का । वाजपेयी जी के इस दृष्टिकोण से प्रेमचंद जी सहमत नहीं है ; अत: प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका में उन्होंने अपना मतभेद प्रकट किया है । वाजपेयी जी का यह दृष्टिकोण उन्हें तत्कालीन लेखकों से भिन्न कर देता है । सुधारवादी एवं आदर्शवादी उस युग में इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन निश्चय ही साहस का कार्य था ।

इस उपन्यास में रमेश और उसकी विधवा साली तारा के प्रेम का चित्रण करके लेखक ने अनेक सामाजिक समस्याओं को उठाया है । विवाह से पूर्व ही वह रमेश के प्रति आकृष्ट होती है

1- साहित्य शिल्पी भगवतीप्रसाद वाजपेयी : साधना और उपलब्धि, प्रधान संपादक - डा0 विश्वनाथ गौड़, पृ0 238

और वैधव्य के पश्चात् उसके आकर्षण में निरंतर वृद्धि होती रहती है । वस्तुत: दोनों का प्रेम कलुषित है, तथापि आत्म-प्रवंचना के कारण तारा अपने प्रेम को निर्मल तथा निष्कलंक समझती रहती है । दोनों एकांत में रात-रात भर बातें करते रहते हैं, इतना ही नहीं, यौवनावेश में चुंबन और परिरंभण करने से भी नहीं हिचकते । बहुत दिनों तक अपने आपको धोखा देने के पश्चात् एक दिन वासना-पूर्ति के लिए रमेश की कुचेष्टा देखकर तारा अपना विवेक जाग उठने पर उसकी उपेक्षा करती है और उपालंभ देकर, उसे सजग बनाकर, अपने शील की रक्षा करती है । अध: पतन के किनारे पर पहुँचे रमेश की आँखें खुल जाती हैं और वास्तविकता का ज्ञान होते ही वह तारा के पैरों पर लज्जित होकर गिर पड़ता है । इस घटना के डेढ़ महीने के बाद रमेश को तारा का पत्र प्राप्त होता है और उसके आदेशानुसार वह उसे मिलने जाता है । तारा के तिरस्कार के कारण उसमें परिवर्तन आ गया है । रमेश, उसकी पत्नी रामा तथा साली तारा के प्रेम के पारस्परिक सहयोग से अनंत सुख का आविर्भाव होता है और साथ ही उपन्यास समाप्त हो जाता है । इस उपन्यास में वासना नाना प्रकार के कपटरूप धारण करती है, किन्तु एक स्थिति ऐसी अवश्य आती है, जब वासना का कपटरूप हट जाता है , दोनों के मन का कल्मष भी दूर हो जाता है, दोनों सामान्य स्थिति में आ जाते हैं और दोनों पात्रों को अपने कर्तव्य का बोध हो जाता है ।

इस उपन्यास में एक बात खटकती है । तारा के विधवा हो जाने के बाद अपनी पत्नी रामा के साथ रमेश रामनगर पहुँचता है, तब अपनी पत्नी,साले, उसकी पत्नी तथा सास की उपस्थिति में उसका स्वच्छंद व्यवहार सबको कैसे सह्य हुआ ? दोनों दिन-दिन भर, रात-रात भर पास बैठते, वार्तालाप, चुंबन-आलिंगनादि करते हैं, यह परिवार के लोग मूक, असहाय दर्शक की भाँति कैसे देखते रहते हैं ? यहाँ तक कि घर की बदनामी बाहर पहुँचती है, तब भी कोई कुछ नहीं कहता । यह सब अत्यंत अस्वाभाविक प्रतीत होता है ।

प्रेम, नैतिकता और चरित्र के विषय में आदर्शवादी-सुधारवादी दृष्टिकोण से हटकर यथार्थवादी रुख अपनाकर वाजपेयी जी ने असंदिग्ध रूप से प्रेम की समस्या को जो महत्त्व दिया है, वह रचना को ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान करता है । इस उपन्यास से पूर्व स्वच्छंद प्रेम का प्रतिपादन हिन्दी के किसी उपन्यास में नहीं मिलता ।"[1] डा० ईश्वरदत्त शील के इस कथन से हम पूर्णतया सहमत नहीं हैं ; क्योंकि इस उपन्यास में वाजपेयी जी ने आदर्श की स्थापना की है और मूलत: यह एक आदर्शवादी उपन्यास है ।

1- साहित्यशिल्पी भगवतीप्रसाद वाजपेयी : साधना और उपलब्धि, प्रधान संपादक- डा० विश्वनाथ गौड़,पृ० 410

वाजपेयी जी का यह प्रथम उपन्यास होने पर भी प्रतिपाद्य विषय के प्रतिपादन के साथ रोचकता आदि से अंत तक बनी हुई है । इसकी भूमिका में प्रेमचंद जी ने उचित ही लिखा है - " भगवतीप्रसाद जी ने हिन्दी संसार को यह बहुत ही अच्छी वस्तु भेंट की है । इसमें वासना और कर्तव्य का अंतर्द्वन्द्व देखकर आप चकित हो जाएँगे ।"[1]

अनाथ पत्नी :

जिन परिस्थितियों में इस उपन्यास की रचना हुई, उनका उल्लेख करते हुए वाजपेयी जी लिखते हैं - "बात सन् '29 की है । दलबंदी के विषाक्त वातावरण में जब मेरा दम घुटने लगा, तो मुझे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक मंत्री-पद को त्याग देना पड़ा । यह कार्य बड़े साहस का था । मुजफ्फरपुर (बिहार) वाले सम्मेलन के वार्षिकोत्सव में जब आदरणीय पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी से भेंट हुई, तो उन्होंने मुझे समझाया भी- अब भी समय है, अगर तुम कहो तो दूने मासिक वेतन पर तुम अपने पद पर पुन: आ सकते हो । मुझे कहना पड़ा-'अब किसी भी सार्वजनिक संस्था में वैतनिक रूप से मैं कोई पद स्वीकार नहीं करूँगा ।

फलत: सम्मेलन से लौटने पर मैंने सोचा- 'कुछ-न-कुछ करना चाहिए ।'

तब पं0 सुदर्शनाचार्य की 'गृहलक्ष्मी' का संपादन-कार्य मुझे स्वीकार करना पड़ा । वहाँ के अनुभव ने बतलाया कि असीम की कल्पना में जब सीमाएँ टूट जाती हैं, तब उनके साथ-साथ आदमी भी टूट जाता है । 'गृहलक्ष्मी' का संपादन-कार्य स्वीकार करते समय मैंने जो कुछ सोचा था, वह सब आचार्य जी की क्षमता से परे था ।

इसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर जब आठ घण्टे का कार्य मैं दो घण्टे में निपटा देने लगा, तब आचार्य जी ने कहा- 'तो फिर वाजपेयी जी , इस बाकी समय में उपन्यास लिखिए । अपना 'अनाथ पत्नी' उपन्यास मैंने इसी कार्य-काल में लिखा ।"[2]

लेखक का प्रस्तुत संस्मरण भ्रान्तिपूर्ण प्रतीत होता है । इस संस्मरण के आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि 'अनाथ पत्नी' का प्रकाशन सन् 1929 ई0 में या उसके बाद हुआ । परंतु यह तथ्यपूर्ण नहीं है । स्वयं वाजपेयी जी द्वारा भेजा गया प्रस्तुत उपन्यास का प्रथम संस्करण प्रबंध लेखक के पास है, जिसमें इसका प्रकाशन-काल नवम्बर, 1928 ई0 दिया गया है ।

1- प्रेमपथ , 'विमर्श' पृ0 2

2- साहित्यशिल्पी भगवतीप्रसाद वाजपेयी : साधना और उपलब्धि, प्रधान संपादक - डा0 विश्वनाथ गौड़, पृ0 234

प्रस्तुत उपन्यास के प्रारंभ के छ: परिच्छेद नहीं है । ऐसी अवस्था में ही वाजपेयी जी से प्रबंध-लेखक को यह उपन्यास उपलब्ध हो सका है । संप्रति यह उपन्यास अनुपलब्ध है ।

इस उपन्यास का प्रथम संस्करण नवम्बर, 1928 ई० में 'चांद कार्यालय', इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था । इस उपन्यास के सृजन की प्रेरणा वाजपेयी जी को अपने समाज से मिली है । कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में आज भी यह देखा जाता है कि विवाह हो जाने के पश्चात् किसी साधारण-सी बात पर- जैसे लेन-देन की कमी से चिढ़ कर वर पक्षवाले कन्या को छोड़कर चले जाते हैं और लड़के का विवाह दूसरी जगह कर देते हैं । निजी स्वार्थ में अंध वे उस अबोध, निर्दोष परित्यक्ता कन्या का रंच मात्र भी विचार नहीं करते । उपन्यासकार स्वयं इसी कान्यकुब्ज परिवार का है ; अत: जो कुछ उसने देखा तथा अनुभव किया है, उसे इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है ।

प्रस्तुत उपन्यास में झगड़े का कारण स्वयं कन्या है । रजनी एक ऐसी कन्या है, जिसकी जाति का कुछ पता नहीं है । उसका पालन-पोषण एक कान्यकुब्ज द्वारा हुआ है । विवाहोपरांत उसके मूल वंश का बखेड़ा खड़ा होता है । अंतत: बारात लौट जाती है और लड़के सुशील का विवाह दूसरी कन्या प्रतिभा के साथ कर दिया जाता है । अबला रजनी को अपना भविष्य अंधकारमय लगता है, तथापि हतोत्साह हुए बिना दत्तचित्त होकर वह अध्ययन में जुट जाती है और मेडिकल कालेज से डाक्टरी पास करके अपना जीवन वह रोग-पीडितों के लिए उत्सर्ग कर देती है । एक बार सुशील की पत्नी प्रतिभा के रुग्ण होने पर [redacted] रजनी ही उसकी चिकित्सा करती है ; किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी प्रतिभा बच नहीं पाती । मृत्यु से पूर्व वह रजनी और सुशील का हाथ एक दूसरे को दे देती है । इस प्रकार कतिपय नाटकीय घटनाओं के आधार पर एक विषम सामाजिक समस्या-परित्यक्ता की समस्या -का निदान इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है ।

इस उपन्यास की कथा-वस्तु में वास्तविकता होते हुए भी स्वाभाविकता का नितांत अभाव है लगता है । कथानक की योजना यांत्रिक, कृत्रिम तथा पूर्व निश्चित प्रतीत होती है । सशक्त अभिव्यक्ति के अभाव में प्रारंभ से ही पूरी कथा का पता चल जाता है । लेखक ने अपने समाज में व्याप्त कुरीतियों का सांगोपांग विवेचन इस उपन्यास में किया है । इन कुरीतियों के कारण ही विवाह वरदान नहीं, किन्तु अभिशाप बन जाता है, यह लेखक ने इस उपन्यास में बतलाया है ।

उपन्यासकार की असावधानी के कारण इस उपन्यास में कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं । उपन्यास के सम्यक् अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पात्रों की आवश्यकतानुसार उनका प्रवेश इस रचना में कराया गया है । उनके प्रवेश में कोई क्रम नहीं है । यथा - सुशील के कोई भाई भी था, यह बात पूरे उपन्यास में पहले कहीं भी नहीं कही गई है । उपन्यास के अंत में सुशील के पिता अपनी पुत्रवधू के अस्वास्थ्य के समाचार पाकर लखनऊ जाते हैं, तब वहाँ से लौटते समय कहते हैं कि यहाँ एक आदमी की आवश्यकता है, अत: सुशील के छोटे भाई को भेज दूँगा ।[1] यहाँ स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक निजी व्यक्ति की आवश्यकता पड़ने पर लेखक ने शीघ्र सुशील के छोटे भाई का सृजन कर लिया । यदि सुशील का कोई भाई था, तो उसका उसका नामोल्लेख वहाँ अवश्य करना चाहिए था, जहाँ सुशील के परिवार का परिचय दिया गया है । सातवें परिच्छेद में भगवान कृष्ण के चित्र की जो घटना दी गई है ।[2] वह नितांत व्यर्थ है । उपन्यास की कथा से उसका किसी प्रकार का सम्बंध नहीं है । उस चित्र के गिरने से सुशील क्यों पीड़ित हुआ ? उस चित्र के पीछे क्या लिखा गया था, जिसे उसने कागज़ से छिपा दिया ? इन प्रश्नों का कोई उत्तर उपन्यासकार की ओर से पूरे उपन्यास में नहीं मिलता ।

उपन्यास के अंत में यह बात भी अस्पष्ट ही रहती है कि सुशील तथा उसकी पत्नी प्रतिभा को यह कैसे ज्ञात हुआ कि रजनी सुशील की प्रथम त्यक्ता पत्नी है । रजनी को यद्यपि यह मालूम था कि सुशील उसका पति है, किन्तु आत्म-गौरव के कारण वह अपने द्वारा कहीं भी इस बात को प्रकट नहीं होने देती । तो फिर सुशील तथा प्रतिभा ने यह कैसे जान लिया ?

उपर्युक्त अस्पष्टताएँ तथा त्रुटियाँ ऐसी नहीं हैं, जिन्हें अदाम्य कहा जा सके । उपन्यास के विषय की महत्ता में वे बाधक प्रतीत नहीं होतीं । इसकी भूमिका में लब्ध-प्रतिष्ठ कथाकार विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने लिखा है - 'उपन्यास का विषय अच्छा है और उसको चित्रित करने में लेखक ने सफलता प्राप्त की है ।'[3]

1- अनाथ पत्नी, पृ0 159

2- वही, पृ0 32

3- वही, भूमिका, पृ0 6

(3) मुसकान[1] :

इस शीर्षक से इस उपन्यास का प्रथम संस्करण सन् 1929 ई0 में प्रकाशित हो जाने के पश्चात् सन् 1932 ई0 में इसी का प्रकाशन 'त्यागमयी' नाम से हुआ । प्रस्तुत उपन्यास में भी 'अनाथ पत्नी' की भाँति अनेक नाटकीय घटनाओं का आयोजन किया गया है ।

ललिता नामक विधवा युवती किसी सुन्दर युवक के साथ प्रेम में पड़कर समाज की दृष्टि में कलंकित हो जाती है । उसकी नवजात बालिका का गला 'उन राक्षसों ने, जो मनुष्य का नाम कलंकित करते हैं,' घोंट दिया और माघ मेले के अवसर पर गंगास्नान के बहाने उसे प्रयाग में, भीड़ में, छोड़ दिया । असहाय होकर वह आत्म-हत्या के हेतु यमुना जी में कूद पड़ती है । किनारे पर खड़ी एलिस यह देखती है, पर उसे बचा नहीं सकती ; क्योंकि उसे तैरना नहीं आता । संयोग से विजय नामक युवक वहाँ जा पहुँचता है, वह उसकी प्राण रक्षा करता है । एक दूसरे को देखते ही एलिस और विजय प्रणय-बन्धन में बँध जाते हैं । ललिता का हृदय भी अपने उद्धारकर्ता के चरणों में निछावर हो जाता है । वस्तुस्थिति से अवगत होने पर धैर्य का परिचय देती हुई वह तटस्थ हो जाती है । माँ और एलिस उसको विजय की विवाह करने के लिए अनुरोध करती हैं, तब वह स्पष्ट कहता है कि मुझे ऐसा साथी चाहिए जो मेरी उद्देश्य-पूर्ति में सहायता करे । आगे चलकर विजय को प्राण-दण्ड दिलाने वाले धूर्त डाकू नाहरसिंह की हत्या करके एलिस स्वयं को उक्त परीक्षा में सफल सिद्ध करती है, किन्तु उसे कालापानी का दण्ड होता है । इस बीच ललिता बनारस पहुँच जाती है । उसके निवास-स्थान के पास एक देश-द्रोही बंगाली की हत्या हो जाती है । उस देश-द्रोही की हत्या हो जाने के अनन्तर वह घोषणा करती है कि डाकू नाहरसिंह का वध भी उसने ही किया था । उसे प्राण-दण्ड मिलता है, एलिस निर्दोष छूट जाती है । उसकी और विजय की पुन: भेंट होती है । ललिता को पंचाग्नि देते समय दोनों देखते हैं कि उसके मुख पर मुसकान है । इस कृति के कथानक से इस बात की स्पष्ट प्रतीति होती है कि वाजपेयी जी के अन्य उपन्यासों की भाँति इसमें भी आदर्शात्मक दृष्टिकोण से एक नाटकीय कथा प्रस्तुत की गई है ।ललिता के चरित्र-विकास में लेखक ने सच्ची सहृदयता का परिचय दिया है ।

1- दे. हिन्दी उपन्यास-कोश(खण्ड-2),सं0 डा0 गोपालराय,पृ0 43,प्रस्तुत कोश में डा0 गोपालराय 'मुसकान' और 'त्यागमयी' को अलग मानते हैं; किन्तु पूछने पर स्वयं वाजपेयी जी ने अपने दिनांक 20-8-71 के पत्र में लिखा है -'मुसकान' का ही दूसरा (परिवर्तित) नाम 'त्यागमयी' है ।

(vii) पतिता की साधना :

प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1936 ई० में छात्र हितकारी पुस्तकमाला कार्यालय, दारागंज, प्रयाग से हुआ था। यह एक सामाजिक समस्या-प्रधान रचना है। इसमें लेखक ने नंदा नामक कन्या का चित्रण किया है, जिसके पिता और पति का निधन उसकी अल्पायु ही में हो जाता है। ननद के विवाह की भीड़-भाड़ में उसका परिचय फुफेरे देवर हरिनाम से होता है और दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। विवाहोपरान्त नन्दा अपने भाई के यहाँ चली जाती है और हरिनाम अपने घर ; किन्तु दोनों का प्रेम भीतर ही भीतर परिपुष्ट होता रहता है। एक दिन संध्या समय हरिनाम अचानक नंदा के यहाँ पहुँचता है और एकांत पाते ही दोनों की कामवासना प्रबल हो उठती है, परिणामस्वरूप नन्दा का कौमार्य खण्डित होता है। तत्पश्चात् प्रतिष्ठा बचाने के हेतु गर्भवती नन्दा को उसके भाई-भौजाई पर्याप्त रूपये देकर माघमेले में कानपुर छोड़ आते हैं और ऐसा प्रचारित कर देते हैं कि वह गंगा में डूब मरी। नन्दा यथासमय अस्पताल में पुत्र को जन्म देती है। बड़े होने पर उसे गुरुकुल में भेज देती है और अपने जीविकोपार्जन के लिए, अपना नाम माया रखकर, वेश्यालय में जा बैठती है। ऐसे गंदगी भरे क्षेत्र में भी वह अपने को जलकमलवत् रखती है। अपने सुमधुर गाने एवं सुसंस्कृत व्यवहार से लोगों को आकृष्ट करके वह अपनी जीविका चलाती है। इधर बड़े भाई गोपालकृष्ण के षड्यंत्र से हरिनाम पर मानहानि का मुक़दमा चलता है और उसे आठ महीने की सज़ा हो जाती है। जेल से मुक्त होने पर उसे नन्दा की मृत्यु का समाचार मिलता है, तो अपने घर न जाकर वह अन्यत्र कहीं चल देता है और अपनी आँखें फोड़ डालता है। एक दिन नन्दा हरिनाम को सूरदास के रूप में देखती है। दूसरी बार उसके आने पर वह उसे अपने पास बुलाकर अपना परिचय देती है और दोनों वियुक्त हृदय का मिलन होता है। यह जानने के पश्चात् हरिनाम के मित्र उसके पुत्र अशोक को तार से बुलवा लेते हैं और हरि, नन्दा तथा अशोक को लेकर गाँव पहुँच जाता है। उन्हें देखकर हरि की वृद्धा माँ आनन्दातिरेक में गद्गद हो उठती है।

इस उपन्यास के कथानक-वर्णन की यह विशेषता है कि विधवा नन्दा तथा हरिनाम का प्रेम-प्रसंग और माया (वेश्यालय की नन्दा) तथा सूरदास (भीख माँगनेवाला हरि) की कथा समानान्तर चलती है। पाठक को अन्त तक यह पता ही नहीं चलता कि माया ही नन्दा तथा सूरदास ही हरि है। दोनों कथाओं के सम्बंध सूत्र को जानने के लिए उसका औत्सुक्य बराबर बना रहता है। इस उपन्यास के पात्रों-विशेषत: हरि और नन्दा - में पर्याप्त सजीवता है।

सामाजिक परिपार्श्व में लेखक ने उनके अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण सफलतापूर्वक किया है । नन्दा की मानवीय दुर्बलताओं को स्वाभाविक रूप से बतलाते हुए उपन्यास के अंत में उसे परम पुनीता साधना मयी नारी के रूप में चित्रित किया गया है । हरि की सहृदयता तथा त्याग-भावना के वर्णन में वाजपेयी जी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है । घर एवं गाँव का वर्णन भी लेखक ने सुन्दर ढंग से किया है । उपन्यास के अंत में हरि का विधवा नन्दा को पत्नी के रूप में अपनाने का साहस करना नवयुग की सूचना देता है । यह कृति वाजपेयी जी की औपन्यासिक यात्रा की माइलस्टोन (Mile stone) मानी जाती है । इस उपन्यास से उपन्यासकार के रूप में उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है ।

(iii) पिपासा :

प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1937 ई0 में हुआ था । इस उपन्यास का चतुर्थ संस्करण तथा पंचम् संस्करण क्रमशः सन् 1944 ई0 में एवं सन् 1953 ई0 में साहित्य-मंदिर, दारागंज, प्रयाग से प्रकाशित हुआ था । इन संस्करणों में वाजपेयी जी ने जहाँ कहीं उचित जान पड़ा, वहाँ थोड़ा-बहुत संशोधन भी कर दिया है । इसकी कथावस्तु सामान्य है । इसके नायक कवि कमलनयन की ओर उसके जज मित्र नरेन्द्र की पत्नी आकृष्ट है । पति का उस पर पूर्ण विश्वास है, तथापि पर-पुरुष के प्रति वह अनुरक्त है । ऐसी स्थिति के फलस्वरूप उपन्यास में पात्रों का मनोविश्लेषण यत्र-तत्र अंकित किया गया दृष्टिगोचर होता है । नायक न्याय और सत्य का पक्षपाती होने पर भी प्रेमावेश में मित्र की पत्नी का परिरम्भण व चुम्बन करता है ; किन्तु उपन्यास के अन्त में दिखाया गया है कि यह महान् अनर्थकारी सिद्ध होता है । शकुन्तला की मृत्यु हो जाती है और नरेन्द्र मानसिक स्वास्थ्य खो बैठता है ।

सम्पूर्ण उपन्यास में प्रारम्भ से अन्त तक पात्रों की आत्मगोपन एवं आत्म-प्रवंचना की प्रवृत्ति दिखाई देती है । उपन्यास के प्रमुख तीनों पात्र भीरु हैं । उनके चरित्र-चित्रण की ओर लेखक ने बिलकुल ध्यान नहीं दिया है । परिणामस्वरूप किसी भी पात्र का व्यक्तित्व उभर नहीं पाया है । पात्र उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली बनकर रह गये हैं । लेखक पात्रों को विषम परिस्थिति में डालकर प्रतिक्रिया देखता है । चरित्र की बाह्यांतर रूपरेखा अंकित करने में लेखक पटु है । कथोपकथन में सबसे बड़ा दोष यह है कि सभी पात्र एक ही प्रकार की संवाद-शैली का प्रयोग करते हैं । फलतः कथा में कृत्रिमता आ गई है । उपन्यास में मनोविश्लेषण का प्राधान्य होने के कारण सुगठित कथावस्तु का अभाव स्पष्ट दीखता है । यह स्वाभाविक भी है ; क्योंकि कथाकार का अभीष्ट कथावस्तु नहीं, अपितु चरित्रों का मनोविश्लेषण है ।उपन्यास की भाषा

स्वाभाविक तथा परिमार्जित है ।

'प्रेमपथ' की भाँति इस उपन्यास में भी प्रेम और कर्तव्य का अंतर्द्वन्द्व चित्रित किया गया है । वैयक्तिक प्रेम की सहज अनुभूति के द्वारा लेखक ने जीवन-संघर्ष का हृदयस्पर्शी मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में वाजपेयी जी का भावनावादी दृष्टिकोण मुखर हो गया है ।

दो बहनें :-

यह उपन्यास 1940 ई० में प्रकाशित हुआ था । इसका चतुर्थ संस्करण सं० 2023 वि. (अर्थात् सन् 1966 ई०) में भारती भण्डार, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था । 'प्रेम कभी विकृत नहीं होता - वह सदा एकरस रहता है' इस कथनाधार पर प्रस्तुत उपन्यास की रचना की गई है।

इस उपन्यास का प्रमुख चरित्र ज्ञानप्रकाश, रायसाहब का पुत्र है । पिता के साथ मतभेद होने के कारण एक दिन समाज-सुधार के विषय को लेकर वह अपने पिता से झगड़कर घर छोड़ देता है और किसी मिल में नौकरी करने लगता है । पिता से अलग वह जहाँ रहता है, वहाँ एक मध्यवर्गीय परिवार में एक विधवा अपनी दो वयस्क पुत्रियों के साथ रहती है । उस परिवार के साथ ज्ञानप्रकाश की घनिष्ठता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है । बड़ी लड़की कुमारी आशा रायसाहब की द्वितीय पत्नी से उत्पन्न पुत्री मन्दाकिनी को पढ़ाने जाती है । रायसाहब के यहाँ उनका साला दिवाकर रहता है, जो कालेज में पढ़ता है । आशा और उसकी छोटी बहन लता से परिचय होने के पश्चात् दोनों पर वह अपना अधिकार जमाना चाहता है, किन्तु दोनों बहनें ज्ञानप्रकाश को चाहती हैं । उसे पाने की प्रतिद्वंद्विता के परिणामस्वरूप दोनों बहनों के हृदय में परस्पर ईर्ष्या और द्वेष की भावना का जन्म होता है । दिवाकर इस विकट परिस्थिति का पूर्ण लाभ उठाने के हेतु दोनों बहनों के अंतर में जलन की अग्नि को प्रचंड करता है । इधर शनैः शनैः ज्ञानप्रकाश का संयम टूटने लगता है और वह लता के स्नेह-पाश में बँध जाता है । यह देखकर आशा के हृदय को गहरी चोट पहुँचती है और अंततोगत्वा उसकी मृत्यु हो जाती है । इससे प्रभावित होने से दिवाकर की लम्पटता अब दूर होने लगती है और उसका चरित्र सद्वृत्तियों से युक्त हो जाता है । आशा की मृत्यु कथानक का अंत करने तथा जटिल समस्या को सुलझाने में सहायक सिद्ध होती है । आशा का बीमार होना, लता का सीढ़ी से गिर पड़ना आदि घटनाएँ प्रेमपात्रों को निकट लाने के उद्देश्य से रखी गई हैं । इस उपन्यास की कथा में नाटकीयता अपेक्षाकृत अधिक है । आशा की मृत्यु से लेखक ने नाटकीयतापूर्ण चारित्रिक उत्थान-पतन ही चित्रित किया है । दोनों बहनों का प्रेमी एक ही व्यक्ति होने के कारण उनके हृदय में उत्पन्न प्रतिस्पर्धा, द्वेष और व्यावहारिक घात-प्रतिघात का निर्वाह उपन्यासकार ने पूरे नैपुण्य के

साथ किया है । मानसिक द्वन्द्वों का चित्रण भी सफलतापूर्वक किया गया है । इस दृष्टिकोण से देखा जाय, तो वाजपेयी जी की यह कृति सबसे सफल रचना मानी जायगी । 'पतिता की साधना' के पश्चात् इस उपन्यास से वाजपेयी जी को अधिक ख्याति प्राप्त हुई । प्रस्तुत उपन्यास का नाट्य रूपान्तर आकाशवाणी से प्रसारित हो चुका है ।

(iii) निमंत्रण[1] :

प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन 1942 ई0 में हुआ था । सन् 1967 ई0 में प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से भी इसका प्रकाशन हुआ है । इसमें देशकाल की यथार्थ पृष्ठभूमि में वैयक्तिक स्वातंत्र्य की समस्या को उठाया गया है । इस उपन्यास की कथा का समय, स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए उठाये गये राजनीतिक आन्दोलन का है ।

'निमंत्रण' के नायक, 'संजीवन' पत्र के सम्पादक, शर्मा जी अपनी पत्नी रेणु तथा दो साल के पुत्र रंजन के साथ संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं । अपने पत्र की सहायता से निर्भीक होकर वे राजनैतिक आन्दोलन को प्रबल बनाते हैं । उपन्यास की नायिका मालती, जिसके शर्मा जी कभी अध्यापक भी रह चुके हैं, अभिजात वर्ग की एक सुशिक्षित नारी है । उसके साथ-साथ उसका पूरा परिवार शर्मा जी के आदर्शवाद से अत्यधिक प्रभावित है । दिन-प्रतिदिन मालती का आकर्षण शर्मा जी के प्रति बढ़ता ही जाता है और एक समय ऐसा आता है कि उनके हृदय में भी मालती अपना एक निश्चित स्थान बना लेती है । वह आजीवन अविवाहिता रहने की तथा शर्मा जी के साथ रहकर समाज-सेवा करने की प्रतिज्ञा करती है ; किन्तु शर्मा जी स्वीकृति नहीं देते । रेणु इन दोनों के प्रेम-सम्बंधों को ताड़ जाती है, फलतः उनके दांपत्य-जीवन में एक खिंचाव-सा पैदा हो जाता है । एक बार रंजन के अस्वस्थ हो जाने पर रेणु के आग्रह से मालती रात को उनके घर में सोना स्वीकार करती है ; परन्तु रात को चुपचाप वह शर्मा जी के शयनकक्ष में चली जाती है । इस बात का पता चलने के बाद पति-पत्नी दोनों के बीच बातचीत भी बंद हो जाती है ।

1- डा0 सुषमा धवन ने अपने शोध प्रबंध 'हिन्दी उपन्यास' में 'निमंत्रण' का प्रकाशन-काल 1947 बताया है (दे पृ0 113); इस विषय में पूछने पर दि 4-8-72 के पत्र में वाजपेयी जी लिखते हैं 'डा0 सुषमा धवन को पता नहीं है कि सन् 47 में 'निमंत्रण' उपन्यास का द्वितीय या शायद तृतीय संस्करण हुआ होगा । वस्तुतः उसका प्रकाशन सन् 1942 में हुआ था । 'अभिनंदन ग्रन्थ' में भी प्रकाशन काल जो 1950 दिया हुआ है, वह भी उसके नवीन संस्करण का है । यह उपन्यास पहले कला-मंदिर, दारागंज, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ, फिर साहित्य प्रकाशन-कार्यालय, मारवाडी गली, नयी सड़क, दिल्ली से और इधर कई वर्षों से प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली से हो रहा है ।'

शर्मा से निष्फलता मिलने पर निराश होकर मालती अपने सुपरिचित सहपाठी विनायक की ओर झुकती है । वह 'संजीवन' में लेख लिखकर जीविकोपार्जन कर लेता है । दोनों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण प्रतिदिन बढ़ता जाता है । मालती की माँ को भी विनायक, अपनी बेटी के लिए, उचित लगता है; किन्तु वह अभिजात वर्ग का नहीं है । अत: माँ अनुमति नहीं देती । इस बीच मज़दूर आन्दोलन के बल पकड़ने पर शर्मा को जेल जाना पड़ता है, परन्तु जेल जाने से पूर्व वह अपने पत्र का संपादन-भार तथा अन्य उत्तरदायित्व मालती और विनायक पर छोड़ जाता है । उचित अवसर आने पर शर्मा दोनों को विवाह करने की अनुमति भी देता है ।

इस मुख्य कथा के साथ मालती के भाई ब्रजनाथ तथा वीणा की प्रासंगिक कथा भी आती है । ब्रजनाथ ने वीणा को विवाह का वचन दिया था । यौवनावेश में विवाह से पूर्व ही उसके साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित करके वह उसका त्याग कर देता है। वही वीणा बुंदी नाम धारण करके वेश्यावृत्ति अपनाकर, अपने मानस में धधकती प्रतिशोध की ज्वाला का शमन करने के लिए, प्रसंगानुसार ब्रजनाथ को अपमानित करती है और बाद में उसे क्षमा भी प्रदान करती है ।

इस विचारपूर्ण उपन्यास में लेखक ने कुछ सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का विवेचन करने की चेष्टा की है । इस कृति में पात्रों तथा घटनाओं के बाहुल्य के कारण एक भी चरित्र का विकास नहीं हो पाया है । परिणामत: उपन्यास पूर्ण हो जाने पर भी पाठक पात्रों से अपरिचित-सा रह जाता है । उसके मस्तिष्क में तो केवल मालती की लीला-रासमयी क्रीडा ही नाचती रहती है । लेखक ने उपन्यास में कभी गोर्की, कभी फ्रायड, तो कभी रोमां रोला के विचारों का उद्धरण दिया है, अत: पाठक की समझ में यह नहीं आता कि लेखक का उद्देश्य क्या है और वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा बन जाता है । 'निमंत्रण' की भाषा पात्रानुकूल है ।

गुप्तधन :

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1950 ई० में हुआ था । सन् 1967 ई० में 'गुप्तधन' नाम से ही प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से यह उपन्यास प्रकाशित हुआ था । 1957 ई० में इसी का परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण 'एकदा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ । यह एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । इसमें मानव के मनस्तत्त्वों की योजना उपन्यासकार ने अत्यंत कुशलतापूर्वक सम्पन्न की है।सत्य,करुणा,वेद,ज्ञान,ब्रह्म,माया,चेतना,मन्मथ,वत्सला आदि हमारे मानसिक

जगत ही के पात्र हैं । उन्हीं का अवलम्ब लेकर वाजपेयी जी ने इस कृति की रचना की है ।

आधिकारिक कथा के नायक सत्यप्रकाश को उसके चाचा ज्ञानप्रकाश दत्तकपुत्र के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु बाद में उसकी चाची माया के पुत्र होने पर वह इस अधिकार से वंचित रह जाता है । अंत में ज्ञान की अनिच्छा होने पर भी सत्य उसे छोड़कर चला जाता है ।

प्रस्तुत उपन्यास का प्रारंभ महामानव आचार्य गौरीशंकर (गुरुदेव) की कथा से होता है । इसमें यह दिखाया गया है कि गुरुदेव के अंतर्मन में पश्चाताप की अग्नि जल रही है । पत्नी की आत्महत्या में अपना भी हाथ था, यह सोच-सोच कर वे बीमार हो जाते हैं । यह अस्वस्थता उनके प्राण लेकर ही जाती है ।

इस उपन्यास में मिल-मालिकों के अत्याचार, यथासमय वेतन न देना, छुट्टी में कटौती करना आदि मजदूरों की तत्कालीन समस्याएँ लेखक से अछूती नहीं रह सकी हैं । चरित्र-चित्रण में उच्चादर्श की भावना के कारण अस्वाभाविकता परिलक्षित होती है । मन में मन्थन करनेवाली दुष्प्रवृत्तियों को लेखक ने मन्मथ के रूप में माना है । सत्य को ज्ञान की आवश्यकता है, पर माया के पाश में उलझा ज्ञान सत्य की परख क्या जाने ! वस्तुत: यह उपन्यास वाजपेयी जी की औपन्यासिक कला में एक नया मोड़ है । इसके पूर्ववर्ती उपन्यासों-'पतिता की साधना', 'पिपासा', 'दो बहनें' आदि-में वाजपेयी जी की दृष्टि हमानी रही है ; किन्तु इस उपन्यास में वह तत्कालीन समस्याओं और घटनाओं की ओर भी आकृष्ट हुई है । उनके विचारों में भी यहाँ तक आते-आते प्रौढ़ता और परिपक्वता दृष्टिगोचर होती है ।

चलते-चलते :

वाजपेयी जी की जीवनी से सम्बंधित अध्याय में हम देख चुके हैं कि प्रस्तुत उपन्यास का जन्म वाजपेयी जी चलचित्र उद्योग में रहे, उस समय बम्बई में ही चुका था तथा उसके कुछ अंश 'आवाज़' (साप्ताहिक) में प्रकाशित भी हुए थे, परन्तु प्र पुस्तक के रूप में यह उपन्यास सन् 1951 ई० में प्रकाशित हुआ । इसका नवीन संस्करण सन् 1964 ई० में भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली से हुआ था । यह उपन्यास वाजपेयी जी के स्वातंत्र्योत्तर बृहद् उपन्यासों में से है । स्वयं लेखक ने मुखपृष्ठ पर इसे 'आत्मकथा के रूप में लिखित मौलिक सामाजिक उपन्यास'[1] कहा है । इसका सामाजिक धरातल मुख्यत: उच्च मध्य वर्गीय समाज के रूढ़ अपने आदर्शों-संस्कारों तथा बढ़ती हुई

1- दे. चलते- चलते का मुखपृष्ठ

यौन क्षु अतृप्ति के आपसी संघर्षों से उत्पन्न समस्याओं और पूँजीवादी अनैतिकता के चित्रण में हैं । इस उपन्यास का मूल विषय स्त्री-पुरुष की स्वच्छंद प्रेम-लीला है ।

'चलते-चलते' में बहुपात्रता एवं उनसे सम्बंधित अनेक घटनाएँ हैं । इस उपन्यास को जटिल कथानक का उपन्यास कहा जा सकता है । इसमें छ: कथासूत्र हैं । इन सबके ऐक्य का आधार आत्मकथा-वक्ता राजेन्द्र है, जो उपन्यास का नायक है । कथानक के एकाधिक सूत्रों से उसका सम्बंध है । कथानक का प्रथम सूत्र मुख्यत: तीन पात्रों-राजेन्द्र के पिता पाण्डेय जी, उसकी माता तथा उसकी 'चाची'- को लेकर बना है । इस सूत्र में गौण पात्रों में राजेन्द्र, चाची की पुत्री लाली तथा राजेन्द्र के पिता तथा चाची के सम्बंध से उत्पन्न पुत्र उपेन्द्र है । अपने तीन बच्चों में से एक की मृत्यु के पश्चात् राजेन्द्र की माँ विरक्त-सी होकर जीवन व्यतीत करती है । पति के समझाने पर भी वह अपने नारी-धर्म का निर्वाह नहीं कर सकती, अत: पाण्डेय जी अपनी विधवा पड़ोसिन से सम्बंध जोड़ते हैं । समाज के नीति-नियमों के आदर्शानुसार वे घर में ही पत्नी के साथ अपनी प्रेमिका को ससम्मान नहीं रख सकते थे, अत: वे पलायन एवं गोपन की विधि अपनाते हैं और दिल्ली में अपनी प्रेमिका के साथ अलग घर बसा लेते हैं । राजेन्द्र की चाची (जो रिश्ते में उसकी चाची नहीं है, पड़ोसिन होने के नाते ही राजेन्द्र उसे चाची कहता है) मकान बेचकर, अपनी विधवा पुत्री लाली के ज़ेवर चुराकर तीर्थयात्रा का बहाना करके दिल्ली में राजेन्द्र के पिता के साथ रहती है । लेखक ने इस सूत्र का सुखद अंत किया है । राजेन्द्र उपेन्द्र को छोटे भाई के रूप में स्वीकार कर लेता है तथा उसके पिता पुन: घर आ जाते हैं । इस सूत्र के विकास के माध्यम से लेखक ने उच्च वर्ग की ह्रासोन्मुख स्थिति का प्रदर्शन करते हुए नैतिक औदार्य की आदर्श व्यंजना भी की है तथा अन्य सामाजिक कर्तव्यों की उपेक्षा करते हुए केवल वासना-तृप्ति में शांति खोजने की व्यर्थता सिद्ध की है ।

कथानक का द्वितीय सूत्र, जो प्रधानतम सूत्र है, राजेन्द्र, उसके मौसेरे भाई वंशी, वंशी की दो पत्नियों -राजेन्द्र की बड़ी मामी विमला तथा छोटी मामी-तथा रामलाल और उनसे सम्बद्ध घटनाओं को लेकर है । विमला रामलाल की सगी मौसी है । दो-दो पत्नियों के होते हुए भी वंशी विधवा लाली तथा अन्ना को फाँसने में नहीं चूकता । वंशी की प्रथम पत्नी विमला से रामलाल प्रेम करता था ; किन्तु विमला के विवाहोपरान्त भी रिश्ते की आड़ में वह उसे फाँसे हुए है । रिश्ते के बल पर ही वह वंशी को धोखा देकर बीस हजार रुपये का चैक भुना लेता है।

निस्संतान होने के कारण विमला अपने पति को दूसरा विवाह करने की अनुमति देती है, ताकि अपने प्रेमी रामलाल के साथ वह खुलकर विहार कर सके । वंशी की दूसरी पत्नी रानी को यह भी ज्ञात नहीं है कि जहाँ उसका विवाह हो रहा है, वहाँ एक सौत पहले से विद्यमान है । अपनी सौत तथा पति की उपेक्षा तथा अनैतिकता से वह निरंतर घुलती रहती है और अवसर पाकर राजेन्द्र की ओर प्रवृत्त हो जाती है । हक़ीक़त का पता चलने पर रामलाल तथा विमला वंशी का कोपभाजन बनती है ; किन्तु अपनी दूसरी पत्नी के प्रति किये गये अन्याय का ख्याल आते ही रानी तथा राजेन्द्र के प्रति उसकी कृपा-दृष्टि रहती है । इतना ही नहीं, मृत्यु से पूर्व वह संपत्ति सहित वह अपनी दूसरी पत्नी रानी को राजेन्द्र को सौंप देता है ; क्योंकि उसके जीवन-काल में दोनों केवल 'आत्म मिलन' तक सीमित रहते हैं । अब वह उन्हें देह-धर्म निभाने की भी अनुमति देता है । रानी तथा राजेन्द्र वंशी की संपत्ति से दुखी मानवता के 'उद्धार तथा पुनर्निर्माण' की योजना में तल्लीन हो जाते हैं । इस प्रधान सूत्र का अंत भी सुखात्मक हुआ है । रामलाल तथा विमला का हृदय-परिवर्तन हो जाता है । वंशी की मृत्यु पर रामलाल खूब रोता है तथा ग़बन की हुई रकम जमा करा देता है । विमला रामलाल का नाम सुनना भी नहीं चाहती ।

तृतीय कथा-सूत्र विधवा लाली, राजेन्द्र, वंशी तथा उनसे संबद्ध घटना-चक्र को लेकर बना है । लाली के माध्यम से भारतीय विधवा की असहाय एवं पीड़ित अवस्था को चित्रित किया गया है । उसका भाई सोनेलाल अपना दूसरा विवाह कर लेता है ; किन्तु उसे अपनी युवा विधवा बहन की तनिक भी चिन्ता नहीं है । उसकी विधवा माँ अपनी विधवा पुत्री के प्रति सहानुभूति रखना तो दूर, निर्दयतापूर्ण व्यवहार करती है और उसके गहने आदि लेकर अपने प्रेमी के पास चली जाती है । राजेन्द्र के प्रति आकृष्ट होकर लाली उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर देती है ; किन्तु राजेन्द्र की उपेक्षा के कारण वह आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाती है, परन्तु राजेन्द्र उसे बचा लेता है । राजेन्द्र के उसके प्रति घनिष्ठ होते हुए सम्बंधों को देखकर राजेन्द्र की माँ परोक्षत: आपत्ति उठाती है, अत: वह लाली से उदासीन हो जाता है । निराश लाली आत्मनिर्भर बनने के लिए शिक्षा प्राप्त करना चाहती है ; किन्तु चारों ओर से निराश और अपने देह -धर्म के निर्वाह की आकुलता से बाध्य वंशी को अपना देह समर्पित करके गर्भवती हो जाती है । वंशी की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्थिति खराब हो जाती है ; किन्तु अंत में लेखक ने उसका भी हृदय-परिवर्तन करके उसे आदर्शवादी बना दिया है ।

कथानक का चतुर्थ सूत्र लाला सांवरे, उसकी लड़की जमना, जमना के पति राय चन्द्रनाथ तथा मुरलीमनोहर (राजहंस) को लेकर बना है । धन के लोभ में लाला सांवरे अपनी पुत्री जमना का विवाह नपुंसक चन्द्रनाथ के साथ कर देते हैं । सिनेमा देखने की शौकीन जमना सिने-तारिका बनने के लोभ में राजहंस के चंगुल में फँसकर बम्बई भाग जाती है । एक बार राजहंस के बलात्कार करने के प्रयत्न पर जमना उसे चलती गाड़ी से धक्का देकर नीचे गिरा देती है तथा स्वयं पागल हो जाती है । अंत में डाक्टर के इलाज से जमना तथा उसका पति ठीक हो जाता है । इस तरह इस सूत्र का भी सुखद अंत हो जाता है ।

कथानक का पंचम् सूत्र उपर्युक्त राजहंस, उसकी पत्नी अर्चना, कलिका, मिस हीरामानिक आदि को लेकर बना है । राजहंस आधुनिक शरीफ़ बदमाशों का प्रतिनिधि है । वह विवाह के बंधनों को नहीं मानता । अपनी दूर के रिश्ते से बहिन अर्चना के साथ उसने विधिवत् विवाह नहीं किया है, तथापि अर्चना उसे पति मानती ही नहीं, उसके अनुचित व्यवहार को भूलकर, समय पर उसकी सहायता करके अपनी उदारता का परिचय देती है । राजहंस जमना को अभिनेत्री बनाने का लोभ देकर तथा मैट्रिक में फेल होनेवाली कलिका को बहन बनाकर, पास कराने का लालच देकर फँसाता है । केवल हीरामानिक राजहंस से बच जाती है ; क्योंकि समय पर उसका भण्डा फूट जाता है ।

कथानक का षष्ठ सूत्र राजेन्द्र, उसके बहनोई दीक्षित जी, दीक्षित जी की बहन वैशाली आदि को लेकर निर्मित हुआ है । यह सूत्र क्षीण तथा अपूर्ण प्रतीत होता है । अपनी बहन के यहाँ जाने पर राजेन्द्र तथा वैशाली परस्पर आकृष्ट होते हैं, पत्रों में राजेन्द्र के लिए वैशाली 'मेरे देवता' लिखने में भी संकोच नहीं करती ; किन्तु राजेन्द्र का विवेक ही उसका साथ देता है । राजेन्द्र से प्रोत्साहन न पाने पर भी वह अपने प्रेम-संकल्प को नहीं छोड़ पाती । बाद में वैशाली के सूत्र को लेखक ने अपूर्ण ही छोड़ दिया है । फोटोग्राफर मिस्टर मोदी, की बहिन हीरामानिक तथा राजेन्द्र के परस्पर आकर्षण से एक अन्य सूत्र का निर्माण हो सकता था ; किन्तु इसका विकास ही नहीं हुआ, अत: मिस्टर मोदी तथा हीरामानिक अनावश्यक पात्र प्रतीत होते हैं ।

वंशी की मृत्यु के पश्चात् अनेक पात्रों का हृदय-परिवर्तन हो जाता है ; किन्तु राजहंस जैसे खल पात्र की मृत्यु होने पर, रामलाल के 'लापता' हो जाने पर तथा राजेन्द्र के पिता के घर

लौटने पर सामाजिक प्रतिक्रिया का उपयोग नहीं किया गया है । उपन्यास के प्रारंभ में पाण्डेय जी के मरने तथा पुनर्जीवन प्राप्त करने की घटना तिलस्मी प्रभाव डालती है । इस घटना की पृष्ठभूमि के रूप में जिस प्राकृतिक वातावरण की सृष्टि की गई है, वह अवश्य कलापूर्ण है । उपन्यास में अनेक स्थलों पर संयोग तत्त्व तथा पात्रों के सहसा प्रवेश का उपयोग किया गया है, इससे कथानक में कहीं-कहीं अवास्तविकता भी प्रतीत होती है । उपन्यास में केवल गौरीशंकर ऐसा पात्र है, जो यौन-कुण्ठाओं से मुक्त है । राजेन्द्र के अतिरिक्त उपन्यास के लगभग सभी पात्र गतिशील हैं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आधुनिक परिस्थिति-प्रसूत नूतन आदर्शों तथा समाज के रूढ़ एषणाएं आदर्शों के पारस्परिक संघर्ष तथा समाज के नैतिक ह्रास के चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है । फिर भी प्रस्तुत उपन्यास पर्याप्त प्रभाव नहीं डाल सकता। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण इसका अंत है । अंत में लेखक ने पहले के बहु कथा-प्रसार को एक साथ समेटने का प्रयास किया है, जिसमें उसे सफलता पि नहीं मिल सकी है । परिणामस्वरूप उपन्यास में अंत में शिथिल हो गया है । प्रस्तुत उपन्यास की प्रत्येक घटना के मूल में स्त्री-पुरुष के यौन की अतृप्त काम-वासना कार्य कर रही है । वाजपेयी जी के अन्य उपन्यासों के नायकों की भाँति 'चलते-चलते' के नायक राजेन्द्र की निर्बलता भी नारी-सौंदर्य है । उपन्यास के अंत तक उसका जीवन-लक्ष्य अस्पष्ट ही रहता है । यह उपन्यास वाजपेयी जी की श्रेष्ठ कृतियों में से एक माना जाता है ।

(iii) पतवार :

प्रथम बार सन् 1952 ई० में इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ । इसके बाद यही उपन्यास 1964 ई० में 'राजपथ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ । जुलाई, 1968 ई० में इसी नाम से जिज्ञासा प्रकाशन, कानपुर से भी इसका प्रकाशन हुआ था । इसमें लेखक ने गांधीवादी सिद्धान्तों की व्यावहारिक परिणति उपस्थित की है । वैयक्तिक नि:स्वार्थता के आधार पर सामाजिक कल्याण की भावना किस तरह फलीभूत हो सकती है, इसका चित्रण उपन्यासकार ने इसमें कौशल के साथ किया है ।

उपन्यास का नायक दिलीप स्व० मुन्सिफ मुरारीलाल का पुत्र है । चाचा गिरधारीलाल की स्वार्थनीति के कारण उसकी पढ़ाई मेडिकल कालेज के अन्तिम वर्ष में जाकर रुक जाती है । मौसम पुर कैम्प में वह बाढ़ पीड़ितों की सेवा करता है । आवश्यकतावश उनके लिए पैसा और

दवा लेने वह शहर जाता है । अपना कार्य पूरा करके लौटते समय छल से एक व्यक्ति उसे मार्ग में स्टेशन पर उतर जाने की सलाह देता है । तदनुसार अपने नौकर कालीचरन के साथ वह उतर जाता है और वेटिंग रूम में जा बैठता है ; किन्तु नौकर और स्टेशन के एक कर्मचारी की सलाह से वह वेटिंग रूम छोड़कर चला जाता है । तदनन्तर सिनेमा देखकर देर से आये और वेटिंग रूम में लेटे स्टेशन मास्टर के पुत्र की हत्या होती है । डाकू पकड़े जाते हैं । यह सब देखने के बाद वह लारी से कैम्प जाना चाहता है ; किन्तु रास्ते में उसका अटैची केस, जिसमें 5000)- रुपये बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए रखे थे, बदल जाता है । अब कैम्प जाने का उसका साहस नहीं होता । अत: वह अपने मित्र के यहाँ विक्रमपुर चला जाता है, फिर वहाँ से अ०ब०स० विष बनारस में अपने एक अन्य मित्र पी एन के यहाँ पहुँच जाता है । वहाँ एक मित्र से रुपया लेकर कैम्प में भेज देता है । लोग उसे गलत समझेंगे, ऐसा सोचकर वह अपने घर भी नहीं जाता । इधर हत्याकाण्ड के संवाद पढ़कर उसके चाचा का हृदय-परिवर्तन हो जाता है । इस बीच राय महेन्द्रप्रताप, जिनके साथ अटैची केस बदल गया था, अटैची लौटाने कैम्प में जाते हैं, व दादा ज्योतिस्वरूप भी कैम्प में रुपया जमा करा आते हैं । चाचा के बुलाने पर दिलीप घर जाता है । तत्पश्चात् चाचा का स्वर्गवास हो जाता है । दिलीप पुन: मेडिकल कालेज में अध्ययन करना चाहता है । उपन्यास के अंत में बफ़ाती, जो दिलीप का मित्र है और जिसने स्टेशन मास्टर के पुत्र की हत्या की थी, क्षमा याचना के हेतु जेल से भागकर आता है और पुलिस आकर उसे ले जाती है ।

इस उपन्यास में दादा एवं प्रतिमा की कथा को प्रासंगिक कथा के रूप में लिया जा सकता है । दादा ने अपनी पत्नी प्रतिमा को केवल इसी बात के लिए त्याग दिया था कि उसने एक ही बार केवल यह जानने के लिए धूम्रपान किया था कि सिगरेट का स्वाद कैसा होता है । इसी बात को लेकर दादा के मन में प्रतिभा के चरित्र सम्बंध में सन्देह उत्पन्न हो जाता है । परित्यक्ता प्रतिभा डाक्टरी की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर जनता की सेवा में दत्तचित्त होकर जुट जाती है । दादा छिपकर एक-दो बार उसकी परीक्षा करते हैं, पर उनका संदेह व्यर्थ सिद्ध होता है । संकोच के कारण वे उसे मिलने का साहस नहीं कर सकते । दिलीप के रुपये खो जाने पर वे जमा कराने अस्पताल जाते हैं, तब प्रतिभा के साथ उनका समाधान हो जाता है । अंत में दादा की पौत्री लक्ष्मणा के साथ दिलीप का विवाह सम्पन्न हो जाता है ।

इस उपन्यास के सम्यक् अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वाजपेयी जी गांधीवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हैं और गांधीवादी विचारधारा ही इस उपन्यास की रचना का अवलम्ब है । लेखक को यह विश्वास हो गया है कि विश्वशान्ति और मनुष्य-मात्र का कल्याण केवल सत्य और अहिंसा द्वारा ही सम्भव है । यही दिखाने का प्रयत्न उसने इस उपन्यास के माध्यम से किया है ।

(ङ) धरती की साँस :

इस उपन्यास का प्रकाशन काल सन् 1954 ई० है । सन् 1955 ई० में इसका द्वितीय संस्करण रामनारायण लाल, प्रयाग से हुआ । तत्पश्चात् सन् 1966 ई० में इस कृति का संक्षिप्त संस्करण द्वितीय बार 'नदी और नाव' नाम से मानकचन्द बुक डिपो, उज्जैन से हुआ । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने निरंजन, सुमित्रा तथा शोभना के माध्यम से मुख्यरूप से विविध मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों और कुण्ठाओं से युक्त चरित्र विश्लेषण प्रस्तुत किया है ।

उपन्यास का नायक निरंजन बेकार है । उसकी पत्नी सुमित्रा का शोभना के साथ ट्रेन में परिचय होता है । कानपुर में दोनों अपने -अपने घर जाती हैं । शोभना को बच्चे प्यारे हैं, अतः यदा-कदा वह निरंजन के यहाँ आती-जाती रहती है और निरंजन के बच्चे अखिल को खिलाती है । अखिल के बीमार होने पर शोभना 200)- रुपये की सहायता निरंजन को करती है ; किंतु सुमित्रा इसे संदेह की दृष्टि से देखती है । एक दिन एक बड़े बाबू की दुर्घटना होने पर निरंजन उनकी जीवन-रक्षा करता है । इसके बदले में येनकेनप्रकारेण वे उसे आर्थिक सहायता देना चाहते हैं; किन्तु बड़े बाबू के यहाँ निरंजन के जाने पर उनका बड़ा लड़का उसे अपमानित करता है । दूसरी बार वह बड़े बाबू सूर्यकुमार से मिलता है, तो वे उसे अपनी मिल में नौकरी दिला देते हैं। बड़े बाबू की भाँजी यह वही शोभना है जिसका विवाह निरंजन के साथ होते-होते रह गया था । शोभना और निरंजन बारम्बार मिलते हैं, परन्तु निरंजन अपनी पत्नी को इस विषय में कुछ भी नहीं बतलाता । फलतः आघात के कारण शंकालु स्वभाव की सुमित्रा की मृत्यु हो जाती है । अखिल का संपूर्ण उत्तरदायित्व अब शोभना अपने सिर पर ले लेती है ।

यह उपन्यास घटनाओं के बाहुल्य एवं नाटकीयता से पूर्ण है । इसमें ऐसे कितने ही स्थल हैं जहाँ ऐसी अनुभूति होती है कि हम उपन्यास नहीं पढ़ रहे हैं , अपितु चलचित्र देख रहे हैं । चलचित्र की भाँति ही नायक नायिका को अंत में मिलाने के लिए लेखक ने इस उपन्यास में सुमित्रा

की मृत्यु करा दी है । इस उपन्यास का नायक निरंजन निम्नमध्यवर्ग का है और उसी के चरित्र के माध्यम से लेखक ने हमारे समाज के निम्नमध्यवर्ग का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है ।

(iii) भूदान :

यह उपन्यास सन् 1955 ई० में श्री भारत भारती (प्रा०) लिमिटेड, दिल्ली से प्रकाशित हुआ था । 'राजपथ' में वाजपेयी जी का झुकाव गांधीवादी विचारधारा के प्रति था, यह देखा जा चुका है, इसी प्रकार प्रस्तुत कृति में उनका आग्रह विनोवा-दर्शन के प्रति स्पष्ट प्रतीत होता है । केदार बाबू, शंकर, वकील साहब आदि पात्रों की सहायता से लेखक ने इस रचना में आधुनिक अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं पर विचार किया है । विवाहादि सामाजिक प्रथाओं की आधुनिक युग में क्या आवश्यकता है, इस विषय में भी लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास के नायक शंकर के बी०ए० में फर्स्ट डिवीजन पाने पर रेणु उसकी ओर आकृष्ट होती है । माता-पिता की अनिच्छा होने पर भी एम०ए० के अध्ययन के लिए वह इलाहाबाद जाता है । वहाँ माया बाबू की पत्नी मीरा से उसका स्नेह-सम्बंध हो जाता है । शंकर का रात को देर से लौटना माया बाबू तथा उसकी माँ को कतई पसन्द नहीं । वह नहीं चाहती कि अपनी पुत्री या बहू रात को अकेली किवाड़ खोलने जाय । माया के प्रकट विरोध पर शंकर कानपुर चला जाना चाहता है, परंतु उसी समय केदारबाबू के आ जाने से वह रुक जाता है । गया बाबू शंकर और रेणु के विवाह का प्रस्ताव करते हैं ; क्योंकि ग्रहण के दिन अपने प्राणों की परवा न करके रेणु शंकर की माँ को डूबने से बचाकर जीवन-दान देती है । माया बाबू के घर का त्याग करने के बाद नेता जोशी जी की छत्रछाया में रहकर शंकर एम०ए० तथा पी०सी०एस० कर लेता है । अपने मित्र घनश्याम से रेणु की स्थिति का समाचार शंकर को प्राप्त होता रहता है । नौकरी एवं रहने के लिए कोठी मिल जाने पर शंकर फैजाबाद चला जाता है । अपनी पुत्री रन्नो (वीणा) के विवाह के लिए गया बाबू अपनी पत्नी यमुना के साथ केदार बाबू के पास जाते हैं , परन्तु वे सब कुछ शंकर की इच्छा पर ही छोड़ देते हैं । एक दिन रन्नो अकेली फैजाबाद चली जाती है । इधर शंकर के कारण मीरा का दाम्पत्य-जीवन दु:खी हो जाता है । शंकर के चले जाने के बाद वह अपना स्वास्थ्य खो बैठती है । डाक्टर के आदेशानुसार माया बाबू उसे नैनीताल ले जाते हैं । संयोग से जोशी जी भी नैनीताल में होते हैं । उन्हें मिलने के लिए

शंकर जाता है, तो मीरा से उसकी भेंट हो जाती है । मीरा शंकर की बहू के लिए कंगन भेंट देती है । दोनों का प्रेम शुद्ध था । उपन्यास में कहीं भी उनके प्रेम का ऐसा वर्णन नहीं आता, जिसमें वासना की गंध आती हो । उपन्यास के अंत में केदारबाबू रेणु को बहू के रूप में स्वीकार करते हैं।

इसी मुख्य कथा के साथ एक प्रासंगिक कथा भी चलती है । मंगलपुर का एक कृषक गोकुल सुकुल केदारबाबू की जमीन में मकान बनवाना चाहता है, पर केदार बाबू की भतीजी देवकी इसका विरोध करती है । जमुनाप्रसाद, कामता पण्डित आदि देवकी की बात का समर्थन करते हैं । गोकुल सुकुल के बचिया ससुर पंडे परमेश्वरीदयाल देवकी को समझाने आते हैं । कामता पण्डित गोकुल सुकुल से बोलचाल का सम्बन्ध स्थापित करने तथा देवकी से क्षमा-याचना के लिए कहते हैं, पर वह नहीं मानता । उसकी पत्नी हीरा के बीमार पड़ने पर देवकी स्वयं दवा लेकर जाती है । हीरा प्रायश्चित करती है । गाँव में देवकी के बड़े पुत्र लक्ष्मी के यज्ञोपवीत के अवसर पर नौकर काम नहीं करते । केदार बाबू को जमीन का मोह नहीं है, वे सरकार के कायदे का पालन करना चाहते हैं, किन्तु देवकी और शंकर दादा से सहमत नहीं हैं । नौकर फौजदारी करने के लिए तैयार हो जाते हैं, परन्तु दादा समझौता कर लेना चाहते हैं । वे नौकरों के पक्ष में निर्णय देते हैं, परन्तु कुछ लोगों की असहमति के कारण दादा घर छोड़कर शंकर के यहाँ चले जाते हैं । वहाँ जाकर वे शंकर का विवाह रेणु से निश्चित करते हैं ।

इस उपन्यास में लेखक ने शंकर के रूप में एक ऐसे सशक्त चरित्र की सृष्टि की है, जो आधुनिक समाज की विपरीतताओं के विरुद्ध दृढ़रूप में स्वयं को प्रस्तुत करता है । अन्य उपन्यासों के नायकों की तरह नारी-सौंदर्य उसकी निर्बलता नहीं है । लेखक मूलत: मंगलपुर का निवासी है, अत: उसने अपनी जन्मभूमि का वर्णन 'भूदान' में किया है । उपन्यास का नाम यद्यपि 'भूदान' है, तथापि विनोबा जी का उल्लेख तेरहवें अध्याय में आता है । छब्बीसवें अध्याय में लेखक ने हास्य निष्पन्न करने का व्यर्थ प्रयास किया है । यह अध्याय कथा-विकास में कुछ योगदान नहीं देता, इतना ही नहीं कथा-गति में अवरोधक सिद्ध होता है । मंगलपुर के कृषकों का लेखक ने वास्तविक वर्णन किया है । प्रासंगिक कथाओं तथा ग्राम्य-वातावरण का सुन्दर ढंग से चित्रण किया गया है ।

यथार्थ से आगे :

प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन 1955 ई० में हुआ था । यही उपन्यास 'आगे-आगे' शीर्षक से जून, 1969 ई० में ग्रन्थम्, कानपुर से प्रकाशित हुआ है । इस कृति में लेखक ने कुछ पात्रों की

चारित्रिक पृष्ठभूमि के आधार पर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आधुनिक जीवन में परम्परागत मान्यताओं और नवीन दृष्टिकोण में कितना वैरूप्य है । प्रसंगानुसार लेखक ने इस उपन्यास में निम्न तथा मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है । इस कृति में आस्थावादी दृष्टिकोण प्राप्त होता है, जो जीवन तथा भविष्य के प्रति उन्मुख है ।

इस उपन्यास की कथा दो पुरुष पात्रों के जीवन से सम्बद्ध है । इसके दो प्रमुख पुरुष-पात्रों- प्रदीप और वीरेन्द्र- के चरित्र शिक्षित मध्यवर्गीय समाज से लिये गये हैं । प्रदीप दो शिक्षित लड़कियों में उलझ जाता है । उन दोनों लड़कियों की प्रकृति तथा दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है । रंजना आदर्शवादिनी तथा मूक स्वभाव की और अरुणा उसकी विरुद्ध-अर्थात् यथार्थवादिनी और वाचाल-प्रकृति की है । परन्तु कालान्तर में अरुणा को देखकर रंजना भी मुखर स्वभाव की हो जाती है । शनैः शनैः अरुणा से दूर होकर प्रदीप रंजना से नैकट्य स्थापित करने लगता है । इन तीनों पात्रों के परस्पर सम्बन्धों के सूक्ष्म निरीक्षण एवं चित्रण द्वारा उपन्यासकार ने प्रेम के उदात्त स्वरूप को उभारने का प्रयत्न किया है । रंजना सोचती है कि प्रदीप किसी दूसरी नारी के साथ अपना प्रणयसंबंध स्थापित कर ले, तो उसे तनिक भी परवा नहीं है । वह उसी के लिए जीएगी और उसी के लिए मरेगी । अंततोगत्वा प्रदीप ही के साथ उसका विवाह सम्पन्न हो जाता है ।

कथा का दूसरा सूत्र वीरेन्द्र तथा हेमा के सशक्त व्यक्तित्व से सम्बद्ध है । इन दोनों के चरित्रों में विद्रोह की भावना उग्र रूप धारण करती दिखाई देती है ; क्योंकि दोनों विषम सामाजिक परिस्थितियों की उपज है । वीरेन्द्र महत्वाकांक्षी व्यक्ति है । समाज से अपमानित-उपेक्षित होने पर उसका विद्रोह धधकने लगता है । हेमा समाज के अपने प्रति अमानुषी व्यवहारों से अति पीड़ित है । वह बूटपालिश करती है । उसके प्रति दया के रूप में उठा हुआ हाथ वासना का साँप सिद्ध होता है । जीने के लिए विवशतावश उसे देहदान भी स्वीकार करना पड़ता है । दोनों की दृष्टि में वास्तव में कोई भी पापी नहीं होता । वस्तुतः पाप व्यक्ति द्वारा नहीं, समाज द्वारा होता है । दोनों का स्नेह समाज की अवमानना करता है ।उनका संघर्षपूर्ण जीवन सम्पन्न और रूढ़िग्रस्त समाज पर कड़ा व्यंग्य है ।

वाजपेयी जी इस रचना में भी उनके अन्य उपन्यासों की तरह यौवन की उष्णता, प्रेम की सरसता, नियति की निर्ममता तथा हृदय की भावुकता विद्यमान है, तथापि अन्य उपन्यासों की

अपेक्षा इसमें पात्रों की निष्क्रियता कम दिखाई देती है । इसमें अतृप्त वासना तथा उससे उत्पन्न पीड़ा की अनुभूति क्षीण पड़ गई है । इस कृति में अरुणा का चरित्र-चित्रण अस्पष्ट हुआ है। उसका जीवन अपूर्ण ही रह जाता है । उसके अतिरिक्त अन्य सभी प्रमुख पात्रों का यथार्थवादी चरित्र-चित्रण और कथा-विकास बहुत प्रभावशाली रहा है । परन्तु बीच -बीच में लम्बे-लम्बे भाषण व दार्शनिक विवेचन खटकते हैं ।

विश्वास का बल :

~~सन् 1969 ई० में इसका प्रकाशन भारती साहित्य मंदिर~~

इस उपन्यास का प्रकाशन काल सन् 1956 ई० है । सन् 1969 ई० में इसका प्रकाशन भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली से भी हुआ था । यह एक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास है । इसकी मूलकथा का प्रारंभ त्रिवेणी और उसकी साली रमा के प्रसंग से होता है । रमा को प्राप्त करने के लिए त्रिवेणी अनेक प्रयत्न करता है । रमा भी उसकी ओर आकृष्ट होती है, परन्तु बिहारी बाबू और मुरारी के कारण दोनों को सफलता नहीं मिलती । बिहारी बाबू की मृत्यु से कथा में एक मोड़ आ जाता है । रमा का विवाह राजीव के साथ संपन्न हो जाता है । विवाहोपरांत कथा पुन: आगे बढ़ती है, परन्तु दोनों का दाम्पत्य-जीवन सुखी नहीं है । लेखक ने रमा के अभाव में त्रिवेणी की छटपटाहट का सुन्दर चित्रण किया है । रमा और राजीव के बीच सम्बन्ध-विच्छेद की सी परिस्थिति उत्पन्न होती है । रमा राजीव को छोड़कर चली जाती है । त्रिवेणी और रमा के बीच का सम्बन्ध ज्ञात होने से आघात के कारण त्रिवेणी की पत्नी लक्ष्मी की मृत्यु हो जाती है । इससे कथा को पुन: गति मिलती है । रमा और राजीव का पुनर्मिलन होता है और प्रणय का त्रिकोणात्मक संघर्ष सुखान्त में परिणत होता है ।

इस मूलकथा के साथ दो प्रासंगिक कथाएँ भी इसमें है । महत्वाकांक्षिणी वंदना एक ओर राजीव को चाहती है ; किन्तु विवाह वसंतराम व्यास से करती है । वंदना के ही कारण रमा राजीव को छोड़कर चली जाती है । वंदना और व्यास का दाम्पत्य-जीवन भी सुखी नहीं है । इन दोनों में भी सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है । रमा के जाने के बाद एकाकी राजीव को अपनाने का वन्दना प्रयत्न करती है, किन्तु उसे असफलता मिलती है । अत: पुन: वह पति के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित कर लेती है । दूसरी प्रासंगिक कथा त्रिवेणी और हिमानी की है । अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद करके इधर-उधर भटकती हुई हिमानी चरित्रहीन नारी का जीवन व्यतीत करती

है । त्रिवेणी के सम्पर्क में आने के बाद, यह जानते हुए भी कि वह विवाहित है, उसे अपनाने का वह प्रयत्न करती है । उसे अपने प्रयत्नों में लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् सफलता मिलती है ।

ये प्रासंगिक कथाएँ मूल कथा से अलग-सी जान पड़ती हैं । मूलकथा को गति देने में उनका कुछ भी योगदान नहीं है । इस उपन्यास का नायक यद्यपि राजीव है, तथापि उसका परिचय पाठकों को उपन्यास के एक तिहाई भाग के बाद होता है । नायक की पत्नी होने के कारण शास्त्रीय दृष्टि से रमा को ही नायिका माना जाना चाहिए ; क्योंकि फलप्राप्ति भी उसे ही होती है, परन्तु नारी पात्रों में सर्वाधिक आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्तित्व तो वंदना का है। उसके अतिरिक्त किसी भी नारी का चरित्र उभर नहीं पाया है । त्रिवेणी का चरित्र-चित्रण अंतर्द्वन्द्व की सहायता से लेखक ने कुशलतापूर्वक किया है । उपन्यास में अनेक असंगतियों के कारण शैथिल्य आ गया है । इस उपन्यास में कई औपन्यासिक शैलियों के रूप प्राप्त होते हैं, जिनमें प्रमुखत: अंतश्चेतना-प्रवाह शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली, सूत्रात्मक शैली आदि हैं ।

~~(३)~~ सूनी राह :

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1956 ई० में हुआ था । सन् 1968 ई० में इसका प्रकाशन प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से भी हुआ था । प्रस्तुत लघु उपन्यास में वाजपेयी जी ने परकीया-प्रेम चित्रित करके उसका निर्वाह अंत तक किया है । वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन को लेकर लेखक द्वारा यह प्रश्न भी उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है कि पति-पत्नी के परस्पर प्रेम के बीच किसी अन्य पात्र से भी मधुर सम्बंध स्थापित किया जा सकता है या नहीं ? इसी प्रश्न को लेकर मनोवैज्ञानिक ग्रंथियाँ भी उत्पन्न होती हैं । स्त्री-पुरुष के इस सम्बन्ध के सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वन्द्व का उच्चतम, किन्तु संयमित तथा बुद्धि और हृदयग्राह्य चित्रण उपस्थित करने का लेखक ने प्रयत्न किया है । परकीया प्रेम की समस्या पर आधारित यह एक आदर्शवादी उपन्यास है ।

एक विवाहिता नारी करुणा अपने पति सत्याचरण बाबू के विचित्र और रहस्यमय व्यवहार से हैरान होकर निखिल नामक युवक की ओर आकर्षित होती है । निखिल भी इसी प्रेम को अपना सबसे बड़ा सम्बल मानकर अपने चाचा से विग्रह करता है । इसके फलस्वरूप वह घर निकाल दिया जाता है । दोनों के इस प्रणय-संबंध के बहुत आगे बढ़ने से वह हिचकता-सा जान पड़ता है ; क्योंकि निखिल उपन्यास के अन्त में करुणा से अपने पति सत्याचरण बाबू के प्रति उचित कर्तव्यों का ध्यान दिलाता है और सत्याचरण ही को पति के रूप में स्वीकार करने के लिए बाध्य करता है ।

इस कथा के समानान्तर करुणा के पिता गोपाल बाबू और अमिता से सम्बन्धित परकीया प्रेम की एक और कहानी भी चलती है । गोपाल बाबू अमिता से प्रेम करते हैं । नारी के लिए मानी जाने वाली लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन हो जाने से सामाजिक कलंक तथा व्यक्तिगत अपमान का विचार करके गोपाल बाबू अपने अवैध ~~बिसनल जमल~~ से ~~बेसहारा~~ ~~तथा~~ विशाल जगत में असहाय तथा पुत्र को, अमिता को कानपुर में छोड़ देते हैं , परन्तु उनके दुर्भाग्य के कारण उनका पुत्र अविनाश जीवित रह जाता है । और अनाथालय में पलता है । वयस्क हो जाने के पश्चात् अपनी माँ के प्रति किये गये गोपाल बाबू के दुर्व्यवहार तथा अत्याचार के कारण वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करता है । अपने इसी पुत्र को एक दिन अपने ही घर में देखकर गोपाल बाबू भौंचक्के रह जाते हैं । अपनी भूल सहन न होने पर प्रायश्चित करने के लिए वे अमिता के पास चले जाते हैं । गोपाल बाबू की डायरी हाथ लग जाने से अविनाश उनके सारे जीवन-रहस्यों से अवगत हो जाता है और वह उस डायरी को ले जाकर प्रो० वैशम्पायन को दे देता है । इस प्रकार पर्दाफाश होने से समाज में चरित्रवान् माने जाने वाले तथा नैतिकता के उच्चासन पर आरूढ़ गोपाल बाबू का वास्तविक चरित्र सामने आता है । परिणामस्वरूप उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है । अपनी पत्नी का देहावसान हो जाने के पश्चात् जीवन-संगिनी का अभाव गोपालबाबू को खलता है, अत: अंततोगत्वा अमिता को पत्नी रूप में स्वीकार करके वे अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित कर लेते हैं । पागल अविनाश के ही द्वारा निखिल के चाचा के स्वार्थपूर्ण व्यवहार भी सामने आये हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक सुसंगठन के अभाव में सम्यक् प्रभाव डाल सकने में असमर्थ रहता है ; किन्तु इसमें जीवन के यत्र-तत्र बिखरे यथार्थ चित्र अवश्य उभर कर आ गये हैं । गरीबी के प्रश्न को लेकर लेखक ने उपन्यास में कहीं-कहीं व्यंग्य भी किया है, किन्तु वह इस समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सका है ; क्योंकि पारिवारिक सीमाओं से वह बाहर ही नहीं निकल सका है । यथार्थ के नाम पर यौन विकृतियाँ, जो आज के उपन्यासों का आवश्यक तत्त्व बनती जा रही हैं, इस उपन्यास में कहीं भी दिखाई नहीं देतीं । अविनाश के माध्यम से अवैध संतान की समस्या भी इसमें उठाई गई है । इस कृति का सम्प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया गया था । इस उपन्यास के विषय में अपना अभिमत देते हुए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है -"यह वाजपेयी जी की विकसित कला बोध और अनुभव का परिणाम है ।"[1]

1- सूनी राह , 'अभिमत' पृ० क

निरन्तर :

प्रस्तुत उपन्यास सन् 1957 ई० में यंग मैन एण्ड कम्पनी, दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में अपने समाज की निरन्तर परिवर्तनशील गति-विधियों, मनोदशाओं और परम्पराओं की विशिष्ट झाँकी प्रस्तुत की गई है। इसमें लेखक ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि समाज की विचित्र रीतियों के कारण जिसका अपनी पसंद के व्यक्ति के साथ विवाह-सम्बन्ध नहीं होता, उसकी स्थिति बाद में कैसी होती है।

परमेश्वरीलाल अपने अतीत में जरा भी झाँकते हैं, तो तुरन्त उन्हें जाह्नवी की याद आ जाती है, जिसके साथ उनका विवाह होने वाला था। दूसरे व्यक्ति के साथ उसका विधिवत् विवाह सम्पन्न हो जाने पर भी परमेश्वरीलाल जाह्नवी से प्रेम की अपेक्षा रखते हैं और ऐसा एक भी अवसर नहीं चूकते जब उससे नैकट्य स्थापित किया जा सके। जाह्नवी के पुत्र व्योम को दुर्घटना होने पर वे शीघ्रातिशीघ्र उसे जाह्नवी के पास ले जाते हैं। अंत में परमेश्वरीलाल पर दो आघात होते हैं। अपनी पत्नी कमलेश्वरी तथा जाह्नवी के विचारों के प्रत्याघात से उनके जीवन का दृष्टिकोण बदल जाता है।

पति की मृत्यु के पश्चात् जाह्नवी इन्टर कालेज में सदृष्टांत सुन्दर शिक्षा देती है, तथापि विद्यालय की सैक्रेटरी मल्लिका अपने यहाँ सखियों को बुलाकर जाह्नवी के विरुद्ध कार्रवाई करती है। परन्तु इस विद्यालय की प्रबंधकारिणी समिति की एक सदस्या शोभा सबको यथोचित प्रत्युत्तर देकर जाह्नवी की सेवाओं का मूल्यांकन करती है। मल्लिका के अनारकली के यहाँ जाने पर दोनों में विवाद होता है, अत: अनारकली संस्था को आर्थिक सहायता न देने की धमकी देती है। अंत में नौकरी छूट जाने से जाह्नवी को विषम आर्थिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। ऐसे दुर्दिन में उसे शोभा के पति पाण्डेय जी सहायता करते हैं। पाण्डेय जी की बहन उर्मिला के प्रति जाह्नवी के पुत्र हेम को प्रेम है; किन्तु वह उसके साथ विवाह करना नहीं चाहता हेम का व्याह अपनी माँ की एक विद्यार्थिनी शकुन्तला के साथ हो जाता है। उसके विवाह के अवसर पर परमेश्वरीलाल 500)- रुपये की वस्तुएँ उपहार के रूप में देता है। उसी दिन जाह्नवी को ज्वर आता है, वह प्रलाप करने लगती है और अंत में उसकी मृत्यु हो जाने से परमेश्वरीलाल भाग जाते हैं।

इस उपन्यास में वाजपेयी जी ने समाज की विचित्र रूढ़ियों-रीतियों पर प्रकाश डालते हुए यह बतलाने का प्रयास किया है कि परमेश्वरी के पिता ने 10,000 रुपये के मोह में पड़कर जाह्नवी को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार नहीं किया, इस बात का दु:ख परमेश्वरी को आजीवन

रहता है । जाह्नवी की मृत्यु की पीड़ा असह्य बन जाने पर वह पलायन कर जाता है । दोनों के शुद्ध प्रेम [illegible] को लेखक ने चित्रित किया है । उपन्यास में एक अन्य पात्र भवानी बाबू के चरित्र द्वारा कृतिकार ने एक ऐसे चरित्र का निर्माण किया है जो छोटी-छोटी बातों पर दूसरा विवाह कर लेता है । भवानी बाबू की प्रथम पत्नी एकादशी का सास से अलग रहने के लिए कहना कोई बड़ी बात न थी, परन्तु भवानी बाबू को यह मंजूर नहीं था, इसीलिए वे दूसरा विवाह कर लेते हैं ।

पूरे उपन्यास में केवल एक बात खटकती है । कथोपकथन में जहाँ कहीं नये पात्र का नाम आता है, उपन्यासकार शीघ्र इस पात्र का परिचय देने बैठ जाता है । इस प्रकार पात्र-परिचय देना कथा-विकास में अवरोधक सिद्ध हुआ है । इतना ही नहीं, अपने पात्रों के विषय में लेखक स्वयं अस्पष्ट है । उपन्यास में एक स्थल पर वह लिखता है -" फिर शकुन्तला अपनी माँ महालक्ष्मी के साथ आई थी । वे अवस्था में जाह्नवी से कुछ ज्येष्ठ थीं । शकुंतला ने परिचय में कहा- 'गुरु माँ जी, मेरी ये भाभी भी एक सुप्रसिद्ध वकील की बेटी हैं और नाम इनका महा-लक्ष्मी है ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि शकुन्तला और महालक्ष्मी के सम्बंधों के विषय में लेखक निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता । अत: एक स्थान पर वह महालक्ष्मी को शकुंतला की माँ बतलाता है, तो आगे तुरन्त ही 'भाभी' के रूप में शकुंतला उनका परिचय देती है । वस्तुत: शकुंतला महालक्ष्मी की पुत्री है ।

गोमती के तट पर :

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1959 ई0 में बंसल एण्ड कम्पनी, दिल्ली से हुआ था । केवल यही एक ऐसा उपन्यास है जिसका 'कॉपी राइट' बाजपेयी जी का है । यह उपन्यास उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हो चुका है । प्रस्तुत उपन्यास में भिखारियों की समस्या उठाकर उसे सुलझाने का प्रयत्न लेखक ने किया है ।

कवि वसन्त का अपनी पत्नी मौलश्री के प्रति अब पूर्ववत् स्नेह नहीं रहा । वह प्रदर्शनी में जाता है, तब विज्ञान के माध्यम से उप -सचिव कैलास बाबू तथा उनकी लड़की कला से उसका परिचय होता है । गृहस्थी के सुख के लिए मौलश्री व्रतादि करने के लिए सदा उद्यत होती है, परन्तु इसका कुछ भी परिणाम नहीं आता । वसंत के अनुज राकेश के रोज रात को देर से आने

1- निरंतर, पृ0 83

पर माँ तथा भाभी उसे उपालम्भ देती हैं । राकेश को यह बात बुरी लगती है , पर दोनों मना लेती हैं । वसंत अपना कविता-संग्रह कला को भेंट के रूप में देता है । शनैः शनैः कला वसंत की ओर आकर्षित होती जाती है । परन्तु कैलाश बाबू राकेश के साथ उसका व्याह करना चाहते हैं । कालेज-जीवन से ही राकेश-कला एक दूसरे से परिचित थे । राकेश भिखारियों की समस्या हल करने के लिए सेवासंघ की स्थापना करता है । उसके इस कार्य में कैलाश बाबू उसे पर्याप्त आर्थिक सहायता करते हैं । राकेश की उत्तरोत्तर प्रगति से वसंत के हृदय में उसके प्रति ईर्ष्याभाव उत्पन्न होता है । वह भिक्षुकों तथा जनता को राकेश के विरुद्ध भड़काता है । इतना ही नहीं, राकेश के विवाह के बाद गहने बेच देता है, अतः कैलाश बाबू कला की ओर से जायदाद के लिए दावा दायर करते हैं । वसंत की इसमें पराजय होती है । राकेश षड्यंत्र का भोग बनता है । उसे मार से बेहोश करके कमरे में बंद कर दिया जाता है । होश में आने पर दुश्मनों के प्रति भी राकेश के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को देखकर वसंत का हृदय-परिवर्तन हो जाता है और प्रायश्चित प्रायश्चित करने के लिए गोमती में डूब कर वह मर जाता है । उसकी आत्महत्या के पश्चात् पता चलता है कि मकान के प्लॉट के स्वामीत्व का प्रमाणपत्र वह राकेश के नाम कर गया है । तब उसकी महानता प्रकट होती है ।

रिक्शा वाले की दुर्घटना में राकेश का मानवतापूर्ण चरित्र स्पष्ट उभर आया है । दुष्ट दिवाकर के प्रति भी राकेश का व्यवहार वैसा ही है जैसा सज्जन के प्रति । वही दिवाकर पश्चाताप होने से सुधर जाता है । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने भिखारियों की समस्या उठाकर यह प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित किया है कि ये भिखारी हैं कौन ? वे हमारे ही समाज के अंग हैं । कभी हमारे ही परिवार के सदस्य थे । लज्जाराम और करीम उल्ला जैसे स्वार्थी लोगों के कारण ही भिखारियों की तादाद बढ़ती जाती है । इस उपन्यास के अध्ययन से यह कहा जा सकता है कि लेखक गांधीवाद से प्रभावित है । अहिंसा एवं प्रेम का प्रभाव पात्रों पर पूरे कौशल के साथ लेखक ने दिखाया है । देशी-विदेशी अनेक विद्वानों के उद्धरण देकर उपन्यास को बोझिल बनाया गया है । बहुत ही सावधानी बरतने पर भी एक छोटा-सा दोष[1] इस कृति में रह गया है । मानवीय भावों-ईर्ष्या, द्वेष आदि का चित्रण लेखक ने सफलता के साथ किया है ।

1- दे. गोमती के तट पर - पृ0 118 पर दहेज के सम्बन्ध में बारह सौ रुपये का उल्लेख किया जाता है ; किन्तु पृ0 133 पर यह बात भूलकर लेखक बारह हजार लिख बैठता है । इसे हम छापे की भूल (misprint) नहीं मान सकते ।

रात और प्रभात :

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1957 ई० में[2] राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली से हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास में मध्यवर्ग के एक ऐसे सम्मिलित परिवार की कथा है, जिसके मुखिया बड़े भैया एक आदर्श पुरुष हैं। वे केवल अपने परिवार के लिए ही नहीं, अपितु समाज के लिए भी आदर्श हैं। वे पास-पड़ोस से भी स्नेह-भावना, भद्रता की भावना तथा सत्य के प्रति आस्था निरन्तर बनाये रखते हैं। मँझले भैया का साला रामप्रसाद धूर्त तथा ओछे विचारों का व्यक्ति है। बड़े भैया उसका विरोध करते हैं और रामप्रसाद तथा मँझले भैया के बीच मनमुटाव हो जाता है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि बड़े भैया के परिवार से सम्बद्ध रामप्रसाद पथभ्रष्ट होकर भी किस तरह उस आदर्श पुरुष के प्रभाव से सन्मार्ग का पथिक बन जाता है। बुराई का मार्ग त्यागने से उसके जीवन का अंधकार दूर हो जाता है और जीवन में प्रभात का प्रकाश फैल जाता है। एक सम्मिलित कुटुम्ब की कथा होने के कारण इस उपन्यास में बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के पात्र हैं।

उपन्यास की कथावस्तु सामान्य है ; अत: कृतिकार के प्रयत्न करने पर भी इसमें कुछ शैथिल्य आ ही गया है। विमला के हाथ के घाव का उल्लेख पहले पृ० 97 पर आता है, पर घाव लगने की घटना होती है पृ० 124-125 पर। इतना ही नहीं, कीर्ति द्वारा स्थापित उद्योग मन्दिर की कथा उपन्यास की मूल कथा से बिलकुल असम्बद्ध है। न तो कीर्ति के चरित्र-चित्रण में उद्योग मंदिर का प्रभाव लेखक दिखा सका है, न ही विमला के साथ उसके प्रेम-सम्बंधों में उद्योग मंदिर का कोई योगदान है। उपन्यास में कुछ स्थल ऐसे भी हैं, जो अंधविश्वास के पोषक कहे जा सकते हैं। यथा- बड़े भैया के आशीर्वाद से बच्चे का स्वस्थ हो जाना, रुपयों की आवश्यकता होने पर मंदिर में मँझले भैया के प्रार्थना करने पर कहीं से रुपये आ जाना आदि।

इस उपन्यास की भाषा साधारण बोलचाल की है। उसमें यथेष्ट प्रवाह है, परन्तु कहीं-कहीं अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों के स्थान पर संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग के मोह ने भाषा

1- डा० ललित शुक्ल ने अपनी पुस्तक उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : शिल्प और चिंतन (पृ० 25) में इसका प्रकाशन-काल सन् 1959 ई० दिया है, परन्तु इस उपन्यास की आलोचना 'आजकल' (सितम्बर 57) तथा 'विशाल भारत' (जनवरी 58) में प्रकाशित हुई है। अत: 'रात और प्रभात' का प्रकाशन-काल जो डा० शुक्ल ने दिया है, कदापि संभव प्रतीत नहीं होता।

को बड़ा अटपटा-सा बना0 बना दिया है । जैसे -'ड्राइंग रूम' के स्थान पर 'आयात-कदा' 'चैक न भूना' की जगह 'चैक 'अनाहत' हो गया ।" अन्त में यह कहा जा सकता है कि इस कृति में जीवन की कोई नवीन आधारभूत समस्या नहीं ली गई है ।

उनसे न कहना :

इस उपन्यास का प्रकाशन भी 1957 ई0 में हुआ था ।[1] इसका चतुर्थ संस्करण सन् 1968 ई0 में राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली से प्रकाशित हुआ था । इसमें लेखक ने मुख्यत: आधुनिक सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में नारी जीवन की कतिपय महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर विचार किया है । मध्य वर्ग की नारी की सामाजिक स्थिति क्या है इसका विस्तृत विवेचन इसमें किया गया है । इस उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि मनोवैज्ञानिक कुण्ठाओं और ग्रन्थियों के कारण मानव जीवन की कौन-सी प्रतिक्रियात्मक संभावनाएँ सामने आती हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास के नायक विजय के सब कार्यों का आधार आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार 'फ्रस्ट्रेशन' माना गया है । उसका चरित्र गुणावगुणों से सम्मिलित है । अपनी बहन नयनतारा की सखी राजेश्वरी से अपमानित होकर वह डाकू बनकर उसके घर डाका डालने जाता है। वास्तव में यह कोई विशेष स्वाभाविक कारण प्रतीत नहीं होता । उस ऊँकती में बलात्कार का अवसर पाकर भी वह अपने आपको इस पाप-कर्म से रोक लेता है । ग्लानि के कारण ही वह गिरफ़्तार कर दिया जाता है । अनायास उसे एक वेश्या की सहानुभूतिपूर्ण सहायता प्राप्त होती है और अन्त में मुकदमें में जीतने से उसे निर्दोष छोड़ दियाजाता है । राजेश्वरी का विवाह ब्रजमोहन के साथ होता है, किन्तु पति के संदेहशील स्वभाव के कारण उनका गृहत्याग करके वह विषपान कर लेती है ।

कथानक में घटनाओं का इतना आधिक्य और उनका विकास ऐसा अस्वाभाविक है कि उपन्यास निष्प्राण-सा लगता है । इसके सम्यक् अध्ययन से इस बात की स्पष्ट प्रतीति हो जाती है कि लेखक ने पहले से ही नियम निर्धारित करके आधुनिक मनोविज्ञान के विभिन्न तथ्यों का प्रयोग

1- डा0 ललित शुक्ल ने तथा वाजपेयी अभिनंदन-ग्रंथ में इस उपन्यास का प्रकाशन-काल सन् 1960 ई0 दिया गया है, किन्तु मार्च, '58 के 'समालोचक' तथा अप्रैल, '58 के 'विशाल भारत' में प्रस्तुत उपन्यास की आलोचना प्राप्त होती है । अत: सन् 1957 ई0 में इसके प्रकाशन को हम मान्यता देते हैं ।

करने का निष्फल प्रयास किया है । प्राचीनता और आधुनिकता के विचित्र मिश्रण ने उपन्यास का स्वरूप बिगाड़ दिया है । 'सहलिंगत्व' आदि के संकेत भी उपन्यास में है ; किन्तु उनका पूर्ण विश्लेषणात्मक विकास प्राप्त नहीं होता । मनुष्य का अहंकार जीवन में कितनी विषमताओं और दु:खों का सृजन करता है, इसका घटनापूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है । कृतिकार ने इसमें यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि हमारा मध्यवित्तीय और निम्न - वित्तीय नागरिक समाज अपनी कुण्ठित इच्छाओं तथा पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों के कारण कितने कष्ट उठाता है । उच्च मध्य वर्ग की नारी तथा पुरुष अपने थोथे अहंकार के कारण अपने जीवन में स्वत: ही विषमताओं का सृजन करते हैं और उनकी संतान उनके उस अहं का कटु फल भोगती है । कल्याणी, कीर्तिदेव तथा उनके पुत्र विजय की करुण कथा इसी अहंकार के शिकार बनते हैं ; परिणामस्वरूप दोनों का जीवन नष्ट हो जाता है । फातिमा, पन्ना आदि लड़कियाँ प्रेम के क्षेत्र में असफल रहती हैं । विजय की सौतेली बहन नयनतारा इस उपन्यास के किसी भी नारी पात्र की अपेक्षा सुखी है । नयनतारा के अतिरिक्त शेष सभी प्रमुख नारी पात्र गृह-कलह या प्रेम में असफल होने के कारण दु:खी रहते हैं । इस कृति के सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोविज्ञान के आधार पर हुआ है ।

प्रस्तुत उपन्यास में वाजपेयी जी ने आधुनिक जीवन के विभिन्न स्तरों तथा वर्गों का चित्रण करने का प्रयास किया है । ताल्लुकेदारों, विद्यार्थियों, नगरजनों, ग्रामीणों, वेश्याओं, डाकुओं और पुलिस वालों से यह उपन्यास भरा पड़ा है, तथापि कथावस्तु का विकास जिस संघर्ष के अध्ययन से करने का प्रयत्न किया गया है, वह अकारण ही प्रतीत होता है । यह सत्य है कि इस उपन्यास में आज के पुरुष और नारी के मन की कुण्ठाओं का मनोवैज्ञानिक विकास दिखलाने का प्रयत्न किया गया है । हठ और अहंकार का भी कौशलपूर्ण विकास लेखक नहीं दिखा सका है ।

उपन्यास की भाषा प्रांजल तथा सशक्त है ; किन्तु उसके ये गुण व्यर्थ से प्रतीत होते हैं । लेखक ने अपने अन्य कुछ उपन्यासों की तरह इस उपन्यास की कथा भी चलचित्रोद्योग से प्रभावित होकर लिखी हो, ऐसा स्पष्ट लगता है ।

सपना बिक गया :

वाजपेयी जी का यह उपन्यास सन् 1960 ई० में प्रकाशित हुआ था । तत्पश्चात् सन् 1965 ई० में प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से भी उसका प्रकाशन हुआ है । उन्होंने इसकी रचना इस कृति के

अनेक पात्रों की, आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत की गई, जीवन-गाथा के रूप में की है । प्राचीन और नवीन का वैचारिक संघर्ष इस उपन्यास में भी लेखक ने चित्रित किया है । इसके अतिरिक्त आधुनिक जीवन में जिस प्रकार की चेतना मिलती है और सामाजिक विकृति के जो कुण्ठायुक्त रूप दिखाई देते हैं उनका भी चित्रण इसमें किया गया है ।

प्रस्तुत उपन्यास के दो प्रमुख पात्र-दुष्यन्त और राका-घर से भागकर बम्बई जाकर सिविल मैरेज करने का निश्चय करते हैं । राका यथासमय स्टेशन पहुँच जाती है ; किन्तु रास्ते में हुई दुर्घटना के कारण दुष्यन्त का हाथ टूट जाता है, अत: उसे अपने घर वापस लौट जाना पड़ता है । उसके दुर्घटनाग्रस्त होने के बाद पिता जी को पश्चाताप होता है और वे उन दोनों का विवाह करा देते हैं ।दुष्यन्त और राका बाढ़ग्रस्त गाँव में सेवा के हेतु जाते हैं और वहाँ से कुछ समय के बाद वापस अपने घर आ जाते हैं । अकेला दुष्यन्त ग्रामसुधार के लिए पुन: जाता है । आदर्श ग्राम का निर्माण ही उसका सपना है । अधिक समय गाँव में रहने से ग्राम्य जीवन से वह ऊब जाता है । राका की सखी शैल ग्राम के नवनिर्माण के लिए दुष्यन्त की सदा आर्थिक सहायत करती रहती है ।

इस उपन्यास का एक और प्रमुख पात्र बिहारी भी दुष्यन्त के साथ ग्राम के नव-निर्माण के कार्य में जुटा है । उसकी ही भूल के कारण खदम्मी (मजदूर) का बच्चा मर जाता है। किसी कार्यवश बिहारी दुष्यन्त के यहाँ कानपुर जाकर आता है । राका के पुत्र होने पर पुन: एक बार उसे सबके साथ कानपुर जाने का मौका मिलता है । वहाँ वह राका के प्रति आकृष्ट होता है । एक बार अचानक चप्पल की दुकान में राका से भेंट हो जाने पर वह उसे अपने यहाँ आने का निमंत्रण देता है । बाद में राका भी उसे आमंत्रित करती है । परन्तु शीघ्र वह संभल जाता है । अपना कार्य तो नवनिर्माण का है यह याद आते ही और अपनी भूल का ख्याल आते ही उसे पश्चाताप होता है ।

टूटा टी सैट :

इस उपन्यास का प्रकाशन काल सन् 1962 ई0 है । इसका द्वितीय संस्करण सन् 1965 ई0 में भारतीय ग्रन्थ ~~एजेन्सी~~ निकेतन, दिल्ली से हुआ था । प्रकाशकीय वक्तव्य में ऐसा उल्लेख किया गया है कि यह एक यथार्थवादी उपन्यास है ; किन्तु इस मन्तव्य के साथ हम सहमत नहीं

हो सकते ; क्योंकि यथार्थवादी उपन्यासकार नियति में कदापि विश्वास नहीं करता, जब कि इस उपन्यास का नायक संयोग बाबू तथा नायिका नीलकमल दोनों आस्थावादी हैं और नियति में उन्हें सम्पूर्ण विश्वास है । यथार्थवादी पात्र जीवन में संघर्ष को अनिवार्य मानते हैं , परन्तु प्रस्तुत उपन्यास की नायिका वर्तमान एवं भविष्य को ईश्वराधीन मानती है । नायक और नायिका के मिलन में उपन्यासकार का दृष्टिकोण नियतिवादी है । यह बात सत्य है कि उपन्यास में कुछ स्थलों पर लेखक का यथार्थवादी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है ; किन्तु कुछ-एक यथार्थवादी दृष्टिकोण स्थलों की पृष्ठभूमि के आधार पर इसे यथार्थवादी उपन्यास मानना, समीचीन प्रतीत नहीं होता । वास्तव में चरम परिणति पर पहुँचते-पहुँचते यह उपन्यास आदर्शवादी बन जाता है । क्योंकि उपन्यासकार वस्तु जैसी है, उसी रूप में उसे स्वीकार नहीं करता, अपितु उसका रूप क्या होना चाहिए, उसकी ओर भी इंगित करता है ।

नीलकमल का विवाह संयोग बाबू के साथ हो जाने से उसका प्रेमी चन्द्र बिन्दु अपने और नीलकमल के मिथ्या सम्बन्धों की बात करके संयोग बाबू को भड़काता है । इसी के फलस्वरूप नीलकमल के चरित्र के विषय में उसके पति के मन में एक ग्रन्थि बन जाती है ; अत: वे उसे अपने घर से निकाल देते हैं । त्यक्ता नीलकमल अपने पिता के यहाँ रहती है । वहाँ वह अपने पड़ोसी अरुण के निकट सम्पर्क में आती है और उसी के माध्यम से चलचित्रोद्योग में पहुँच जाती है । वहाँ अचानक उसकी भेंट चन्द्र बिन्दु से होती है । वह अपनी भूल के लिए अत्यन्त दु:खी होकर क्षमा-याचना करता है । इस बात की चर्चा वह मृगलोचनी से भी करता है । वह कभी संयोग बाबू की प्रेमिका के रूप में रह चुकी थी । मन में पड़ी हुई ग्रन्थि के कारण संयोग बाबू अत्यन्त अस्वस्थ हो जाते हैं । ऐसी अवस्था में उन्हें मृगलोचनी द्वारा लिखा गया एक पत्र प्राप्त होता है । हक़ीक़त जानने के पश्चात् ग्रन्थि सुलझ जाती है । तार मिलते ही सबके कहने पर नीलकमल पति के यहाँ जाती है । उसके आगमन से संयोग बाबू प्रसन्न होते हैं और दिन-प्रतिदिन वे स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास का कथा-संगठन प्रारंभ से ही शिथिल दिखाई देता है । कुछ प्रासंगिक घटनाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि केवल विस्तार के लिए ही उनका निर्माण किया गया है । जैसे- बुद्धिरंजन बाबू से सम्बन्धित घटनाओं की कोई आवश्यकता उपन्यास में नहीं दिखाई देती । इन घटनाओं का मूल कथा से या किसी पात्र के चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता।[1]

1- दे. पृ0 140 से 151

इसी प्रकार दूसरे अध्याय में भी उपन्यासकार ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि बम्बई में फ्लैटों में रहनेवाले कैसे रहते हैं, किन्तु यह भी कथा की गति के लिए अवरोधक सिद्ध होता है । 'सूनी राह' , 'विश्वास का बल', 'चलते-चलते', 'राज पथ' जैसी चरित्र-चित्रण की सफलता लेखक को इस उपन्यास में नहीं मिली है । वाजपेयी जी ने इस उपन्यास में यथास्थान कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग किया है, इतना ही नहीं, पात्रानुकूल भाषा प्रयुक्त की है । भाषा में कहीं-कहीं लिंग दोष आ गया है । सम्पूर्ण उपन्यास में एक छोटा-सा दोष रह गया है । अरुण का विजिटिंग कार्ड चन्द्र-बिन्दु के पास कहाँ से आया ?[1] इस बात का उपन्यास में कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है । बम्बई के चलचित्रोद्योग का वर्णन, लेखक की अनुभूति के आधार पर होने से, यथार्थ रूप में हुआ है।

टूटते बन्धन :

इस उपन्यास का नाम पहले 'अभिसन्धि' था, बाद में उसके नाम में परिवर्तन करके 'टूटते बन्धन' नाम से सन् 1963 ई० में उसे प्रकाशित किया गया । इसका दूसरा संस्करण सन् 1968 ई० में राजपाल एण्ड सन्स , दिल्ली से हुआ है । इस संस्करण में चीन के भारत पर के नग्न आक्रमण का उल्लेख भी लेखक ने किया है । इस उपन्यास की कथावस्तु का आधार परकीया एवं पर पुरुष का प्रेम ही है ।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक यशवन्त मालिन भौजी के प्रति तो आकर्षित है ही, बेला के साथ विवाह हो जाने के पश्चात् उसकी सखी मुरली के प्रति भी आकृष्ट होता है । बेला को सब कुछ ज्ञात है । दोनों के प्रति उसे अविश्वास भी है । एक रात मुरली और यशवन्त का अध:पतन हो जाता है । एम०ए० की पढ़ाई के बहाने वह शहर चली जाती है । वहाँ ट्यूशन करती है ; किन्तु पर्दाफाश होने पर ट्यूशन छूट जाता है । उसे अपना पुराना प्रेमी दुष्यन्त बारम्बार याद आता है । अब तक तो यशवन्त उसके साथ रहता था, परन्तु अब वह उसे अपने से अलग रहने के लिए कहती है । यथा समय मुरली के पुत्र होता है । बेला अपनी संतान के साथ शहर आती है, तब भेंट होने पर अपना बच्चा भी उसे देकर मुरली प्रशासनिक अधिकारी बुद्धिरंजन बाबू के यहाँ चली जाती है । वे अविवाहित थे तथा उनकी भाभी की भानजी को ट्यूशन देने मुरली पहले उनके यहाँ जाती थी । भोग को ही जीवन मानने वाला यशवन्त मुरली से अलग होकर वेश्या के यहाँ जाता है ; उसके साथ फगड़ता है और उपन्यास के अन्त में सेना में भरती हो जाता है.

1- वे. पृष्ठ 174

'वासना से परे' की वायलेट के चरित्र की तरह ही 'टूटते बन्धन' के यशवन्त के चरित्र द्वारा लेखक यही बतलाना चाहता है कि भोगी से भोगी व्यक्ति के अंतर में भी देश-प्रेम की भावना सुषुप्त रूप में विद्यमान रहती है । समय आने पर वह भोगी व्यक्ति भी अपना सब कुछ त्याग कर देश-सेवा के हेतु समर्पित कर देता है । इस उपन्यास में वेश्या शमशाद की कहानी अलग- सी जान पड़ती है । अनवरी का चरित्र-विकास नहीं हो पाया । लेखक ने आठवें अध्याय में तत्कालीन समाज को चित्रित करने का प्रयास किया है ; किन्तु इससे कथा की गति में अवरोध आ गया है । हवलदार एवं वेश्या का चरित्र-चित्रण लेखक ने सफलतापूर्वक किया है । इस उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है । इस उपन्यास में लेखक ने आधुनिक जीवन और नवीन विचारधारा की आवश्यकता और औचित्य का विवेचन किया है ।

अधिकार का प्रश्न :

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1965 ई० में एस.चंद एण्ड कंपनी, दिल्ली से हुआ था । इसकी रचना के उद्देश्य के सम्बंध में कृतिकार लिखता है -' आज की पीढ़ी की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अधिकारों के उपभोग पर ध्यान अधिक रखती है, मानवीय कर्तव्य-भावना का ध्यान अपेक्षाकृत बहुत कम । मैंने इस उपन्यास में इसी समस्या को प्रमुखरूप से उभारने की चेष्टा की है, क्योंकि यह मानने को मेरा जी नहीं चाहता कि यह संसार सदा से ऐसा ही रहा है ।'[1]

विवाहोपरान्त उपेन्द्र अपने अधिकार का प्रश्न पिता जी के समक्ष उपस्थित करता है । जीजा जी के साथ विचार-विमर्श करने पर वे बुरा मान जाते हैं, पर पिता जी पूर्ण गांभीर्य के साथ उसकी बात पर विचार करते हैं । पढाई पूरी होने पर उपेन्द्र प्रथम मिल में, फिर हाईस्कूल में नौकरी करता है । उसके विरोध करने पर भी छोटी बहन कान्ति के विवाह का तिलक चढ़ाया जाता है । वह घर से अलग हो जाता है । इसके बाद उपेन्द्र के पिता जी काशी-बाबू की मृत्यु हो जाती है । अपने पुत्र देवेन्द्र का विवाह तरुलता के साथ उपेन्द्र निश्चित करता है । परन्तु देवेन्द्र और तरुलता में मतान्तर है । देवेन्द्र की सपत्नीक सिनेमा देखने की जिद उनके बीमार बच्चे की मृत्यु का कारण बन जाती है । दु:खी दाम्पत्य-जीवन के कारण तरुलता भी अस्वस्थ रहती है । अंत में उसकी यह अस्वस्थता उसके प्राण लेकर ही जाती है । मिस पाल से देवेन्द्र विवाह करना चाहता है । स्वभाव में परिवर्तन आने पर उपेन्द्र अपनी पत्नी

1- अधिकार का प्रश्न -'अपनी बात' - पृ0 4-5

के साथ पुत्र के विवाह में जाता है, किन्तु झूठी प्रतिष्ठा में मानने वाला देवेन्द्र अपने माता-पिता को धर्मशाला में भेजता है ; किन्तु वहाँ न जाकर उपेन्द्र अपनी माँ के पास कानपुर चला जाता है । अंत में तरुलता के निधन का तार मिलने पर तथा पत्नी से उपालंभ मिलने के उपरांत देवेन्द्र अपने माता-पिता को अपने यहाँ बुलाने का निश्चय करता है ।

इस उपन्यास में उपेन्द्र के मित्र श्यामविहारी की कथा असंबद्ध जान पड़ती है । इसे अलग कर देने से मूलकथा में किसी प्रकार की कमी महसूस नहीं होती । संबद्ध कथाओं में सुरेन्द्र की कथा उपेन्द्र के स्वभाव पर प्रकाश डालने में सहायक सिद्ध होती है । महावीर बाबू की कथा उपेन्द्र के चरित्र पर तो प्रकाश डालती ही है, मध्य वर्ग के समाज का भी चित्रण करती है । मिस पाल की कथा बड़े अधिकारियों पर प्रकाश डालते हुए यह बतलाती है कि नौकरी करने वालों की विवशता का कैसे लाभ उठाया जाता है । उपन्यास के संवाद स्वाभाविक हैं। भाषा के प्रयोजन के अनुकूल है । एक साथ अनेक शैलियों का -वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, हास्य शैली आदि-प्रयोग किया गया है । छोटे से उपन्यास में तीन पीढ़ियों की कथा का समावेश किया गया है ; अत: घटनाएँ बहुत वेग से घटती जान पड़ती हैं । उपन्यास के अंत में पाठक को यही अनुभूति होती है कि लेखक शीघ्र कथा निपटा लेना चाहता है ।

विजय श्री :

इस उपन्यास का प्रकाशन तथा प्रथम संस्करण सन् 1966 ई0 में बाल-साहित्य मंदिर, आगरा से हुआ था । तत्पश्चात् नवम्बर, 1971 में 'आज और अभी' शीर्षक से इसका प्रकाशन प्रत्यूष-प्रकाशन, कानपुर से हुआ है । दोनों उपन्यासों में प्रमुख पात्रों के नाम परिवर्तित किये गये हैं । 'विजय श्री' के राजनाथ, हरीतिमा, बिल्वमंगल, जीवनशंकर तथा राधाकुमुद के स्थल पर 'आज और अभी' में क्रमश: परेश, राजलक्ष्मी, अनायास, देवदूत तथा मधुसूदन प्राप्त होते हैं । तथापि लेखक की असावधानी के कारण 'आज और अभी' उपन्यास में एक स्थान पर राधाकुमुद का नाम यथावत् पाया जाता है ।[1] गौण पात्रों - वल्लरी, कृपाशंकर, ज्योति, शीलनिधि आदि- के नाम यथावत् हैं । 'आज और अभी' में मुख्य पात्रों की 'आत्मकथा' का स्थान 'चिंताधारा' ने ले लिया है । इसमें अध्याय प्राय: सूत्रात्मक शैली से आरंभ होता है । 'विजय श्री' की अपेक्षा यह संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण सुन्दर बन पड़ा है । यह वाजपेयी जी का एक लघु उपन्यास है । इसके नायक

1- दे. 'आज और अभी' पृ0 21

राजनाथ की पत्नी हरीतिमा के चरित्र विरुद्ध झूठी बातें करके बिल्वमंगल राजनाथ को भड़काता है । संशयशील प्रकृति का नायक उन बातों पर विश्वास करके हरीतिमा का त्याग करता है । परित्यक्ता हरीतिमा अपनी दीदी के यहाँ कानपुर चली जाती है । वहाँ उसका परिचय जीवन-शंकर से होता है । दोनों के बीच प्रथम दृष्टि का प्रेम (Love at the first sight) हो जाता है । इसी के फलस्वरूप जीवन शंकर अस्वस्थ हो जाता है । परीक्षा के दिनों में हरीतिमा अपनी सखी वल्लरी के यहाँ रहने लगती है, परन्तु सखी के व्यंग्य बाण उससे सहन नहीं होने पर वह पीड़ित होती है और शीघ्र दीदी के यहाँ आ जाती है । उसी दिन राजनाथ भी वहाँ आता है । राजनाथ की गलतफहमी दूर करने के जीवन शंकर के प्रयत्नों के फलस्वरूप दोनों के बीच सुखद समाधान होता है । अन्त में जीवन शंकर और वल्लरी का भी विधिवत् विवाह हो जाता है ।

अपने कथा-साहित्य में मनोवैज्ञानिक रोमांस को प्रधानता देने वाले वाजपेयी जी प्रस्तुत कृति में अपने पूर्व-पथ से थोड़े से हटे हुए दिखाई देते हैं । इसमें उन्होंने राष्ट्रीय चरित्र के सर्वांगिण विकास का प्रयत्न किया है, जो वास्तव में उनका प्रिय क्षेत्र नहीं रहा है । यही कारण है कि इस उपन्यास में थोथे और अस्पष्ट-से रहस्य का समावेश हो गया है । इस उपन्यास का नायक राजनाथ वस्तुत: है क्या, अन्त तक यह स्पष्ट नहीं हो पाता । इस उपन्यास की सबसे बड़ी निर्बलता तो उसकी उपदेशात्मकता है । वास्तव में उपदेश तब तक प्रभावशाली नहीं होते, जब तक कि उन्हें चरित्र तथा सुनियोजित घटना या घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत न किया जाय ।

मराठी के लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार वि.स. खांडेकर की कृति 'अश्रु' तथा कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर कृत 'घरे बाहिरे' की तरह यह उपन्यास भी आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है । इसमें सौंदर्य, कला और गठन का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है । भाषा का गठन और सौन्दर्य इस उपन्यास की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है ।

कर्मपथ :

यह उपन्यास वाजपेयी जी ने सन् 1967 ई० के प्रारंभ काल में लिखा था । और उसी वर्ष इस उपन्यास का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था । तत्पश्चात् इसके और भी दो संस्करण प्रत्यूषा प्रकाशन कानपुर से प्रकाशित हो चुके हैं । यह एक सामाजिक आदर्शवादी उपन्यास है । इसकी कथावस्तु सामान्य है । बी०ए० हो जाने के पश्चात् भी अजय को नौकरी नहीं मिलने से उसके

पिता उसे घर से बाहर निकाल देते हैं । अनेक मुसीबतें सहन करता हुआ वह पंचमपुरवा में ठाकुर का आतिथ्य स्वीकार करता है । उनके माध्यम से उसका परिचय विधवा सुमन से होता है । उसकी इच्छा विरुद्ध उसके पिता भी उसे जयगोपाल के साथ व्याहना चाहते हैं, अत: वह अजय के साथ बम्बई भाग जाती है । वहाँ प्रयत्न करने पर भी नौकरी नहीं मिलने से अजय चाय का होटल खोलता है और सुमन उसमें अपना पूर्ण सहयोग देती है । अंत में जयगोपाल सुमन की क्षमायाचना करता है । और अजय तथा सुमन विवाह के बन्धन में बँध जाते हैं ।

इस आधिकारिक कथा के साथ सावित्री और घनश्याम, सुमन और जयगोपाल तथा ठाकुर साहब की प्रासंगिक कथाएँ भी उपन्यास में हैं, जो मुख्य कथा से सम्बंधित हैं । इनके अतिरिक्त सोमेश्वर दुबे और एलिस डिसोजा, मदन ठाकुर और सुन्दरिया तथा पद्मधर और सरस्वती की प्रासंगिक कथाएँ ऐसी हैं जिनका मुख्य कथा से कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता । यदि ये कथाएँ उपन्यास से हटा दी जाय, तो भी कथा के विकास में किसी भी प्रकार का अंतर नहीं आता । इस उपन्यास के सम्यक् अध्ययन से तत्कालीन समाज का चित्र हमारे समक्ष उपस्थित होता है निम्न वर्ग का यथार्थ चित्रण उपन्यासकार ने किया है । लेखक केवल समस्याएँ उपस्थित करके ही नहीं रह गया है, अपितु उन्हें यथाशक्ति सुलझाने का भी प्रयत्न उसने किया है । भाषा पात्रानुकूल है तथा अनेक शैलियों का प्रयोग एक साथ इस उपन्यास में किया गया है ।

प्रस्तुत अध्याय में उनके प्रमुख उपन्यासों का परिचय देने का प्रयास किया गया है । कुछ प्रकाशन संस्थाओं के बंद हो जाने से तथा उन संस्थाओं से प्रकाशित उपन्यासों का दूसरा संस्करण नहीं होने से वे उपन्यास आज उपलब्ध नहीं है । अपने शिष्य हरिशंकर के सहयोग से उन्होंने केवल एक उपन्यास 'पाषाण की लौंच' की रचना की है । इसके अतिरिक्त शंभुदयाल सक्सेना और विजय वर्मा के साथ 'मीठी चुटकी' तथा प्रफुल्लचन्द्र ओझा के साथ 'लालिमा' नामक उपन्यास उन्होंने लिखा है । अन्य किसी लेखक या शिष्य के सहयोग से और किसी उपन्यास की रचना का उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता ।

वाजपेयी जी की कहानियां

वाजपेयी जी के उपन्यासों के सम्यक् अनुशीलन के पश्चात् निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उन्होंने मुख्यत: सामाजिक उपन्यासों की रचना की है ।उनके उपन्यासों का क्षेत्र अधिकांशत: भारतीय मध्य वर्ग रहा है । इस वर्ग की समस्याओं को लेखक ने अपनी कृतियों में चित्रित किया है । अपने 'पतिता की साधना', 'अनाथ पत्नी', 'पिपासा', 'सूनी राह', 'टूटा टी सेट', 'अधिकार का प्रश्न' आदि उपन्यासों में वाजपेयी जी ने सामाजिक समस्याएँ उठाई ही नहीं है, उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है । वाजपेयी जी ने आवश्यकतानुसार अपने 'पिपासा' 'निमंत्रण', 'धरती की साँस', 'निरन्तर', 'गोमती के तट पर', 'उनसे न कहना', 'टूटा टी सेट ' 'दूखन लागे नैन ', आदि उपन्यासों में मनोविज्ञान का उपयुक्त प्रयोग किया है । इन उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास कहा जा सकता है; किन्तु मूलत: वे सामाजिक उपन्यास ही हैं । 'मुसकान', 'मूदान' ,'सपना बिक गया', 'विजय श्री' आदि उपन्यास राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत पाये जाते हैं । 'अधिकार का प्रश्न' ,'सूनी राह' तथा 'टूटते बंधन' के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये कृतियाँ किसी विवशता के कारण उन्होंने शीघ्रता से पूर्ण की हैं । फलत: इनमें शैली का शैथिल्य प्राप्त होता है । शेष कृतियों में 'चलते-चलते', 'राजपथ', 'विश्वास का बल' , 'गोमती के तट पर ' तथा 'सपना बिक गया' आदि उपन्यासों को स-रस कहा जा सकता है । उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए ये पाँच उपन्यास ही पर्याप्त हैं ।

वाजपेयी जी मूलत: आदर्शवादी उपन्यासकार हैं । उनके 'प्रेमपथ', 'अनाथ पत्नी', 'मुसकान', 'पतिता की साधना', 'पिपासा', 'दो बहनें','गुप्तधन', 'रात और प्रभात', आदि उपन्यास आदर्शवादी हैं ।'टूटा टी सेट', 'टूटते बंधन', 'राजपथ','एक प्रश्न'तथा'सूनी राह' आदि उपन्यासों की रचना वाजपेयी जी ने यथार्थ की पृष्ठभूमि पर की है । उनके अधिकांश उपन्यासों का विषय प्रेम रहा है ।'प्रेमपथ','पिपासा' 'दो बहनें','निमंत्रण', 'चलते-चलते','विश्वास का बल', 'सूनी राह' ,'टूटा टी सेट', 'टूटते बंधन' आदि उपन्यासों में पर स्त्री-पुरुष प्रेम की समस्या, 'अनाथ पत्नी' में दहेज प्रथा की समस्या तथा 'गोमती के तट पर' में भिखारिणों की समस्या आदि समस्याओं को उठाया गया है । मध्य वर्ग को वाजपेयी जी ने निकट से देखा-भोगा तथा अपनी कृतियों में कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है ।

वाजपेयी जी ने जिन कहानियों की रचना की है, उनकी संख्या के विषय में निश्चित-रूप से कुछ भी कहना असंभव है । कुछ आलोचक उनकी कहानियों की संख्या तीन सौ, कुछ साढ़े तीन सौ, तो कुछ विवेचक चार सौ से अधिक मानते हैं, परन्तु उनके उपलब्ध कहानी संग्रहों में संकलित कहानियों की संख्या लगभग 110 है । अनुपलब्ध कहानियों के विषय में स्वयं वाजपेयी जी का कथन है -"मेरी बहुतेरी कहानियाँ सचमुच आज अनुपलब्ध हैं । इसका मूल आधार प्रारंभ में तो मेरी उदासीनता ही थी, क्योंकि मैं अपनी आज की स्थिति के प्रति बहुत आशान्वित नहीं था । कालान्तर में जब मुझे लेखकीय अन्तश्चेतना ने प्रेरित किया- अनुपलब्ध कहानियों के संचयन के लिए प्रेरित किया - तब समय बहुत आगे बढ़ चुका था । मुझे उन पत्रों की फाइलों के ही दर्शन नहीं हुए, जिनमें वे कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं ।"[1] उनकी कितनी ही कहानियाँ किंचिन्मात्र परिवर्तन के साथ एकाधिक संग्रहों में दोहराई गई हैं, इसका विवेचन यथास्थान किया जायगा ।

अपनी कहानियों के विषय चुनने के लिए वाजपेयी जी ने मुख्यत: समाज को पसंद किया है । जो कुछ उन्होंने समाज में देखा, भोगा, उसे ही अपनी कहानियों में चित्रित किया है । इस दृष्टि से देखा जाय, तो अन्य कहानियों की अपेक्षा उनकी सामाजिक कहानियों की संख्या अधिक रही है । सामाजिक कहानियों के अतिरिक्त वाजपेयी जी ने मनोवैज्ञानिक कहानियों का भी सृजन किया है । उन्होंने एक ऐतिहासिक तथा एक पौराणिक कहानी की रचना भी की है । उनकी कहानियों का वर्गीकरण करना बड़ा ही दुष्कर कार्य है ; क्योंकि उनकी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी मूलत: सामाजिक कहानियाँ ही हैं । यहाँ हम विषय-वस्तु के आधार पर उनकी कहानियों को मुख्य रूप से दो वर्गों- सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक - में विभाजित कर रहे हैं । प्रथम वाजपेयी जी की सामाजिक कहानियों का परिचय यहाँ प्रस्तुत है ।

सामाजिक कहानियाँ

यमुना :

प्रस्तुत कहानी सन् 1922 ई० में 'श्री शारदा' नामक पत्र में छपी थी, जो जबलपुर से प्रकाशित होता था तथा जिसके संपादक पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र थे। यह कहानी सत्य घटना पर आधारित है । इसमें मध्य वर्ग के एक कुटुम्ब का यथार्थ वर्णन प्राप्त होता है । परिवार - गत सास-बहू की विशिष्ट स्थिति पर यह कहानी अवतरित हुई थी । इसमें लेखक ने यह बताने का

1- कहानीकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : संवेदना और शिल्प, डा० गोविन्दलाल छाबड़ा और डा० लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ० 154

प्रयास किया है कि परिवार में नयी बहू के आगमन के साथ सब पुरानों की एक दलबन्दी हो जाती है, जो नारी का कुछ मूल्य नहीं रखती । संक्रान्ति के दिन ही यमुना अपनी पुत्रवधू के साथ छोटी-छोटी बातों के लिए झगड़ती है और अपने पति से कहती है -'सब गहने उतरवाकर इसे आज ही लखनऊ भिजवा दो ; नहीं तो एक न बनेगी । न खुद खाऊँगी, न खाने दूँगी ।'[1] बहू के माँ-बाप को भी वह जली-कही सुनाती है । तीसरे दिन अपने पति के आदेशानुसार दुलारी (बहू) भोजन का प्रबंध करती है । सास-बहू दोनों पश्चाताप करती हैं । संध्या समय दोनों भोजन करती हैं ; किन्तु यमुना अपनी बहू के प्रति किये गये अपने बुरे व्यवहार को भूल नहीं सकती । परिणाम-स्वरूप वह ज्वरग्रस्त हो जाती है । तीन सप्ताह तक वह अस्वस्थ रहती है । अंततोगत्वा उसकी मृत्यु हो जाती है । यमुना की कठोरता अपनी पुत्रबधू की सहिष्णुता से विचलित हो जाती है । वह एक ऐसी नारी है जिसे उसका पति भी नहीं समझ सकता । यमुना की कोमलता का परिचय उसकी मृत्यु के उपरांत उसके पति को प्राप्त होता है । सास-बहू के सम्बन्धों की तिक्तता इस कहानी में है, परंतु यमुना अपनी पुत्र-वधू के साथ किये गये अपने दुर्व्यवहार से अनुतप्त होकर प्राण त्याग देती है ।

उधार :

सामाजिक मान्यताओं के कारण विधवाओं को अत्यधिक सहना पड़ा है । इस कहानी में ऐसी ही एक विधवा का चित्र प्रस्तुत किया गया है । यह एक ऐसी पतिव्रता नारी की कहानी है, जो युवावस्था में ही विधवा हो जाती है, तथापि अपनी पवित्रता की मृत्युपर्यन्त रक्षा करती है । निम्न वर्ग की स्थिति का इस कहानी में चित्रण करते हुए लेखक ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि परिवार के प्रधान व्यक्ति के निधन होने के पश्चात् उसके कुटुम्ब के सदस्यों को अर्थाभाव में कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । रामभजन पैंतीस वर्ष की आयु में द्वितीय विवाह करता है ; किन्तु विवाहोपरांत एक वर्ष के पश्चात् उसकी मृत्यु हो जाने से उसका दरिद्र परिवार संकट में आ जाता है । यह असह्य हो जाने पर कहानी का नायक राजीवलोचन की सहायता से, भदरी स्टेट का बहाना करके, प्रतिमास दस रुपये रामभजन के परिवार को भेजता है, परन्तु एक दिन रामभजन की पत्नी को अपने ममेरे भाई से, जो उसी हलके में पोस्टमैन है, सत्य का पता चल जाता है । छानबीन के लिए नायक को वह अपने यहाँ बुलाती

1- मधुपर्क, पृ0 188

है । रामभजन की मृत्यु के पश्चात् उसके घर जाना नायक ने लगभग बंद कर दिया था । रामभजन की पत्नी उसकी ओर आकृष्ट होती है ; किन्तु सामाजिक बंधनों के कारण वह उसे इस जन्म में पाने की अधिकारिणी अपने आपको नहीं समझती । अत: पुनर्जन्म में नायक को अपना बनाने का वादा करती है । प्रेम के कारण वह ज्वरग्रस्त हो जाती है और अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है । नायक के निर्बल मन में कभी जो बात आई थी, भविष्य का जो सुखद सपना वह देखा करता था, उससे अब उसका उद्धार हो जाता है ।

हृदगति :

स्वगत कथन शैली में लिखी गई यह एक बाल-विधवा फूलमती की कहानी है । वह राजीव बाबू की साली है । उसके यौवन की इच्छाएँ धीरे-धीरे विकसित होती है । बाल-विधवा, विधवा तो होती है ; किन्तु हृदय उसके भी होता है, यही दिखाने का प्रयास लेखक ने किया है । फूलमती विधवा थी, किन्तु चंचल थी और अबोध इतनी थी कि कथन का औचित्य-अनौचित्य तक नहीं समझती थी । बंगाल बैंक के एकाउन्टेन्ट के प्रति वह स्वाभाविक रूप से आकृष्ट होती है । इस बात का पता चलने पर राजीव द्वारा वह निर्दयतापूर्वक पीटी जाती है । जीजा जी के त्रास से तंग आकर वह वेश्या का नाटकीय जीवन व्यतीत करने के लिए विवश होती है । एक दिन सहसा लेखक उसके कोठे पर जा पहुँचता है, तब वह उसे उपालंभ देती है । लेखक उसे चलचित्र उद्योग में भेजना चाहता है । अभिनेत्री बनने के पश्चात् वह लेखक को सपरिवार अपने यहाँ बम्बई ले जाती है । कुछ समय बाद लेखक बम्बई छोड़ता है, तब फूल का हार्टफेल हो जाता है । मृत्यु से पूर्व वह लेखक के नाम दस हज़ार का एक चेक लिखकर उसकी पत्नी को दे जाती है । इस कहानी में हमारे समाज की जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों एवं दकियानूसी विचारधारा पर एक गंभीर व्यंग्य कसा गया है । नारी का पतन स्वयं हमारे इस रूढ़िवादी जर्जर समाज के द्वारा ही होता है । वेश्या बन जाने पर कुलीन परिवार वाले भी उनके यहाँ मनोरंजन के लिए जाने में ऊँच-नीच का भेद नहीं समझते ।

टिकुली :

'हृदगति' की तरह यह भी एक बाल-विधवा की कहानी है । टिकुली ने अपने पति को कभी नहीं देखा था, तथापि वह अपने पति की ही है । इसीलिए बाल-विधवा होने पर भी वह आजीवन विधवा बनी रहना चाहती है । वंशी की ससुराल के पड़ोस में वह रहती है । अन्य लोगों की अपेक्षा उसे वंशी में अधिक सच्चाई की अनुभूति होती है ; अत: साहस करके उसके साथ

उसके यहाँ चली आती है । दोनों के बीच कैसा सम्बन्ध है, यह जानने के लिए गुलबिया नाइन बंशी के यहाँ जाती है ; किन्तु टिकुली से प्रभावित एवं पराजित होकर वह लौटती है । नाइन की बातों से गाँव वालों की शंकाएँ निर्मूल हो जाती है । अपनी युवावस्था का समय निरंतर कार्य में व्यस्त रहकर तथा रामायण या महाभारत बाँचकर वह व्यतीत करती है । एक दिन संयोग से मध्य रात्रि के समय बंशी उसके पास जाता है, तब वह क्रंदन करती हुई पकड़ी जाती है, परन्तु रोने का कारण नहीं बताती । दूसरे ही दिन उसके चले जाने से वंशी अस्वस्थ हो जाता है, तब बैलगाड़ी में बैठकर अचानक टिकुली बंशी के पास आ जाती है । यह देखकर बंशी आश्चर्य-चकित हो जाता है और मन-ही-मन वह पूछता है-' वह इतनी दूर से मेरा रोना सुन लेती है, इतनी दूर से ।' प्रस्तुत कहानी के दोनों प्रमुख पात्र असाधारण हैं, दुर्लभ हैं, तथापि असंभव नहीं हैं । इस कहानी में लेखक द्वारा विधवा टिकुली के उच्च चरित्र का चित्रण किया गया है, जो इस बात का उदाहरण है कि नारी विधवा होकर भी सच्चरित्र रह सकती है । इस कहानी का अनुवाद अंग्रेजी में हो चुका है ।

अंधेरी रात :

प्रस्तुत कहानी की रचना सन् 1936 ई० में हुई थी । वैवाहिक प्रपंच एवं विग्रह के कारण मान-मर्यादाशील मध्यवर्गीय परिवारों की कुल वधुएँ भी अंत में कैसे वेश्या बन जाती थीं, इस कहानी में इसी समस्या पर विचार किया गया है । वेश्या बन जाने के पश्चात् नारी के आत्मीय-जन उसे प्राय: भूल जाते थे, किन्तु इस कहानी में ऐसा नहीं होता । कहानी की नायिका वेश्या कजली का पति शिवराम रात के अंधेरे में चुपताप कजली के यहाँ उसकी हत्या करने जाता है । दोनों भोजन करने के पश्चात् सोने जाते हैं, पर किसी को नींद नहीं आती । शिवराम कजली को अपने निकट बैठने तक नहीं देता । वह उसको उपालंभ देता है, व्यंग्य कसता है, तब उसकी कटु वाणी असह्य हो जाने पर कजली नग्न हो जाती है और जो अपराध उस पर लगाये गये हैं उनके बचाव में, अधोगतिका अतीत परक मर्मस्पर्शी परिचय देती हुई अपना वक्तव्य देती है । यह सुनकर शिवराम के हाथ से छुरी अचानक छूट जाती पड़ती है । लेखक की असावधानी के कारण कहानी में दो स्थल पर चाकू और तीन स्थल पर छुरी शब्द का प्रयोग हुआ है । अत: शिवराम के हाथ में वास्तव में क्या था, यह अस्पष्ट ही रहता है । इस कहानी में वाजपेयी जी ने शिवराम का मनोविश्लेषण सफलतापूर्वक किया है । यह कहानी प्रकाशित होते ही तमिल, तेलगू, कन्नड़ तथा गुजराती आदि प्रादेशिक भाषाओं में अनूदित हो गई थी ।

प्रलोभन :

इस कहानी की रचना भी सन् 1936 ई० में ही हुई थी । यह कहानी दाम्पत्य-जीवन के एक ऐसे प्रसंग को लेकर लिखी गई है, जिसमें बुद्धि के यथावश्यक प्रयोग से कलह की संभावना सहज ही तिरोहित हो जाती है । गंगू की नातिन पुनिया उससे कहती है कि घर में तेल नहीं, परन्तु गंगू के पास पैसा नहीं है । पुनिया के रोटी पकाने के लिए कहने पर गंगू की वृद्धा पत्नी गुस्सा करती है और क्रोधावेश में कुछ भी खाना नहीं बनाती है । गंगू अपनी क्रोधित पत्नी से कहता है कि कानपुर की नुमाइश में उसके बनाये सरौते पर बीस रुपये का इनाम मिला है, तब सब कुछ भूलकर वृद्धा हँसुली बनवाने के लिए रुपये लेने आती है । दाम्पत्य-जीवन में, पति-पत्नी में, छोटी-छोटी बातों पर रुठना और मान करना साधारण बात है, ऐसा ही इस कहानी में भी होता है । ऐसे अवसरों पर बुद्धिमान लोग, देखते-ही-देखते, उदासीनता की० का सारा वातावरण हास-परिहास में परिवर्तित कर देते हैं । गंगू ऐसा ही बुद्धिमान मनुष्य है । प्रस्तुत कहानी में नारी स्वभाव का सुन्दर चित्रण किया गया है । 'सरस्वती' में जब यह कहानी प्रकाशित हुई, तब स्व० प्रेमचंद जी तथा मध्य प्रदेश के यशस्वी राष्ट्रकर्मी पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र द्वारा इसकी बड़ी प्रशंसा की गई थी ।

बैक - ग्राउण्ड :

इस कहानी में एक वेश्या के जीवन की करुण कथा कही गई है । दो मित्र- गोपी और गोविंद - तालाब पर घूमने जाते हैं, तब गोपी को कचनार के सम्बंध में पूछकर गोविंद गुलनार की बात कहता है । माघी-पूर्णिमा के मेले में गुलनार उसे मिलती है और कहती है कि गाँव से कानपुर आने से मुसीबत में फँस गई है । पिछले दिनों वह ठाकुर विशाल सिंह के पास थी । विशाल सिंह को पता चल जाता है कि वह गोविंद को चाहती है ; अत: वे गुलनार की हत्या करवाना चाहते हैं, किन्तु विशाल सिंह का खून हो जाता है । उनकी हत्या का अभियोग गुलनार पर लगाया जाता है, परन्तु गोविन्द की सहायता से वह निर्दोष छूट जाती है । वह अनेक लोगों को देह-दान करती है, तो एक को हृदय भी देती है । एक बार वह गोविंद के साथ गाँव जाती है । वहाँ दोनों तालाब पर घूमने जाते हैं । जीवन से ऊबकर विषपान करके, तालाब में स्नान के करने के पश्चात् वह अपने प्रियतम की गोद में सिर रखकर उसे प्रेम करने के लिए कहती है । अन्त में उसकी मृत्यु होती है । प्रस्तुत कहानी में नारी-हृदय की वेदना कूट-कूट कर भरी गई है । कहानी का प्रारंभ वर्णनात्मक शैली में किया गया है, बाद में स्वगत् कथन शैली प्रयुक्त की गई है ।

उस क्षण का सुख :

इस कहानी में वाजपेयी जी ने एक वेश्या, शकुन्तला, का चरित्रोत्थान दिखाया है । वह ऐसी वेश्या है, जिसने अपने नारीत्व की रक्षा की है । अपने प्रेमी तथा त्राणकर्ता सुरेन्द्र की समय-समय पर वह आर्थिक सहायता करती रहती है । सुरेन्द्र उसे चाहता अवश्य है, तथापि उस वेश्या के आत्मदान को खुलकर स्वीकार करने का साहस उसमें नहीं है । उसे अपने प्रान्त का शानरेबुल मिनिस्टर बनाया जाता है । वेश्यावृत्ति को वह अनिवार्य मानता है, परन्तु एसेम्बली में प्रस्तुत किये गये नये बिल के अनुसार वेश्यावृत्ति को अवैध माना जाता है। उसी दिन रात को वह उसे मिलने जाती है, किन्तु वह सो गया है जानकर एक चिट देकर वापस लौट जाती है । तदनंतर गंगा में बहकर वह आत्महत्या कर लेती है । मृत्यु के पश्चात् भी जैसे वह सुरेन्द्र को जीने तथा देश-सेवा की प्रेरणा देती रहती है । वह विषपान करना चाहता है, परन्तु वह अनुभव करता है कि जैसे कोई शक्ति उसे रोक रही है । कल्पना में जिस क्षण उसे सुख की अनुभूति हुई थी, उस क्षण के सुख को याद कर-करके वह विष जीवित रहने के लिए विवश हो जाता है ।

ज्वाला :

यह कहानी 'जलता लैम्प' शीर्षक से 'उतार-चढ़ाव' कहानी-संग्रह में सन् 1950 ई० में प्रकाशित हो चुकी है । उस कहानी तथा प्रस्तुत कहानी के अंतिम भाग में कुछ अंतर अवश्य है । डाक्टर के जाने के बाद कहानी का जो हिस्सा है, उसका 'जलता लैम्प' में विस्तार किया गया है ।

इस कहानी की नायिका नरगिस-रतन, गोकुल तथा जगदीश को चाहती है । एक बार अस्वस्थता के कारण शारीरिक सम्बंध के लिए वह गोकुल की बात को स्वीकृति नहीं देती, फलतः वह उस पर सोडावाटर की बोतल से प्रहार करता है । नरगिस के बेहोश हो जाने पर रतन डाक्टर को बुला लाता है। डाक्टर आकर देखता है कि गोकुल ने आत्महत्या कर ली है । बेहोश नरगिस को डाक्टर की सूचनानुसार अस्पताल ले जाते हैं । चेतना आने पर जब उसे ज्ञात होता है कि उसका केस पुलिस को सौंप दिया गया है, तब वह कोतवाली में जाकर पुलिस-इन्स्पैक्टर को रुपये देकर गोकुल को छोड़ देने के लिए कहती है । उसे मालूम नहीं है कि गोकुल ने आत्महत्या कर ली है । प्रस्तुत कहानी में यह दिखाया गया है कि पतित से पतित समाज में भी हमें मानवता के दर्शन हो सकते हैं । नरगिस का चरित्र इसी मर्म की ओर संकेत करता है । वह वेश्या है, तथापि अपने को बोतल मारने वाले गोकुल को छुड़ाने के लिए वह यथाशक्ति सभी प्रयत्न करती है।

नैतिकता का दण्ड :

इस कहानी में वाजपेयी जी ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि चरित्र की कोरी बातें करने वाले कैसे चरित्रहीन होते हैं । एक बार मनोरमा के यहाँ दीपक 'विनयपत्रिका' लेने आता है, तब वह अपने भाई सुरेन्द्र से उसका परिचय कराती है । बात-ही-बात में सुरेन्द्र कहता है कि शरणार्थी किरायेदार महेश की बहन प्रमिला ने विष खा लिया ।उस पर वह चरित्रहीनता का अभियोग लगाता है ; किन्तु दीपक को इस बात में विश्वास नहीं है । वह, चरित्रहीन कौन है, यह दिखाने की चुनौती देकर चला जाता है । किसी तरह प्रमिला के प्राण बच जाते हैं । दीपक के बड़े भाई ज्ञानेन्द्र से सुरेन्द्र कहता है कि वे अपने भाई पर दबाव डालें, ताकि मनोरमा का विवाह दीपक के साथ सम्पन्न हो जाय, किन्तु इस बात को वे अस्वीकार करते हैं । अपने भाई के साथ वे मनोरमा के यहाँ आते हैं, तब वह प्रमिला की सेवा में उपस्थित थी । प्रमिला यदा-कदा सुरेन्द्र और उसकी पत्नी के साथ चलचित्र देखने जाती थी ; परन्तु 'सफर' चित्र देखने वह नहीं जाती ; क्योंकि वह न सुरेन्द्र का एहसान चाहती है, न तो उसकी किसी बात पर उसे विश्वास है । कारण पूछने पर वह मूर्च्छित हो जाती है । अचेतनावस्था में ही वह बुदबुदाती है, जिसका अभिप्राय था कि पगड़ी वापस करने का वचन देकर सुरेन्द्र ने उसका स्त्रीत्व लूट लिया था । फिर अबॉर्शन के लिए कहा था । उसने न पगड़ी वापस की, न ही अबॉर्शन के लिए कुछ भी सहायता की ।

जब सत्य ने काट खाया :

सन् 1950 ई० में प्रकाशित 'उतार-चढ़ाव' नामक कहानी-संग्रह में यही कहानी 'सत्य का घाव' शीर्षक से संग्रहीत हो चुकी है । अर्थ की वैषम्यपूर्ण व्यवस्था ने समाज का कितना अहित किया है एवं सामाजिक चेतना को कितना रौंद डाला है, प्रस्तुत कहानी से जाना जा सकता है । इसमें वृद्धा माँ अपनी संतानों की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूर्ण करने में असमर्थ है । बड़ी लड़की सरो अब सयानी हो गई है । कालका बनिया उसे सब कुछ देता है । अपने छोटे भाई-बहन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे विवश होकर कालका के हाथ बिकना पड़ता है । गर्भ रहने पर कालका सरो को दवा देता है, परन्तु उल्टी हो जाने से वह दूसरी बार दवा नहीं खाती । वह अपनी संतान का मुँह देखने के लिए लालायित है । बदनामी से बचने के लिए वह कालका को कहती है कि वह उसे कहीं भगा ले जाय, परन्तु वचन देने पर भी वह मुकर जाता है ।

और धक्का मारकर उसे अपने घर से बाहर निकाल देता है । सरो अपने भाई तथा माँ को अपना मुँह दिखाने योग्य नहीं समझती ; अत: उनके लिए कुछ रुपये छोड़कर वह आत्महत्या करने जाती है, परन्तु कुछ लोग उसे बचा लेते हैं । उसके बच्चा होने पर उसका पालन-पोषण किया जाता है । अब वह फिर गुलाब नाम धारण करके नारी-जीवन के चरम दुर्भाग्य वेश्यात्व को स्वीकार करती है । उधर कालका को अपने बुरे कर्मों का कुफल मिलता है । उसका सब कुछ जाता रहता है । बारह वर्षों के बाद सरो का भाई लक्ष्मण, जो अब कालेज का छात्र है, सरो के यहाँ आता है, किन्तु उसके जाने के पश्चात् सरो की अचानक मृत्यु हो जाती है । अपने भाई को वह पहचान जाती है,अत: यह आघात उसके लिए असह्य हो जाता है । प्रस्तुत कहानी में लेखक स्थल तथा समय की एकता का निर्वाह नहीं कर सका है , परन्तु कहानी कला की दृष्टि से देखा जाय, तो यह अभाव कहीं भी कहानी को क्षति नहीं पहुँचाता । कहानी में स्थल-स्थल पर सांकेतिकता से काम लेकर लेखक ने अपनी कुशलतापूर्ण शिल्पविधि का परिचय दिया है ।

हार-जीत :

यह एक आदर्शवादी कहानी है । इसमें भी राजपेयी जी की अन्य कहानियों- 'मैना' तथा 'ट्रेन पर' आदि- की तरह कुछ आदर्श के लिए किये गये त्याग की झलक दिखाई गई है । ट्रेन के डिब्बे में निद्रावीन युवती लीला को एक युवक, अशोक, देख रहा है । अशोक को उसके दादा ने दिल्ली बुलाया है । प्रबोध बाबू भी सपत्नीक दिल्ली जा रहे हैं । दिल्ली में अशोक को होटल में ठहरने की आवश्यकता नहीं है कहकर प्रबोध बाबू उसे अपने यहाँ ले जाते हैं । यहाँ पाठक के मन में सहज रूप से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि दादा ने ही युवक को बुलाया है, तब उसे होटल में ठहरने की क्या आवश्यकता है ? यह संभव है कि लीला के प्रति उसके आकर्षण ने उसे झूठ बोलने के लिए विवश किया हो । लीला भी अशोक के प्रति आकृष्ट है । भोजनोपरांत अशोक सिनेमा का प्रस्ताव रखता है, परन्तु दुकान के कार्य में व्यस्त होने का बहाना करके प्रबोध बाबू दोनों को जाने की अनुमति देते हैं । टॉकीज़ में बॉक्स में बैठकर दोनों मद्यपान करते हैं । ऐसी अवस्था में भी अपने को संभालकर अशोक लीला को यह समझाता है कि पति के प्रति उसका उत्तरदायित्व क्या है । अशोक आदर्शवादी है ; अत: ऐसी परिस्थिति में भी वह अनुचित लाभ उठाना नहीं चाहता । लीला अपने पति के साथ सुखी जीवन व्यतीत करना चाहती है, किन्तु प्रबोध बाबू समझते हैं कि युवती नारी के साथ विवाह करके उन्होंने बहुत बड़ा अपराध किया है, अत: दिन-रात भीतर-ही-भीतर अपनी गलती का अनुभव कर -करके, वे अनुताप की ज्वाला में जलते रहते हैं । प्रायश्चित रूप में वे अपना सब कुछ छोड़कर, लीला का

उत्तरदायित्व अशोक को सौंपकर, भाग जाते हैं । इस कहानी में लेखक ने तत्कालीन सामाजिक समस्या-अनमेल ब्याह की समस्या-का चित्रण किया है । वाजपेयी जी ने कहानी के तीनों पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है ।

थोड़ी-सी पीली :

प्रस्तुत कहानी मिल-मजदूर कालूराम की कथा है, जो उसके शोषित परिवेश को मूर्त कर देती है । कहानी का नायक फायरमैन कालूराम विवाहित होने पर भी एक विधवा बतासो के प्रति आकृष्ट होता है और उसी के चक्कर में अपने सुखी दाम्पत्य-जीवन को नष्ट कर देता है । गाँव से वह अपनी पत्नी को बुलाता तक नहीं । उसका मित्र अर्जुनवा उसे यह कहकर पीना सिखाता है कि पीने के बाद परियाँ नजर आती हैं । एक दिन शाम को वह पीता है, उसी समय उसकी पत्नी गाँव से आती है । अपनी पत्नी को बतासो समझ कर वह अनाप-शनाप बकता रहता है । दूसरे दिन प्रात:काल बतासो के विषय में पत्नी के पूछने पर वह कहता है कि बतासो कोई नहीं है । कल थोड़ी-सी पी ली थी, उसी का यह परिणाम था । वस्तुत: अपने काल्पनिक सुख के लिए वह शराब पीता है, परन्तु बतासो के मौन रहने तथा पत्नी के आ जाने पर उसे यथार्थ सुख की अनुभूति होती है ।

उर्वशी :

प्रस्तुत कहानी में भी पर पुरुष-नारी प्रेम की समस्या उठाई गई है । कहानी का नायक बिहारी और गोपाल दादा वृंदावन जाते हैं । वहाँ नायक के कक्ष के सामने ही जौहरी अपनी द्वितीय पत्नी चंदा के साथ ठहरा है । चंदा के लिए बिहारी पूर्व परिचित है, परन्तु बिहारी को चंदा का विस्मरण हो गया है । उसके वंशीवादन से चंदा उसकी ओर आकृष्ट होती है । वह अपने नौकर के द्वारा बिहारी को पूछवाती है कि उसके हाथ का भोजन पाने में उसे आपत्ति तो न होगी ? बिहारी उसके इस प्रश्न का उत्तर रुबरु में देना चाहता है । चंदा के साथ हुई बातचीत से उसे ज्ञात होता है कि अपनी प्रथम पत्नी के देहान्त के पश्चात् उसके जैसी ही तीन सुंदरी युवतियों के साथ, कुदरत से बदला लेने के लिए, जौहरी ने विवाह किया था । परिणाम-स्वरूप जौहरी का शरीर जर्जर हो गया है । अतृप्त वासना के कारण चंदा दु:खी है, तथापि वह हँसोड़ है । बिहारी के आगरा जाने पर उसे चन्दा का तार मिलता है कि पति को कालरा हो गया है, शीघ्र आ जाओ । बिहारी और विशेषत: चंदा की सेवा-शुश्रूषा से जौहरी स्वस्थ

हो जाता है । इन दिनों चंदा तथा बिहारी का प्रेम उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है । बिहारी चंदा से जाने की अनुमति माँगता है, परंतु चंदा को यह पसंद नहीं । जौहरी दोनों को शंका की दृष्टि से देखता है । उस समय अचानक रंभा का आगमन होता है । वह तथा जौहरी बिहारी को ठहरने का अनुरोध करते हैं , किन्तु बिहारी के लिए चंदा की दुखपूर्ण अवस्था असह्य है । अपने अंतर्द्वन्द्व के कारण अंत में चंदा भी बिहारी को जाने के लिए कहती है । बिहारी के आगरा पहुँचते ही चंदा का तार इसे प्राप्त होता है कि तुरन्त चले आओ ; क्योंकि जौहरी जी किसी अभिनेत्री के साथ कश्मीर चले गये हैं और उसका एकाकी जीवित रहना संभव नहीं । 'अब ?' के साथ चरम सीमा पर पहुँचते-पहुँचते ही कहानी का अंत हो जाता है । नायक को जाना चाहिये या नहीं, यह पाठकों पर छोड़कर वाजपेयी जी ने कहानी का कलात्मक अंत किया है । प्रस्तुत सामाजिक कहानी में यह बतलाया गया है कि पति-पत्नी का सम्बन्ध मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार का माना गया है । चंदा को पति का सुख प्राप्त नहीं है । जौहरी ने चार विवाह किये थे । उसके पास ऐश्वर्य की सब सामग्री है ; किन्तु चंदा को जिसकी अनिवार्य आवश्यकता है, वह प्रेम नहीं । चंदा के सौंदर्य के प्रति बिहारी आकृष्ट होता है । इस मोह के मूल में वासना-पूर्ति की मिथ्या कल्पना है । उसकी दृष्टि से चंदा अपने जीवन से संतुष्ट नहीं है, तथापि वह दम घोंट-घोंट कर रहती है, विद्रोह नहीं करती । इस कहानी में मध्यवर्गीय समाज की मर्यादाओं की विशृंखला और जड़ता व्यंजित हुई है । वाजपेयी जी का इस परिवेश के प्रति क्या रवैया है, यह भी इसमें अभिव्यक्त हो गया है ।

खाली बोतल :

प्रस्तुत कहानी के कथासूत्र का प्रारंभ प्रथम पुरुष से होता है । अन्य अनेक पात्र आकर अपनी आत्म-कथाओं के संयोग से उस सूत्र को सबल एवं पूर्ण बनाते हैं । इस कहानी के नायक केदार बाबू को बिहारी खाली बोतल के विषय में पूछता है । तदनंतर बिहारी ही केदार बाबू के असाधारण जीवन की बातें कहता है । एक दिन उनके कहने से मेहमानों के लिए वह कैलाश बाबू के यहाँ से मोटर का प्रबन्ध करता है । मेहमानों के जाने के बाद वह केदार बाबू के यहाँ पुस्तक में एक नारी की तसवीर देखता है । वे उस चित्र के विषय में बिहारी को सब कुछ बतलाते हुए कहते हैं कि उसका नाम मालती है । दूर के रिश्ते से वह उनकी बहन होती है, तथापि स्वामी के प्रेम के अभाव में, दुखपूर्ण दाम्पत्य-जीवन के कारण वह उनकी ओर आकृष्ट होती है। उसे भूलने के लिए वे बिहारी को शराब लाने के लिए कहते हैं, परन्तु वह इन्कार कर देता है । एक बार किसी को कुछ भी कहे बिना वे कहीं चले जाते हैं, वापस लौटने पर उनका स्वास्थ्य

बहुत ही खराब हो जाता है । वे बारम्बार तार करने का प्रस्ताव करके रह जाते हैं । स्वास्थ्य-लाभ करने पर बीमारी का तार देने से केवल मालती आती है । उसकी पसंद की सब चीज़ें वे खरीदना चाहते हैं । बहुत-सारी वस्तुएँ उसे देते हैं । मालती अपने घर जाते समय बहुत रोती है । प्रस्तुत कहानी में 'खाली बोतल ' के प्रतीक एक व्यक्ति विशेष का चित्रण किया गया है । उसके जीवन सम्बन्धी एक विशेष प्रसंग की झाँकियाँ कहानी में दी गई हैं, किन्तु उतने से ही उसका सारा जीवन-चरित्र आँखों के सामने नाच जाता है ।'[1] जैसा कि कहानी के प्रारंभ में खाली बोतल का उल्लेख किया गया है, केदार बाबू का जीवन भी खाली बोतल की भाँति सारहीन है, जिसमें जीवन का आनंदरस नहीं रह गया । एक दिन वह सारहीन जीवन भी खाली बोतल के समान चूर-चूर होकर बिखर जाता है जिसकी स्पष्ट ध्वनि यह है कि उस व्यक्ति का क्रियाकलाप समाप्त हो गया है । इस कहानी में उच्चवर्गीय भावनाओं का भी निरूपण हुआ है । कहानी का उद्देश्य इन मनोभावों की व्यर्थता को चित्रित करता है और इस दृष्टि से कहानी का बहुत ही उपयुक्त अंत हुआ है । उच्च वर्गों की वर्तमान अशांतिपूर्ण मनोभावना इसमें स्पष्ट हो जाती है । उन मनोभावों का चित्रण करके ही लेखक अपने कर्तव्य की पूर्ति कर लेता है । उनका उपहास करना उसका उद्देश्य नहीं है । मनोवैज्ञानिक अध्ययन, बुस्ती और कलात्मकता की दृष्टि से इसे एक सफल कहानी कहा जा सकता है ।

सूखी लकड़ी :

वाजपेयी जी ने जो तीन-चार प्रतीकात्मक कहानियाँ लिखी हैं, उनमें एक यह भी है । सूखी लकड़ी विधवा के जीवन की प्रतीक है । उपेक्षा की घुटन तो दुखद होती ही है, फिर दारिद्र्य का दुख भोगनेवाली विधवा के दुख की गहराई तो और भी विशेष होती है । लकड़ी बेचने वाली युवती विधवा का उपेक्षित जीवन लकड़ी के खरीदार राधे के हृदय में उथल-पुथल का सृजन करता है और वह उसी के विचार में खो-खो जाता है । सूखी लकड़ी के समान ही विधवा का जीवन नीरस है । विधवा के जीवन की कोई उपयोगिता नहीं, सार्थकता नहीं, समाप्ति की ओर बढ़नेवाली सूखी लकड़ी की तरह विधवा भी सुलगती ही रहती है । यदि लकड़ी वाली चाहती तो पुनर्विवाह कर सकती थी, किन्तु राधे के प्रति दिव्य प्रेम में उसे श्रद्धा है । इस कहानी में वाजपेयी जी की भावुकता एवं दार्शनिकता का गहरा रंग राधे के माध्यम से सामने आया है ।

1- साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के 'वाजपेयी जी की कहानियाँ 'नामक लेख में, पृ० 17

दार्शनिकता के कारण कहानी बोझिल बन गई है । राधे के मनोवैज्ञानिक चित्रण में जहाँ अनुभूति की तीव्रता है, वहाँ विधवा लकड़ीवाली के आँधे बैठे बूढ़े बाप का रेखाचित्र नपे-तुले शब्दों का कौशल व्यंजित करता है । कहानी में संकलन-त्रय (Three unities) का निर्वाह यथोचित ढंग से नहीं हुआ है, तथापि कहानी के सौंदर्य को कोई हानि नहीं पहुँचती । कहानी का अंत प्रतीतात्मक तथा उपयुक्त हुआ है । विधवा की विवश स्थिति का चित्रण वाजपेयी जी ने अपनी अनेक कहानियों में किया है, किंतु विधवा के चित्रण में जो सजीवता इस कहानी में है, वह किसी अन्य कहानी में नहीं । विधवा-जीवन की कठोरता, निर्ममता और जलनसूखी लकड़ी के वर्षों से -युगों से- चले आ रहे दाह में साकार हो उठी है ।

बारात में :

इस प्रेम कथा का नायक दिनेश, अखिल के अनुरोध पर सुशील की बरात में जाता है । वहाँ सब प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं, किन्तु केवल वह उदास है । उसकी उदासी का कारण पूर्वदीप्ति की सहायता से बतलाते हुए लेखक कहता है कि एक बार दिनेश अपने साथियों के साथ घूमने जाता है, तब बरेली उतर पड़ता है । वहाँ उसकी मामी के नैहर में उनकी छोटी बहन रजनी छत पर उसके लिए मिठाई, पान, जल आदि लाती है । दोनों परस्पर आकृष्ट होते हैं। आज इसी रजनी के साथ सुशील का विवाह हो रहा है । दोनों एक दूसरे को चाहते हैं, परंतु कह नहीं सकते । तीन वर्ष तक दिनेश रजनी को मिलता नहीं है । वह अन्यत्र विवाह भी नहीं करता । अंत में रजनी के अति अनुरोध करने पर उसकी छोटी बहन सरिता से विवाह करना वह स्वीकार करता है । वह मानता है कि जो जिसका है, उसे उसका ही रहना चाहिए - मन और प्राण से । संसार की आँखों में वह भले ही किसी अन्य का बना रहे, किन्तु हृदय की जो दुनियाँ है, उसमें यदि वह उसी का है, तो इतना ही उसके लिए यथेष्ट है । रजनी और दिनेश के बीच जो प्रेम है, वह वासना से परे है । उसमें मर्यादा एवं आदर्श का सुचारुरूपेण निर्वाह हुआ है । सूक्ष्म निरीक्षण और विवरणों से युक्त यह कहानी हृदय की दुनियाँ की, उसमें उठती-गिरती लहरों की एक ऐसी गाथा है जिसमें अनुभूति की पुलक है, उथल-पुथल है और कसक भी है, जो पाठक की संवेदनशीलता को जाग्रत किये बिना नहीं रहती ।

बाती और लौ :

प्रत्येक व्यक्ति के दो जगत् होते हैं - अंतर्जगत् और वाह्य जगत् । वाह्य जगत् से समाज का घनिष्ट सम्बन्ध रहता है, उसी का फल व्यक्ति को भोगना पड़ता है । अंतर्जगत का

प्रभाव शीघ्र नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु कभी-न-कभी वह भी सामने अवश्य आ जाता है, परंतु तब तक व्यक्ति की स्थिति अत्यंत विन्त्य या विवादग्रस्त हो जाती है ; क्योंकि सत्य कभी उज्जवल नही होता । इस कहानी में इसी परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है । एक दिन ललित और घनश्याम को सुधाकर मिल जाता है । अन्य लोगों की भाँति ये दोनों भी समझते हैं कि सुधाकर का बिन्दो के साथ अनुचित सम्बन्ध है । उस पर मित्रों की जेब साफ़ करने का अभियोग भी लगाया जाता है । ऐसी स्थिति में सुधाकर उन्हें अपने यहाँ ले जाता है और विषण्ण की एक शीशी बतलाते हुए कहता है कि हम दोनों में भाई-बहन के सम्बन्धों के बीच यह शीशी मध्यस्थ है । एक बार समाज से तंग आकर सुधाकर ने बिन्दो को पुरुष-नारी के रूप में रहने के लिए कहा था, किन्तु इस बात का यदि वह पुनरावर्तन करेगा, तो वह विषपान करके प्राण त्याग देगी, ऐसा उसने कहा था । बिन्दो का पति उसके आदर्श को न समझकर तथा उसके चरित्र के विषय में शंकालु होकर उसका त्याग करता है । सुधाकर के साथ रहकर अपाहिज, रुग्ण और अनाश्रितों की सेवा-सुश्रूषा करके वह उनमें पर्याप्त सुधार लाती है । अंत में दोनों मित्रों तथा सत्य बात का पता चलने पर पति की आँखें खुल जाती हैं । पत्नी के आदर्श तथा कार्यक्रम को स्वीकृति देकर पति उसे लेने आ रहा है, इस मतलब का तार आता है । सुधाकर तथा बिन्दो दोनों आदर्शवादी चरित्र हैं ।

नियम-नियम कायदा-कायदा :

सामान्यत: प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक न एक रहस्य होता है । जो व्यक्ति सामाजिक विधानों का पूर्णत: पालन न करके जीवन-स्वातंत्र्य का ही विचार करके चलता और किसी भी प्रयोग के लिए सदा तत्पर रहता है, वह प्राय: संकट में पड़ जाता है । ऐसी स्थिति में आत्म-संगोपन उसकी एक प्रमुख समस्या बन जाती है । जितना ही वह अपने आपको रहस्यमय बनाये रखता है, उतना ही अधिक वह कुतूहल, विवाद तथा अनुसंधान का पात्र बन जाता है । प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखक ने जिज्ञासा तथा तथ्य निरूपण की दिशा में ऐसा ही एक प्रयत्न किया है । नायक बरेली जा रहा है । उसी डिब्बे में रीता भी सपरिवार विवाह में लखनऊ जा रही है । दस महीने के पश्चात् भोपाल जाते समय नायक व रीता के पति की ट्रेन में भेंट हो जाती है । रीता सकुटुम्ब इन्दौर में रहती है । उसका पति नायक को यह कहकर अपने यहाँ निमंत्रित करता है कि उसके आने से रीता प्रसन्न होगी । नायक के रीता के यहाँ जाने पर वह

वह प्रसन्न होती है । विवाह से पूर्व पति ने तीन वर्ष सम्पर्क रखने के पश्चात् उसके साथ विवाह किया था और अर्जुन के जन्म के बाद विवश होकर ऐसी व्यवस्था की थी कि अब बच्चा न हो । इस बात का रीता पर बुरा प्रभाव पड़ता है । लेखक ने इस कहानी में यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि छोटी-छोटी बातों में नियम-कायदा की बात करने वाला पति चरित्र जैसे गंभीर विषय में किसी नियम का पालन नहीं करता ।

हाँ, वही रात :

कहानी के प्रारंभ में ही नायक, जो एक चित्रकार है, एक पत्र पढ़कर उदास हो जाता है, क्योंकि उसकी प्रेयसी कल्पना की मृत्यु हो गई है । पाँच वर्ष पहले एक विवाह-संस्कार में उसने उसे प्रथम बार देखा था । द्वितीय बार वही लड़की अपनी सखी के साथ उसे मसूरी में मिलती है । औपचारिक बातचीत के अनंतर कल्पना चित्रकार को अपने मुकाम पर ले जाती है । वहीं वह चित्रकार संपूर्ण रात व्यतीत करता है । रात भर वह उसके साथ बातें करती रहती है । वह मानती है कि चित्रकार ऐसी बातें इस ढंग से फिर कभी नहीं करेंगे । उस रात को चित्रकार कभी नहीं भूल सकता । तत्पश्चात् कल्पना की स्मृतियाँ उसे सदा प्रेरणा देती रहती है । कानपुर में लौटने के बाद कल्पना की स्मृतियाँ उसे सदा प्रेरणा देती रहती है । के प्रति बालकृष्ण उसे पूछते हैं -' आपके चित्रों में नारी की अनिंद्य छवि क्यों ?'[1] आलोचक पूछते हैं -'एक ही प्रकार की मुद्रा नारी की मुख-छवि के चित्रांकन में आप क्यों व्यक्त करते हैं ?'[2] सबको उसका एक ही उत्तर है -'सौंदर्य देखने के लिए दृष्टि चाहिए, वह सबमें नहीं होती'।[3] भिन्न-भिन्न नारी के चित्रों में वह अपनी प्रेयसी के चेहरे को ही अंकित करता है ।

कबाड़ी :

यह कहानी 'कबाड़ी का ताजमहल' शीर्षक से भी उपलब्ध होती है ।[4] प्रस्तुत कहानी में निर्धन और धनवान के बीच के प्रेम को चित्रित किया गया है । लेखक कबाड़ी से टार्च खरीदता है । वह कबाड़ी एक दिन लेखक को अचानक इलाहाबाद में मिल जाता है । पहले तो वह लेखक को ताड़ी, मिठाई आदि के लिए आग्रह करता है, किन्तु लेखक केवल दूध पीता है । वार्तालाप के समय

1- बात एक नाते की, पृ0 44

2-3 वही, पृ0 45

4- दे कबाड़ी का ताजमहल (कहानी-संग्रह), पृ0 162

कबाड़ी को वोट लग गई है , ऐसी प्रतीति होने पर इस विषय में लेखक उसे पूछता है, तब धर्मशाला के अपने कक्ष में ले जाकर वह अपने जीवन की बातें कहता है । एक लड़की अपने नौकर के द्वारा नियमित-रूप से उसके यहाँ से पुस्तकें पढ़ने के लिए मँगवाती है । दोनों के बीच प्रेम हो जाता है । एक बार वह उसे अपने यहाँ चाय के लिए निमंत्रित करती है । वह गरीब है, यह ज्ञात होते ही वह पुस्तकों का गमनागमन बंद कर देती है । दुर्भाग्यवश अपनी पत्नी तथा माता-पिता के स्वर्गवास हो जाने पर वह इलाहाबाद छोड़ देना चाहता है, किन्तु अपने नौकर के साथ चिट् भेजकर वह उसे कम्पनीबाग में मिलती है, रोती है तथा सौ रुपये का एक नोट देती है । कुछ दिनों के पश्चात् पुन: उसका पत्र कबाड़ी को प्राप्त होता है । दोनों एक होटल के सुसज्जित कक्ष में मिलते हैं । वह उसे जी भरकर प्यार करने के लिए कहती है । बस, केवल एक दिन के लिए वह उसके जीवन में आयी थी । उसी दिन की स्मृति में कबाड़ी अब इलाहाबाद आता है । उस एक ही दिन के लिए वह वर्षभर पाप करता रहता है । लेखक वह टार्च कबाड़ी को उपहार रूप में देना चाहता है, किन्तु कबाड़ी के हाथ से वह गिरकर चूर-चूर हो जाता है । कबाड़ी की सब आशाएँ भी चूर-चूर हो गई हैं । अब उसके जीवन में भी तिमिर के अतिरिक्त कुछ नहीं बचा है । यह कहानी वाजपेयी जी की कहानियों की प्रमुखतम संवेदना है । दोनों कहानियों में केवल एक शब्द का अंतर पाया जाता है । प्रस्तुत कहानी के 'पन्ना' शब्द के स्थान पर कबाड़ी का 'ताजमहल' में 'गमछा' शब्द का प्रयोग किया गया है ।

रमता जोगी :

नायिका के रूप में शालिनी का निर्वाचन होते ही 'रमता जोगी' फिल्म के नायक आनन्द शंकर को दूसरे दिन रिहर्सल में उपस्थित रहने के लिए निर्देशक शेखर आदेश देते हैं । दूसरे दिन शेखर के माध्यम से आनन्द शंकर के साथ शालिनी का परिचय होता है । रिहर्सल में शालिनी बारंबार गलती करती है, तथापि आनन्द शंकर उसे पर्याप्त सहायता करते हैं । फलत: वह नायक को चाहने लगती है । दिन -प्रतिदिन दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ होता जाता है, परन्तु विवाहित आनन्द शंकर को यह सब पसंद नहीं । शालिनी का सौंदर्य साधारण श्रेणी का होने पर भी नायक को उसकी आँखों का बड़ा आकर्षण है । दोनों के सम्बन्धों को शालिनी की माँ पसंद नहीं करती, इतना ही नहीं, शंका की दृष्टि से देखती है । शालिनी के कहने पर कि 'आप कभी-कभी मिलते तो रहेंगे न ?' आनन्द शंकर शुष्क उत्तर देता है - 'रमता जोगी का क्या भरोसा ?' बाद में शालिनी के घर जाने के लिए आनन्द शंकर के तैयार होने पर तथा चाय की

अपेक्षा करने पर वह भी वैसा ही उत्तर देती है । अंत में दोनों शालिनी के घर जाते हैं । इस कहानी में नारी की विवशता एवं परवशता पर प्रकाश डाला गया है । दोनों अपने आपको 'रमता जोगी' मानते हैं । दोनों प्रगति चाहते हैं । आनन्दशंकर मानता है कि यदि इसी तरह फँस गया, तो मैं इस क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकूँगा । अत: शालिनी की ओर आकर्षित होने पर भी वह अपने प्रेम को बाधा देना नहीं चाहता । शालिनी स्वयं उसे कुछ नहीं कहती, तथापि उसकी आँखें सब कुछ बतला देती हैं ।

कर्तव्याघात :

प्रस्तुत कहानी में कान्यकुब्ज समाज का यथार्थ चित्रण किया है । एक बार शारदा - निकेतन प्रकाशन मंदिर के संचालक बाबु कर्तव्यानंद से लेखक पृच्छा करता है कि आपकी संस्था से प्रकाशित पुस्तकों में संपादक का नाम 'कर्तव्यवादी' क्यों होता है । यह कर्तव्यवादी कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में अपने जीवन से सम्बंधित अतीत की एक घटना को याद करते हुए वे कहते हैं कि जब उनकी आयु बाइस वर्ष की थी, तब अपने मित्र राजीव लोचन के साथ वे गंगास्नान के लिए गये थे । वहाँ एक लड़की को वे डूबने से बचाते हैं । फलत: उस लड़की, जो राजीव की बहन थी, को उनके प्रति अनुराग हो जाता है । लड़की की माँ चाहती है कि अपनी पुत्री का विवाह कर्तव्यानंद के साथ हो, परन्तु कर्तव्यानंद के पिता अपने पुत्र का विवाह कहीं और कर देते हैं । पन्द्रह वर्षों के पश्चात् एक राजकीय डकैती के षाड्यंत्र में सम्मिलित होने का उन पर अभियोग लगाया जाता है । जेल में ईश्वर की आराधना करने से तथा जस्टिस त्रिपाठी की कृपा से वे निर्दोष सिद्ध होते हैं । जेल से मुक्त होते ही वे त्रिपाठी से मिलने तथा कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उनके बंगले पर जाते हैं । त्रिपाठी सो रहे थे, तथापि उनकी पत्नी, जो राजीव की बहन है, उन्हें मिलना चाहती है । विवाह के विषाय में मूक रहकर कर्तव्यानंद अपने कर्तव्य से च्युत हुए थे, इसका आघात उसके हृदय में अद्यपर्यन्त है । आज वह एक प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका है । 'कर्तव्याघात' उसी की रचना है । इस कहानी में भी 'एक तृण' तथा 'एक आदर्श वाक्य' की भाँति व्यक्ति के पश्चाताप-पुरुष के पश्चाताप- का स्वर उभर कर आया है । इस कहानी में संयोग का दो बार प्रयोग हुआ है । डूबती लड़की का राजीव की बहन होना तथा कहानी के अंत में सहि जस्टिस की पत्नी के रूप में भी उसका उपस्थित होना संयोगात्मकता में लेखक की आस्था को प्रकट करता है । यह संयोग ही कथासूत्र को विच्छिन्न होने से बचा लेता है ।

रेखाएँ :

प्रस्तुत कहानी की नायिका सरिता के साथ रमेश का स्नेह-सम्बन्ध है, किन्तु तत्कालीन समाज में कुलीन और बड़े आदमी अपने से निकृष्ट कुल में अपनी संतानों का विवाह नहीं करते थे । फलत: सरिता का विवाह रमेश के साथ नहीं होता । कुछ महीनों के बाद रमेश के मित्र के साथ सरिता का विवाह सम्पन्न हो जाता है । रमेश जिन दिनों मामी के यहाँ अध्ययन के हेतु रहता था, तब सरिता उससे पुस्तकें ले जाया करती थी । एक बार एक उपन्यास में रमेश ने देखा कि सरिता ने कुछ वाक्यों को रेखांकित करके अपना प्रेम अभिव्यक्त किया है । उसे प्रतीत होता है कि जैसे ये रेखाएँ पुस्तक में नहीं, उसके हृदय पर खींची गई है । कहानी के अंत में कहे गये सरिता के कथन -'कभी-कभी चिट्ठी तो भेजा करो, रमेश- में उसके जीवन की विवशता व करुणाता प्रकट होती है । रमेश अपनी प्रेयसी के दाम्पत्य-जीवन में कभी भी हस्तक्षेप नहीं करता । इतना ही नहीं, उसके बच्चों को देखकर वह प्रसन्न होता है । इस कहानी पर शरद - बाबू के उपन्यास 'देवदास' का प्रभाव स्पष्टरूप से दिखाई देता है । कहानी में नदी का वर्णन महत्त्वहीन प्रतीत होता है । बाल्यावस्था में वाजपेयी जी को मामी का स्नेह प्राप्त हुआ था, यह उन्होंने इस कहानी के पात्रों- रमेश एवं मामी- के माध्यम से चित्रित किया है । इस कहानी में न तो घटना का वर्णन है, न ही चित्रण, उसका प्रभाव पुस्तक के अंशों के रेखांकनों को उद्धृत करके उत्पन्न किया गया है ।

अपर्णा :

प्रस्तुत कहानी की नायिका अपर्णा को मानसिक शांति नहीं है, फलत: वह रात को सो नहीं पाती । अपने पति के मौसेरे भाई सत्य के अपने यहाँ आने पर वह उसे चाहने लगती है । सत्य भी उसे चाहता है । उसे भी नींद नहीं आती । पति के रूठ जाने पर अपर्णा उसे प्रेम से दूध पिलाती है । इस कहानी में यह दिखाया गया है कि विवाहोपरांत भी नारी पर-पुरुष से प्रेम तथा अपने पति के साथ छल करती है । पति के साथ मतांतर होने पर भी वह मानती है कि नारी का धर्म दाम्पत्यजीवन से भी ऊपर है, किन्तु ऐसा मानना आत्मप्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । पति महीने के पश्चात् अपने घर आता है, तथापि ऐसा लगता है कि जैसे उसे अपर्णा में रस नहीं है । यह कहानी शुद्ध आत्मविश्लेषण के धरातल पर स्वगत कथन शैली में अवतरित हुई है ।

ठण्डी राख की लपट :

प्रस्तुत कहानी में बाजपेयी जी ने निम्न मध्य वर्ग का यथार्थ चित्रण किया है । सुनील के दुराचरण के कारण उसके पति ने उसका त्याग किया है । वह अपने पिता के यहाँ आ जाती है, परन्तु पिता की मासिक आय केवल 150)- रुपया है और खर्च उससे अधिक है ; अत: बदलू इक्केवान से वह पैसा लेती रहती है । इसी कारण माँ के साथ उसका झगड़ा होता रहता है । कहानी का नायक भी सुनील को एक बार रात के समय इक्के वाले के साथ बातें करते देखता है । इन परिस्थितियों से तंग आकर एक दिन सुनील के पिता रामलाल आफिस से समय पर घर नहीं लौटते । लौटते भी हैं तो रात के दो बजे शराब पीकर । पति सुनील को अपने यहाँ ले जाने के लिए आता है, तब नयी साड़ी के अभाव में वह उसके साथ नुमायश देखने भी नहीं जा सकती । दूसरे दिन बढ़िया साड़ी आ जाने से वह अपने पति व बहन के साथ नुमायश देखने जाती है । वहाँ से लौटने के पश्चात् विषपान करके वह प्राण त्याग देती है । अपने शरीर का सौदा कर-करके वह मकान का किराया तथा आवश्यक चीजें लाया करती थी । अपने परिवार की दुर्दशा वह देख नहीं सकती थी, न ही स्वामी के साथ विश्वासघात करना उसे स्वीकार था ; परिणामत: वह आत्मघात करती है । इस कहानी में मध्य वर्ग की नारी का करुण चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है ।

बात एक नाते की :

यह कहानी 'मेरा नाता' शीर्षक से बाजपेयी जी के प्रथम कहानी-संग्रह 'मधुपर्क' (1929) में प्रकाशित हो चुकी है । प्रोफेसर के अंतिम संस्कार के पश्चात् स्मशान से लौटते समय इंदिरा - रानी के कान में ये शब्द पड़ते हैं -' परन्तु इनका इससे क्या नाता था ?' यह सुनते ही वह अतीत में खो जाती है । बचपन में दोनों फूलबाग में खेलते थे । वे एम०ए० हो गये और प्रोफेसर बन कर आये । वह बी० ए० हो गई । बारह वर्ष की आयु में ही उनका विवाह हुआ था ,गत वर्ष उनके पुत्र का भी ब्याह हो गया । इस समय उनके अतिरिक्त सब उनके भाई के यहाँ विवाह में गये हैं । वह सोचती है कि उनकी पत्नी उनके निधन के समाचार सुनेगी, तब उस पर क्या बीतेगी ? सबसे बड़ा कारुण्य तो यह है कि इतना बड़ा परिवार होने पर भी उनकी मृत्यु के समय कोई भी उपस्थित नहीं था । इंदिरा के पति राजा साहब का भी तीन वर्ष पूर्व स्वर्गवास हो चुका है । ऐसे संजोगों में वह प्रोफेसर, अपने साथी, को देखकर जीवित रहती है, किन्तु आज

वे नहीं रहे । उनके प्रति अपने अत्यधिक स्नेह के कारण प्रथम तो उसे उनकी मृत्यु पर विश्वास नहीं हुआ, परन्तु सत्य आखिर सत्य ही है । कुछ मर्यादाओं के कारण उनकी स्मशान यात्रा में वह अर्थी के साथ न जा सकी, किन्तु रहा न गया, तब पीटर से यथासमय पहुँच गई और अग्नि-संस्कार भी उसने ही किया । एक बार उनका व्याख्यान सुनकर राजा साहब के मन में प्रश्न उपस्थित हुआ था कि 'वे भी व्याख्याता क्यों न हुए या इंदिरा का विवाह ऐसे व्याख्याता से होता, तो कितना उत्तम होता ?' एकाध क्षण तो वह भी ऐसा ही सोचती है । जिस क्षण के लिए उसने उन्हें चाहा है, उसी क्षण का नाता उसके जीवन में दुस्साध्य का सूत्रधार बन जाता है । उसी एक क्षण का उसका उनके साथ नाता रहा है जिसे वह आजीवन नहीं भूल सकी । उनकी आकस्मिक मृत्यु पर वह सोच-समझ कर दृढ़ निश्चय से कह देती है -'अग्नि-संस्कार करने के लिए यदि कोई प्रस्तुत नहीं है, तो यह कार्य मैं करूँगी ।'[1] वह जानती है कि उसके इस कथन के क्या अर्थ लगाये जा सकते हैं, परन्तु उसके मन का तोष इसी में है, नाते का गौरव भी इसी में है ।

गमनागत :

प्रस्तुत कहानी जैसा ही कुछ प्रारंभिक अंश वाजपेयी जी के 'सूनी राह' नामक उपन्यास में प्राप्त होता है । इस कहानी के पात्रों को यथावत् रखकर, कथा-वस्तु में कुछ परिवर्तन कर तथा उसे विस्तृत करके लघु उपन्यास का रूप दिया गया है । कहानी की नायिका करुणा मिस्टर कपूर की त्यक्ता है । प्रोफेसर वैशम्पायन के आदेश से निखिल करुणा के भाई रमेश को ट्यूशन देने जाता है । रमेश के विवाह में वह शराब नहीं पीता, अतः करुणा के पिता लज्जित होते हैं । परन्तु तत्पश्चात् करुणा उसे सिगरेट पीना सिखाती है । एक बार अचानक मिल जाने पर दोनों पार्क में जाते हैं, वहाँ करुणा रोती है । उसका पति मेम साहब के साथ रहता है और उसे मिलने तक नहीं आता । करुणा तथा निखिल एक दूसरे को चाहते हैं , किन्तु अपने प्रेम को अभिव्यक्त नहीं कर सकते । एक बार करुणा को मिले बिना ही वह लौट जाता है, परन्तु रास्ते में मिल जाने पर रमेश उसे वापस ले आता है । उस समय करुणा को हिस्टिरिया के फिट्स् आते हैं । अचेतनावस्था में वह बुदबुदाती है कि 'आकर भी तुम लौटे जा रहे थे ।' निखिल अब निश्चय करता है कि वह जो नहीं बन सका, अब बनेगा । पर-पुरुष प्रेम की समस्या प्रस्तुत कहानी में उठाई गई है और उसका समाधान भी किया गया है । त्यक्ता करुणा का

1- मधुपर्क, पृ० 148

निखिल के प्रति आकृष्ट होना स्वाभाविक है । 'सूनी राह' उपन्यास और इस कहानी के अंत में अन्तर इतना ही है कि उपन्यास के अंत में करुणा अपने पति के साथ चली जाती है, जब कि प्रस्तुत कहानी में वह निखिल के साथ ब्याही जाती है ।

गृह स्वामिनी :

अपने गाँव में कालरा का प्रकोप देखकर लेखक, जो डाक्टर भी है, सपरिवार दूसरे गाँव में चला जाता है । वहाँ वह जिस घर में रहता है, उस घर का स्वामी अस्वस्थ है । उसके पास डाक्टर विजिट फीस नहीं लेता । डाक्टर की पुत्री करुणा पूरा दिन गृह स्वामिनी रजनी के पास ही रहती है । एक दिन करुणा की माँ के अस्वस्थ हो जाने पर रजनी उनके यहाँ खाना भेज देती है । रजनी तथा डाक्टर-दंपति साथ बैठकर यदा-कदा मज़ाक भी कर लेते हैं । डाक्टर यह सोचकर चिंतित हो जाता है कि भगवान ने रजनी को सब कुछ दिया है, केवल सौभाग्य नहीं दिया । अच्छी प्रैक्टीस चलने पर डाक्टर घर बदलना चाहता है, पर रजनी अनुमति नहीं देती । वह डाक्टर को चाहने लगी है । एक बार डाक्टर अपनी पत्नी के भतीजे के विवाह में जाता है, वहाँ कुछ अधिक दिन रुकना पड़ता है, फलत: डाक्टर के स्नेह की प्यासी रजनी अस्वस्थ हो जाती है । लौटनेपर डाक्टर देखता है कि उसे टाइफाइड हो गया है । अंततोगत्वा उसका स्वर्गवास हो जाता है । मृत्यु से पूर्व ससंकोच वह डाक्टर से कहती है कि चाहने पर भी वह उसे न चाह सकी ; क्योंकि वह इसके लिए अधिकारिणी नहीं थी । अपने इस अपराध के लिए वह क्षमाप्रार्थी है । अनमेल विवाह का क्या परिणाम आता है, यह इस कहानी में बताया गया है। पत्नी की शारीरिक भूख को संतुष्ट करने के लिए त्रिलोकी बाबू, गृहस्वामी, असमर्थ हैं, तथापि रजनी के स्वर्गवासोपरांत शीघ्र वे तीसरा विवाह करते हैं । प्रस्तुत कहानी में भावुकता की अधिकता दिखाई देती है । रजनी एवं डाक्टर दोनों आदर्श पात्र हैं, जो पाठकों पर अपना अमिट प्रभाव दीर्घकाल के लिए छोड़ जाते हैं ।

वन - श्री :

यह भी एक प्रेम कहानी है । पूरी कहानी में कहीं भी वासना का पुट दृष्टिगोचर नहीं होता । इस कहानी में मोहन मालती के प्रति आकृष्ट होता है, वह उससे विवाह करना चाहता है ; किन्तु सामाजिक बंधनों के कारण उसकी इच्छा पूर्ण नहीं होती।एक दिन मालती का विवाह होने, विदा न होने तथा दो ~~एक~~ महीने के पश्चात् ही महामारी के प्रकोप में

उसके वैधव्य का दु:संवाद पाकर वह अत्यंत पीड़ित होता है । मालती के दु:ख के आगे वह अपनी वेदना भूल जाता है । विधवा हो जाने के बाद मालती एक आदर्श अपने समक्ष रखकर अपना जीवन बना लेती है । वह एक गर्ल्स स्कूल तथा मोहन बाबू एक कालेज में अध्यापन-कार्य करने लगते हैं । गाँव में मलेरिया-फीवर का प्रकोप रहने पर मोहन बाबू अस्वस्थ हो जाते हैं । डाक्टर का कहना है कि उन्हें राजयक्ष्मा हो गया है । उनका मित्र केशव उनके यहाँ आकर समालोचना का एक ग्रन्थ देखता है । उसमें उनकी अनुपलब्ध सोलह कविताएँ, उनकी समालोचना तथा 150 लेखकों तथा कवियों की सम्मतियाँ संग्रहीत हैं । उस ग्रन्थ की सम्पादिका मालती है । किसी ने महीने-डेढ़ महीने पहले के ढेर सारे समाचार पत्र तथा दो मासिक पत्र भेजे हैं । उनमें मोहन बाबू के विषय में कुछ न कुछ छपा है, यह सुनकर वे अचेत हो जाते हैं । कुछ लेखक, मोहन-बाबू के मित्र आदि उनके दर्शनार्थ आते हैं । उनमें एक डाक्टर भी है । मालती भी मोहन बाबू से मिलने आती है । वह सोचती है कि इस जन्म में तो वह उन्हें न पा सकी, पर अगले जन्म में उन्हें अवश्य पायेगी ।

प्रस्तुत कहानी के प्रारंभ में दिया गया प्रकृति का सचेतन और संवेदनशील रूप कहानी की वास्तविकता को नष्ट कर देता है । वाजपेयी जी ऋतुओं के क्रम का भी निर्वाह नहीं कर सके हैं ।[1]

सेवक का सुख :

यह कहानी वाजपेयी जी की लघुतम कहानियों में से है । केवल तीन पृष्ठ की इस कहानी में छ: मोड़ हैं । राजा मानपुर के अंत:पुर में जगदीश नामक एक पुराना नौकर है । राजा ने तीन विवाह किये हैं । प्रथम रानी कमला रुग्णा रहती है । उससे कोई संतान न होने से राजा ने द्वितीय विवाह विमला से किया । दुर्भाग्य से उससे भी संतान-प्राप्ति न हुई ; अत: अभी हाल ही में राजा का तृतीय विवाह सरला से हुआ है । तीनों रानियाँ जगदीश पर बड़ा स्नेह रखती हैं । उसने दाढ़ी रखी है, अत: कोई उसे पहचान नहीं सकता । केवल कमला इतना जानती है कि कि वह कुंवर कृपालु सिंह का खास आदमी है । जगदीश कुंवर के प्रति कमला के सौहार्द से अपरिचित नहीं है ; परंतु विवाहोपरांत कोई बीस वर्षों से कमला की कुंवर साहब से न कभी भेंट हुई थी, न ही कुछ समाचार प्राप्त हुए थे । गत शनिवार की रात्रि को राजा के नवजात पुत्र उत्पन्न होने के

1- दे. मनुपर्क, पृ0 169

"शरत , शिशिर और हेमंत के दिन अपना वैभव दिखाकर चले गये थे ।" वस्तुत: शरत, हेमंत और शिशिर अपने होना चाहिए ।

उपलक्ष्य में जो नाटक खेला गया, उसमें जगदीश ने अर्जुन का पाठ लिया । उसे देखकर कमला को कुंवर कृपालुसिंह का स्मरण हो आया । मनोव्यथा के साथ ही ज्वर-व्यथा भी जाग्रत हुई । नौकरी के बीस वर्षों में प्रथम बार जगदीश दस दिन की छुट्टी लेकर गया, तो वापस न लौटा। कमला ने भी एक दिन अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी । तत्पश्चात् रामनगर के राज्याधिकारी कुंवर कृपालुसिंह का पता लगने का संवाद समाचार-पत्रों में आता है । शिखासूत्र ०००० ०००० त्यागे हुए सन्यासी वेश में वे गुरुकुल रजत-जयंति के अवसर पर लोगों को मिलते हैं । राजा साहब मानपुर कुंवर को देखते ही पहचान जाते हैं कि कुं०कृपालु०सिं०० जगदीश के रूप में अपने यहाँ नौकरी करने वाला और कोई नहीं, स्वयं कुंवर कृपालु सिंह थे । कुंवर तथा कमला के स्नेह-सम्बंध की वे मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं ।

अपनी प्रियतमा का विवाह अन्य राजा के साथ हो जाने के पश्चात् छद्मवेश में उसकी सेवा के लिए कुंवर प्रस्तुत हो जाता है । अपने राज्य का ऐश्वर्य जो सुख उसे नहीं दे सकता, वह सुख उसे सेवक के रूप में रहने पर प्राप्त होता है । राजा मानपुर उसकी नियुक्ति उच्च पद पर करने के लिए कहते हैं, तब उत्तर देते हुए वह कहता है कि संतोष में ही सुख है । जीवन में सबका अपना-अपना भिन्न-भिन्न प्रकार का सुख होता है । कुंवर को अपनी प्रियतमा कमला की सेवा करने पर जो सुख प्राप्त होता है, वह अन्य किसी भी तरह से नहीं मिल सकता ।

अमूल्य भेंट :

राष्ट्रीय चेतना अथवा क्रान्तिकारिता पुरुष के प्रति नारी के आकर्षण का एकाकी आधार नहीं है । ज्ञान की गुरुता भी एक ऐसी अनुभूति है । प्रस्तुत कहानी में आकर्षण का आधार यही है । शारदा प्रसाद अपने मित्र मोहन की बहन मोहिनी को चाहता है । एक बार मोहन अपने यहाँ अवध के गवैये चंद्रकिशोर को बुलाता है और उसके गाने के उपलक्ष्य में उसे 500)- रुपये का दुशाला भेंट देता है । शारदाप्रसाद भी अच्छा गाना गाता है, परन्तु मोहन उसे कुछ भी नहीं देता, यह मोहिनी को अच्छा नहीं लगता । शारदाप्रसाद मोहिनी को पढ़ाने जाता है । बी०ए० की परीक्षा हो जाने के पश्चात् भी वह छुट्टियों में अपने घर नहीं जाता।उन दिनों मोहिनी के विवाह की बातचीत सुनकर वह उदास हो जाता है । एक दिन शारदा के मोहन के यहाँ जाने पर मोहिनी उसे अपने अध्ययन-कक्ष में मिलती है और उपहार रूप में अंगूठी भेंट देते हुए उसके प्रति अपने प्रेम को अभिव्यक्त करती है । तदनंतर डाक्टरी के अभ्यास के लिए शारदा इंग्लैंड जाता है । मोहिनी उसे निरंतर पत्र लिखती रहती है, परंतु उसने केवल एक पत्र

का उत्तर दिया है । शिक्षा पूर्ण होते ही वह भारत लौटता है । बम्बई से सीधा राजगढ़ वह मोहिनी से मिलने जाता है । वहाँ जाकर देखता है कि बीस दिन से बायीं रान के नीचे भीतरी फोड़े के कारण जो दर्द होता है, उससे वह पीड़ित है । उसका रोना शारदा से नहीं देखा जाता । डॉ० कौशल का मंतव्य था कि बिना आपरेशन यह अच्छा नहीं हो सकता, किन्तु शारदा होमियोपैथिक चिकित्सा से बिना आपरेशन अच्छा कर देने का उसे आश्वासन देता है । उसके स्वस्थ हो जाने पर उसके पति राजा नरेन्द्र देव शारदा को दो हज़ार रुपये देना चाहते हैं, परंतु वह कुछ भी नहीं लेता । उसने विवाह कर लिया होगा मान कर उसकी पत्नी के लिए मोहिनी हार देती है, परंतु मोहिनी के प्रति अपने प्रेम के कारण वह आजीवन अविवाहित रहना चाहता है । वह उसे कहता है कि पाने के लिए तो मैं तुमसे बहुत कुछ पा चुका हूँ । प्रमाणस्वरूप पाँच-छः वर्ष पहले अंतिम भेंट के समय दिया गया पान दिखाता है, जो अब शुष्क हो चुका है । अपनी प्रियतमा की यही चुल्लक भेंट उसके लिए अमूल्य है ।

इस कहानी में अस्पष्टता के कारण कुछ प्रश्नों का हमारे मन में उपस्थित होना स्वाभाविक प्रतीत होता है । (1) मोहिनी के परिचय में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं प्राप्त होता कि वह किसी राजा की पुत्री है, तथापि उसके विवाह की बातचीत राजगढ़ के राजकुमार के साथ क्यों चल रही है ? (2) एम० ए० के पश्चात् डॉक्टरी की शिक्षा की क्या आवश्यकता थी ? पांच वर्ष में केवल एलोपैथिक और होमियोपैथिक की शिक्षा प्राप्त होती है ? वह भी इंग्लैंड जाकर ?

वस्तुतः प्रस्तुत कहानी में केवल संयोगों की भरमार है ।

वंचना : एक सत्य :

प्रस्तुत कहानी 'पुष्करिणी' में संग्रहित 'स्वप्नमयी' कहानी का ही कुछ परिवर्तित रूप है । अन्य प्रारंभिक कहानियों की भाँति इस कहानी का प्रमुख कथ्य भी रोमांस है । 'अन्याय' 'अपमान का भाग्य', 'झाँकी' आदि कहानियों के नायकों की तरह इस कहानी के नायक नलिनी-मोहन का प्रेम भी प्रथम दृष्टि का (Love at the first sight) है । वह अपने मित्र प्रेमांकुर के साथ सिनेमा देखकर लौटते समय एक रमणी नलिनी को देखते ही उसके प्रति आकृष्ट होता है । लक्ष्मी टाकीज़ के उद्घाटन महोत्सव के अवसर पर नलिनी तथा उसके भाई रजनीरंजन को बिना पास प्रवेश नहीं दिया जाता । तब नलिनी-मोहन उनकी सहायता करता है । इस प्रसंग से नलिनी भी उसकी ओर आकर्षित होती है । दोनों उसे अपने यहाँ आने का निमंत्रण देते हैं । एक दिन

ANJA MEHTA LIBRARY
151

उनके यहाँ जाने पर जलपानादि के पश्चात् माई के अनुरोध करने पर नलिनी वंशीलिप बजाती है । दोनों कभी नलिनी-मोहन के यहाँ जाने की इच्छा प्रकट करते हैं । इस बीच दिल्ली से लिखा हुआ प्रेमांकुर का पत्र, जिसमें देश सम्बंधी बातें लिखी हुई थीं, नलिनी-मोहन को प्राप्त होता है । साम्यवादी होने के कारण दोनों पकड़ लिये जाते हैं । बाद में प्रेमांकुर को छोड़ दिया जाता है । नलिनी-मोहन को कलकत्ता से अलीपुर जेल में भेज दिया जाता है, उस समय कुछ लोगों के साथ नलिनी भी उसे देखने जाती है । अलीपुर जेल के जिस बैरक में वह रखा गया था, उसका एक भाग जेलर साहब के निवास-स्थान के निकट पड़ता था । प्रात:काल होते ही वहाँ से वायलिन के मीठे स्वर सुनाई देते हैं । ये स्वर सुनकर एक दिन वह अस्वस्थ हो जाता है । हॉस्पिटल भेज दिये जाने पर वहाँ उसकी तबियत देखने के लिए अपने पति मास्टर साहब के साथ नलिनी जाती है । जेल से मुक्त होने पर वह उसे कविता लिखना सिखाने के लिए कहती है । एक दिन अचानक नलिनी का स्वर्गवास हो जाता है । मृत्यु से पूर्व नलिनी-मोहन के प्रति अपने स्नेह तथा विशेष आदर के विषय में वह अपने पति को सब कुछ बतला देती है । नलिनी-मोहन को वह दु:खी न होने तथा अपने कार्य में संलग्न रहने के लिए कहती है । उसके लिए वह अत्यधिक चिंतित थी । 'स्वप्न-मयी' की अपेक्षा इस कहानी में उपसंहार विस्तृत रूप से दियागया है । सी.आई.डी. के मंतव्यानुसार वह मार दी गई थी । मास्टर ने उसे स्लीपिंग्वाइजन दिया था । 'स्वप्न-मयी' के पाँचवें भाग में जो कविता है, वह इसमें नहीं है । प्रस्तुत कहानी में जो कविता दी गई है, वह 'स्वप्न-मयी' में नहीं है । दोनों कहानियों के प्रारंभ में भी कुछ अन्तर है । विमल मन की विरोधी स्थिति कपट की है । अंतर्जगत के धरातल पर कपट ही प्रवंचना बन जाता है । इस कहानी में कपट की अंतर्मुखता को ही वंचना कहा गया है । वाजपेयी जी मन के बंधन के केवल समर्थक ही नहीं, पोषक भी हैं । हृदय की पवित्रता अलौकिक होती है । देह ऐहिक है, अत: हृदय की गति श्रेयस्कर है, प्रेय है । यही वंचना सत्य बनकर अवतरित होती है । इस कहानी में यह स्पष्ट रूप से देखा जाता है कि देह के बंधन पर मन का बंधन हावी है । नलिनी का स्वप्न में अपने पति से दैहिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है । इसीलिए वह स्वप्न में कहती है -'उनका कहना भी सही था । जिस नारी के साथ उनका पत्नी का सम्बंध था, वह कब की मर चुकी है।'[1] मन के रिश्ते को स्वीकार करते समय 'उसके मुख पर उस समय एक ऐसी उल्लास ज्योति थी कि क्लेश-क्लेद के कालुष्य का किंचित् भान नहीं हो रहा था ।'[2] इससे स्पष्ट हो जाता है कि लेखक का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण नारी की वैयक्तिक पवित्रता को सामाजिक मर्यादाओं से महत्तर मानता है ।

1-2 कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 24

शबनम :

यह एक ऐसी मुसलिम रमणी की मर्मस्पर्शी कहानी है, जो अपने शराबी पति के लिए अपने प्राण तक उत्सर्ग करने के लिए तैयार थी, जो 'दिल के रिश्ते' की क़द्र करती थी। स्वगतकथन शैली में लिखी गई इस कहानी के प्रारंभ में बिहारी, बाद में माधव और तत्पश्चात् त्रिपाठी क्रमश: अपनी-अपनी कहानी कहते हैं। बिहारी को माधव बतलाता है कि गरीब होने पर भी वह भवन कैसे बनवा सका। अपने मित्र त्रिपाठी के यहाँ जाने पर वहाँ एक युवती को देखकर कौतूहलवश उसके विषय में वह पूछता है, परन्तु उस समय त्रिपाठी कुछ भी नहीं कहता। एक बार बहुत ही अस्वस्थ होने पर वह बतलाता है कि वह युवती शबनम हम्मीद कव्वाल की पत्नी है। हम्मीद शराब पीकर उसे पीटता है। वह वेश्यागामी है, परिणामत: उसकी मृत्यु होती है। पति-प्रेम से वंचित शबनम त्रिपाठी की ओर आकृष्ट होती है। यह स्वाभाविक था। एक दिन त्रिपाठी से बातें करते-करते ही वह अचेत होकर गिर पड़ती है और अचानक उसका निधन हो जाता है। मृत्यु होने से पूर्व वह पाँच हज़ार रुपये त्रिपाठी को देती है। उनमें एक हज़ार रुपये मिलाकर छ: हज़ार रुपये का चेक त्रिपाठी माधव को यह कहकर देता है कि तुमने जीवनभर दु:ख ही दु:ख भोगा है। इन रुपयों से एक मकान बनवा लेना ताकि मेरी आत्मा को शान्ति मिले। यह एक आदर्शवादी कहानी है। इसके अधिकांश पात्र आदर्श हैं।

निर्माल्य :

कोई व्यक्ति चाहे जितना पवित्र दीखने की चेष्टा करे, चाहे जितना आत्म-संगोपन करे, किन्तु यदि वह किसी से प्रेम करता है, तो अवश्य पकड़ा जायगा। प्रेम की भाषा अन्य लोग भले ही न समझें, परन्तु जिससे प्रेम किया जाता है, वह व्यक्ति शीघ्र समझ जाता है। इसी विचार की प्राण-प्रतिष्ठा प्रस्तुत कहानी में की गई है। नायक को उसका मित्र मंगल कान्फ्रेन्स समाप्त हो जाने के पश्चात् भी रोकता है। कवि-गोष्ठी में कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई, परन्तु बिन्दु की उपेक्षा की गई, अत: वह घर आकर तुरन्त ही हॉस्टेल चली जाती है। वहाँ उसे फिट्स आते हैं। बिन्दु तथा नायक दोनों एक दूसरे को चाहते हैं; किन्तु अपने प्रेम को अभिव्यक्त नहीं कर सकते। मंगल भी चाहता है कि नायक के साथ बिन्दु का विवाह हो। अंत में नायक को छोड़ने सब स्टेशन पर जाते हैं, तब गाड़ी स्टार्ट होते ही बिन्दु भी ट्रेन में चढ़ जाती है। स्नेह में अंध वह अपने जीजा को अपना सब कुछ समर्पित कर देती है।

अभिशाप :

यह भी एक आदर्शवादी प्रेम-कथा है । अपने बचपन के साथी विश्वम्भर की पत्नी केसर को सत्य भाभी कह सकने के लिए असमर्थ है । अत: विश्वम्भर सत्य को संदेह की दृष्टि से देखता है । बाल्यावस्था का केसर और सत्य का स्नेह-सम्बन्ध आज भी यथावत् है । एक बार वह सत्य के यहाँ सपरिवार जाती है, तब अपने बच्चों को कहती है, 'ये तुम्हारे चाचा हैं, इन्हें नमस्कार करो ।' उसके हृदय में सत्य के प्रति स्नेह का निर्मल स्रोत अब भी प्रवहमान है, तथापि विपरीत परिस्थितियों के साथ समझौता करने के लिए वह तैयार है और देवररूप में उसे स्वीकार करती है, किन्तु सत्य उसे भाभी नहीं कह सकता । यह उसकी कोरी भावुकता एवं निर्बलता है । तथापि केसर के सुखी दाम्पत्यजीवन में वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना नहीं चाहता । अपनी प्रियतमा को भाभी कहना या उसके बच्चों का उसे चाचा कहना उसे पसंद नहीं है, अत: ये सम्बन्ध उसे अभिशाप रूप लगते हैं ।

लाइसेंस की सुर्खी :

'लाइसेंस' शीर्षक से 'उतार-चढ़ाव' कहानी-संग्रह में प्रकाशित हो जाने के पश्चात् एकार्थ स्थल पर कुछ परिवर्तन करके 'कबाड़ी का ताजमहल' कहानी-संग्रह में 'लाइसेंस की सुर्खी' शीर्षक से पुन: इसका प्रकाशन हुआ है । पर-पुरुष प्रेम की यह एक सामाजिक कहानी है । विवाहोपरांत भी माया दिलीप को बहुत ही चाहती है । उसके बिना वह भोजन भी नहीं करती । दिलीप को अपने साथ सदा रखना तो संभव नहीं, तथापि एक खाली कमरे में वह उसका सामान रखवा देती है । उसके पति दर के दिल्ली जाने पर दिलीप नैश-विश्राम माया के यहाँ ही करता है । वह मानता है कि अपनी प्रनिष्ठा, कार्यदक्षता तथा प्रत्युपन्न चेतना के मूल में माया की ही प्रेरणा है । माया के पुत्र होने तथा नौकर रामाधीन के द्वारा बधाई दे जाने पर दर को आश्चर्य होता है । क्योंकि उसकी पुत्री फरना तेरह वर्ष की होने के अनंतर यह अवसर आया है । वह कलेन्डर देखकर सोचता है कि दिल्ली से कब-कब उसका घर आना हुआ है । फिर कुछ अन्य बातें भी उसे याद आती हैं । रात के साढ़े नौ बजे दिलीप के साथ भोजन करते समय अनेक बातों के सिलसिले में दर दिलीप को उसके रचनात्मक कार्य की सफलता के लिए बधाई देता है । प्रस्तुत कहानी के शिल्प पर मोपासां का प्रभाव स्पष्टत: दृष्टिगोचर होता है । व्यंजना द्वारा वाजपेयी जी ने यह बतलाया है कि माया तथा दिलीप के बीच शारीरिक सम्बन्ध था । दिलीप अभिजात

वर्ग का है । उसके पास धन, साधन, पद-मर्यादा सब कुछ है, अत: उसे कोई बंधन नहीं, किसी का अंकुश और नियंत्रण नहीं । पैसा और पद-मर्यादा तो लाइसेंस है, जिसकी सुर्खी के प्रति आकर्षित होना माया जैसी नारी के लिए सहज है, इतना ही नहीं, गौरव की बात है । दिलीप पार्लियामेन्ट सेक्रेटरी है । माया उसके प्रति आकृष्ट ही नहीं होती, उसे अपना लेती है । क्योंकि पति के विषय में उसे विश्वास है कि 'अगस्त से पहले वे आयेंगे नहीं ।' और जो उसकी आस्था है 'दुखमय है, रोग है, प्रमाद है । वीरभोग्या वसुन्धरा ।'[1] वह तो वसुन्धरा का एक तुच्छ अंग है, अत: वीर दिलीप की भोग्या बनना उसके लिए गौरव की का विषय है ।

प्रस्तुत और पहले प्रकाशित कहानी में अंतर केवल इतना ही है कि इसमें एक स्थल पर छपा है -' आज रामाधीन के सिवाय कोई नहीं जानता कि दिलीप के बिना माया खाना नहीं खाती ।'[2] जब कि 'लाइसेंस ' कहानी में यह वाक्य इस तरह छपा है - 'आज राजधानी में कौन नहीं जानता कि ----'[3] इन दोनों में प्रथम वाक्य अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है ।

इन्द्रजाल :

यह भी एक प्रेम कथा है । अनु और दिलीप बचपन से एक दूसरे को चाहते हैं, किन्तु अनु का विवाह चालीस वर्ष की आयु के एक जमींदार के साथ सम्पन्न होता है । विवाहोपरांत भी दिलीप के प्रति उसका स्नेहाकर्षण यथावत् रहता है । एक बार अनु का शुष्क व्यवहार असह्य लगने पर वह उसके यहाँ से चला जाता है और एम०बी०बी०एस० होकर एक विधवा से विवाह करना चाहता है । अनु से मिलने जाने पर उसे विधवा तथा अस्वस्थ देखकर पीड़ित होता है । उस रात वह स्वीकार करती है कि उसने अपने पति के साथ प्रवंचना की थी । शरीर से वह भले ही पति की थी ; किन्तु मन से अध:पर्यन्त वह दिलीप की ही है । वह उसकी बनना चाहती है, पर अब एक मात्र निवेदन की और वह देखना चाहती है, दूसरी ओर नहीं । अनु से भेंट होने के पश्चात् बड़े उल्लास के साथ दिलीप घर लौटता है, किन्तु उसी दिन सायंकाल अनु का स्वर्गवास हो जाता है । वर्षों के बाद भी अनु दिलीप के लिए इन्द्रजाल बनी रहती है । इस कहानी पर बंगला उपन्यासकार शरद् चन्द्र का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । उनके उपन्यास 'देवदास' तथा इस कहानी

1- कबाड़ी का ताजमहल, पृ० 138

2- वही, पृ० 141-142

3- उतार-चढ़ाव, पृ० 45

की कथावस्तु में पर्याप्त साम्य पाया जाता है । इसमें बाल-विवाह, अनमेल ब्याह, विधवा-विवाह आदि समस्याओं को स्पर्श किया गया है । तुलसीदास का दोहा कथा की गति को अवरुद्ध करता है । अंतर्द्वन्द्व को एक नये ही कोण से इस कहानी में प्रस्तुत किया गया है ।

एक प्रतीक्षा :

इस कहानी में लेखक ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि मानव से अधिक स्वामिभक्त तो प्राणी होते हैं । देवकीनंदन बाबू तथा उनकी पत्नी मनोरमा के बीच अमूक बातों में मतांतर है । देवकी बाबू अकेले ही क्लबों तथा पार्टियों में जाते हैं । वे मानते हैं कि पत्नी केवल प्रतीक्षा तथा सहने के लिए है । एक दिन रात को देर तक वे घर नहीं लौटते ; अत: उनका प्यारा कुत्ता रूबी उन्हें खोजने निकल पड़ता है और रास्ते में एक कार से दुर्घटना होने पर मर जाता है । क्लब से घर लौटते समय रास्ते में किसी कुत्ते को मरा हुआ पड़ा देखकर उसके लिए देवकी बाबू 'आवारा' शब्द का प्रयोग करते हैं । घर पहुँचने के पश्चात् पत्नी के कहने पर वे रूबी को ढूँढने निकलते हैं और वह मरा हुआ कुत्ता रूबी ही निकलता है, तब वे मन ही मन कहते हैं - मेरा रूबी आवारा नहीं था । आवारा तो वास्तव में ---- । वस्तुत: वे स्वयं ही आवारा है, जो अपनी पत्नी को घर पर छोड़कर सुन्दर स्त्रियों के पीछे क्लब व पार्टियों में घूमा करते हैं । कुत्ते जैसी जिंदगी तो उनकी है, जो एक स्थल पर स्थिर नहीं रह सकते । प्रथम बार वे कुत्ते के लिए 'आवारा' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब उन्हें मालूम नहीं था कि यह तो उन्हें भी लागू पड़ता है । नारी का एक अत्यंत विशृंखलित, जड़ चित्र अनमेल विवाह की प्रतिक्रिया में होता है, यह लेखक ने इस कहानी में दिखाया है ।

उपहार :

पुराना प्रेमी अपनी प्रिया के दाम्पत्य-जीवन के क्षेत्र में एक बार प्रवेश करता है और नारी-हृदय को विश्लेषण-मंथन की धारा में प्रवाहित कर देता है । वाजपेयी जी की नारी देह और आत्मा के बंधन के द्वैत के आवर्त में पड़कर भी अंतत: शारीरिक बंधन की सामाजिकता से अभिभूत हो जाती है ; क्योंकि विद्रोह लेखक के स्वभाव का अंग नहीं है। प्रस्तुत कहानी में पत्र-लेखन के पश्चात् कमल भोजन के लिए सोचता है कि कुछ लोग उसके यहाँ आ जाते हैं । उनमें राधे भी है । वह कमल का बालसखा है । कमल की पत्नी विमला और राधे कानपुर में एक ही मुहल्ले में रहते थे । तबसे दोनों के बीच स्नेह-सम्बंध है । दस वर्ष पहले स्वदेश-प्रेम के कारण वह अपना जीवन उत्सर्ग कर देता है । विवाहोपरांत भी विमला राधे को भूल नहीं सकती, फलत: उसका दाम्पत्यजीवन सुखी नहीं।

दस वर्ष बाद राये को अपने यहाँ देखकर उसे अतीत की स्मृतियाँ झकझोर डालती है । उस ओर राये उसे बहन ही मानता है और जाते समय कमल को एक सोने की घड़ी यह कहकर दे जाता है कि इसे मेरी बहन को दे देना ।' विमला को प्रेमी का यह उपहार मृत्यु समान लगता है । राये एक आदर्श प्रेमी है । स्वप्न की सहायता से विमला की मानसिक स्थिति का परिचय लेखक ने कुशलता-पूर्वक दिया है ।

जहाँ सभ्यता साँस लेती है :

'एक प्रतीक्षा ' कहानी में हम देख चुके हैं कि नारी का एक अत्यंत विशृंखलित, जड़ चित्र अनमेल-विवाह की प्रतिक्रिया में होता है । यह कहानी भी इसी कोटि के यथार्थ को रूपायित करती है । बच्चे तरुण हो जाने पर पढ़-लिख कर अपना उत्तरदायित्व समझने लगते हैं । वे माता-पिता पर बोझ बनकर जीना नहीं चाहते । ऐसी अवस्था में वे लड़कियाँ उस दिन की प्रतीक्षा नहीं करते, जब पिता अपनी समझ-बुझ, सामर्थ्य तथा नीति के अनुसार उन्हें ऐसे विवाहबन्धन में डाल देने को तत्पर होते हैं, जिसके साथ उन वयस्क बच्चों की रुचि और चुनाव का सम्बन्ध कभी गण्य होता है, तो कभी नगण्य ।

प्रस्तुत कहानी की वस्तु-संयोजना में यही बात प्राप्त होती है । नर्मदा के माता-पिता उसके विवाह के लिए चिंतित है । पिता उसके लिए एक बड़ी उम्र का विधुर लड़का देख आते हैं । वे नर्मदा की पसंद के लिए शंका व्यक्त करते हैं, तब नर्मदा की विमाता कहती है कि लड़की की पसंद का ख्याल कौन करता है ? उसकी पसंद का ख्याल किसने किया था ? नर्मदा के पिता अपनी विकृतियों को शराब की संगति में डूबोने के लिए तत्पर है । ऐसी स्थिति में व्यक्ति को केवल नयी सभ्यता ही उभार सकती है । नर्मदा दिवाकर नामक एक युवक के प्रति आकृष्ट होती है । दोनों के बीच कुछ दिनों में नैकट्य स्थापित होने के बाद सिविल मैरेज करके दोनों नर्मदा के माता-पिता के पैर छूने जाते हैं । पिता के पूछने पर कि 'कहाँ गई थी ?' वह निर्भीकतापूर्वक उत्तर देती है - 'गई थी वहाँ, जहाँ सभ्यता साँस लेती है ।' फिर बैग से सिविल मैरेज का एक कागज़ निकालकर वह बोली - ' यह लीजिए उसका प्रमाण-पत्र !'[1] इस कहानी में लेखक ने भारतीय सड़े-गले समाज की ओर संकेत किया है । दहेज अधिक देना न पड़े या देना ही न पड़े, इस लोभ से पिता अपनी पुत्री के लिए अधिक आयु का लड़का ढूँढ निकालता है । अनमेल ब्याह के परिणाम-स्वरूप लड़की को वैधव्य प्राप्त होता है, ऐसी अवस्था में यदि वह संयम से काम नहीं लेती, तो कहीं की नहीं रहती । परन्तु अब

1- स्नेह बाती और लौ, पृ0 261

वह समय नहीं रहा, जब नारी पिता की इच्छानुसार विवाह के लिए तैयार हो जाती थी । इस कहानी में विमाता की समस्या उपस्थित की गई है । यह कहानी गुजराती में अनूदित हो चुकी है ।

शैतान :

प्रस्तुत कहानी में अनमेल विवाह की प्रतिक्रिया का चित्र खींचा गया है। कहानी का नायक अपने मित्र के अनुरोध करने पर एक रात उसके साथ एक होटल में ठहरता है । रात के तीन बजे अचानक शोरगुल सुनाई पड़ता है । नायक जागकर देखता है, तो मित्र नहीं दिखाई देता।इसी होटल में ठहरे एक सेठ की पत्नी लघुशंका के लिए छत पर गई थी, इसे सेठ शंका की नज़र से देखते हैं और नायक के मित्र के पीछे दौड़ते हैं । मित्र सीढ़ी पर से गिर पड़ता है ।उसके सिर में चोट आती है । वासनात्मक तृप्ति देने में असमर्थ पुरुष की पत्नी की दशा कैसी भयावह होती है, यह इस कहानी में बतलाया गया है । सेठ को अपनी पत्नी के प्रति संभवत: इसी कारण चारित्रिक संदेह होता है ।

दुग्धपान :

हमारी सामाजिक रूढ़ियों का स्तर इस सीमा तक गिर चुका है कि मानवता त्राहि-त्राहि पुकार रही है । हमारी आस्थाएँ इतनी म्रियमाण हो गई हैं कि नारी अपने पति के साथ भी प्रवंचना करते नहीं लजाती । प्रस्तुत कहानी की नायिका पानवाली ऐसी ही नारी है। कहानी का नायक गगनबिहारी, जो नारी-सौंदर्य का प्रेमी है, पानवाली को देखना-जानना चाहता है। पानवाली सम्मत होकर उसे अपने यहाँ ले जाकर अपनी बात कहती है।अपनी रग-रग में फैली वासना को तृप्त करने में स्वामी असमर्थ होने के कारण वह मिस्टर बाबु की ओर आकृष्ट होती है और उसे अपना सब कुछ समर्पित कर देती है । वह नियमित रूप से पति को नित्य दूध पिलाती है, परन्तु उसके चरित्र के विषय में सब कुछ ज्ञात हो जाने पर एक दिन पति दुग्धपान से पहले विषपान कर लेता है । बाबु अपने विलासी स्वभाव के कारण अब पानवाली की ओर ध्यान तक नहीं देता । प्रतिदिन नयी-नयी नारी के साथ उसकी लीला चलती रहती है । यह सब जानते हुए भी पानवाली कुछ नहीं कहती । पति के साथ जो प्रवंचना उसने की है, उसी का फल मानकर वह पश्चाताप करती है। अनमेल ब्याह के कारण ही वह कुलटा बन गई थी।

विच्छेद :

प्रस्तुत कहानी में अर्थ-वैषम्य को एक नयी भावभूमि पर चित्रित किया गया है । पंकज प्रतिदिन राजकुमारी मृणाल के दर्शन करने आता है। वह भी सड़क पर नित्य उसे मिलती है।पंकज

उससे दार्शनिक बातें करता है । एक दिन दोनों टहलते हैं, तब उन्हें कुछ श्रमिक, जिनके सिर पर तरबूज़ की फल्ली थी, मिलते हैं । उनमें एक स्त्री भी है । मृणाल उससे पूरी फल्ली तरबूज़ खरीद लेती है । उस दिन उसने जो कुछ देखा था, वही रात के समय भी उसकी आँखों के समक्ष दिखाई देता है । परिणामस्वरूप वह अस्वस्थ हो जाती है । दूसरे दिन पंकज उसे देखने जाता है । वहाँ से घर लौटने पर उसे पुन: बुलाया जाता है । राजमाता उसे मनुष्यता के नाते आने के लिए कहती है। मृणाल अचानक अचेत हो जाती है । वह पंकज को चाहती है, किन्तु दोनों विवाह करना नहीं चाहते । पंकज राजमाता को किसानों की स्थिति समझाकर मनुष्यता के नाते सोचने के लिए कहता है । तत्पश्चात् मृणाल की जीवन-रक्षा तथा मर्यादा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर वह सबको कक्ष खाली करने के लिए कहता है । उसके स्पर्श मात्र से मृणाल होश में आ जाती है । पंकज चला जाता है । वह नित्य-प्रति घूमने जाती है और पंकज की बातें याद करती रहती है । अब सुमेरपुर राज्य में जन-शासन के नव-निर्माण के लिए एक प्रजा-परिषद बन रही है । प्रस्तुत कहानी में वाजपेयी जी ने यह बतलाया है कि अंत में तो मानवतावादी दृष्टिकोण की ही विजय होती है । इस ए कहानी में कुछ प्रतीकों का भी लेखक ने उपयुक्त प्रयोग किया है । पंकज मृणाल से जो बातें करता है, उनमें घोड़ा जनता का प्रतीक है । तरबूज़ वाली का प्रसंग मृणाल के की आँखें खोल देता है । उसे वास्तविक स्थिति का ख्याल आता है कि नारी के पास भी कितना परिश्रम कराया जाता है । प्रजा के विषय में सोचने के लिए वह विवश हो जाती है । उसके पास संवेदनशील हृदय है, पर अपने अधिकार को वह छोड़ नहीं सकती । अंत में वह अपने संस्कारों के बंधन त्याग कर अभाव-पीड़ितों को संवेदना बाँटना चाहती है ; अत: अपने वर्ग से विच्छेद करके जनता के कल्याण के लिए निकल पड़ती है । वह जन्म से राजकुमारी भले ही है, पर संस्कारादि से मध्य वर्गीय है । लेखक ने चाहा होता, तो मृणाल से पंकज का विवाह करवा दिया होता, परन्तु यह उसका अभीष्ट नहीं है ।

सहानुभूति ने कहा :

यही कहानी सन् 1950 ई० में प्रकाशित 'उतार-चढ़ाव' कहानी-संग्रह में 'जो मैं ऐसा जानती' शीर्षक से प्रकाशित हो चुकी है । दोनों कहानियों में कुछ शब्दों का परिवर्तन अवश्य प्राप्त होता है । प्रस्तुत कहानी एक आदर्श का आरोप लेकर चली है । रज्जन छुट्टियों में अपने गाँव आकर एक दिन शाक खरीदने जाता है, तब शाक ले लेने के पश्चात् सात-आठ वर्ष की एक लड़की रखिया अपने पास से बथुआ लेने के लिए उसे कहती है । रज्जन के मन में मानवीय सहानुभूति का जो अक्षय स्रोत छिपा है, वह रखिया की अनुनयभरी आँखों के सामने प्रवाहित हो ही जाता है।

रखिया के मुँह से अपने परिवार से सम्बंधित बातें सुनकर वह उदास हो जाता है । माँ के आगे उसके चेहरे के भाव छिपे नहीं रह सकते, तथापि वह हँसने का व्यर्थ प्रयास करता है । अपने ज्येष्ठ भ्राता से उस लड़की के गाँव लक्ष्मनपुर पुरवा की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् अपने नौकर को साथ लेकर वह रखिया के यहाँ जाता है ।काशी में हॉस्टेल में रहते समय वह अपने कितने ही खर्च काट कर दीन -दुखियों की आर्थिक सहायता करना चाहता है । रखिया के पिता मुलुआ के नाम वह बनारस से नियमित रूप से पाँच रुपये का धनादेश भेजता रहता है । पढ़ाई पूर्ण हो जाने पर वह देरापुर का तहसीलदार बनता है, किन्तु अपने ज्येष्ठ भ्राता को कुछ भी सहायता नहीं करता । वह स्पष्ट कहता है कि भाई को ज़मीन बढ़ाने का शौक है, तो उसे दीन-दुखियों की सहायता करने का भाई की लगान भरने की भी सामर्थ्य नहीं है । मुलुआ के दामाद जानकी, रखिया के पति, पर लगान बकाया रह जाने पर बेदखली का दावा दायर किया जाता है । जानकी की बातें सुनकर रज्जन उसका लगान कम कर देता है । लगान चुकाने के लिए जानकी गाय बेचने की बात करता है, तब रज्जन उसे तीस रुपये देता है । यह सब वह सहानुभूतिवश करता है । कहानी में स्वातंत्र्योत्तर निम्न मध्य वर्ग का स्थित्यंकन लेखक ने कुशलता पूर्वक किया है । इस कहानी में वाजपेयी जी समय तथा स्थल ऐक्य (Unity of time and place) का निर्वाह नहीं कर सके हैं । इतना ही नहीं, कहानी में अन्य कि त्रुटियाँ भी हैं । रज्जन के लिए कहानीकार एक स्थल पर लिखता है -'सपरिवार वह वहीं रहता भी है ।---माँ का देहान्त हो चुका है ।'[1] इसी पृष्ठ पर वह आगे लिखता है - 'रज्जन माँ के साथ अकेला रहता है । विवाह अभी तक नहीं कर सका ।'[2] प्रथम उद्धरण में माँ का देहान्त हो चुका है, तो द्वितीय में वह कहाँ से आ गई ? रज्जन का विवाह अभी तक हुआ नहीं, उसके ज्येष्ठ भ्राता गाँव में रहते हैं, माँ का देहान्त हो चुका है, तब उसके अतिरिक्त और कौन है, जिसके लिए लेखक ने 'सपरिवार' शब्द का प्रथम उद्धरण में प्रयोग किया है ? यह लेखक की असावधानी का ही परिणाम है ।

रेशम के फंदे :

सेठ राजस के नौकर गोविन्द को 'गुबिन्दी' नाम से पुकारा जाना पसंद न था, परन्तु आर्थिक पराभव ने गोविन्द का नाम गुबिन्दी बना दिया है । सेठ की लड़की, सेठानी आदि से उसे अपशब्द भी सुनने पड़ते हैं । वह प्रशंसा को तरसता है । सेठ के घर में अपना अनिवार्य स्थान बनाने की उसकी अभिलाषा है । वह चाहता है कि उसके प्रति सब का व्यवहार अच्छा हो, परन्तु

1- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 69

2- वही, पृ0 69

बकना जिनका स्वभाव व अधिकार है, उनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन उसे दृष्टिगोचर नहीं होता । अन्त में वह दिन भी आता है, जब नौकरी छोड़कर अपने घर जाने के लिए वह सेठ के सामने प्रस्तुत होता है । सेठ तो हिसाब कर देते हैं, किन्तु सेठानी रेशम का फन्दा डाल देती है । वह उसे बीस रुपये देती है । नोट के वे कागज़ उसके पैर बाँध देते हैं । सेठानी के स्वभाव में आये परिवर्तन को देखकर वह सोचता है - 'क्या कभी ऐसा भी हो सकता है कि ज़हर पीते-पीते अमृत हो जाय ।'[1] उच्च वर्ग के परिवारों में नौकर की क्या स्थिति होती है, यह दिखाने का लेखक ने इस कहानी में प्रयत्न किया है । सेठानी और बहू की सहज स्त्रियोचित कोमलता शोषण पद्धति को भी समाये हुए है । कहानी का शीर्षक इस बात को व्यंजित करता है । इस कहानी में ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वाजपेयी जी की लेखनी भावुकता और बौद्धिकता के बीच द्विधा में रुकश रुक जाती है । विषम आर्थिक परिस्थिति के कारण 'सम्बन्ध' के नरायन की भाँति गुबिन्दी उभर नहीं पाया । आर्थिक विषमता का प्रथम प्रहार उसके दर्प पर होता है । अर्थाभाव उसे किस सीमा तक खोखला कर देता है तथा आत्म-सम्मान उसमें शनैः शनैः रिसता चला जाता है, वह सब लेखक ने इस कहानी में बतलाया है ।

एक आँसू खून का :

प्रस्तुत कहानी में बेरोज़गारी तथा तज्जन्य भिखारीपन की स्थिति का चित्रांकन किया गया है । यह स्थिति समाज के महाजनों की कृपा से अप्रामाणिकता में परिणत हो जाती है । सखाराम भीखमंगा है, परंतु वृद्धावस्था में मोतियाबिन्द के कारण चोरी करके उसका पुत्र रामबली कुछ चावल तथा उनमें से कुछ चावल बेचकर अनिवार्य आवश्यक वस्तुएँ लाता है, परन्तु सखाराम को यह स्वीकार्य नहीं है । भीखारी होने पर भी वह प्रामाणिक जीवन जीना चाहता है । पुत्र के चौर कर्म से वह व्यथित होता है और आघात के कारण परलोक सिधार जाता है । उसकी मृत्यु के बाद रामबली रोता है । उसे लगता है कि जैसे उसकी आँख में जो आँसू है, वह सामान्य खारे जल का नहीं, अपितु खून का है - उस खून का, जो उसके पिता के हृदय से निकला है । उसके पिता का हृदय फट गया है । प्रस्तुत कहानी में सखाराम का चरित्र बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से लेखक ने उभारा है ।

सिंहनाद :

प्रस्तुत कहानी में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी गई है । कहानी का नायक मानसिंह अर्थाभाव के कारण धन से देश-सेवा करने के लिए असमर्थ है, तथापि अपने पुत्र अभिमानसिंह को युद्ध

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 75

में भेजने की प्रतिज्ञा करता है । अभिमानसिंह बालोंग के युद्ध में वीरगति पाता है, यह समाचार उसे सत्य प्रतीत नहीं होते, उसे विश्वास है कि उसका पुत्र एक दिन अवश्य वापस लौटेगा । पुत्र की मृत्यु के समाचार पाने के बाद भी वह अपनी पत्नी को नर्सिंग के लिए भेजना चाहता है । वृद्धावस्था के कारण उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है । कहानी के अंत में उन्मादावस्था में वह प्रलाप करने लगता है । और जो सिंह आजीवन सिंहनाद करता रहा, वह शनैः शनैः सदा के लिए मौन हो जाता है । मानसिंह सन् 1962 ई० के चीन के आक्रमण के समय अपना परिवार तक उत्सर्ग करके अपने देश-प्रेम का परिचय देता है ।

परीक्षा के वे दिन :

मनुष्य चाहे कितने ही प्रयत्न क्यों न करे, ईश्वर की इच्छा के अनुसार ही संसार में सब कुछ होता रहता है । इस कहानी में इसी सत्य का निरूपण किया गया है । अतुल हॉस्टेल में रहता है । वह लॉ फायनल की परीक्षा देने वाला है । परीक्षा के दिनों में एक रात्रि के समय एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति आकर उसके साथ तीन-चार दिन ठहरने का प्रस्ताव करवता है । दूसरे दिन परीक्षा होने के कारण वह उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं करता । वह व्यक्ति शीघ्र चला जाता है, परन्तु अतुल को देर तक नींद नहीं आती । परीक्षा-फल निकलने पर वह अनुत्तीर्ण जाहिर होता है । वह फेल हो जाने के कारण व्यथित नहीं होता, परन्तु उसी संवाद-पत्र में उस व्यक्ति के देहान्त-दण्ड के जो समाचार व फोटो छपा है, इस बात से उसे पीड़ा होती है । आज वह अपने नगर का लब्धप्रतिष्ठ वकील बन गया है, तथापि सुषुप्तावस्था में परीक्षा के उन दिनों में आये उस अपरिचित व्यक्ति का वह स्वप्न देखता है । स्वातंत्र्य आन्दोलन के दिनों में भी स्वार्थ तथा कायरता वश उस अपरिचित क्रांतिकारी को शरण देने में वह असमर्थ हो जाता है और उसके मृत्यु-दण्ड के लिए वह उत्तरदायी है, इस बात को वह कदापि नहीं भूल सकता ।

एक अगर :

'उपहार' कहानी की तरह इस कहानी में भी यह बतलाया गया है कि पुराना प्रेमी अपनी प्रेयसी के दाम्पत्यजीवन के क्षेत्र में एक बार प्रवेश करता है, और नारी-हृदय को विश्लेषण-मंथन की धारा में प्रवाहित कर देता है । ऐसे स्थल पर वाजपेयी जी की नारी शरीर तथा आत्मा के बंधन के द्वैत के आवर्त में स्थल०पर०एण०वाजपेयि०जी०की०नारी०शरीर०एण०तथा०आत्मा०के०बंधन०के पड़कर भी अंतत: शारीरिक बंधन की सामाजिकता से पराभूत हो जाती है । पीछे भी यह कहा जा चुका है कि विद्रोह लेखक के स्वभाव का अंग नहीं है ।

प्रस्तुत कहानी में प्रभाकर अपना नाम बदलकर होटल में ठहरता है । राधाकांत उसी होटल के मैनेजर से उसके सम्बंध में पूछताछ करता है । होटल से भागकर प्रभाकर अपने मित्र प्रोफेसर विभूति-भूषण के यहाँ ठहर जाता है । सी.आई.डी. को भी उसे ढूँढ़ने में निष्फलता प्राप्त होती है । ट्रेन में प्रभाकर प्रभा की याद में खो जाता है । प्रभा अब विवाहित है । उसके बच्चे भी हैं, तथापि वह मानता है कि वह केवल उसकी है । स्वेश की समस्याओं को लेकर वह छिपा-छिपा भागा फिरता है । प्रभा के पति एक केस में सरकार की ओर से पैरवी करने के लिए लाहौर जा रहे हैं । उनके पूछने पर प्रभा भी उनके साथ जाने के लिए इस प्रलोभन से तैयार हो जाती है कि प्रभाकर राजद्रोही है, कितने दिनों से उसने उसे देखा नहीं, शायद देखने को मिल जाय । जिस डब्बे में इलाहाबाद से वह सपरिवार बैठती है, उसी डब्बे में प्रभाकर है, किन्तु दोनों कुछ भी बातचीत नहीं कर सकते । प्रभा मानती है कि उसने प्रभाकर के साथ विश्वासघात किया है, अत: वह राजद्रोही बना है । प्रभाकर के कानपुर उतर जाने के पश्चात् वह अपने पति को उसका परिचय देते हुए कहती है कि अभी जो गये वे केस के अभियुक्त श्री प्रभाकर थे । प्रभाकर के पकड़े जाने पर प्रयत्न करने पर भी वह उसे मुक्त नहीं करा सकती ।

लेखक प्रेम के आत्मिक स्वरूप का पक्षपाती है, अत: देह के तथा आत्मा के बंधन को वह परस्पर मुक्त समझता है । इस कहानी की प्रभा के आत्म-विश्लेषण में यह बात उभर कर आती है । उसके मानसिक द्वन्द्व को लेखक ने पूरी सजीवता तथा कुशलता के साथ उभारा है ।

प्रयाण :

इस कहानी में जाह्नवी जीवनसिंह को आत्मसमर्पण कर देती है, परन्तु वह आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहता है । भारतीय राजनीतिक जीवन-विषयक सही बातें प्रस्तुत करने के लिए उसके स्कॉटलैंड जाने के बाद वह अस्वस्थ हो जाती है । उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन इतना गिरता जा रहा है कि उसकी छोटी बहन कमला अपने पति को लिखती है कि जाह्नवी अब दो-चार महीने की मेहमान है । जीवन एक पत्र में मृणाल के पति माधव बाबू को लिखता है कि सभाओं में वह अपने विचार व्यक्त कर रहा है, इससे उसकी प्रतिष्ठा तो बढ़ रही है, किन्तु लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखने लगे हैं ; परिणामस्वरूप भारत वापस लौटने के लिए उसे पासपोर्ट भी नहीं मिल रहा है । यह ज्ञात होते ही निराश जाह्नवी को चित्त-विभ्रम हो जाता है । अंतत: वह अपनी इहलीला

समाप्त कर देती है । वह एक ऐसी नारी है जो अपने प्रियतम के वियोग में तड़प-तड़प कर प्रयाण कर देती है । यह कहानी पत्र शैली में लिखी गई है ।

निंदिया लागी :

जिन कहानियों से वाजपेयी जी को अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, उनमें 'मिठाई वाला' के पश्चात् इस अमर कहानी की भी गणना होती है । इसका सम्बन्ध उन श्रमिकों के जीवन से है, जिनसे हम यंत्रवत् काम लेते हैं और कार्य में तनिक भी मन्दता सहन नहीं करते । वर्तमान सभ्यता की यह निर्दयता ही है, जो समझती है कि जिसे मज़दूरी दी जाती है, वह पूर्णतया खरीद लिया गया है । उसके व्यक्तिगत जीवन, सुख-दुख, वेदना आदि से जैसे हमारा कोई सरोकार ही नहीं है । हमें तो उसके काम से काम है ।

उपर्युक्त सभी बातों का समावेश प्रथम पुरुष में लिखी गई प्रस्तुत कहानी में किया गया है । कालेज से लौटते समय बेनीमाधव प्रतिदिन नये बंगले को देखने जाता है । मिस्त्री तथा मज़दूरों को वह बहुत डाँटता है, तथापि उसके हृदय में उनके प्रति सहानुभूति है । जिस दिन छत की कुटाई होती है, उसी दिन शाम को जीने की दीवार टूट पड़ती है और दो मज़दूर उसमें दबकर मर जाते हैं । उनमें एक नवविवाहिता मज़दूरनी पत्नी भी थी । यह बड़ी कोकिल-कण्ठी सुंदरी थी, जिसके गाने से बेनीमाधव एक बार प्रभावित हुआ था । उसकी ओर से पत्नी के पति मुन्नू को प्रसन्न रखने के लिए तथा उसके बच्चे के पालन-पोषण के हेतु दस रुपये प्रतिमास दिया जाने लगता है । बेनीमाधव की ओर से दी जाने वाली यह आर्थिक सहायता वह संवेदना और सहानुभूति है, जो लेखक की दृष्टि से श्रमिक वर्ग को प्राप्त होनी चाहिए । पत्नी की मृत्यु की घटना से लेखक के हृदय पर भयंकर आघात लगता है, फलत: उसी दिन से वह (बेनीमाधव) अस्वस्थ हो जाता है । उसे नया बंगला रहने के लिए दियाजाता है । रात्रि के घोर सन्नाटे में उसे वे सुमधुर क्षण याद आते हैं, जब उसने मज़दूरनियों को गाते हुए सुना था । इस कहानी में करुण रस का परिपाक सुचारुरूप से हुआ है । मानवी संवेदना सर्वत्र फूट पड़ी है । बेनीबाबू का चरित्रचित्रण इतना स्वाभाविक और प्रभाव
महत्त्वपूर्ण हुआ है कि पाठक अभिभूत होकर रह जाते हैं । उनके बाह्य और आंतरिक स्वरूप के चित्रण में कठोरता और स्नेह की कर्तव्यपरायणता और मानवता के विश्लेषण के लिए सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया गया है । इस कहानी में उपसंहार भी है । इसके अंतर्गत अंतर्कथा की योजना भी की गई है । प्रस्तुत कहानी का अनुवाद भारत की अनेक भाषाओं में हो चुका है ।

ट्रेन पर :

ट्रेन पर यात्रा करते हुए राधाकुमुद और सुनंदा की सुखद यात्रा में एक आगंतुक के अचानक प्रवेश से व्याघात पहुँचता है । वह सुनंदा का पूर्व परिचित, संभवत: प्रेमी, है, । वह अत्यंत शिष्ट है, अत: राधाकुमद उससे बहुत ही प्रभावित होता है । अपनी पत्नी से जब उसके परिचय का भेद खुलता है, तब तक वह जा चुका होता है । सब कुछ ज्ञात होने के पश्चात् राधे ईर्ष्यालु होने के विपरीत सुनन्दा को आश्वस्त करते हुए कहता है कि यदि वह जाना चाहे, तो उस व्यक्ति को खोजकर वह स्वयं उसे सौंप सकता है । राधाकुमुद जहाँ इतना उदार है, वहाँ पतिव्रता सुनंदा ने भी अतीत की बातों का मोह छोड़कर अपने आपको नये जीवन के अनुकूल बना दिया है । आगंतुक भी सुनन्दा के सुखी दाम्पत्यजीवन को अस्तव्यस्त करना नहीं चाहता । इस कहानी में पतिपरायणा सुनन्दा के त्याग की कथा कही गई है । प्रस्तुत कहानी के तीनों पात्र आदर्श हैं । गार्हस्थ्य एवं समाज के लिए वे अनुकरणीय हैं । तीनों की व्यक्तिगत विशेषताओं को लेखक ने बलात्मक ढंग से उद्घाटित किया है । 'उपहार' तथा 'एक अपर' कहानी में देख चुके हैं कि विद्रोह वाजपेयी जी के स्वभाव का अंग नहीं है । इस कहानी में की परिणति भी इससे भिन्न नहीं है । पुरुष का औदार्य और नारी की सामाजिकता उनके दाम्पत्यजीवन के बंधन को दृढतर कर देती है ।

अपमान का भाग्य :

रोमांस वाजपेयी जी की प्रारंभिक कहानियों का प्रमुख कथ्य था । प्रेम का उदय, इस स्थिति में, प्राय: प्रथम दर्शन में (Love at the first sight) ही हुआ है । प्रस्तुत प्रेम -कहानी में स्त्री-पुरुष के प्रेम तथा विवाह पर प्रकाश डालते हुए बतलाया गया है कि मनुष्यता के मूल में नारीत्व की ज्वलंत पूतात्मा है । नरेन्द्र अनुभव करता है कि बिना स्त्री के पुरुष का जीवन अपूर्ण है । वह मित्र का नाम देकर अपनी ही कहानी कहता है । विद्यार्थी अवस्था में अध्ययन करने वह नित्य घूमने जाता है । एक बार वहाँ पुस्तक भूल जाने पर दूसरे दिन एक नारी पुस्तक लौटाने आती है, तब उससे परिचय होता है । वह युवती उसकी टांग के विषय में पूछती है, तो वह कहता है कि मामा के यहाँ जाने पर कुंद नामक लड़की के प्रति वह आकृष्ट होता है, किन्तु वह उसका प्रेम स्वीकार नहीं करती ।इस घटना से नारी के प्रति उसे घृणा हो जाती है । तदनंतर वह दत्तचित्त होकर अध्ययन करता है । एक बार मित्र के सिलसिले में दिल्ली से लौटते समय अचानक उसकी दृष्टि बगल के डब्बे में बैठी कुंद पर जाती है । वह जान-बूझकर तुरंत ट्रेन से गिरकर लंगड़ा हो जाता है ।

फूलबाग़ में उसकी कहानी सुनने वाली युवती की प्रार्थना करने पर वह उससे विवाह करता है। अपनी नवभार्या के कुंद के विषय में पूछने पर वह कुछ भी नहीं बतलाता। उसकी नवोढ़ा उसे अलबम देखने के लिए देती है, तब प्रथम और आगे वाले चित्रों से उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी और कोई नहीं, कुंद ही है। प्रथम अपमानित होने पर और बाद में 'लंगड़ा हो जाने पर ही उसे कुंद जैसी सुन्दर पत्नी मिली है ऐसा वह मानता है और इसे अपमान का भाग्य समझता है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने पूर्व पूर्वदीप्ति की बार-बार सहायता ली है। उसने इतनी कुशलता से कथा को प्रस्तुत किया है कि अंत तक पाठक का कुतूहल बना रहता है।

अपराधी के पत्र :

प्रस्तुत कहानी में यह बतलाया गया है कि प्रेमी अपनी प्रेमिका के स्नेह-पाश में बँधकर उसका अपराधी हो जाता है। उसकी रसमयी निद्रा में अपना पत्र कहीं व्याघात उपस्थित न कर दे, यह सोचकर बिहारी रजनी को पत्र तो लिखता है, परंतु उनका उत्तर नहीं भेजता ; अत: उन पत्रों को अपनी डायरी में रखता जाता है। रजनी को जेल से लिखे गये दोनों पत्रों में वह अपने अतीत के संस्मरण लिखता है, परन्तु अपने पास ही रखता है। यह कहानी पत्र शैली में लिखी गई है, जो अत्यंत उपयुक्त जान पड़ती है।

झाँकी :

अपने मित्र की बहनों से परिचय होते ही प्रेमांकुर उर्मिला के प्रति आकर्षित होता है और तब से अनमना-सा रहता है। एक बार वह अपने मित्र विनय के साथ मंदिर में जाता है, वहाँ देव-झाँकी के साथ अपनी प्रेयसी के रूप की झाँकी पाता है। उर्मिला के गले में वह माला डालना चाहता है, परन्तु सामाजिक रूढ़ियाँ उसे ऐसा नहीं करने देतीं, तथापि उसके प्रति प्रेमांकुर की भावना पूर्ववत् बनी रहती है। पिता उसे विवाह के लिए पूछते हैं, तो वह कुछ भी उत्तर नहीं देता। उर्मिला के दादा ने एक विधवा से विवाह किया था, हालांकि उससे कोई संतान नहीं हुई। केवल इस कारण से उर्मिला के साथ प्रेमांकुर के पिता विवाह नहीं होने देते। उनके आदेशानुसार वह घर छोड़ देता है। उनकी मृत्यु के पश्चात् वह अपनी माता को झाँकी दिखाने ले जाता है और उर्मिला को दिखाते हुए कहता है कि यह भी एक झाँकी है। परन्तु अपने प्रयत्नों में निष्फलता मिलने पर अंतत: वह उन्मादावस्था को प्राप्त होता है। वह उर्मिला के साथ और उर्मिला की बहन करुणा उसके साथ प्रेम में है, किन्तु करुणा अपना प्रेम प्रकट नहीं करती, इतना ही नहीं अपनी

बहन का प्रेमांकुर के साथ अलौकिक विवाह कराके अपने औदार्य एवं त्यागवृत्ति का परिचय देती है। प्रेम कभी विकृत नहीं होता। लोग उसको समझने में भ्रांति कर सकते हैं, यह बतलाने का लेखक ने इस कहानी में प्रयास किया है। इस कहानी का प्रमुख कथ्य रोमांस ही है। प्रेमांकुर और उर्मिला के बीच प्रथम दृष्टि का प्रेम है। इस कहानी में प्रणय-त्रिकोण का आयोजन लेखक ने कुशलतापूर्वक किया है।

त्याग :

वाजपेयी जी को प्रेम का स्वस्थ रूप मान्य है। उनकी प्रेम -सम्बंधी मान्यता में प्रतिहिंसा को कोई स्थान नहीं है। प्रस्तुत कहानी प्रेम के आदर्श का निरूपण करती है। यह एक प्रेयसी के भव्य त्याग की कथा है। इसमें बतलाया गया है कि प्रेम माँगने की वस्तु नहीं है। वह माँगने पर मिलता भी नहीं है। अलकनंदा को अपने पति शिवकुमार का स्नेह प्राप्त है, तथापि अस्पताल में विमला के समक्ष वह अपने प्राप्त दाम्पत्यजीवन के सम्बन्ध में असंतोष प्रकट करती है। विमला भी शिवकुमार को चाहती है। उसे जब यह ज्ञात होता है कि अलकनंदा अपने प्रेमी की पत्नी है, वह चुपचाप हट जाती है। संसार में प्राय: देखा जाता है कि एक साथ सब प्राणी सुखी नहीं हो सकते। एक के त्याग के कारण दूसरा सुखी होता है। अलकनंदा के सुख के लिए विमला अपना सुख छोड़ देती है। उसके त्याग ने ही उसे महान् बना दिया है। इस कहानी में बच्चों और फेरीवाले के प्रसंग का कुछ भी महत्त्व नहीं है। यह प्रसंग कहानी की गति में सहायक नहीं, अपितु अवरोधक सिद्ध होता है।

हत्यारा :

इस कहानी में एक साहसी नवयुवक विपिन की करुण कथा है। उसका विवाह एक विधवा की लड़की मैना के साथ होता है। मैना की आयु बारह वर्ष की थी, तब उसका प्रथम विवाह हुआ था। परंतु ससुराल जाने पर, वह विधवा की संतान है यह बात ज्ञात होते ही, उसका त्याग कर दिया जाता है। नदी में पड़कर वह आत्महत्या का प्रयास करती है, किन्तु एक वेश्या उसे बचाकर अपने यहाँ ले जाती है। मैना की युवावस्था में विपिन का उससे परिचय होता है। अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने के लिए वह तैयार होती है, तब अपनी पत्नी के रूप में वह उसको स्वीकार करता है। अन्यत्र विवाह करने से उसके इन्कार करने पर उसे घर से पृथक् कर दिया जाता है। विवाहोपरांत मैना को सुखी करने के लिए वह सभी प्रयत्न करता है, किन्तु विषम आर्थिक

परिस्थिति में वह अपने मित्रों की सहानुभूति भी खो बैठता है । भोजन करने के सम्बन्ध में एक बार विपिन के असत्य बोलने पर अफ़ीम खाकर वह आत्महत्या करती है । कहानी के अंत में रमेश, जिसकी मैना परित्यक्ता थी, विपिन को अपनी पत्नी का हत्यारा कहता है, परन्तु मैना का हत्यारा तो स्वयं रमेश था । यदि उसने समाज का प्रतिकार करके विधवा की पुत्री होने पर भी मैना का त्याग न किया होता, तो आत्महत्या का दिन कभी न आता । इस कहानी में तत्कालीन समाज ~~तत्कालीन~~ समाज का यथार्थ चित्रण करते हुए यह बतलाया गया है कि हमारे समाज की अंधी दुनिया आज पूर्वापर आधारित रहकर विनाश की ओर जा रही है । जीवन के विकास-क्रम में आत्मीय उत्कर्ष का उसके आगे कोई मूल्य नहीं रह गया ।'[1] वस्तुत: समाज-सुधार सम्बंधी यह एक उत्तम कहानी है।

राजपथ :

अनामिका को खोजता हुआ उमानाथ घनश्याम के यहाँ जाता है । वहाँ से उसके जाने के अनन्तर अनामिका भी उमानाथ को खोजती हुई घनश्याम के यहाँ जाती है । वहाँ उमानाथ नहीं मिलने पर घनश्याम के यहाँ से जाने से पूर्व वह उसे सूचना करती है कि यदि उमानाथ आये, तो उसे अपने आने के विषय में कुछ भी न बताया जाय । विचारलीन वह अपनी मोटर हाँकती हुई जाती है, तो दुर्घटना ~~एक्सिडेन्ट~~ कर बैठती है । वहाँ सहसा उसे उमानाथ मिल जाता है । नये उपन्यास के एडवान्स-रूप में उसे जो रुपये मिले हैं, उससे कुछ बनवाने के लिए दोनों सराफा चौक जाते हैं । वहाँ जाते समय वह स्वयं ही कहती है कि घनश्याम के यहाँ भी वह उसे खोजने गई थी । उमानाथ को विवाह-संतति आदि में आस्था नहीं है । उसके विचार क्रांतिकारी हैं । वह समाज में क्रांति करना चाहता है, परन्तु अनामिका उसके विचारों के साथ सहमत नहीं है । दोनों परस्पर बहुत चाहते हैं । अंत में उमानाथ के विचारों में परिवर्तन आता है, तब वह विवाह के लिए राजपथ को ही अपनाता है । इस कहानी में दोनों का मनोविश्लेषण लेखक ने कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है । पात्रों का पूर्व - परिचय दिये बिना ही आवश्यकतावश लेखक मालती जैसे पात्र का निर्माण कर लेता है । तत्कालीन समाज का चित्रण करते हुए लेखक ने यह बतलाया है कि अनामिका की जाति में नारी को इतना भी स्वातंत्र्य नहीं था कि वह बाहर जा सके । प्रस्तुत कहानी में अनामिका के पात्र के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि वाजपेयी जी की नारी ने समाज के प्रति विद्रोह का उपक्रम किया है । आन्दोलन करना उसे स्वीकार है, पर तिरस्कार सहना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है । वाजपेयी जी की नारी

1- हिलोर, पृ0 142

दुस्साहसी बननने में संकोच करती है, फिर चाहे वह दुस्साहस उसके लिए वीरता का विपर्याय ही क्यों न हो । इसी बात को अनामिका स्पष्ट करती है ।

होटल का कमरा :

प्रस्तुत कहानी में होटल का एक कमरा अपनी वेदना व्यक्त करता है । पूर्वदीप्ति की सहायता से तीन घटनाओं का आयोजन लेखक ने किया है । प्रथम घटना इसी कमरे में अतीत में घटी थी । वर्षों से बिछुड़े रंजना और सुनील को होटल का यही कमरा मिला देता है । द्वितीय घटना में भारत माता की परतंत्रता की शृंखला तोड़ने वालों का सरदार भी इसी कमरे में आता व बला जाता है । तदनंतर पुलिसवान आती है । तृतीय घटना में विश्वनाथ की आँखें झपकते ही बेकारी के कारण वीरेश्वर उसकी जेब से सौ का एक नोट ले लेता है । जागने पर विश्वनाथ उसे एक और नोट देता है । उसके औदार्य से वीरेश्वर का अहंकार चूर-चूर हो जाता है और विवशता के कारण अपनाया गया चोरी का पेशा वह सदा के लिए छोड़ देता है । आत्म-कथात्मक शैली में लिखी गई इस कहानी के पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए पर्याप्त अवकाश नहीं रहा है, तथापि विश्वनाथ का उदात्त चरित्रांकन इसमें हुआ है । वाजपेयी जी कभी-कभी अपने उपन्यास निश्चित समय में पूर्ण करने के लिए होटल में ठहरते हैं, इसका प्रभाव प्रस्तुत कहानी पर स्पष्ट दिखाई देता है । वाजपेयी जी मानते हैं कि लेखक कृतिकार की दृष्टि से तभी सफल होता है जब उसका अनुभव सर्वथा व्यक्तिगत होता है ।[1] स्वानुभूति के बिना लिखा गया साहित्य कभी सजीव और सप्राण नहीं हो सकता ।[2] उनकी अनुभूति की यह दृष्टि इस कहानी में मिलती है । वस्तुत: होटल का कमरा तो मूक पात्र है । उसने अपनी आँखों से जमाने को गुजरते हुए देखा है तथा व्यवहार और आचरण में परखा है । उसने आज के मनुष्य और समाज के भीतरी यथार्थ को बहुत निकट से जा देखा -समझा है । होटल का कमरा समाज के पीड़ित, त्रस्त और अतृप्त मानव के अंतर्मन की का दर्पण है । यह कमरा उस निर्धन, आर्थिक विवशता से परवश वर्ग का पात्र है, जो मौन रहता है, इसी लिए किराये पर उठता है । उसका अपना कुछ भी व्यक्तित्व नहीं । वह केवल उपयोग के लिए है जिसमें उत्सर्ग का अंश भी नहीं है । वह केवल भूल जाने के लिए है ।

कला की दृष्टि :

विवाहोपरांत शम्पा अपने पति के साथ जाकू बढ़ने निकलती है, तब विपिन से उसकी भेंट

1- ज्ञानोदय, दिसम्बर 1968, पृ0 131

2- वही, ,, ,, पृ0 132

होती है । वहाँ पत्थर की पटरी पर कविता की पंक्तियाँ लिखकर वह उसके प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करती है । कुछ दिनों के पश्चात् पुन: भेंट होने पर वह उसे अपने यहाँ चाय के लिए निमंत्रित करती है, किन्तु वह उसके यहाँ नहीं जाता । उसके घर जाकर वह एक चित्र खरीदना चाहती है, किन्तु वह उसे बेचने को तैयार नहीं है । अत: उसे अपमानितकर के वह चली जाती है और प्रतिशोध की अग्नि में दहकती रहती है । दिल्ली की चित्र-प्रदर्शनी में अपने पति राजा तथा प्रो० शर्मा के कहने पर भी वह विपिन के चित्रों को प्रदर्शनी में पहले स्थान नहीं देती, किन्तु बाद में अपनी गलती मालूम होने पर स्थान देती है । प्रदर्शन देखने पर राष्ट्रपति उसके ही चित्र को पसंद करते हैं । एग्जिक्यूटिव कमेटी उसे 1000)- रुपये का पुरस्कार[1] देने का निर्णय करती है । राष्ट्रपति उसके दर्शन करना चाहते हैं, किन्तु कहानी के अंत में देखा जाता है कि वह उन्मादावस्था को प्राप्त होता है । कलाकार होने के नाते वह स्वतंत्र रहना ही चाहता है, इसीलिए वह शम्पा जैसी सुन्दरियों की उपेक्षा करता है । शम्पा में तथा राष्ट्र में उसकी कला को परखने वाली दृष्टि न थी, फलत: वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है । इसी शीर्षक से 'बात एक नाते की' कहानी संग्रह में पंत संकलित कहानी में पुरस्कार की रकम 5000)- रुपया है ।[2]

पेन्सिल-स्केच :

अपनी पत्नी कुंदन किसी अन्य को चाहती थी, इस बात की जानकारी विवाहोपरान्त प्राप्त होने पर जगदीश को अथाह वेदना होती है । इसी के कारण वह अपना स्वास्थ्य खो बैठता है । उसका एक पेंसिल-स्केच कुंदन बनाती है । इसके तीसरे ही दिन जगदीश की अचानक मृत्यु होती है । पच्चीस वर्ष बाद कुंदन की पुत्री कल्याणी के विवाह की बात एक प्रोफेसर के साथ चलती है, परन्तु पुत्र शारदाचरण चाहता है कि अपनी बहन का विवाह डाक्टर के साथ हो । अचानक कल्याणी की सखी यमुना से कुंदन को पता चलता है कि डाक्टर के साथ विवाह करना कल्याणी को स्वीकार नहीं है, तथापि शारदाचरण कल्याणी का विवाह डाक्टर के साथ ही निश्चित करता है । विवाह के तीन दिन पूर्व पुराने ट्रंक से गहना निकालते समय कुंदन को वह पूर्व पेंसिल-स्केच, जो उसने बनाया था, मिलता है । वह शीघ्र अपने पुत्र को बुलाकर कहती है कि इस विवाह से कल्याणी सुखी नहीं होगी । वह जानती है कि अपनी इच्छानुसार विवाह न होने के कारण जिस दुख-वैधव्य को उसे भोगना पड़ रहा है, यही स्थिति अभीष्ट वर न पाने पर अपनी पुत्री को

1- दे. मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ० 64 ।

2- दे. बात एक नाते की, पृ० 125

की भी हो सकती है । माँ के आदेशानुसार डाक्टर की बरात तार से रोक दी जाती है और कल्याणी का विवाह प्रोफेसर के साथ तय कर दियाजाता है । कहानी के अंत में संतोष के साथ कुंदन की मृत्यु होती है । प्रस्तुत कहानी में परिस्थितियों की मार्मिकता सीधे ढंग से हृदयंगम कराई गई है । इस कहानी का अनुवाद गुजराती में हो चुका है ।

स्वयंवर :

राजीवलोचन बम्बई जा रहा है, अत: उसे छोड़ने के लिए शकुन्तला स्टेशन जाना चाहती है, किन्तु वह उसे आधे रास्ते से यह कहकर लौटा देता है कि देर हो जायगी । घर पहुँचने पर पिता जी के गुस्सा हो जाने पर वह घर छोड़कर राजीव के साथ बम्बई जाना चाहती है । शकुन्तला के पिता अपने पुत्र डी० की लखनऊ रेडियो स्टेशन में नियुक्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, किंतु उस पद पर राजीव की नियुक्ति होने जा रही है, यह ज्ञात होते ही स्टेशन पर जाकर वे दोनों को अपने यहाँ बुला लाते हैं । वह ऐसा समय था, जब सन् 1942 ई० के स्वातंत्र्य आन्दोलन में भाग लेने वाले को नौकरी के लिए सबसे पहले पसंद कियाजाता था ।

आत्मरस :

यह कहानी 'खाली बोतल' (1950) कहानी-संग्रह में 'फरना' शीर्षक से प्रकाशित हो चुकी है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में शरणार्थियों की स्थिति का यथार्थ वर्णन इसमें किया गया है । समय है 17 सितम्बर, सन् 1947 ई० । शरणार्थियों के लिए जो कुछ कार्य किया गया है, उसका निरीक्षण करने हेतु केशव अपने मित्र सतीश को, जो नेता है, प्रार्थना करता है । शरणार्थियों के कैम्प में एक नवयुवती को देखकर सतीश के स्मृतिपट पर अतीत के कुछ चित्र घूमने लगते हैं । एक बार शराब के नशे में धुत केशव उसे रास्ते में मिल जाता है । वह सतीश को अलका दर के यहाँ ले जाता है । वहाँ अलका की बारह वर्ष की पुत्री हीरन की बातों से सतीश प्रभावित होता है । उसी लड़की को आज शरणार्थी-कैम्प में देखकर सतीश की आँखों में आँसू आ जाते हैं । उसके नयनों से जैसे आत्मा का रस टपकने लगता है, क्योंकि उस लड़की की चपलता, ज्ञान, सौंदर्य आदि के कारण उसके प्रति एक आकर्षण-सा सतीश को था, परन्तु उसे ऐसी दयनीय अवस्था में देखकर वह पीड़ित होता है । यह सतीश जनता का मान्य नेता है, तथापि इस विषय में कुछ भी नहीं कर सकता ।

प्रस्तुत कहानी में कुछ परिवर्तन अवश्य किये गये हैं, परन्तु इसके बावजूद भी इसे सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता । एक स्थल तो ऐसा प्राप्त होता है, जहाँ दो वाक्यों के बीच किसी भी प्रकार का सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता । यथा -

'केशव मानो सतीश को उत्तेजित करना चाहता था । वह हाथ से छूट रही है, छूट रही है, वह अवलम्ब खो रहा है, खो रहा है ।'[1]

इस कहानी में हीरन के मुँह से जो विदग्धतापूर्ण संवाद निःसृत होते हैं, वे उसकी आयु को दृष्टि में रखने पर अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं । निर्बल सबलों के लिए सदा भोज्य बनता आया है, यह लेखक ने लाल तथा बिल्ली का प्रसंग दे कर प्रतिपादित किया है ।

लिली :

प्रस्तुत कहानी में हिन्दी के एक श्रेष्ठ कवि कमलाशंकर के विवशतापूर्ण जीवन का परिचय दिया गया है । पुरस्कार राशि के लिए वह जेब में सवा रुपया लेकर घर से निकलता है । मकान का किराया भी विषम आर्थिक परिस्थिति के कारण वह दे नहीं सका है । अतः वह चिंतित है, तथापि एक पुराना मित्र मिल जाने पर वह उसे होटल में ले जाता है । वहाँ कुछ और मित्र भी मिल जाते हैं ।सबके लिए वह चाय-टोस्ट का आदेश देता है । आर्डर देते समय वह अपनी जेब का भी ध्यान नहीं रखता । उसका एक मित्र प्रोफेसर होने पर भी अपनी असभ्यता का परिचय देता है । इसी होटल में बैठी कवि की एक प्रशंसक लिली के लिए यह असह्य हो जाता है । वह कवि की आर्थिक स्थिति से सर्वथा परिचित है, अतः कवि के मित्र उसे चाय के लिए निमंत्रित करके जब बाहर चले जाते हैं, तब वह भी उनके साथ जाकर कवि के बिल के डेढ़ रुपये का पेमेण्ट कर देती है । प्रोफेसर के प्रति पंक्तियाँ लिखकर लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि अपने गरीब मित्रों का खाने-पीनेवाले तथा असभ्य व्यवहार करने पर भी अपने को सभ्य मानने वाले प्रोफेसर जैसे चरित्र आज भी हमारे समाज में विद्यमान है, परन्तु लिली जैसी नारियाँ दुर्लभ हैं ।

प्रेमलता :

निष्फल प्रेम की यह एक कहानी है । लेखक रेल -दुर्घटना का दृश्य देखता है, तो उस रात उसे नींद नहीं आती । प्रातः काल पुलिस-स्टेशन जाने से पता चलता है कि उस व्यक्ति की, जो दुर्घटना का शिकार हो गया था, मृत्यु हो गई है । मृतक की जेब से प्राप्त डायरी, चिट्ठियाँ,

---

1- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 126

फोटो आदि लेखक देखता है । लता के पत्र से यह जानकारी प्राप्त होती है कि प्रेम के साथ उसका दैहिक सम्बंध था और वह उससे विवाह करना चाहती थी, परन्तु बी० ए० होने के बाद चार-एट-ला के लिए वह इंग्लैंड चला जाता है । पिता की मृत्यु पर वह आता है, तब पता चलता है कि लता माँ बनने वाली थी, अत: कलंक से बचने के लिए उसके पिता उसे माघ मेले में छोड़ आते हैं । बहुत चाहने पर भी वह लता को चिट्ठी नहीं भेज सकता। ढूँढने पर भी लता नहीं मिलती, तब पागल हो जाता है और रेल-दुर्घटना में उसकी मृत्यु होती है । अंत में अपने प्रेम के विषय में पागल लता लेखक को पूछती है, पर वह कुछ उत्तर नहीं दे सकता । तत्कालीन समाज का इस कहानी में यथार्थ चित्रण किया गया है । उस जमाने में प्राय: प्रेम-विवाह नहीं होते थे । इस कहानी में लेखक की असावधानी के कारण अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं, जो क्षम्य नहीं कही जा सकतीं। कहानी में एक स्थान पर वाजपेयी जी लिखते हैं कि प्रेम की लाश अभी सबेरे एक ठेले के जरिये से गंगा जी में फिकवा दी गई ।"[1] और इसी कहानी के अंतिम भाग में लेखक प्रेम के अग्नि-संस्कार के सम्बंध में लिखता है ।[2] एक और गलती प्रेम की डायरी में पायी जाती है । वह 3-11-27[3] को इंग्लैंड से आता है और 15-11-27 की डायरी में उसने लिखा है -"दो बरस उसे ढूँढते हुए बीत गये ।"[4] यह कदापि संभव नहीं । प्रस्तुत कहानी में मिश्रित शैली का प्रयोग किया गया है ।

स्पर्द्धा :

दो सच्चे मित्रों की यह एक आदर्शवादी कहानी है । बाल्यावस्था ही से निवारण और बनवारी मित्र थे, तथापि रुक्का बनावटी है, ऐसा कहकर बनवारी पर निवारण जालसाजी का मुकदमा चलाता है । तबसे दोनों शत्रु बन जाते हैं । निवारण की मृत्यु हो जाने पर बनवारी सोचता है कि वह उससे आगे निकल गया । निवारण की अंत्येष्टि के बाद स्मशान से लौटते समय उसे भ्रम होता है कि वह उसे बुला रहा है । रास्ते में अचानक वह शिथिल होकर गिर जाता है और उसकी मृत्यु होती है । उसके कुरते की जेब से एक कागज़ मिलता है, जिसमें उसने वकील को लिखा है कि ज़मीन -जायदाद निवारण के बच्चों की है, ऐसा वसियतनामा किया जाय । जीवन में एक क्षण ऐसा भी आता है, जब निवारण उसे गलत समझता है और उसे अपना शत्रु मान बैठता है । वस्तुत: वह निवारण का सच्चा मित्र है । पहले तो दोनों साथ जीना-मरना चाहते थे, परन्तु मृत्यु की

1- पुष्करिणी, पृ० 200

2- वही, पृ० 212

3- वही, पृ० 208

4- वही, पृ० 211

स्पर्द्धा में निवारण आगे निकल जाता है, तो औदार्यपूर्ण वसियतनामे की इच्छा व्यक्त करके बनवारी भी पीछे नहीं रहता । यह कहानी प्रधानत: घटनामूलक है । वातावरण इसमें अंगी नहीं बनता, तथापि घटनात्मकता या वातावरण का संतुलन वाजपेयी जी की कहानियों की विशिष्टता है । इस कहानी में घटनात्मक अंश वातावरण के साथ घनपा है । वातावरण के अभाव में शायद वह वैसा प्रभाव डाल ही नहीं सकता था । वातावरण प्राय: प्रकृति-पीठिका पर निर्मित हुआ है । यदि इस कहानी की प्रकृति-पीठिका ही पढ़ी जाय, उसे हम अंगी मान लें, तो कहानी की संवेदना उत्कर्ष पर पहुँच कर सांकेतिकता में पर्यवसित हो जाती है । इस कहानी में एक दोष प्राप्त होता है । हिन्दू-धर्म में सूर्यास्त के पश्चात् अग्नि- संस्कार वर्जित माना गया है, तथापि निवारण की अंत्येष्टि क्रिया रात में ही होती है और प्रात:काल होते-होते सब अपने घर वापस लौटते हैं ।

सम्बन्ध :

इस कहानी में लेखक ने श्रमिकों की स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । इसमें यह भी दिखाया गया है कि गाँव में नम्बरदार के आदमी मजदूरों के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं । नरायन सुस्त तबियत के कारण एक दिन काम पर नहीं जाता । वह अपने मित्र तिरबेनी के यहाँ जाता है । उसकी पत्नी मायके गई है । अत: अकेले उसका जी नहीं लगता । पत्नी उसके लिए भोजन की सारी व्यवस्था करके जाती है । नरायन उसके प्रति बहुत आसक्त है । भोजनोपरांत वह अतीत में खो जाता है । मृत माता-पिता की याद आते ही उसकी आँखें भर आती हैं । तत्पश्चात् वह पुन: तिरबेनी के यहाँ जाता है । वहाँ तीन-चार मजदूर चरस पीते-पीते अपने विवशतापूर्ण जीवन की बातें करते हैं, उसी समय नम्बरदार का आदमी आकर नरायन के साथ बुरा व्यवहार करता है । यह नरायन के लिए असह्य हो जाता है । ठाकुर, जो गाँव का नम्बरदार है, के पास जाकर वह आदमी नमक-मिर्च मिलाकर नरायन के विरुद्ध फरियाद करता है । इस बात की जानकारी प्राप्त होने पर दूसरे ही दिन प्रात:काल नरायन गाँव छोड़कर चल निकलता है, तब रास्ते में ही उसे ठाकुर मिलते हैं और यह कहकर उसे रोक लेते हैं कि तुम्हारे बिना फौज में जो आदमी भेजने हैं, उनकी तादाद पूरी कैसे होगी ? शोषण का सबसे अधिक उग्र रूप श्रम के शोषण में है । नरायन श्रमिक है । एक दिन वह जमींदार के यहाँ काम पर नहीं जाता, इसके पीछे वह मार्क्सवादी चेतना नहीं है कि शोषण का आधार-काम-ही बंद करना है और हड़ताल करनी है,

प्रत्युत केवल वैयक्तिक और क्षणिक अनुभूति की अन्यमनस्कता है । ज़मींदार के आदमी को वह सुना तो देता है, किन्तु उसके मन में भय है । यह भय रोटी का नहीं, परन्तु लट्ठबाजी और गाँव की तबाही का है ; क्योंकि पहले उसने कभी संघर्ष नहीं किया है । यह रास्ता उसके लिए नितांत अपरिचित है । वह गाँव में रहना नहीं चाहता, किन्तु ठाकुर दूसरे नाते से भी उसका शोषण करना नहीं चुकते । यह दूसरा सम्बन्ध राजा-प्रजा का नहीं, बल्कि शासकीय इकाई का, अंग्रेजों का दिया हुआ है । वे उसे फ़ौज में भरती होने का आदेश देते हैं और नरायन चुप हो जाता है । वह खिन्न-मना है, पर उसके मन में कटुता नहीं है ।

आत्मघात :

अर्थ की वैषाम्यपूर्ण व्यवस्था ने समाज का कितना अहित किया है, सामाजिक चेतना को कितना रौंद डाला है, इसका अंकन भी वाजपेयी जी की कहानियों में मिलता है । प्रस्तुत कहानी में आर्थिक वैषाम्य की ही पीठिका है, जो जीवन को समूचे तौर पर विजड़ित और ह्रासोन्मुख कर देती है । उस दिन बुढ़िया से ऐसा सुनने पर कि कोई उसका सब कुछ चुरा कर ले गया, दिवाकर भगवान को कोसता है । लेखक ने बीस वर्ष पूर्व की उस वृद्धा की कहानी कहते हुए लिखा है कि उसका पति रामधन व बड़ा लड़का कामता दोनों खेती करते थे । छोटा लड़का केदार पढ़ता था । केदार का विवाह हो जाने पर वह अपनी नवभार्या के प्रति आसक्त रहता है । सन् 1919 ई० के युद्ध-ज्वर में पहले रामधन और बाद में केदार की पत्नी की मृत्यु हो जाती है । पिता की मृत्यु होते ही कामता अपनी ससुराल चला जाता है । प्रारंभ में वह माँ को पैसा भेजता रहता है, किन्तु बाद में चुप हो जाता है । केदार भी घर छोड़कर कहीं चला जाता है । दूसरे दिन दिवाकर की भेंट सिफ़लिस से पीड़ित एक व्यक्ति से होती है, जो विज्ञतापूर्ण बातें करके उससे पैसा लेकर चला जाता है । यह पीड़ित व्यक्ति तीसरे दिन मृतावस्था में पाया जाता है । उसके पास बुढ़िया का बटुआ है, किन्तु वह लेना नहीं चाहती । मृतक केदार ही है, जिसने भोगों के पीछे अपना शरीर नष्ट कर दिया है । रोग से तंग आकर ही अफ़ीम खाकर वह आत्महत्या कर लेता है । अंत में उसका एक शिष्य आकर उसका अग्निसंस्कार करना चाहता है ।

नलिनी :

यह एक प्रेम-कहानी है । नारंगी को पढ़ाने के लिए ललित बाबू जाते हैं । नारंगी की बहन नलिनी ललित बाबू को चाहती है, परन्तु विधवा होने के कारण वह अपना प्रेम अभिव्यक्त नहीं कर सकती । पिता जी का तार आने से अपने गाँव जाना पड़ेगा, यह बतलाने के लिए ललित बाबू

नलिनी के यहाँ जाते हैं । वे उसे यह भी कहते हैं कि माँ उनका विवाह एक जगह पक्का करना चाहती है ; किन्तु ललित को यह स्वीकार्य नहीं । नलिनी उन्हें अन्यत्र विवाह करने के लिए समझाती तथा अनुरोध करती है । कुछ दिनों के पश्चात् भयंकर रूप धारण करने पर महामारी नलिनी को ग्रस लेती है । उसने ललित बाबू को जो अंतिम पत्र लिखा था, उसमें अपनी छोटी बहन के साथ विवाह करने के लिए वह उन्हें प्रार्थना करती है । नलिनी की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए वे नारंगी का पाणिग्रहण करते हैं और सुख से रहते हैं । अंत में उनकी मृत्यु होती है । जो जायदाद वे छोड़ गये हैं उसमें से एक लाख रुपये नलिनी की स्मृति में केवल 'नलिनी गर्ल्स-हाईस्कूल' के लिए है । नलिनी के साथ उनका पवित्र सम्बंध था । उनके प्रेम में कहीं भी कलुषा नहीं था । 'त्याग' तथा 'तारा : एक प्रेरणा' की तरह यह कहानी भी प्रेम के आदर्श का निरूपण करती है ।

मौती :

'अन्याय', 'परीक्षा' तथा 'पुनर्विवाह' आदि कहानियों की तरह प्रस्तुत कहानी में भी कौतूकपूर्ण षाड्यंत्र के माध्यम से ही कथावस्तु बनती है । अपने साहू रामेश्वर के पत्र आने पर मौतीबाबू बड़े दिनों की छुट्टियों में उनके यहाँ जाते हैं । वे अपनी पत्नी श्यामा को बहुत ही चाहते हैं । उसके बिना रहना उनके लिए असंभव है । अतः अपनी वृद्धा माँ के अस्वास्थ्य का बहाना करके वे कभी उसे नैहर नहीं भेजते । एक अवसर पर भेजते हैं, तब रामेश्वर अपनी पत्नी रामा की सगर्भावस्था के अंतिम दिनों में उसे अपने यहाँ ले जाते हैं । मौतीबाबू भी वहाँ जाते हैं । वहाँ से पहले मौतीबाबू को और बाद में श्यामा को रामेश्वर विदा करते हैं । एक रविवार को पत्र आता है कि श्यामा के छोटे चाचा के लड़का हुआ है । इस दोनों को बुलावा है, किन्तु पहले तो मौतीबाबू जाने से इन्कार कर देते हैं । बाद में दोनों जाते हैं । श्यामा को टाँगे में छोड़कर वे ससुराल में जाकर सबसे यही कहते हैं कि अकेला आया हूँ । रामा के उपालंभ देने पर बुरा मानने का दिखावा करके चले जाते हैं । जाते समय कहते हैं कि अब तो श्यामा को साथ लेकर ही दूसरी बार आऊँगा । यह जानकर चाचा जी सब पर अप्रसन्न हो जाते हैं । इतने में मौतीबाबू श्यामा को लेकर आ जाते हैं ।

अविवाहिता :

राष्ट्रीय भावना इस कहानी में कूट-कूट कर भर दी गई है । तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना का प्रतिबिम्बन प्रस्तुत कहानी में हुआ है । बाबू बाकेबिहारी और बाबू शीतलाचरण के बीच

घनिष्ठ सम्बन्ध है । दोनों के यहाँ क्रमश: विनोदविहारी और शरदकुमारी का एक ही दिन जन्म होता है । दोनों बच्चे साथ ही स्कूल जाते हैं । हाईस्कूल की शिक्षा दोनों प्रथम श्रेणी में पूर्ण करते हैं । अब विनोद हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययन करने लगा है । शरद की पढ़ाई बंद हो गई है । बाँकेबिहारी की नियुक्ति प्रोफेसर के रूप में काशी विश्वविद्यालय में हो जाती है । शरद के विवाह से पूर्व उसके पिता उसकी इच्छा जान लेना चाहते हैं । समय के अभाव में विनोद ने शरद के घर जाना कम कर दिया है, किन्तु विवाह विषयक दोनों के विचारों में पर्याप्त साम्य है । दोनों मानते हैं कि अविवाहित रहने से ही देश-सेवा अच्छी तरह से की जा सकती है । असहयोग-आन्दोलन देश भर में प्रबल वेग के साथ फैलने पर गांधी जी भी घोषणा कर देते हैं कि 'राष्ट्र-व्रत के व्रती ब्रह्मचर्य -व्रत का पालन करें ।' इससे प्रेरित होकर विनोद के साथ-साथ शरद भी विवाह करना अस्वीकार कर देती है । दोनों एक ही पथ के पथिक हो जाते हैं । विनोद आन्दोलन को संगठित करने निकल पड़ता है और शरद 'वीणा' की संपादिका बनकर स्वतंत्र विचारों की अभिव्यक्ति करके कर्तव्य-पालन करने लगती है । विनोद 124 अ के जाल में आ जाता है । अत: उसे नौ मास के लिए नैनी जेल भेज दियाजाता है । शरद देश-सेवा कर रही है, यह जानकर विनोद को प्रसन्नता होती है । रविवार के दिन राजनीतिक कैदियों से मिलने के लिए अन्य लोगों के साथ शरद भी जाती है । विनोद उसे देखकर मुस्करा देता है, परंतु बातचीत प्रारंभ होते ही शरद की आँखों में आँसू आ जाते हैं । प्रस्तुत कहानी में यह स्पष्ट है कि राजनीतिक प्रक्रिया वाजपेयी जी की कहानियों का संवेद्य नहीं है, कथ्य तो उसकी प्रतिक्रिया है ।

अपराधी :

परिवार में नयी बहू के आने पर सब पुरानों की एक दलबन्दी हो जाती है , जो नारी को 'मिट्टी के ठीकरा-सी व्यर्थ' बना देती है । इस स्थिति का प्रतिकार अकर्मण्य पति की आँखें खोलकर ही किया जा सकता है । प्रस्तुत कहानी में यही बतलाया गया है । सावित्री के ससुराल जाने पर उसकी सौतेली सास, ननद, ससुर, पति सभी उसकी उपेक्षा करने लगते हैं । अपनी असमर्थता तथा अनुपयोगिता का अनुभव करके वह आत्महत्या करके जीवन-विसर्जन करने के लिए सोचने लगती है, किन्तु माता-पिता और भाइयों की मोह-ममता उसे मरने नहीं देती । अंतत: वह पिता की शरण में चली जाती है । सौतेली माँ ईर्ष्याविश सावित्री के लिए सबके हृदय में घृणा का भाव उत्पन्न करके उसे मायके भेज देती है । तत्पश्चात् सौतेले पुत्र सूर्यकुमार के बारे में भी उल्टी-सीधी बातें करके पति के कान भरती रहती है । परिवार तथा कृषि के कार्य से ऊबकर सूर्यकुमार नौकरी करने के लिए कलकत्ता चला जाता है । कुटुम्ब के सब सदस्य पत्नी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते, तब तो

वह मूक बना रहता है, किन्तु ऐसा ही व्यवहार अपने साथ भी किया जाता है, तब पत्नी की निर्दोषिता की अनुभूति उसे होती है । अनेक प्रयत्नों के बाद कलकत्ता में एक कार्यालय में, जिसके मैनेजर सावित्री के मामा थे, उसे क्लर्क की नौकरी मिल जाती है । मैनेजर का व्यवहार उसके प्रति बड़ा ही कठोर है । एक दिन त्यागपत्र देने का निश्चयकरके वह मैनेजर के यहाँ जाता है । उसके परिवार, विशेषत: पत्नी, के विषय में वह पृच्छा करता है, उसका संतोषपूर्ण उत्तर वह नहीं दे सकता । अंत में मैनेजर उसे सावित्री के नैहर, कंचनपुर, ले जाता है । जिस कक्ष में वह बिठाला गया था, उसमें सावित्री के आने पर वह अपने आपको उसका अपराधी समझता है और प्रायश्चित करता है । यह एक सुखांत कहानी है ।

पागल शिष्य :

'खाली बोतल' (1950) कहानी-संग्रह में यह कहानी 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब' शीर्षक से पायी जाती है । दोनों कहानियों में केवल पाँच शब्दों का अन्तर है ।[1] शेष पूरी कहानी शब्दश: यथावत् है । प्रस्तुत कहानी एक प्रेमकथा है, जिसमें कहीं भी वासना का स्वर नहीं सुनाई देता । जनार्दन प्रतिदिन एक दार्शनिक के पास जाता है, किन्तु कुछ भी बात नहीं करता । वहाँ अन्य भी कितने ही लोग आते हैं । दार्शनिक के कहने पर वह एक दिन उसके पास अकेला जाता है और पूछता है कि आपलोग सत्य को प्रेम से बड़ा मानते हैं या नहीं । फिर दिवाकर के नाम से अपनी कथा सुनाता है । दिवाकर किसी सुंदरी नारी से विवाह करना चाहता है, परन्तु उसकी पसंदकी कोई लड़की उसे नहीं मिलती । एक बार चाचा की दुकान पर एक अनंगलतिका के साथ वह जो व्यवहार करता है, उसे देखकर वह उसे पागल समझती है । वह पुन: कभी आयेगी, इस आशा से वह नियमित-रूप से दुकान पर जाकर कैशियर से पूछता है कि कोई उसे मिलने आया था । यह क्रम पन्द्रह वर्ष तक चलता रहता है । कोई उसे मिलने नहीं आता । अभी तक वह अविवाहित है । एक दिन वही रमणी, मिस चौधरी, दिवाकर की दुकान पर मिलने रात के नौ बजे आती है । उसे बारह वर्ष की नज़रबन्दी हो गई थी । तत्पश्चात् पुन: अपराध करने पर उसे कैद होती है । दिवाकर के प्राइवेट रूप में रिवाल्वरधारी पुलिस आफिसर आकर उस रमणी को ले जाते हैं । तदनंतर वह पागल हो जाता है और दार्शनिक से दीक्षा लेने आता है ।

1- 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब' में प्रयुक्त 'हीन', 'हौजिरी', 'यकायक', 'लगा', 'साथ' के स्थान पर 'पागल शिष्य' में क्रमश: 'नहीं', 'हौज़री', 'एकाएक', 'मिला', 'समय' का प्रयोग हुआ है

तारा : एक प्रेरणा :

प्रस्तुत कहानी का प्रारंभिक अंश बहुत-कुछ 'उर्वशी' के प्रारंभिक भाग के साथ साम्य रखता है । दोनों कहानियों के इस अंश में अंतर केवल स्थल का है । विजय तथा बिहारी बाबू काश्मीर जाना चाहते हैं । साथ में नौकर लक्ष्मन भी है । जिस ट्रेन में वे जा रहे हैं, वह अचानक रुक जाती है । इयरिंग गिर जाने का बहाना करके एक नारी तथा एक पुरुष उतरता है । बिहारी को दोनों भागे हुए लगते हैं, क्योंकि बातें करते समय पुरुष घबड़ा जाता है । फतेपुर के प्लैटफार्म पर उतरकर विजयबाबू टहलने लगते हैं । उनकी यह ताक-झाँक बिहारी को कतई पसन्द नहीं है, अत: आने पर वह उन्हें डाँटता है, फिर मना भी लेता है । उस नारी के दिल्ली उतर जाने पर दोनों वहीं पर उतर जाते हैं । वहाँ कमलिनी फिल्म कंपनी के प्रोड्यूसर से विजयबाबू की भेंट होती है और वे हीरो के रूप में पसंद किये जाते हैं । बिहारी और लक्ष्मन दिल्ली से चले जाते हैं । इसी फिल्म कंपनी की एक हीरोइन तारा के प्रति विजयबाबू आकृष्ट होते हैं । ~~तिलप~~ दिन-प्रतिदिन वह हठी बनती जा रही थी । उसकी हठ पूरी न होते देखकर वह चम्बई चली जाती है और वहाँ एक कन्या-पाठशाला में अध्यापन-कार्य करती है । उसका वह सौंदर्य अब नहीं रहा है, तथापि उसे देखने के लिए विजयबाबू बारंबार जाते हैं । उस समय वह रो देती है । यह तारा और कोई नहीं, अपितु वही रमणी है, जो इयरिंग लेने ट्रेन से उतरी थी । 'त्याग' 'नलिनी' आदि कहानियों की तरह इस कहानी के अध्ययनोपरांत यह कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी को प्रेम का स्वस्थ रूप मान्य है । प्रस्तुत कहानी प्रेम के आदर्श का निरूपण करती है ।

प्रतिदान :

दाम्पत्यजीवन की यह एक ऐसी कहानी है, जिसमें दोनों ओर अभिलाषा, आतुरता आदि था । उनके बीच कोई प्रकट बाधा भी न थी, विचारों के ~~आदान~~ आदान-प्रदान की सभी सुविधाएँ थीं, तथापि किसी भी बात की पूर्ति न हो सकी । विवाहोपरांत सरोजिनी प्रथम बार ससुराल आई, तब अपने नये घर में वह पन्द्रह दिन रही । उसका पति सुरेश न परवश था, न ही अनाचारी था, तथापि दोनों असंतुष्ट थे । वह समझती है कि अपना स्वामी बहुत ही व्यस्त है , अत: उसके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । अपने पति को वह देवता समझती है । प्राचीन परम्पराओं में श्रद्धा होने के कारण वह उनके पास जाना नहीं चाहती । मर्यादा के दायरे ने उसके व्यक्तित्व को सीमित बना दिया है । वह मानती है कि सब कुछ उसे ही देना है, पति की ओर से कुछ प्राप्त नहीं होगा । दूसरी ओर शिक्षित पति सुरेश ऐसी सहधर्मचारिणी

की अपेक्षा रखता है, जो उसके कार्यों में यथाशक्ति हाथ बँटाये । अपने पास आना वह पत्नी का अधिकार समझता है, किन्तु मर्यादाशील स्वभाव की पत्नी उसे संतुष्ट नहीं कर सकती । वह भी मानता है कि सब कुछ उसे ही देना पड़ेगा । वस्तुत: दोनों प्रतिदान चाहते हैं, किन्तु कोई भी सीमा के दायरे से बाहर निकलना नहीं चाहता । सरोजिनी के सम्बंध में अंतत: वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सरोजिनी न गिलहरी है, न तितली है, वह अकल्पित है ; क्योंकि गिलहरी छिपी रहने पर भी कभी-कभी फल कुरेदती देखी जा सकती है, परन्तु सरोजिनी तो हमेशा छिपी-छिपी फिरती रहती है । वह तितली भी नहीं हो सकती ; क्योंकि तितली को उड़ते हुए देखा जा सकता है, किन्तु इसकी तो छाया तक देख नहीं पड़ती । वह कल्पना भी नहीं है ; क्योंकि कल्पना तो अमूर्त स्थिति है और सरोजिनी तो जीवंत है । दोनों में से कोई किसी को समझ नहीं पाता । अंत में सुरेश देश-सेवा में अपने प्राणोत्सर्ग कर देता है । नयी और पुरानी परम्परा के बीच जो गहरी खाई है तथा दाम्पत्य-जीवन में परस्पर अधिक अपेक्षा रखने से जो परिणाम आता है, यह दिखाने की लेखक ने प्रस्तुत कहानी में कोशिश की है । सुरेश को कहानी के अंत में मार डालना न ही अनिवार्य लगता है, न उचित प्रतीत होता है ।

साँप का बिल :

प्रस्तुत कहानी की नायिका रानी को करुणाशंकर के प्रति असीम प्रेम है । उसे विश्वास है कि अपने विवाह के दिन वह अवश्य आयेगा । उसके विवाह के दिन वह आता है, तो वह उदास हो जाती है । रानी तथा उसके परिवार के सभी सदस्यों से मिलकर करुणाशंकर लौट जाने को तैयार होता है, तो पड़ोसी के मकान की दीवाल के साँप के बिल में हाथ डालकर वह आत्महत्या कर देती है । महात्मा गांधी ने कहा है- 'वियोग में प्राणान्त कर देना शुद्ध प्रेम की कसौटी पर खरा उतरना है ।' इस दृष्टि से देखा जाय, तो रानी का करुणाशंकर के प्रति जो प्रेम है, वह शुद्ध प्रेम का द्योतक है । प्रस्तुत कहानी में रानी, करुणाशंकर तथा मालती का चरित्र-चित्रण लेखक ने कुशलतापूर्वक किया है । इस कहानी का अनुवाद मराठी तथा गुजराती में हो चुका है ।

नर्तकी :

'तारा : एक प्रेरणा' में हम देख चुके हैं कि वाजपेयी जी को प्रेम का स्वस्थ रूप मान्य है । उनकी प्रेम सम्बन्धी मान्यता में प्रतिहिंसा को कोई स्थान नहीं है । प्रतिहिंसा को वे फटकार देते हैं । यह कहानी एक ऐसी ही फटकार की कहानी है । संसार में सभ्यता की चाहे

कितनी ही श्री वृद्धि क्यों न हो, परन्तु मनुष्य के मन में छिपी पशुता अब भी यथावत् विद्यमान है । इसी तथ्य का निरूपण प्रस्तुत कहानी में एक घटना के रूप में किया गया है । विमला देवी जनार्दन को चाहती है और उसे प्राप्त करने के लिए उसकी पत्नी को विष दे देती है । फलत: जनार्दन को विमला के प्रति घृणा उत्पन्न होती है । होटल में वह उसके हाथ की ढाली चाय तक नहीं पीता । पेट में पीड़ा का बहाना करके अपने मित्र के साथ वहाँ से वह चला जाता है । रास्ते में रायसाहब के यहाँ जाने पर पुन: विमला से भेंट होती है । जनार्दन व्यंग्यपूर्ण शब्दों में उसे कहता है कि वह अपने नृत्य में यह दिखलाए कि अपने प्रेमी को प्राप्त करने के लिए उसकी प्राणप्रिय नवभार्या की विष देकर हत्या कैसे की जाती है, कैसे कला के सत्य, शिव और सुंदर स्वरूप की प्रतिष्ठा के नाम पर यौवन, सौंदर्य और प्रेम का नित्य नव-नव प्रकारों से नीलाम किया जाता है । और अंत में प्रतिहिंसा की यथेष्ट पूर्ति न होने पर कैसे विम्टो के गिलास में ---। यहीं पर कहानी की बरम सीमा आ जाती है और अन्त भी । विमला के प्रति जनार्दन की घृणा क्यों है, यह पूरी कहानी में लेखक ने कहीं भी नहीं बतलाया । कहानी में वह अनेक स्थल पर कहते-कहते रुक जाता है, परिणामत: अन्त तक पाठकों के मन में कुतूहल बना रहता है । अन्त में जनार्दन विमला को नृत्य करने के लिए कहता है, तब सब कुछ बतला देता है । उसे विमला के प्रति इतनी घृणा है कि वह उसके सम्बन्ध में बुरे से बुरे समाचार सुनना चाहता है ; किन्तु मौन रहता है । वाजपेयी जी की उपलब्ध ६ कहानियों में 'नर्तकी' ही ऐसी कहानी है जिसमें नारी ईर्ष्या के कारण प्रतिहिंसा पर उतरी है । इस कहानी का अनुवाद अंग्रेजी में हो चुका है ।

तेवर :

मनोवृत्तियों के सभी प्रकार बोधगम्य हैं, किन्तु केवल प्रेम ऐसा है, जिसका आभास अंत: - करण में झाँके बिना नहीं हो सकता । ऐसी कौन-सी पद्धति है जिससे मनुष्य के अंतर्मन की झलक सहज प्राप्त हो सकती है । अहम् का विस्फोट ही वह परिस्थिति है, जो ममाघात के क्षण, सिर पर हाथ रखकर मन का घूँघट खोल देती है । प्रस्तुत कहानी में इसी पद्धति की संयोजना की गई है । दिल्ली में अमिता और चन्द्राकर की भेंट एक पद-प्रतियोगिता में हो जाती है । उसी दिन शाम को बस मिलने के पश्चात् दो वर्ष बाद वे इलाहाबाद स्टेशन पर मिल जाते हैं । अमिता और चन्द्राकर की नियुक्ति क्रमश: पटना एवं जालन्धर रेडियो स्टेशन में होती है । चन्द्राकर का स्थानान्तरण बाद में जयपुर हो में होता है । इलाहाबाद से अमिता को

बनस्थली जाना है ; अत: दोनों एक साथ यात्रा करते हैं और बातचीत के दौरान नियमित रूप से पत्र व्यवहार करने का वचन देते हैं, किन्तु अहं के कारण दोनों में से कोई भी इसका पालन नहीं करता । अब चन्द्राकर दिल्ली में और अमिता इलाहाबाद में हैं । बहुत सोच-विचार के बाद वह उसे अपने अस्वास्थ्य के विषय में लिखती है, यह पढ़ते ही वह शीघ्र अमिता के यहाँ जाता है । उसकी भाभी से पता चलता है कि वह तो आज ही दिल्ली गई है । थोड़े ही क्षणों के बाद भाभी चन्द्राकर को भीतर के कक्ष में बाय के लिए बुलाती है, तब जीवन में प्रथम बार संकुचित किंवा प्रतिहत अमिता को सामने खड़ी हाथ जोड़कर उसे नमस्ते करती देखकर वह अवाक् रह जाता है । प्रेम में दोनों के अहं का विस्फोट हो गया है । प्रस्तुत कहानी में लेखक समय और संकलन-(Unity of time and place) का निर्वाह नहीं कर सका है, किन्तु कहानी की कथावस्तु ही ऐसी है कि दोनों का निर्वाह नहीं होने पर भी कहानी-कला की दृष्टि से कोई हानि नहीं होती ।

एक तृण

संसार में कुछ व्यक्ति ऐसे भी पाये जाते हैं, जो सोचते हैं कि जब तक परिस्थिति सानुकूल न हो, तब तक कुछ भी नहीं किया जा सकता । प्रस्तुत कहानी का नायक बनवारी भी ऐसा ही समझता है, किन्तु अंत में एक तृण उसकी यह धारणा बदल देता है । गंगा -दशहरा के मेले में बनवारी और धानी जाते हैं, तब परिचय होने के बाद धानी उसकी ओर आकृष्ट होती है और प्रेम के कारण दिन-प्रतिदिन उसकी रुग्णता बढ़ती जाती है । बनवारी की बहन मणि दोनों के प्रेम को ताड़ जाती है और उनके विवाह के लिए प्रयत्न करती है ; किन्तु समाज की जड़ रूढ़ियों के कारण उसे असफलता प्राप्त होती है । धानी की विधवा बुआ एक लाला के यहाँ बैठी हुई है , अत: लड़की भी न जाने कैसी होगी, यह सोचकर बनवारी की माँ तथा भाई उसका विवाह धानी के साथ करने के लिए सहमत नहीं होता । बनवारी एवं धानी अन्य किसी से भी विवाह करना नहीं चाहते । दो दिनों की छुट्टियों में घर आने पर माँ के आदेशानुसार बनवारी मणि को बुलाने जाता है । वहाँ बहन के कहने से धानी को मिलने जाता है, पर बिना मिले ही लौट आता है । अंतत: धानी की मृत्यु होती है । धानी की अर्थी जिस रास्ते से निकलती है, वहाँ वह अचेत पाया जाता है । धानी की अर्थी दो मील दूर निकल जाने पर उसकी चेतना लौट आती है । जीवन में तो वह सामाजिक रूढ़ियों के कारण धानी का साथ न दे सका, किन्तु उसके निधन होने पर अब आत्महत्या करके उसका साथ देने के लिए तत्पर है,

यह उसके जीवन का कैसा कारुण्य है । इस कहानी में पुरुष के अनुताप का स्वर उभर कर आया है कि उसने यथासमय पौरुष दिखलाकर उसकी रक्षा क्यों न कर ली । यह कहानी अंतर्द्वन्द्व को एक नये ही कोण से प्रस्तुत करती है ।

एक आदर्श वाक्य :

इस कहानी का नायक पुस्तकालय के उद्घाटनोत्सव में जाता है । वहाँ गुप्तदान दाता के विषय में पूछने पर मंत्री उसके नाम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बतला सकता । तब दाता के सम्बन्ध में नायक जो कुछ जानता है, पूर्वदीप्ति की सहायता से बतलाता है । मुंशी को अपने गाँव में पड़ोस की एक लड़की से प्रेम था, किन्तु उस लड़की का विवाह अन्यत्र हो जाता है । विवाह होते ही वह विधवा हो जाती है , अत: समाज उसे शंका की दृष्टि से देखता है । परिणाम यह आता है कि समाज से तंग आकर वह किसी के साथ भाग जाती है और हसरत नाम धारण करके वेश्या बन जाती है । मुंशी उसकी याद में आजीवन अविवाहित रहता है । वह हसरत के यहाँ आता-जाता है । एक बार वह उसे अपने यहाँ ले जाने के लिए कहती है, तब वह उत्तर देता है कि सोचकर कहूँगा । बहुत सोचने के पश्चात् अपने घर को सजा-सँवार कर वह उसे लिवा लाने के लिए जाता है । उस समय वह अस्वस्थ पायी जाती है । उसके पूरे शरीर में चेचक फूट निकले हैं । उसे आया जानकर वह आश्वस्त होती है और कुछ ही क्षणों में उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं । इस घटना से मुंशी के जीवन में परिवर्तन आता है । वह बुद्ध-भिक्षु बन जाता है । अपनी भूल का प्रायश्चित करता हुआ सोचता है कि यदि पहले उसे अपने यहाँ ले आया होता तो उसकी मृत्यु न होती । लेखक ने भी इस कहानी के माध्यम से यही बतलाया है कि जो सोचते अधिक हैं, वे अपने विचारों को प्राय: कार्यान्वित नहीं कर पाते । आदर्श वाक्य 'अब सोचते क्या हो' अपूर्ण-सा प्रतीत होने पर भी पूर्णता की प्रेरणा देता है और सोच-विचार से आगे बढ़कर कर्म-जीवन-युद्ध- में एकदम से जुट जाने को उन्मुख करता है । 'एक तृण' तथा 'कर्तव्याघात' की तरह इस कहानी में भी पुरुष के अनुताप का स्वर उभर कर आया है ; क्योंकि मुंशी यथासमय पौरुष दिखलाकर हसरत की जीवन रक्षा नहीं कर सकता ।

पीपल का पेड़ :

उदय सिर-दर्द के कारण उदास है । अत: वह बाहर घूमने निकल पड़ता है और पोदीना के यहाँ जाता है । वहाँ भोजनोपरांत पोदीना को तीस रुपये देकर वह अपने घर लौट जाता है । उसकी बातें याद कर-करके पोदीना, जो उदय के किशोरी प्रेया की त्यक्ता है, रोती

रहती है । अंततोगत्वा उदय के प्रयत्नों से किशोरी मिया पोदीना का स्वीकार करते हैं । कहानी के प्रारंभ तथा अंत में पीपल के पेड़ का उल्लेख किया गया है । स्वयं उदय ही पीपल का वह वृक्ष है, जो सब कुछ सहन करने पर भी दूसरों को प्रसन्न रखता है ।

ललना :

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने दाम्पत्य-जीवन का एक पहलू दिखाने का प्रयास किया है । अशोक बाहर की अपनी अलग ही दुनिया चाहता है ; किन्तु नारी सहज ईर्ष्या के कारण उसकी पत्नी तारा उसमें बाधाएँ उत्पन्न करती रहती है । पाँच वर्षों में प्रथम बार अशोक के देर से आने पर तथा उसके शुष्क उत्तर से तारा को आश्चर्य होता है । घर में दात-विक्षत अवस्था में पड़े बूढ़े को देखकर वह अपने विषय में भी अशुभ कल्पनाएँ करती रहती है । एक बार छुट्टी के दिन भी रोज़ी अशोक के यहाँ पूछने आती है कि अशोक आफिस जायेगा या नहीं ? तब नौकर की सहायता से अशोक उसे टाल देता है, तथापि उस दिन से तारा का संदेह दृढ़ होता जाता है । बाथरूम में भी वह इसी विषय को लेकर सोचा करती है । फलत: अशोक के प्रति उसका व्यवहार शुष्क होता जाता है । ऐसी स्थिति में उमा द्वारा की गई भविष्य की सुखद कल्पनाएँ उसे प्रभावित करती हैं । कहानी के अंत में फोन द्वारा अशोक बतलाता है कि उस दिन बैलेंसशीट में एक गलती के कारण मूड खराब था और देर हो जाने के कारण भोजन भी आफिस में ही मित्रों के साथ कर लिया था । अब वह नियमित रूप से समय पर घर आने का वचन देता है । कहानी में तुलसीदास का दोहा महत्त्वहीन तथा कथा की गति में अवरोधक प्रतीत होता है । नारी-स्वभाव का चित्रण प्रस्तुत कहानी में सुचारु ढंग से किया गया है ।

रंगीन भ्रम :

यह कहानी 'भ्रम' शीर्षक से 'उतार-चढ़ाव (1950) कहानी-संग्रह में संकलित हो चुकी है । शीर्षक के अतिरिक्त दोनों कहानियों में किसी प्रकार का अंतर नहीं पाया जाता । कभी-कभी सीधे मनुष्य बिना सोचे-समझे ऐसे कार्य करते हैं, जिसका पश्चाताप उन्हें आजीवन करना पड़ता है । पड़ोसी जगेश्वर अपनी पत्नी को पीटता है, यह सुरेश को अच्छा नहीं लगता । एक बार सुरेश भी भ्रमवश अपनी पत्नी रागिनी पर सौ का एक नोट चुराने का अभियोग लगाकर निर्दयतापूर्वक पीटता है । रागिनी के अचेत होने पर उसे अस्पताल ले जाते हैं । एक सप्ताह के पश्चात् वह स्वस्थ हो जाती है, किन्तु तदनंतर यह पता चलने पर कि उसने वह नोट नहीं चुराया था, वह अनुताप की अग्नि में निरंतर जलता रहता है । रागिनी अपने पति की अति भावुकता

से तंग आकर अनिच्छापूर्वक अनावश्यक माँगें प्रस्तुत करके उसका भ्रम दूर करने का प्रयत्न करती है कि वह उससे अप्रसन्न नहीं है । पश्चाताप में डूबकर वह उसे और भी अधिक तंग करता है, तब रागिनी उससे ऐसा खिलौना चाहती है जिससे उन दोनों की आत्मा का सम्बन्ध हो । कालांतर में सुरेश उसकी यह इच्छा पूर्ण करने में सफल होता है, तब रागिनी का देहान्त हो जाता है । माँ के नोट का रहस्य भी वह उसे नहीं कह सकता है । एक बार अनुताप के कारण उसका पुत्र जयंत उसे रोता देख लेता है, तब इसका रहस्योद्‌घाटन करते हुए वह कहता है कि एक दिन भ्रमवश उसने उसकी माँ को पीटा था । वस्तुत: रागिनी ने वह नोट नहीं चुराया था, किन्तु स्वयं सुरेश ने एक लिफ़ाफ़े में नोट रख छोड़ा था और उस लिफ़ाफ़े को रख छोड़ा था एक पुस्तक में । वह पुस्तक जिस नारी की थी, उसके पास पुस्तक पहुँचने पर वह सुरेश को अन्यथा समझने लगी । केवल संयोगों की नींव पर इस कहानी का निर्माण हुआ है ।

फुटपाथ की बहन :

राजीवलोचन गंगा-स्नान के लिए जाते समय एक रमणी को सड़क पर बैठी, अधलेटी, कराहती हुई देखता है । एक नवजात शिशु को वह अपनी छाती से चिपकाये हुए है । अपरिचित होने पर भी वह उसे अपने यहाँ ले जाता है । कुछ दिनों के पश्चात् वह अपने आप ही अपने सुनहरे अतीत की-सुखी दाम्पत्यजीवन की-बातें कहती है । पति की अचानक मृत्यु हो जाने पर वह पागल हो जाती है । अब सारे संसार को वह अपना समझने लगती है । वह मानती है कि मृत पति ने कहीं न कहीं जन्म ले लिया होगा । इस संसार में उनका अस्तित्व है, तो फिर वह विधवा कैसे हो सकती है । वस्तुत: उसके इस कथन में कोरी भावुकता है । कहानी के अंत तक पहुँचने से पूर्व तो यही आभास होता है कि राजीव-कनक के बीच भाई-बहन का पवित्र सम्बन्ध है, किन्तु राजीव के मुख में ये शब्द रखकर - 'पर यार, कहते संकोच होता है । उसके फिर बच्चा होनेवाला है ।'- लेखक ने चमत्कृति का सृजन किया है । संकेत के द्वारा उसने यह बतलाकर कि दोनों के बीच दैहिक सम्बन्ध भी थे, समाज में कहे जानेवाले मिथ्या सम्बन्धों का पर्दाफाश किया है । 'मिठाई' वाला 'कहानी जैसी भावना का निरूपण करने का इस कहानी में भी लेखक ने प्रयास किया है ; किन्तु उस कहानी जैसी उदात्त भावना इसमें नहीं है ।

अन्याय :

पात्रों की औपचारिक बातचीत के पश्चात् शीघ्र ही कहानी का प्रारंभ स्वगत्‌कथन शैली में हो जाता है । विवाह के लिए मोहन के असहमत होने से उसके माता-पिता अप्रसन्न हो जाते हैं । तदनन्तर उसके विवाह-विषयक भाभी की चुनौती को वह स्वीकृति देता है । एक बार

भाभी की छोटी बहन के विवाह में जाने पर वहाँ वकील की पुत्री पद्मा के साथ परिचय होते ही वह उसके प्रति आकृष्ट हो जाता है । यहाँ प्रेमोदय प्रथम दृष्टि में - (Love at the first sight) हुआ है । उस रात्रि को 'राजसिंह' नामक जो नाटक खेला जाने वाला था, उस में पुरुषों के लिए प्रवेश निषेध है, यह जानकर वह निराश हो जाता है, किन्तु भाभी युक्ति ढूँढ निकालती है, तदनुसार वह नारी-वेश में नाटक देखने जाता है । नाटक में उसे पद्मा का अभिनय सबसे अच्छा लगता है । दो दिन बाद वह अपने यहाँ लौट जाता है, परन्तु पद्मा से वह इतना प्रभावित है कि उसे भूल नहीं सकता । उसकी चाची की अचानक मृत्यु हो जाने से उसके विवाह का प्रश्न एक वर्ष के लिए टल जाता है । अपने विवाह की संपूर्ण चिन्ता व उत्तरदायित्व उसने भाभी को सौंप दिया है ; अत: उसे यह भी ज्ञात नहीं है कि उसका विवाह किसके साथ होने जा रहा है । भाभी अपनी चुनौती के अनुसार उसे उँगलियों पर नचाती है और अंत तक उसे यह पता नहीं चलने देती कि उसी पद्मा के साथ उसका विवाह हो रहा है, जिसे वह हृदय से चाहता है । कहानी में भाभी का विनोदी स्वभाव तथा चातुर्य कलात्मक ढंग से दिखाया गया है । कहानी पूर्ण होने तक पाठक के मन में कौतूहल बना ही रहता है । कहानी में जहाँ लेखक ने विवाह की प्राचीन और अर्वाचीन परिपाटी पर भाभी और मोहन के चरित्र द्वारा अपने विचार प्रकट किये हैं, वहाँ कहानी की गति रुकती-सी प्रतीत होती है । इससे विवाह के सम्बन्ध में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का प्रतिबिम्बन् हुआ है । यह कहानी रोमांटिक होते हुए भी इसमें केवल पीड़ा, निराशा तथा घुटन का स्वर उभरा है, ऐसा नहीं है । वाजपेयी जी ने जीवन-सौख्य और कौतूक को भी इसमें स्थान दिया है । इस कहानी में सारी स्थिति देवर-भाभी के मनोविनोद पर आधारित है, यह हम ऊपर देख चुके हैं ।

सत्य की जय :

'सत्यमेव जयते' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाली यह एक आदर्शवादी कहानी है । प्रारंभ में ही विधवा उमा तथा उसके पिता प्रतापनारायण के बीच जो वार्तालाप चलता है, इससे उनकी निर्धनता तथा प्रतापनारायण की चिन्ताग्रस्त मानसिक स्थिति अनायास प्रकट हो जाती है । उमा के पिता की अनुपस्थिति में लगान वसूल करने का बहाना करके उजागर आता है और उमा से उल्टी-सीधी बातें करता है । यह देखकर रामलाल की माँ गाँव में उमा की बदनामी करती है । उमा के पिता अपनी विधवा पुत्री की चरित्रहीनता का अपवाद सुनकर बहुत पीड़ित होते हैं । इस बीच कानून का विद्यार्थी रामस्वरूप इलाहाबाद से किशनपुर आता

है। किशन के परिवार के साथ उसका घनिष्ठ सम्बंध है । उमा को रोती देखकर वह उसे रोने का कारण पूछता है । उमा सब कुछ बतला देती है । अब वह उजागर से बात तक नहीं करती । रामलाल की माँ से भी उसका झगड़ा हो जाता है ; अत: दोनों यह कहकर कि उमा गर्भवती है, उसे और भी कलंकित करते हैं । जाँच-पड़ताल के लिए दारोगा गाँव में आता है, तब अपनी वाक्पटुता तथा हिम्मत का परिचय देकर रामस्वरूप उसे प्रभावित करता है तथा प्रताप और उमा की इज्जत बचाता है । प्रस्तुत कहानी में गाँव का यथार्थ चित्रण किया गया है तथा ठाकुर, पुलिस आदि की पोल खोली गई है । विधवा युवती की समाज में जो स्थिति होती है, उसका प्रतिबिम्बन इस कहानी में हुआ है । प्रताप और उमा समस्त वर्ग के प्रतिनिधि बन जाते हैं । पुलिस-संस्था भी गाँव में ज़मींदार जैसे शोषकों की सहायिका बन जाती है, यह इसमें दिखाया गया है ।

अधिकार-पत्र :

अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् मदनमोहन अपनी साली के साथ विवाह करता है । इस नयी बहू को अपने पुत्र श्यामु तथा मृत पत्नी से उत्पन्न कौशलकिशोर के बीच जो गहरा स्नेह-सम्बंध है, कतई पसंद नहीं । यह ज्ञात होते ही नाना कौशल को अपने पास जौनपुर बुला लेते हैं । रामनगर में अचानक प्लेग फैल जाने से मदनमोहन भी सपरिवार ससुराल जाता है । वहाँ कौशल अस्वस्थ हो जाता है। एक दिन श्यामु उसे मिलने जाता है, तो उसे भी ज्वर आता है । कुछ दिनों के बाद दोनों स्वस्थ हो जाते हैं । दस वर्ष के पश्चात् कौशल एक कालेज में प्रिंसिपल बन जाता है । जिन दिनों वह इंग्लैंड गया हुआ था, उन दिनों उसकी पत्नी को विमाता विष देना चाहती है, किन्तु पता चलते ही श्यामु अपनी मामी को सावधान कर देता है । कौशल की महानता और उदारता का परिचय तो तब प्राप्त होता है, जब वह विमाता से परिचित होने पर भी पिता और दादा के उत्तराधिकार द्वारा प्राप्त अपनी समस्त धन-सम्पत्ति का उसके पुत्र को स्वामी बनाना चाहता है । रजिस्ट्री के लिए वह सपत्नीक आता है और माँ को ज्वर-ग्रस्त जानकर रुक जाता है । माँ हार्दिक पश्चाताप करती है ।अन्त में वह कौशल के साथ शेष जीवन व्यतीत करने का निर्णय करती है । इस कहानी में लेखक ने भ्रातृ-प्रेम तथा स्त्री-सुलभ ईर्ष्या -द्वेष के कारण विमाता का सौतेले पुत्र के प्रति व्यवहार सुन्दर ढंग से चित्रित किया है । विमाता का हृदय-परिवर्तन हो जाता है ; अत: उसे विकसनशील पात्र (round character) के अंतर्गत ही माना जायगा।समय एवं स्थल के ऐक्य- (Unity of time and place) का निर्वाह लेखक नहीं कर सका है। कौशल का अपने ननिहाल जाने

तथा मामी का उसे पुत्रवत् स्नेह करने का उल्लेख वाजपेयी जी के अपने बाल्यकाल से सम्बंधित है ।

पुनर्विवाह :

प्रस्तुत कहानी की रचना पत्र शैली में की गई है । इसके अंतिम पत्र तक पाठक की जिज्ञासा बराबर बनी रहती है । कमला और जीवन के प्रसन्न दाम्पत्य-जीवन में केवल एक अभाव है । वे संतति-सुख से वंचित हैं, अत: कमला अपने पति को पुनर्विवाह के लिए कहती है, किन्तु आस्थावादी जीवन पत्नी के प्रस्ताव का अस्वीकार करता है । वह कहता है कि मुरलीधर की स्थिति पुनर्विवाह से खराब हुई है, परन्तु कमला के समक्ष राधामोहन का आदर्श मौजूद है । जीवन के मित्र लालता बाबू अपने पड़ौसी किशोरीलाल की कन्या चमेली के लिए लिखते हैं । जीवन अर्ध सम्मति भी देता है, तब किसी गुमनाम मित्र का पत्र आता है, जो पुनर्विवाह का घोर विरोध करता है । उससे प्रभावित होकर लालता बाबू को जीवन तिलक रोकने के लिए लिखता है । वह किंकर्तव्यविमूढ सा हो जाता है । उसका तिलक होता है । कमला भी उसमें उपस्थित रहती है और तिलक हो जाने के पश्चात् मायके चली जाती है । कुछ महीनों के पश्चात् उसके पुत्र होता है । कहानी के अंत की ओर जाते समय पाठक को ज्ञात होता है कि गुमनाम मित्र लालताप्रसाद ही है तथा कमला के भाई के आदेशानुसार कमला के गर्भवती होने का संवाद भी उसीने गोपनीय रखा था, और यह तो जीवन को बेवकूफ़ बनाने के लिए लालता द्वारा रचा गया षाड्यंत्र था, तब वह आनन्दविभोर हो जाता है । इस कहानी में कौतूकपूर्ण षाड्यंत्र के माध्यम से ही कथावस्तु पनपी है । अंतिम पत्र में सन् 25 के स्थान पर सन् 24 छपा है, यह एकमात्र त्रुटि लेखक की असावधानी के कारण कहानी में प्राप्त होती है ।

परीक्षा :

यह कहानी भी 'पुनर्विवाह' जैसी ही है । इसमें पत्नी स्वयं षाड्यंत्र की रचना करती है । चित्र-दर्शन के आधार पर अपने पति के हृदय में 'परनारी' के प्रति आसक्ति उत्पन्न कर अंतर्द्वन्द्व को पत्र शैली में उभारा गया है जो कहानी के अंत में षाड्यंत्र के खुलने पर हास्य में परिणत हो जाता है । ऐसी स्थिति में कुण्ठा और विशृंखलता कहानी का आधेय नहीं बनती । रमेश अपनी प्रियतमा कृष्णा को लिखे गये पत्र में जीवन-सम्बंधी अपने विचार अभिव्यक्त करता है । उसके उत्तर में वह लिखती है कि उसकी सखी रमा रमेश के साथ बुरी तरह से प्रेमोन्मत्त प्रेम में पड़ गई है । इसका परिणाम उसकी मृत्यु भी हो सकती है । उसकी माँ ने उसकी किसी एक

सखी को रमा की जासूसी का कार्य सौंप दिया है । कृष्णा अपनी सखी को एक चित्र भी भेजती है । रमेश द्विधा में है । वह अपने मित्र मोहन बाबू जो कानून का विद्यार्थी है, को लिखता है कि किसी एक को तो वह छोड़ नहीं सकता । वह तो दोनों को अपने हृदयसर में रखना चाहता है । इसके उत्तर में मोहन लिखता है कि हृदय कभी एक साथ दो व्यक्तियों का नहीं हो सकता । ज्यों-ज्यों विवाह की तिथि निकट आती जाती है, रमेश की व्यथा बढ़ती जाती है । कहानी के अंतिम पत्र , जो रमेश द्वारा मोहन को लिखा गया है, में रहस्योद्घाटन होता है । रमा नितांत काल्पनिक पात्र है । रमेश को भेजा गया वह चित्र भी रमा का नहीं, अपितु चार वर्ष पूर्व का स्वयं कृष्णा का था । यह तो कृष्णा का कोरा मज़ाक था । रमेश इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि हृदय की परीक्षा में वह उत्तीर्ण हो गया । प्रारंभिक कहानियों में वाजपेयी जी के शिल्प में जो दो विशेषताएँ- कौतूहलप्रियतावश षड्यंत्र योजना तथा संयोग-मुख्य रूप से प्राप्त होती हैं उनमें से प्रथम विशिष्टता के माध्यम से ही इस कहानी की कथावस्तु है बनी है ।

समर्पण :

छोटी, गौण कथानक वाली तथापि कौतूहल एवं प्रभावपूर्ण प्रस्तुत कहानी में वाजपेयी जी की प्रौढ़ लेखनी का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे भावना के क्षेत्र में यहाँ क्रांति आ गई है । कहानी का प्रमुख पात्र गज्जू देख रहा है कि ट्रेन के जिस डिब्बे में वह यात्रा कर रहा है उसमें दो व्यक्ति सो गये हैं, किन्तु तीसरा व्यक्ति बीमन सेठ दोनों जाग रहे हैं । वे भी सोने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु गज्जू और सेठ दोनों में से पूरी तरह नींद किसी को नहीं आती । दिल्ली में दोनों 'कारवाँ' होटल में एक दूसरे के बगल वाले कमरे में ठहरते हैं । दिन-प्रतिदिन दोनों का प्र मेलजोल बढ़ता जाता है । इस बीच आठ नम्बर के कमरे में चोरी होती है । अत: सेठ गज्जू को अपने कमरे में ठहरने के लिए कहते हैं । वह तुरन्त स्वीकार कर लेता है । गज्जू प्रत्येक रात को सेठ का बैग टटोलता है, परन्तु उसे कुछ भी नहीं मिलता । उसी बैग से सेठ प्रात: काल होते ही हीरा निकालते हैं । यह देखकर गज्जू को आश्चर्य होता है । एक दिन हीरा बेचने के बाद सेठ गज्जू को दावत देते हैं और घटस्फोट करते हुए कहते हैं कि गज्जू के झोले में ही वे हीरा रखते थे । जब वह नित्यकर्म के लिए जाता था, तब वे हीरा निकाल लेते थे । यह सुनते ही उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है । अपराध होने पर भी वह मन से इतना कोमल है कि अपने प्रयास की विफलता पर रोने लगता है । वह एक ऐसा विफल

मनोरथ अपराधी है, जो स्वयं अपनी निष्फलता का रहस्य नहीं जान पाता । रहस्योद्घाटन होने पर उसके मन की आँखें खुल जाती हैं । और प्रायश्चित की भावना से भरकर वह पुलिस-स्टेशन चला जाता है । वहाँ वह स्वीकार करता है कि आठ नम्बर के कमरे में चोरी उसने ही की थी । अपराधी प्राय: ऐसा सोचते हैं कि उनके कुकर्म को कोई भी नहीं जान सकेगा । सबकी दृष्टि बचाकर चुपचाप कुकर्म करने में वे जितने कुशल होते हैं, उतने ही उस कार्य करने के पश्चात् प्रसन्न भी ; किन्तु इस कहानी की परिकल्पना इसके ठीक विपरीत है । इसका अपराधी गज्जू अंत में विफल मनोरथ होता है, तब उसकी असफलता एक ऐसे बिंदु पर जा पहुँचती है कि प्रायश्चित की भावना से उद्बुद्ध होकर वह अपना अपराध स्वीकार कर लेता है । लेखक का इस कहानी की रचना के पीछे यही दिखाने का उद्देश्य है कि पापी व्यक्ति में बुद्धित्व चाहे जितना मंद रहे, पर भावना के क्षेत्र में वह क्रांतिकारी होता है । इस कहानी का आध्यात्मिक अर्थ भी घटाया जा सकता है । गज्जू के झोले में हीरा होने पर भी वह उसे अन्यत्र ढूँढता है, इसी तरह मनुष्य भी अपने ही भीतर भगवान् होने पर भी उसे अन्यत्र ढूँढता रहता है । यह आदर्श-वादी कहानी है ।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ -

मिठाई वाला :

इस कहानी की भी अपनी एक कहानी है । सन् 1934[1] ई० में 'नागरी प्रचारिणी-सभा', काशी की ओर से हिन्दी-साहित्य के निर्माता स्व० पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्मानार्थ 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ' के प्रकाशन का आयोजन हो रहा था । उस महाग्रन्थ के लिए आचार्य शिवपूजन सहाय के अनुरोध करने पर वाजपेयी जी ने जो कहानी लिखी, वह समस्त हिन्दी-जगत में छाकर रह गई । बाद में उस ग्रन्थ में कहानी-विभाग ही नहीं रखा गया। कविवर टैगोर की कहानी 'काबुली वाला'[2] का स्मरण दिलाने वाली प्रस्तुत कहानी का

1- प्रो. वासुदेव, एम० ए० ने 'मिठाई वाला' कहानी के लिए लिखा है, 'यह कहानी सन् 30 की रचना है, जो इनकी प्रारंभिक कहानियों में से एक है ।' (दे. साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० 78), परन्तु अपने कहानी-संग्रह 'स्नेह, बाती और लौ' में स्वयं वाजपेयी जी ने इस कहानी को सन् 34 की रचना कहा है, अत: यही अधिक प्रामाणिक है ।

2- कुछ आलोचक मानते हैं कि इस कहानी पर कविवर टैगोर की 'काबुली वाला' कहानी का प्रभाव है, इस बात से हम अंशत: सहमत नहीं हैं, तथापि दोनों कहानियों के कथानक तथा शिल्प में अंतर है । काबुली वाला की बच्ची जीवित है, जब कि मिठाई वाला के बच्चे काल-कवलित हो गये हैं । काबुली वाला को केवल मीनी के प्रति स्नेह है, परंतु मिठाई-वाला संसार के सभी बच्चों में अपनी मृत संतानों की झलक देखता है ।

नायक पी० सभी प्रकार से सम्पन्न प्रतिष्ठित तथा सुखी था, किन्तु काल के घातों के कारण प्राणों के समान प्रिय पत्नी रही न खिलौने जैसे सुन्दर बच्चे । उन बच्चों ने कहीं न कहीं जन्म लिया होगा और वे उछल-कूद रहे होंगे - इस भावना ने संसार के सभी बच्चों को उसके लिए प्रिय बना दिया । वह पी० कभी खिलौने वाला, कभी मुरली वाला, तो कभी मिठाई वाला भी बनता है । अपने व्यवसाय में उसे खाने भर को मिल जाता है, कभी नहीं भी मिलता, परन्तु संतोष, धीरज और कभी-कभी असीम सुख अवश्य प्राप्त होता है, जो वह चाहता भी है । अन्य बच्चों में अपने बच्चों की झलक पाकर वह आनंदित न होता रहता, तो दुख में घुल-घुलकर मर जाता । इस कहानी का विषय प्रभावपूर्ण है । अन्य बच्चों को प्रसन्न करने के पीछे उसकी मानसिक व्यथा छिपी हुई है । इस कहानी के अध्ययनोपरांत मिठाई वाला के शांत तथा आनन्दमय जीवन के अंत:स्थल में छिपे हुए विषाद की यथार्थता पाठकों को सहज ही अवगत होती है ।

कहानी जब देशकाल के स्पर्श से दूर हटकर मानव मन की भावनाओं के वातायन को खोलने लगती है, तब उसका मूल्य और भी बढ़ जाता है । ऐसी ही एक उदात्त भावना ने मनो-वैज्ञानिक कहानी का रूप धारण कर लिया है । कहानी की सारी घटनाएँ मध्यवर्गीय परिवार के एक मुहल्ले में घटती हैं । अत: इसमें स्थान की एकता (Unity of place) का संयमपूर्ण निर्वाह हुआ है । कथानक को पूर्ण होने में चौदह महीने लगते हैं, इस दृष्टि से देखा जाय, तो समय की एकता (Unity of time) का निर्वाह लेखक नहीं कर सका है, किन्तु समय की एकता सफल कहानी के लिए कोई आवश्यक शर्त नहीं है, अत: प्रस्तुत कहानी में यदि इसका अभाव खटके, तो इससे कहानी को कोई विशेष हानि नहीं होती । सामान्यत: वाजपेयी जी ने प्रेम को अपनी कहानियों का विषय बनाया है, किन्तु इस कहानी में अन्य कहानियों जैसा न प्रेम-तत्त्व है, न समाज-तत्त्व । इस कहानी में व्यक्ति-मन की विविध तरंगों की लहरियों का अंकन है । ऐसी कहानियाँ संख्या में बहुत अल्प हैं, पर कला की दृष्टि से वे उच्च कोटि की बन गई हैं । प्रस्तुत कहानी को अंतर्प्रदेशीय महत्त्व तो बहुत पहले प्राप्त हो चुका है । भारत की प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त रूसी भाषा में भी इसका अनुवाद हो चुका है ।

चार साथी :

प्रस्तुत कहानी में मृत्यु-भय-ग्रस्त व्यक्तियों की मन: स्थिति का चित्रांकन किया गया है। कहानी के चारों साथी साथ-साथ यात्रा करते हुए आकस्मिक आंधी-पानी के चक्कर में इतनी

बुरी तरह फँस जाते हैं कि प्रत्येक के मन में आत्मरक्षा की सहज प्रवृत्ति पूरे जोर के साथ उभर उठती है । दामिनी की दमक और पानी से रक्षण पाने के लिए चारों यात्री एक इमली के वृक्ष के नीचे एक सूनी मड़ई में जाकर खड़े हो जाते हैं । बीच-बीच में मेघों के कड़कने और बिजली के कौंधने से सब भयभीत हो जाते हैं । उन्हें भय है कि बिजली इमली के वृक्ष से टकरा कर कहीं उन पर न टूट पड़े । ऐसे वातावरण में प्रत्येक के मन में जीवन की असफलीभूत इच्छाएँ उठती हैं । जीवन अपने सारे संघर्षों और व्यर्थ श्रमों में भी कितना प्रिय है, यह अनुभूति प्रथम बार सभी के मन में जग उठती है । अंतत: यह निश्चय किया जाता है कि बारी-बारी से प्रत्येक अपने कर्मों की परीक्षा देने के लिए बाहर खुले में खड़ा हो जाय, ताकि किसी एक पापी के कारण सबकी मृत्यु न हो। एक-एक करके तीन साथी निर्दिष्ट समय के लिए बाहर खुले में खड़े रहकर परीक्षा दे चुकते हैं । अब शीतलदीन की बारी आती है । उसके बाहर जाने के अनंतर बरसते पानी के बीच में बादलों का कड़कना और बिजली का कौंधना इतना बढ़ जाता है कि मड़ई के भीतर सुरक्षित साथियों को उसके बचने की कोई आशा नहीं दिखाई देती । स्वार्थवश उनमें से किसी को उसकी चिन्ता नहीं, अपितु अपने प्राणों की रक्षा का तीनों को पूर्ण संतोष है । उसकी विपत्ति से किसी के भी संतोष में कोई कमी नहीं आती, बल्कि उसमें उत्सुकता-जनित सुख की रंगीन परत-सी चढ़ जाती है । अंत में अपना समय पूरा हो जाने पर वह लौटने की सोचता ही है कि एक भयंकर कड़क और कौंध से सारा वातावरण क्षुब्ध हो उठता है । मड़ई में खड़े-कड़े तीनों साथी सोचते हैं कि अपने पाप का बोझ न संभाल सकने के कारण शीतलदीन मर गया और वे बच गये, तब अचानक तीनों नीचे निर्जीवावस्था में गिर पड़ते हैं । शीतलदीन मड़ई में जाकर बपला की चकाचौंध में देखता है कि तीनों मृत साथियों की बगल से एक विषाक्त सर्प भागता हुआ चला जा रहा है ।

यह कहानी भले ही घटना-प्रधान नहीं है, परन्तु घटनामूलक अवश्य है । घटना तो इसमें नाममात्र की है, वातावरण-निर्माण ही इसमें मुख्य है । इस कहानी में सरल,सुबोध शैली में घटना और वातावरण का वर्णन ऐसी संतुलित शैली में किया गया है कि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के किसी कृत्रिम प्रयास के बिना ही जीवन-मृत्यु से सम्बंधित मूलगत मानवीय प्रवृत्तियाँ अपने आप सहज रूप में उभर आती हैं और रहस्य अंत तक बना रहता है । कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में यह दिखाने का प्रयास किया है कि दुर्घटनाएँ सूचना देकर नहीं आतीं । उनके सम्बंध में हम पहले से कभी कुछ सोच भी नहीं पाते । यदि सोचने का साहस भी करते हैं, तो वह प्राय:

मिथ्या सिद्ध होता है, किन्तु मानव-मन विधाता की एक अद्भुत सृष्टि है । वह सोचना कभी छोड़ नहीं सकता । जब वह समझता है कि भय टल गया और वह सफल हो गया, तब उसे कितना परितोष होता है । उसे इस बात की कतई चिन्ता नहीं होती है न दुख कि जो विपत्ति उसके सिर से टल रही है और किसी अन्य पर जा रही है वह भी मनुष्य है और उसके प्रति सहानुभूति होनी चाहिए ।वह यह नहीं जानता कि प्रत्येक पल परीक्षा का है और अपने द्वारा वह निर्धारित नहीं किया जा सकता । विधि का विधान अत्यंत रहस्यमय है, किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है । इस कहानी में भी यही बात हुई है ।

मैना :

यह एक आदर्शवादी कहानी है । इसमें लेखक ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि जीवन में बंधन तो कुछ-न-कुछ रहते ही हैं । मनुष्य उनसे कभी मुक्त नहीं रह सकता । यदि वह उनकी अवज्ञा करता है, तो उसे वही अनुताप प्राप्त होता है, जो उसे जीवनभर दग्ध करता रहता है । अभिनय करते समय मनुष्य यह सोच भी नहीं सकता कि कभी-कभी यही अभिनय अनायास ही यथार्थ हो जाता है । प्रेम बहुधा एकांगी नहीं रह पाता । वह यदि एक ओर से आदान होता है, तो दूसरी ओर से प्रतिदान । प्रेम में जो संवेदना आत्मोसर्ग तक बढ़ती जाती है, वह केवल अभिनय तक कभी सीमित नहीं रह सकती । एक पक्ष को जब इस बात की अनुभूति हो जाती है कि कोई अपना बन गया है, तब दूसरा पक्ष भी आत्मदान के विषय में पिछड़ नहीं सकता ।

मनोहर के यहाँ उसका नया मित्र श्यामसुंदर आता है । मनोहर की इच्छा अपनी बहन साधना का विवाह उसके साथ करने की है ; किन्तु मनोहर की पत्नी मैना के प्रति श्यामसुंदर आकृष्ट होता है । इस प्रेम के परिणामस्वरूप उसे क्षय हो जाता है । डाक्टर के आदेशानुसार उसे हिल स्टेशन पर ले जाते हैं । वहाँ मनोहर के पत्रों को वह बहुत ही ध्यान से देखता है । यह देखकर माँ मनोहर को सपरिवार बुला लेती है । यह जानकर उसे अत्यंत प्रसन्नता होती है । सबके आ जाने पर डाक्टर बारी-बारी से उसे सबसे मिलाकर यह देखना चाहता है कि किसको मिलने से उसे अधिक प्रसन्नता होती है । अंत में पता चलता है कि मैना को देखकर वह अधिक प्रसन्न होता है । मैना और साधना उसके पास रहती हैं । मैना की दो महीने की निरंतर सेवा-सुश्रूषा से श्यामसुन्दर स्वस्थ हो जाता है ; किन्तु मैना का स्वास्थ्य गिरने लगता है । प्रेमाभिनय करते-करते अभिनय कब जीवन बन गया, इस बात का पता स्वयं उसे भी नहीं चला ।

उसके मन में कलुष नहीं है, पर जिस क्षण से अभिनय जीवन बन गया उसी क्षण से आत्म-प्रवंचना प्रारंभ हो जाती है जो जीवन को दायग्रस्त करके मसल डालती है । श्यामसुन्दर और साधना के विवाह के पश्चात् डाक्टर मैना को उसी हिल स्टेशन पर ले जाने के लिए कहता है, जहाँ पहले श्यामसुन्दर को ले गये थे । वहाँ श्यामसुन्दर तथा साधना मैना को देखने के लिए जाते हैं । साधना मैना के पास रहती है । अंततोगत्वा मैना की मृत्यु होती है और श्यामसुंदर पागल हो जाता है ।

वस्तुत: श्यामसुंदर तो मैना का नन्दोई था । उसे वह चाह नहीं सकती थी, तथापि ननद के सुख के लिए वह प्रेमाभिनय करती है । उसने कभी यह सोचने की भी आवश्यकता नहीं समझी कि अंत:करण के विरुद्ध चलने का क्या दुष्परिणाम आ सकता है । फलत: वह अपना सब कुछ खो बैठती है । प्रारंभ में तो वह इस प्रकार के अभिनय को खिलवाड़ समझती रही । अन्य पुरुष को चाहकर भी वह जैसे अपने प्रति अविश्वासी नहीं बनी थी ; परन्तु अभिनय के साथ-साथ वह अधिकाधिक संवेदनशील होती चली और अंत में जिन सम्बन्धों को वह मनोविनोद का एक साधन समझती थी, उन्हीं के प्रति आस्था रखने लगी । उसने श्यामसुन्दर की जीवनरक्षा तो की, किन्तु परिणाम यह आया कि मैना के बिना जीवित रहना अब उसके लिए असंभव हो गया । अपनी पत्नी साधना से भी वह स्पष्ट कह देता है कि उसे वह नहीं चाहता । वह चाहता है कि साधना उसकी उपेक्षा करे । उसने मद्यपान करना और गुजरा सुनने के लिए वेश्यालयों में जाना भी प्रारंभ कर दिया, परन्तु मैना को वह किसी तरह न पा सका । अभिनय अंत में मैना का जीवन ही ले बैठा । प्रस्तुत कहानी का मूल स्वर वेदना है । श्यामसुंदर जैसे पात्र तो संसार में अनेक मिल सकते हैं, किन्तु मैना जैसी नारी दुर्लभ ही है । प्रस्तुत कहानी एक नितांत विशिष्ट और नयी भावभूमि पर अवतरित है । यहाँ कौतूक में आरंभ हुए प्रेमाभिनय को जीवन भर दूर तक जीना पड़ता है और अभिनय अंत में मन की आस्था बन जाता है । कुछ द्वन्द्व यहाँ भी है, परन्तु अहैतुक प्रेम से वासना का कलुष इस स्थिति में बिलकुल धुल गया है ।

चोर :

प्रेम तथा प्रतिष्ठा न मिलने से अच्छे मनुष्य भी कैसे चोर तथा हत्यारे बन जाते हैं, यह इस कहानी में बतलाया गया है । इसमें एक चोर तथा एक वेश्या के परस्पर संवेदनशील होने की स्थिति का वर्णन किया गया है । एक मित्र के यहाँ से दावत खाकर अल्लारक्खू लौटता है, तब उसके तीनों मित्र उसे मिलते हैं और उससे बातें करते हैं । माता-पिता की मृत्यु हो जाने से वह उनके स्नेह से वंचित रह जाता है । गरीबी, भूख तथा बेकारी से तंग आकर वह चोर और

गिरहकट बन जाता है, अत: गोपी, जो उसका मित्र रह चुका है, उसे घृणा की दृष्टि से देखता है । आत्मीयता के अभाव में मनुष्य का कैसा अध:पतन होता है, यह अल्लारक्खू के जीवन से जाना जा सकता है । दिल बहलाने के हेतु वह वेश्या शबनम के यहाँ जाता है और उसकी ओर आकृष्ट होता है । वह उसे कहता है कि गोपी के ताने मारने पर वह चोरी का धन्धा छोड़ देना चाहता है । उसे शबनम के सहयोग की आवश्यकता है, किन्तु वह भी उसकी उपेक्षा करती है । अत: बेचैन होकर वह बम्बई चला जाता है । वहाँ 'जीवन का सौदा' नामक फिल्म के सेट पर अचानक शबनम से उसकी भेंट हो जाती है । चोर के प्रवेश का दृश्य आते ही दोनों मनमानी स्पीच देने लगते हैं । यह देखकर स्टुडिओ में सभी इसी विषय को लेकर चर्चा करते हैं । अल्लारक्खू के अचेतन मन में जो भाव थे, वे समय पाकर प्रकट हो जाते हैं । अल्लारक्खू फिल्म के रिहर्सल के प्रसंग में लेखक ने मनोविज्ञान की सहायता ली है, जिससे कहानी में वास्तविकता आ पायी है । इस कहानी में लेखक ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि अल्लारक्खू जैसे पतित व्यक्ति के हृदय में भी प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा होती है । यदि समाज ऐसे व्यक्तियों को अवसर दे, तो वे भी समाज के अच्छे सदस्य बन सकते हैं । वह पागल को मिठाई दिलवाता है, इस प्रसंग से इस बात की प्रतीति होती है कि वह इतना बुरा नहीं है जितना समाज समझता है, किन्तु हमारे सामाजिक शिकंजों ने ही उसे घोंटकर रख दिया है । प्रस्तुत कहानी पर जर्मन कथाकार स्टिफैन ज्वीग् का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । लम्बी कहानियाँ लिखना ज्वीग् की आदत थी । उससे प्रभावित होकर वाजपेयी जी ने भी इस कहानी के अतिरिक्त 'मैना', 'उर्वशी' आदि लम्बी कहानियों की रचना की है ।

पुनर्मिलन :

पुनर्जन्म से सम्बंधित यह एक प्रेम-कथा है । अपनी पत्नी के स्वर्गवास हो जाने पर अम्बिकाप्रसाद अतीत के संस्मरण याद करके अपने प्रसन्न दाम्पत्यजीवन का परिचय देता है । उसकी पत्नी फूलवती उसे इतना चाहती है कि उसके मित्र किशोर की पत्नी सुन्दर होने के कारण वह अपने पति को उसके यहाँ नहीं जाने देती । पीड़ित अंबिका को पं० रामेश्वर कहते हैं कि मृत व्यक्ति भी लौट सकता है । अपनी बात के संदर्भ में वे मनोहर के पुनर्जन्म का प्रसंग कहते हैं ; जो अपनी पूर्व पत्नी को मिलता है और तदनन्तर इस जन्म में विधवा उस नारी की मृत्यु हो जाती है । रामेश्वर कहते हैं कि अम्बिका और फूल के अत्यधिक स्नेह को देखते हुए उनके सम्बंध में भी ऐसा हो, यह असंभव नहीं । लेखक को भारतीय संस्कृति तथा पुर्वजन्म व

पुनर्जन्म में आस्था है, अत: उसने रामेश्वर से ऐसी बातें कहलवाई है। वस्तुत: ऐसा कहने के पीछे रामेश्वर का उद्देश्य तो अम्बिका को केवल आश्वस्त करना है। प्रस्तुत कहानी वाजपेयी जी के 'चंदन और पानी' (1962) नामक उपन्यास का एक अंश है[1]। लेखक ने प्रथम 'चंदन और पानी' उपन्यास का सृजन किया था। उसका यह अंश स्वतंत्र कहानी के रूप में भी काम आ सकेगा, मानकर लेखक ने सन् 1966 ई० में प्रकाशित अपने कहानी-संग्रह 'होटल का कमरा' में उसे स्वतंत्र कहानी के रूप में स्थान दिया। प्रस्तुत कहानी में कुछ शब्दों का परिवर्तन किया गया है।

परीक्षा : एक नया अर्थ :

केवल तीन पृष्ठों में लिखी गई यह एक आदर्शवादी कहानी है। मि.देसाई पूना जाने से पूर्व अपने यहाँ अपनी पत्नी के साथ रात को ठहरने के लिए दिवाकर को कहते हैं, ताकि उनकी पत्नी किसी भी प्रकार के भय का अनुभव न करे। ऐसा कहकर वे दिवाकर की परीक्षा करना चाहते हैं। रात को मि.देसाई की पत्नी दिवाकर को अपने पति के विषय में बतलाते हुए कहती है कि उन्होंने तो मुझे अपने जीवन की ऐसी-ऐसी बातें कही हैं जो सुनने के बाद कोई भी नारी उनकी पत्नी बनना स्वीकार न करेगी। दिवाकर शीघ्र उत्तर देते हुए कहता है कि यदि मैं मि.देसाई बनना चाहूँ, तो भी इस जीवन में नहीं बन सकता। मि.देसाई के आने पर उनकी पत्नी सब कुछ बता देती है और दिवाकर की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है। मि. देसाई द्वारा की गई मैत्री की परीक्षा में वह सफल होता है।

रात के दो बजे :

इस कहानी में परतंत्र भारत की स्थिति का सफल प्रतिबिम्बन् हुआ है। समय है अक्टूबर, 1943 ई० का। मथुराप्रसाद, जो महात्मा गांधी जी से प्रभावित है, के व्यक्तित्व पर बनवारीलाल आक्रमण करते हैं और मथुराप्रसाद उसकी चुनौती को स्वीकार करते हैं। उस समय प्रेस का स्वातंत्र्य नहीं था। गोप्य बातें चोरी-चोरी छापी जाती थीं। कांग्रेस का बुलेटिन छापते-छापते वे पकड़े जाते हैं। उन्हें कारावास की सज़ा होती है। मनोमंथन के पश्चात् रात के दो बजे उनके मस्तिष्क में उत्तेजना होती है। यह उत्तेजना शनै: शनै: बढ़ती जाती है और अंततोगत्वा वे पागल हो जाते हैं।

दो संपादक :

दो संपादकों का यह एक आदर्शवादी कहानी है। संवाद-पत्र 'भारती' के प्रधान

1- दे. चंदन और पानी, पृ० 77 से 84

संपादक सक्सेना जी तथा संयुक्त संपादक शर्मा जी हैं । शर्मा जी के कार्य से सक्सेना जी असंतुष्ट हैं । अपनी पत्नी के अस्वस्थ हो जाने पर सक्सेना जी छः मास की छुट्टी लेकर जलवायु परिवर्तन के लिए बाहर चले जाते हैं । उनके जाने के पश्चात् शर्मा जी को दो सहायक संपादकों की आवश्यकता प्रतीत होती है, किन्तु भारती-प्रेस की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, पत्र के प्रकाशन में भी अनेक कठिनाइयाँ हैं, अतः शर्मा जी बहुत ही चिंतित हैं, अपनी अनुपस्थिति में भारती की प्रगति से सक्सेना जी के पेट में चूहे कूदने लगते हैं । 'भारती' के संपादन की कटु आलोचना करते हुए अनेक पत्र वे संचालक को लिखते हैं, परन्तु अन्य पाठकों से प्रशंसा-पत्र भी आते रहते हैं, अतः संचालक सक्सेना जी के पत्रों की ओर कतई ध्यान नहीं देते । सक्सेना जी और चार महीने की छुट्टी ले लेते हैं । रुपये भेजने के लिए संचालक को बारम्बार लिखने पर भी वे रुपये नहीं भेजते । अंत में शर्मा जी के हस्ताक्षरयुक्त 600)- रुपये का एक चेक सक्सेना जी को प्राप्त होता है । छुट्टी की अवधि समाप्त होते ही सक्सेना जी सपत्नीक कलकत्ता आते हैं । संचालक उन्हें उपालंभ देते हैं । उनसे सब कुछ ज्ञात होने पर सक्सेना जी का हृदय-परिवर्तन हो जाता है । अब उनके हृदय में शर्मा जी के प्रति कपट तथा ईर्ष्या-द्वेष के कलुषित भाव नहीं रहते । शर्मा जी का सज्जनतापूर्ण व्यवहार सक्सेना जी के बुरे भावों को पराजित करते हैं । सक्सेना जी का चरित्र विकसनशील है ।

रजनी :

यही कहानी 'रजनी : एक चेतना' शीर्षक से 'होटल का कमरा' (1966) कहानी-संग्रह में संकलित की गई है । इसमें प्रकाशक द्वारा संपादक का शोषण कथ्य बनकर उभरा है । स्वयं वाजपेयी जी ने इस स्थिति को भोगा है, अतः इस कहानी में सप्राणता अधिक है । प्रकाश अपने नियतिवाद से चिपके हुए शोषणचक्र का शिकार बनता चला जा रहा है और रजनी के ये शब्द 'ईश्वर होता, तो अपने सपूतों का अन्याय देखकर उसकी आँखें फूट जातीं' गूँजते रह जाते हैं ।

इस कहानी में एक पत्रकार के संघर्षपूर्ण जीवन का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है । इस कहानी का नायक प्रकाश एक हिन्दी-समाचार पत्र में सहायक संपादक है । उसे पचास रुपये मासिक मिलते हैं, जबकि कुल मिलाकर उसे बारह-बारह घण्टे तक एक साथ कई० काम में जुटा रहना पड़ता है । उसके श्रम का शोषण होता है, तथापि वह सहन करता जाता है । अपने पुत्र को वह हृदय से चाहता है, तथापि उसकी पत्नी रजनी कहती है कि उसका प्रेम कृत्रिम है । नौकरी के कारण वह जल्दी घर भी नहीं लौट सकता । रजनी चाहती है कि

उसका पति ऐसा कुछ समय निकाले, जब अपने बच्चे को बीच में बिठाकर उसकी क्रीड़ा-किलकारियों से वह अपने पति के साथ आनन्दित हो सके । अचानक टायफायड़ हो जाने से बच्चे की मृत्यु हो जाती है । रजनी पर इस घटना का विशेष प्रभाव पड़ता है । वह एक और पुत्र को जन्म देती है । सरदी के दिनों में अकस्मात् वह बच्चा ज्वराक्रांत हो जाता है । रजनी बच्चे के लिए गरम कोट बनवाने के लिए प्रकाश को कहती है, परन्तु कम वेतन और अति महँगाई के कारण दो जून खाना भी नसीब होना उनके लिए मुश्किल था, ऐसी अवस्था में कोट कहाँ से आता । औषधियों तथा कोट के अभाव में इस बच्चे की भी मृत्यु हो जाती है ।इस घटना से रजनी असहिष्णु हो जाती है ।उसका भाई उसे अपने यहाँ ले जाता है । अंत में जब प्रकाश का वेतन बढ़ा दिया जाता है, तब उसे रजनी की मृत्यु का तार मिलता है । वह सब ओर से टूट जाता है और सोचता है कि मकान खुला छोड़कर बिना कुछ लिये सुनसान अंधेरी रजनी में एक ओर चल दे । इस कहानी में लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि एक पत्रकार की स्थिति क्या है । उसके पास इतना समय ही नहीं है कि वह अपनी पत्नी को समझा सके कि आजकल महँगाई कितनी बढ़ रही है तथा कितनी कठिनाइयाँ झेलने के बाद वह जीवन-निर्वाह के लिए पैसा जुटा पाता है । रजनी को संसार की इस स्थिति का बिलकुल ज्ञान नहीं था । यदि होता, तो भी उससे कुछ भी नहीं हो सकता था ।

यदि :

प्रस्तुत कहानी का नायक प्रकाश रात को देर से घर आता है, तथापि अहं के कारण उसकी पत्नी रजनी उसके पास नहीं जाती । वह सोचती है कि पति देर से घर आता है, फिर भी यही क्यों अपेक्षित है कि वही उसके पास जाय । वह भले ही उससे कैफ़ियत लेने जाय, परन्तु अपने स्थान से उसके पास जाने की जो अनिवार्यता है, वह तो उसके जाने से क्षीण नहीं हो जाती और उसके पास जाकर वह क्षुद्र क्यों बने ? वह ऐसा सोचती है कि थोड़ी ही देर में प्रकाश पुन: जाने को तैयार हो जाता है । वहकहता है- 'चलता हूँ, जल्दी ही आऊँगा, यदि आ सका, तो ।' प्रतीक्षा करती हुई रजनी के लिए वर्षों के बाद भी केवल एक शब्द, पारिवारिक जीवन का एक मात्र संबल रह जाता है और वह है 'यदि '। जिस आशा के सहारे वह जी रही है, उस शब्द की न कहीं सीमा है, न इति । ऊहापोह, दुर्बलतम दृढ़ता और विवशता की यह कहानी अतीत के एक चित्र को, कर्तव्य के निर्मम और कंटकमय पथ को पाठक के सामने पूर्णरूप० प्रस्तुत करती है । इस कहानी में दोनों

प्रमुख पात्रों का मनोविश्लेषण बहुत ही स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

चित्रकार :

हमारे जीवन में ऐसे रहस्य प्राय: बने रहते हैं, जिनके सम्बन्ध की कोई भी बात हम कभी प्रकट नहीं करते । जितना अधिक हम उन्हें प्रच्छन्न बनाये रखते हैं, ग्रन्थि, शंका, भय और चिन्ता से ग्रस्त हो-होकर हमारा अंतर्मन उतना ही अधिक विषण्ण एवं संत्रास्त हो उठता है । आत्म-गोपन की इस अभिसंधि का हमारे जीवन और समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है । कितने ही व्यक्ति उसका कुफल भोगते हैं । परन्तु इसके अनंतर भी समन्वय की संभावना न हो, तब हमारी स्थिति क्या हो, यही दिखाने का इस कहानी का मूल प्रतिवेदन है । हेमचन्द्र की चित्रशाला में एक बालक का चित्र देखते ही प्रतिभा मूर्च्छित हो उठी जाती है । डाक्टर कारण जानना चाहता है, अत: प्रतिभा के पति दिलीप को कक्ष से बाहर भेज देता है तथा प्रतिभा को मिक्चर की एक खुराक पिलाता है, किन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं होती । जिस चित्र को देखने से प्रतिभा मूर्च्छित हो गई थी, उसे देखने के लिए दिलीप के साथ डॉक्टर, डा० हेमचन्द्र के यहाँ जाता है, परन्तु चित्र बिक गया होता है और खरीदार हेमचन्द्र को याद नहीं, अत: इस प्रयत्न में भी डाक्टर को निष्फलता प्राप्त होती है । एक बार ग्रीनपार्क में सोमचन्द्र के साथ बातें करते-करते ही वह बेंच के पास गिर पड़ती है । सोमचन्द्र हेमचन्द्र के पास ही रहता है । यदि उससे बातें करने से प्रतिभा को प्रसन्नता होती है, तो सोमचन्द्र को प्रतिभा के पास ही रहने की व्यवस्था करने के लिए डाक्टर परामर्श देता है । सोमचन्द्र के अपने साथ रहने के लिए आने के पश्चात् वह उसे मातृवत् स्नेह करती है, बाद में प्रमाद-ग्रस्त हो जाती है । कहानी के अंत में संकेतपूर्ण संवादों की सहायता लेकर बाजपेयी जी ने अपने कलात्मक शिल्प का परिचय दिया है । कहानी में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि प्रतिभा जब अविवाहिता थी, तब हेमचन्द्र से उसके दैहिक सम्बन्ध थे, फलत: जो संतान होती है, उसे वह अनाथालय में छोड़ आती है । वहाँ से हेमचन्द्र उसे लाकर पालता है । यह लड़का सोमचन्द्र ही है । अंत में हेमचन्द्र भी प्रमाद-ग्रस्त हो जाता है । इस कहानी के कुमार दिलीपसिंह और रानी प्रतिभा के चरित्रांकन में 'हमारा मध्यमवर्ग साफ उतर आया है । इस वर्ग में वस्तुगत-चरित्रगत-व्यक्तिगत-समाजगत कितनी विषमताएँ और विशृंखलताएँ उपस्थित हुई हैं । और होती जा रही हैं, यही बाजपेयी का एकांतिक स्वर है[1]

1- साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, डा० लक्ष्मीनारायणलाल के 'वाजपेयी जी की कहानियाँ : शिल्पविधान' लेख से, पृ० 42

विद्रोही :

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने पुनर्जन्म की बात कहकर हिन्दू-धर्म के कर्मवाद के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है । एक बार डाक्टर रमेश के सौंदर्य की उसका मित्र बिहारी प्रशंसा करता है, तब किसी और ने भी ऐसी ही प्रशंसा की थी, कहकर डाक्टर गंभीर बन जाता है और बिहारी के अनुरोध करने पर अपने पूर्व जीवन की बातें कहता है । वह मिस लतिका बनर्जी को बचाता है, उसके यहाँ आता-जाता है, तब एक दिन पुनर्जन्म की बातें करती हुई वह डाक्टर को पूछती है-'भगवान ने आपको इतना सुन्दर कैसे बनाया ?'[1] यह सुनकर वह अप्रसन्न हो जाता है, तथापि उसके प्रति एक आकर्षण-सा अनुभव करता है । डाक्टर की आयु बीस वर्ष की थी, तब उसकी सोलह वर्षीया पत्नी की मृत्यु होती है । लतिका के प्रश्न से डाक्टर के मस्तिष्क में उथल-पुथल मच जाती है । फलत: लतिका को नीरोग करके वह वैराग्य धारण करता है । दो वर्ष का पवित्र जीवन व्यतीत करने के पश्चात् उस जीवन से मुक्ति पाकर एक राज्य में वह मैनेजर बन जाता है । एक दिन घूमने निकलता है, तो अचानक चीत्कार सुनाई देता है । वहाँ जाकर देखता है तो पता चलता है कि लतिका को गुण्डों ने मार डाला है । इस घटना से वह विद्रोही बन जाता है और अपनी इच्छानुसार सब कुछ करता है । लतिका की बातों तथा हाव-भावों से प्रतीत होता है कि पूर्वजन्म में वह डाक्टर की पत्नी थी । इस जन्म में वह डाक्टर को न पा सकी, इस बात का उसे गहरा दुख है । रमेश ने ज्ञानार्जन को जीवन का ध्येय बनाना चाहता था, किन्तु अर्थाधारित समाज ने उसे सहयोग नहीं दिया । यही स्थिति उसे विच्छृंखल बना देती है । अर्थ-प्रधानता की परिणति यही हो सकती है कि जो व्यक्ति अपने जीवन की सार्थकता सदा विषपान करके त्याग और तपस्या के बल से अमृतदान में समझता रहा, अर्थाभाव में व्यक्ति का अकेलापन, उसकी असहायता उसे विद्रोही के अतिरिक्त और कुछ नहीं बना सकते ।

ऐतिहासिक कहानी

मिलन : एक बलिदान :

वाजपेयी जी ने ऐतिहासिक कहानी केवल एक लिखी है । प्रस्तुत ऐतिहासिक कहानी

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 164

में 250 वर्ष पूर्व के भारत का दर्शन कराया गया है । सम्राट आलमगीर के ध गुप्तचर जोधपुर के महाराज अजीतसिंह की खोज में राजस्थान में विचर रहे थे । उस समय सामंत गोविन्दसिंह महाराज के पास आकर उन्हें स्थानान्तरण के लिए प्रार्थना करते हैं तथा राजाखेड़ा में अपने एक सम्बंधी के यहाँ रात व्यतीत करने की व्यवस्था करने के लिए कहते हैं। महाराज वहाँ प्रवेश में रात को विश्राम करते हैं । उनके पास राजकुमारी दुर्गावती आती है, तब महाराज प्रणय के रंग में रंग जाते हैं, किन्तु दुर्गावती कहती है कि 'राजधर्म का प पालन उसे ऐसी अनुमति नहीं देता कि वह ---।' आगे वह कहती है कि सेनाएँ शीघ्र इसी रात में बुला ली जायँ। दूसरे ही दिन प्रात:काल होते-होते राजाखेड़ा का वह क्षेत्र युद्धभूमि बन जाता है । दुर्गावती सर्व प्रकार से सहायक होने का प्रयत्न करती है । वीर दुर्गादास की सेना भी महाराज को सहायता पहुँचाने अचानक आ जाती है ; परिणामत: महाराज की विजय होती है । विजयोपरान्त दुर्गावती को खोजते-खोजते जब वे उसके पास पहुँचते हैं, तब थोड़ी ही देर के बाद वह महायात्रा के लिए प्रयाण करती है । कहानी के अंत में कविवर टैगोर की पंक्तियाँ लिखना अनिवार्य प्रतीत नहीं होता । ऐतिहासिक पीठिका पर रचित इस कहानी में युद्धक्षेत्र का चित्रण स्वयमेव भारतीय इतिहास के मध्ययुग को झलक दे देता है ।

पौराणिक कहानी

वंशीवादन :

पौराणिक वातावरण में आवृत यह एक प्रेम कहानी है, जिसमें राजकुमार यशोनिधि तथा रत्नमाला के प्रेम का वर्णन किया गया है । महाराज प्रजापति आगरा गये हैं, ऐसा बहाना करके राजकुमार यशोनिधि पाँच दिन के पश्चात् इन्द्रप्रस्थ जाने के लिए रत्नमाला से अनुमति माँगता है । राजकुमार के विषय में सब कुछ जानकारी प्राप्त हो जाने पर महाराज उससे अप्रसन्न हो जाते हैं और उससे बोलना बंद कर देते हैं । राजकुमार से यह सहन नहीं होने पर तथा अपने सिद्धान्तों का पालन नहीं होता देखकर वह अपने अनुज को आशीर्वाद देकर इन्द्रप्रस्थ छोड़ देता है । वर्षों के बाद भी राजकुमार के वापस न लौटने पर महाराज को बोध होता है कि वह लड़ाई पिता और पुत्र की नहीं, अपितु सिद्धान्तों की लड़ाई थी, अत: एक दिन युवराज कर्मनिधि को राज्याधिकार देकर काषाय वस्त्र धारण करके वे उत्तराखण्ड की ओर चले जाते हैं । कितने वर्षों के अनंतर मथुरा में एक योगिराज अपनी शिष्य मण्डली के साथ कई मास से ठहरते हैं । मथुरा में वंशीवादन प्रतियोगिता का आयोजन वे यह

कहकर करते हैं कि आज यदि यहाँ सर्वत्र वंशीवादन का महोत्सव मनाया जाय, तो किसी भी वंशी में भगवान् नंदनंदन स्वयं अधर लगा देंगे । इसी नगर में वेश्या श्यामा की तनुजा 'संध्या' भी है, जो उस प्रतियोगिता में सम्मिलित होना चाहती है ; किन्तु उसे कोई सम्मिलित नहीं करता । योगिराज प्रत्येक महोत्सव-स्थल में जाते हैं , किन्तु परन्तु उन्हें कहीं भी तन्मयता दृष्टिगोचर नहीं होती । अंततोगत्वा प्रमुख शिष्य, योगिराज को श्यामा की कोठी में ले जाता है । वहाँ भी एक मंदिर था । उस मंदिर के वंशीधर के सामने वंशीवादन करते-करते ही पुजारी के देखते-देखते संध्या पूर्ण मूर्च्छित हो जाती है । उसे इस अवस्था में देखकर भगवान् आये थे, ऐसा मानकर योगिराज परलोक सिधार जाते हैं । कहानी के अंत में प्रमुख शिष्य के कथन से ज्ञात होता है कि योगिराज महाराज, प्रमुख शिष्य राजकुमार तथा संध्या और कोई नहीं, अपितु रत्नमाला ही है ।

वाजपेयी जी की कहानियों का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों में तीनों-उच्च, मध्य एवं निम्न-वर्गों का चित्रण मिलता है, तथापि मध्य वर्ग के प्रति उनकी रुचि अधिक है, ऐसा प्रतीत होता है । 'सूखी लकड़ी', 'चोर','सम्बन्ध', 'निंदिया लागी', 'थोड़ी-सी पी ली' आदि कहानियों में वाजपेयी जी ने निम्न वर्ग को कहानी का आधार बनाया है । अपने प्रथम कहानी-संग्रह 'मधुपर्क' की भूमिका में वाजपेयी जी ने स्पष्ट लिखा है -"ये सब कहानियाँ तीन दिन में नहीं लिखी गई हैं - इनके तैयार होने में लगभग दस वर्ष लगे हैं । इनके प्लाट मैंने कागज़ पर छपे अक्षरों से नहीं, अपने जीवन और संसार की विराट चित्रशाला से चुराये हैं । मुझे अपनी इस चोरी पर अभिमान भी है ।"[1] वाजपेयी जी का यह कथन सत्य प्रतीत होता है । उन्होंने समाज में जो कुछ देखा तथा भोगा है, उसको अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है ।

मानव-जीवन में प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है । फ्रायड प्रेम के प्रत्येक स्वरूप का मूलाधार काम-भावना को मानता है । उसके विचार से साहित्य अवचेतन का विस्फोट है, जो काम-वर्जना-जनित कुण्ठाओं का परिणाम है ; किन्तु वाजपेयी जी ने फ्रायड की इस मान्यता के विपरीत मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रेम के सुष्ठु स्वरूप को अपने साहित्य में चित्रित किया है । 'निंदिया लागी' की पत्नी के प्रति बेनीबाबू तथा 'सूखी लकड़ी' कहानी की लकड़ी बेचने वाली के प्रति राधे के मन में जो आकर्षण है, उसमें कहीं भी यौन-वासना

1- मधुपर्क, भूमिका, पृ0 13

व्यंजित नहीं है । 'मिठाई वाला' कहानी के मिठाई वाले के प्रति रोहिणी की जिज्ञासा दमित काम-कुण्ठा का परिणाम नहीं है । यह सत्य है कि वाजपेयी जी की 'स्वयंवर', 'जहाँ सभ्यता साँस लेती है, तथा 'झाँकी' आदि अनेक कहानियाँ उन्मुक्त-प्रेम का समर्थन करती हैं, किन्तु वासना का कर्दम इन कहानियों में भी नहीं है । वाजपेयी जी की अधिकांश कहानियों का विषय प्रेम रहा है । अपनी इन कहानियों में उन्होंने प्रेम के स्वस्थ रूप को ही स्थान दिया है ।

कहानी-क्षेत्र में प्रवेश करते समय वाजपेयी जी आदर्श की ओर उन्मुख प्रतीत होते हैं । उनकी 'अन्याय', 'सत्य की जय','दो संपादक', तथा 'अधिकार-पत्र' आदि प्रारंभिक कहानियाँ आदर्शवादी हैं ; किन्तु शीघ्र उन्होंने अपनी कहानियों का धरातल मनोवैज्ञानिक बना लिया । उनकी 'हत्यारा','मिठाईवाला','त्याग', 'झाँकी','अपमान का भाग्य', 'वंशी-वादन', 'आत्मघात' आदि कहानियाँ मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से सफल एवं महत्त्वपूर्ण हैं । मानसिक द्वन्द्व आधुनिक कहानियों का प्राण है । चरित्रों के मानसिक द्वन्द्व के चित्रण के लिए 'बरात में', 'प्रतिदान', 'समर्पण', 'यदि', 'सूखी लकड़ी' आदि कहानियाँ देखी जा सकती हैं । वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में मानव-चरित्र को प्राधान्य दिया है । मानव-मन चरित्र का उत्थान-पतन, विचारों का घात-प्रतिघात तथा सद्-असद् भावनाओं का द्वन्द्व उन्होंने अपनी कहानियों में कुशलतापूर्वक चित्रित किया है । पात्रों के चरित्र की दृष्टि से 'मिठाई वाला','हृदय गति','चार साथी','टिकुली','ट्रेन पर','चित्रकार 'साँप का बिल','दुग्ध-पान','बाती और लौ','मैना','उर्वशी','नर्तकी प्रभृति कहानियाँ अपना अलग आकर्षण रखती हैं । इन कहानियों में क्रमशः मिठाई वाला, फूलमती, शीतलदीन टिकुली, राधाकुमुद, हेमचन्द्र, रन्नो, पान वाली, सुधाकर तथा विंदो, मैना, चंदा, नर्तकी का चरित्र-निरूपण बड़ी सुघड़ता के साथ किया गया है ।

पुरुष की अपेक्षा नारी का वाजपेयी जी की कहानियों में विशिष्ट स्थान रहा है । नारी-हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्रण वाजपेयी जी की कहानियों की विशेषता है । 'शबनम','यदि','प्रतिदान', आदि कहानियों में नारी की आकांक्षाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है । वाजपेयी जी की कहानियों का मुख्य उद्देश्य समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रित करना है ।'दुग्ध-पान', 'इन्द्रजाल','एक प्रतीक्षा','शैतान' तथा 'जहाँ सभ्यता साँस लेती है' आदि कहानियाँ अनमेल विवाह का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

'अंधेरी रात' में लेखक ने यह बतलाया है कि नारी की उपेक्षा का परिणाम बहुत भयंकर आता है। 'टिकुली', 'हृदगति', 'उद्धार' तथा 'नलिनी' आदि कहानियों में विधवा-समस्या का चित्रण किया गया है। 'हार-जीत', 'उर्वशी', 'अपणा' , 'गृहस्वामिनी', 'रेखाएँ', 'बात एक नाते की', 'लाइसेंस की सुबी', 'खाली बोतल' तथा 'वंचना : एक सत्य' आदि कहानियों में पर-पुरुष-नारी प्रेम की समस्या को चित्रित किया गया है। इन समस्याओं के अतिरिक्त अर्थ-वैषाम्य के कारण उपस्थित समस्याओं का चित्रण वाजपेयी जी ने अपनी 'विच्छेद', 'सहानुभूति ने कहा', 'रेशम के फंदे', 'एक आँसू खून का', 'आत्मघात' तथा 'सम्बन्ध' आदि कहानियों में किया है। लेखक केवल समस्याएँ उठाकर नहीं रह गया है, अपितु उसने उनको हल करने का भी प्रयास किया है।

अन्त में कहा जा सकता है कि उपन्यासकार की अपेक्षा वाजपेयी जी अधिक सफल कहानीकार हैं। उनके पास कहानी-लेखन का अपना एक स्वतंत्र ढंग तथा शिल्प है। प्रेमचंद तथा प्रसाद के समकालीन होते हुए भी वाजपेयी जी की कहानियों पर उनका प्रभाव नहीवत् है। अपने कथा-साहित्य की रचना में वाजपेयी जी ने शिल्प का प्रयोग किस प्रकार किया है, उनकी प्रारंभिक तथा वर्तमान कृतियों में शिल्प- सम्बंधी क्या अन्तर दिखाई देता है तथा शिल्प के नये प्रयोगों की ओर उन्होंने ध्यान दिया है या नहीं आदि प्रश्नों को केन्द्र में रखकर अगले अध्याय में वाजपेयी जी के कथा-साहित्य के संगठन -शिल्प के विषय में विस्तारपूर्वक विवेचन किया जायगा।

Part - 2

द्वितीय अध्याय

वाजपेयी जी के कथा -साहित्य का शिल्प - संगठन

द्वितीय अध्याय

"वाजपेयी जी के कथा-साहित्य का शिल्प-संगठन ।"

पिछले अध्याय में वाजपेयी जी के कथा-साहित्य का वस्तुपरक परिचय दिया जा चुका है । प्रस्तुत अध्याय में वाजपेयी जी के कथा-साहित्य के शिल्पगत सौंदर्य एवं वैशिष्ट्य का आकलन कर लेना भी सम्यक प्रतीत होता है । इससे पूर्व कि हम वाजपेयी जी के उपन्यासों की शिल्प-विधि एवं शैली-सौष्ठव की चर्चा करें, यह और भी आवश्यक है कि पृष्ठभूमि रूप में हम शैली और शिल्प की संक्षिप्त चर्चा कर लें और फिर हम देखें कि वाजपेयी जी की रचनाओं में परिभाषित एवं वर्गीकृत शैलियों तथा शिल्प-विधियों का कह तक प्रयोग हुआ है ।

हिन्दी उपन्यासों में जितनी बहुरूपता विषयों के क्षेत्र में है, उससे कहीं अधिक मात्रा में शैलीगत विविधता दृष्टिगोचर होती है । संस्कृत के आचार्य वामन ने शैली को 'रीति' की संज्ञा देते हुए इसे काव्य की आत्मा माना था । (रीतिरात्मा काव्यस्य।)और रीति की परिभाषा देते हुए लिखा था -

"विशिष्ट पदरचना रीति : ।"[1]

अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध आलोचक ने शैली की परिभाषा इन शब्दों में दी है -"शैली अभिव्यक्ति का विशिष्ट अंग है ।"[2]

इस आलोचक ने 'style is the man himself' फ्रांकन की इस उक्ति को अपने ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखा है -"शैली से अभिप्राय उस विशिष्ट एवं वैयक्तिक अभिव्यक्ति विधि से है, जिसके द्वारा हम किसी लेखक को पहचानते हैं ।"[3]

सारांश यह है कि प्रत्येक लेखक की अपनी एक विशिष्ट रचना-पद्धति होती है, जिसे शैली के नाम से भी जाना जाता है । शैली को शिल्प के अधिनस्थ माना जाता है । दोनों का निकटस्थ और अटूट सम्बन्ध है, इतना ही नहीं, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं ।शैली का सम्बंध कथाकार के व्यक्तित्व के साथ-साथ भावाभिव्यक्ति एवं भाषा के विशेष परिवा

1- काव्यालंकारसूत्र, 1।2।7-8

2. "Style is the technique of expression."
- The problem of style, J.Middleton Murry, P.5

3. "Style means that personal idiosrcracy of expression by which we recognise a writer.
- I bid, P.4

पे है । यह शैली उसके विचार, भाव, कल्पना, संस्कार, स्वभाव, प्रतिभा और जीवन-दृष्टि के अनुरूप ढलती है । शिल्प इस शैली का दिशा-निर्देश करता है । वह आवश्यकनुसार, उसे सीमित, विश्लेषित तथा वर्णनात्मक, सांकेतिक या नाटकीय विधि द्वारा संयोजित करती है । क्योंकि शिल्प-विधि का सम्बन्ध रूप-रचना की समस्त प्रक्रियाओं से है, अत: किसी भी रचना की शिल्प-विधि के सम्बन्ध में जानने के लिए हमें उस रचना में काम आने वाली विधियों, रीतियों तथा अन्य रूपों की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है । शिल्प, विधा का संपूर्ण ढाँचा (structure) है, तो शैली उस ढाँचे की रीति । इसीलिए शैली की जानकारी के लिए शिल्प की भाँति पूर्ण ढाँचे पर ध्यान न देकर रचना की भाषा एवं उसके प्रवाह की रीति आदि पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करनी पड़ती है । शिल्प शैली का स्वामी है । उसका लक्ष्य यह नहीं होता कि कथा क्या है, पात्र क्या है ? अपितु उसका लक्ष्य तो यह है कि कथा किस भाँति संयोजित हो, पात्र किस प्रकार नियोजित हो, जीवन-दर्शन कैसे उँडेला जाय आदि । इस लक्ष्य की सबसे बड़ी सहायिका शैली होती है ।

शिल्प-विधि का क्षेत्र व्यापक है ; क्योंकि इसका सम्बन्ध अभिव्यक्ति की सभी प्रक्रियाओं से है । शैली का क्षेत्र सीमित है । शैली व्यक्तिपरक होती है, जबकि शिल्प, वस्तुपरक । साहित्यकार की रुचि उसके शिल्प को अवश्य प्रभावित करती है, किन्तु इसके अनुरूप ही शिल्प का निर्माण नहीं हुआ करता, जबकि शैली तो कथाकार की रुचि के अनुरूप ही नियोजित होती है । समाज, इतिहास या अंचल का प्रबंधात्मक चित्रण केवल वर्णनात्मक शिल्प द्वारा संयोजित हो सकता है, अत: यह तो वस्तुपरक हुआ ; जबकि समाज, व्यक्ति, इतिहास या मनोविज्ञान, राजनीति आदि किसी भी विषयवस्तु के चित्रण के लिए अनिवार्य रूप से किसी एक शैली को अपनाना उपन्यासकार के लिए आवश्यक नहीं है। ऐसे चित्रण में वह एकाधिक शैलियों का अवलम्ब लेता है ।

शिल्प-विधि के अनेक प्रकार हैं । उसके प्रकार के सम्बन्ध में हिन्दी के अधिकांश आलोचक निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहने में असमर्थ हैं । इस सम्बंध में हिंदी का एक आलोचक लिखता है -" ऐसे ही न जाने कितने प्रयोग आधुनिक उपन्यास-साहित्य में किये जा रहे हैं । यह उसका विकास-काल है । अत: शिल्प प्रकार के सम्बंध में निश्चित रूप से कुछ भी कहना न तो संभव है, और न तो कि उचित है ।"[1]

1- हिन्दी उपन्यास और यथार्थ, डा० त्रिभुवनसिंह, पृ० 80

डा० प्रतापनारायण टंडन ने अपने शोध-प्रबंध में विविध शिल्प-विधियों का वर्गीकरण करने का प्रयास किया है ;[1] किन्तु उनका यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता । इस विषय में एक अन्य आलोचक का कहना है -" डा० टंडन का यह विभाजन एवं वर्गीकरण शिल्पगत न होकर विषय और वस्तुगत हो गया है । इस वर्गीकरण द्वारा उपन्यास साहित्य का अध्ययन करने से भ्रामकता की वृद्धि हुई है ।"[2] डा० भटनागर का यह कथन तथ्यपूर्ण प्रतीत होता है ; क्योंकि डा० टंडन विषय एवं शिल्प को पृथक-पृथक् करके विचार नहीं कर सके हैं, इसके परिणामस्वरूप उपर्युक्त भ्रांति उत्पन्न हुई है ।

डा० भटनागर ने अपने शोध-प्रबंध में निम्नलिखित पाँच शिल्प-विधियों का उल्लेख किया है -

1. वर्णनात्मक शिल्प-विधि (Descriptive Technique)
2. विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि (Analytical Technique)
3. प्रतीकात्मक शिल्प-विधि (symbolical Technique)
4. नाटकीय शिल्प-विधि (Dramatic Technique.)
5. समन्वित शिल्प-विधि (Mixed Technique.)[3]

इसे शिल्प-विधियों का अंतिम वर्गीकरण नहीं कहा जा सकता, तथापि यह वर्गीकरण वैज्ञानिक अवश्य प्रतीत होता है । इससे हिन्दी उपन्यास शिल्प के क्षेत्र में वर्तमान अवगतियों एवं भ्रांतियों का निवारण कुछ अंशों में अवश्य होता है । वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में प्रतीकात्मक एवं नाटकीय शिल्पविधि का प्रयोग नहीं किया है । जिन शिल्प-विधियों में उन्होंने अपने उपन्यासों की रचना की है, उनके सम्बंध में भी पीठिका रूप में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना अनुचित न होगा ।

(अ) वर्णनात्मक शिल्प-विधि :

इस शिल्प-विधि के द्वारा उपन्यास में जीवन के विस्तृत क्षेत्र का चित्रण विवरणपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाता है । इस विधि में एक इतिहासकार के पास जितनी सुविधाएँ

1- दे. हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास, डा० ~~मैमसल~~ प्रताप नारायण टंडन, पृ० 205-206

2- हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य, डा० प्रेम भटनागर, पृ० 38

3- वही, ,, पृ० 38

रहती हैं उपन्यासकार के पास इतनी सुविधाएँ विद्यमान रहती हैं । जीवन के किसी भी क्षेत्र को वह अपनी कथा का माध्यम बना सकता है । इस शिल्प-विधि द्वारा घटनाओं का बाहुल्य, पात्रों का आधिक्य, लम्बे संवाद, आदि अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है । इस विधि में रचना करनेवाले कथाकार को वातावरण के प्रसार एवं दार्शनिक विवेचन की पूर्ण सुविधा प्राप्त हो जाती है । पात्रों के अंतर्द्वन्द्व चित्रण की आवश्यकता इस विधि में नहीं होती ।

इस शिल्प-विधि के उपन्यासों का कथानक इतिवृत्तात्मक होता है । इस शिल्प-विधि में रचित उपन्यासों की कथा भले ही सुसंगठित न हो ; किन्तु उनमें एक विशेष विचार, एक समस्या अवश्य उठाई जाती है । ये समस्याएँ प्राय: सामाजिक होती हैं, परन्तु कतिपय उपन्यासों में राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक प्रश्नों के लिए भी अवकाश रहता है ।

इस विधि के चरित्र-चित्रण में पात्रों की बहुलता रहती है । ये पात्र अधिकतर किसी न किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं । इस विधि के अनुसार चरित्र का चित्रण ही संभव है, इसमें उसका विश्लेषण करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता । इस विधि के उपन्यासों के पात्र अधिकतर समाजोन्मुखी होते हैं । प्रमुखत: उनके वाह्य पक्ष का चित्रण ही किया जाता है ।

इस विधि के उपन्यासों में उपन्यासकार का ध्यान कथा और चरित्र के अतिरिक्त विचार तथा समस्या की ओर भी केन्द्रित रहता है । इस विधि में लिखा गया उपन्यास -साहित्य चार शैलियों में उपलब्ध है ; अत: शैली की दृष्टि से इसे चार रूपों में देखा जा सकता है ।

1- अन्य पुरुष शैली,

2- आत्मकथात्मक शैली,

3- पत्र शैली और

4- डायरी शैली ।

इन शैलियों में से वाजपेयी जी के उपन्यास प्रथम दो शैलियों में ही रचे गये हैं, अत: इन दो शैलियों पर हम क्रमश: विचार करेंगे ।

(1) अन्य पुरुष शैली :

यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है । लगभग सभी उपन्यासकारों ने अपनी अधिकांश रचनाएँ इस शैली में की है । इसमें रचयिता एक इतिहासकार की भाँति कथा का वर्णन

करता है । इस शैली में कथा का सूत्र पूर्णत: उपन्यासकार के हाथ में रहता है । इस शैली में सृजन करने वाला कलाकार अपने लक्ष्य से दूर नहीं जाता । लेखक यदि आदर्शवादी है, तो अपनी सुधार प्रवृत्ति के कारण समाज की यथार्थ परिस्थिति का वर्णन वह कभी नहीं करेगा और यथार्थवादी है, तो समाज के कुत्सित रूप अपने उपन्यासों में दिखाकर ही उसे शांति प्राप्त होगी । ऐसे उपन्यास कथाकार के बौद्धिक विचारों के नीचे दब-से जाते हैं । इस शैली को अपनाने के कारण लेखक अपनी ओर से सब कुछ कहने की छूट रखता है ।

वाजपेयी जी ने आज तक लगभग पैंतालीस उपन्यासों की रचना की है । उनके प्रारंभिक उपन्यास वर्णनात्मक शिल्प के अंतर्गत आते हैं । 'प्रेमपथ', 'मीठी चुटकी', 'अनाथ-पत्नी', 'त्यागमयी', 'लालिमा' तथा 'प्रेम-निर्वाह' आदि सन् 1926 ई0 से लेकर 1935 ई0 तक प्रकाशित उनके उपन्यासों का शिल्पगत महत्त्व नकारात्मक है । सन् 1936 ई0 में प्रकाशित वाजपेयी जी का 'पतिता की साधना' नामक उपन्यास प्रेमचंद-परम्परा की रचना है । प्रस्तुत कृति में वर्णनात्मकता की अधिकता है । इसके अतिरिक्त उपन्यासकार द्वारा कथा के बीच में आकर हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति भी इसमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । एक उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है । वाजपेयी जी लिखते हैं -

"इन्हीं दो वर्षों में एक दुर्घटना हो गई । हम उस दुर्घटना की चर्चा न करते, किंतु क्या किया जाय, वह ऐसी साधारण बात तो है नहीं, जो पचा ली जा सके । अब आज इस गाँव में ही नहीं, निरंजनबाबू के नाम से परिचित निकट के अनेक गाँवों के सब्भ्रांत निवासी उस बात को जानते हैं, तो हम ही उसको छिपाकर क्या करेंगे ?"[1] तत्पश्चात् नंदा के वैधव्य की करुण गाथा का वर्णन उपन्यास में किया गया है । इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार का चित्रण भी प्रस्तुत उपन्यास में वर्णनात्मक शिल्प-विधि के अनुसार हुआ है ।

(2) आत्मकथात्मक शैली :

जिस प्रकार आत्मकथा में 'मैं' का प्रयोग होता है, उसी प्रकार इस शैली में लिखे गये उपन्यासों में एक पात्र की ओर से संपूर्ण कथा कही जाती है । इस शैली का अभिप्राय सर्वत्र यह नहीं होता कि उपन्यासकार जिस पात्र के माध्यम से सारी कथा कहता है, वह पात्र उपन्यासकार के दृष्टिकोण एवं मान्यताओं आदि का प्रतिनिधि है ; किन्तु बहुधा

1- पतिता की साधना, पृ0 16

ऐसा ही होता है । कभी-कभी इससे विपरीत भी होता है । ऐसी स्थिति में लेखक के दृष्टिकोण को पाठक सरलतापूर्वक नहीं समझ पाता ।

इस शैली में 'मैं' का प्रयोग अनेक प्रकार से किया जाता है ।

(अ) कुछ उपन्यासों में नायक ही कथा कहता है और वही सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र होता है। उसके चारों ओर उपन्यास का संपूर्ण कथानक घूमता रहता है । जैसे - 'चलते-चलते' । इस शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

'उन घड़ियों को मैं अधिक सौभाग्यशाली नहीं मानता, जिनमें मेरा जीवन रंगीन बना है । जीवन में उन्होंने कोई बहुत व्यापक परिवर्तन कर दिया हो, ऐसा भी मैं नहीं समझता । आज मैं जो कुछ हूँ, उसके निर्माण में ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से उनका कोई हाथ रहा है, ऐसी बात भी नहीं है । लेकिन एक बात मैं अस्वीकार नहीं करूँगा । वह यह कि मुझे प्यार बहुत मिला है ।'[1]

प्रस्तुत उद्धरण में उपन्यास का नायक राजेन्द्र कथा कहता है । वह उपन्यास का प्रधान एवं सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र है । इतना ही नहीं, उपन्यास का कथानक उसके चारों ओर घूमता रहता है ।

(आ) कुछ ऐसे उपन्यासों की भी रचना हुई है, जिनमें कथा को भिन्न-भिन्न पात्रों द्वारा अलग-अलग परिच्छेदों में कहलवाया गया है । इन उपन्यासों में कभी-कभी एक ही घटना के सम्बंध में अलग-अलग पात्रों की प्रतिक्रिया वर्णित कराई जाती है, जिससे पात्रों को समझने तथा उनके विश्लेषण में सहायता प्राप्त होती है । इस शैली की कथा में वास्तविक नायक तो एक ही होता है, किन्तु कथा अनेक पात्रों द्वारा कही जाती है । उदाहरण के रूप में वाजपेयी जी के 'सपना बिक गया' 'मुझे मालूम न था' तथा 'विजय श्री' उपन्यासों को लिया जा सकता है । 'सपना बिक गया' का नायक दुष्यंत ही है, तथापि राका एवं बिहारी द्वारा भी कथा कही गई है । इसी तरह 'विजय श्री' का नायक राजनाथ है, तथापि जीवन शंकर, राधाकुमुद तथा हरीतिमा द्वारा भी कथा कही गई है । 'मुझे मालूम न था' उपन्यास में भी भुवन, सत्या तथा निशीथ द्वारा कथा कही गई है । 'वासना का इन्द्रजाल' में तृप्ति तथा अटल कथा कहते हैं ।

इस शैली में भाषा की विविधता और पात्रानुकूलता की स्वाभाविकता नहीं आ पाती । इसमें भाषा सदैव एक-सी रहती है तथा शैली में नीरसता बनी रहती है ।

1- चलते -चलते, पृ0 14

कभी-कभी कुछ कुशल उपन्यासकार एक पात्र को भिन्न-भिन्न स्थितियों में और मनोदशाओं में चित्रित करके इस एकरूपता को यथेष्ट अंश में दूर करने का प्रयत्न करते हैं, तो कुछ उपन्यासकार इस दोष से बचने के लिए एकाधिक पात्रों के द्वारा आत्मकथात्मक शैली में कथा कहलवाते हैं। इससे भाषा सम्बंधी वैविध्य उत्पन्न किया जा सकता है।

इस शैली के उपन्यासों में लेखक के विचारों को सरलतापूर्वक ढूँढ निकालना संभव नहीं होता। घटनाओं में क्षिप्रता तथा उपन्यास में कसावट का अभाव बना रहता है। इस शैली की रचनाओं में मुख्य एवं आवश्यक बातों के साथ-साथ गौण तथा अनावश्यक बातों को भी स्थान मिल जाता है। फलत: उपन्यास की कलेवर-वृद्धि तो होती है; किन्तु उसमें ढीलापन (बिखराव)तथा अस्वाभाविकता आ जाती है।

(ब) विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि :

यह शिल्प-विधि हिन्दी उपन्यास-शिल्प के विकास में एक बहुत बड़ा मोड़ है। अपने उपन्यासों में इस विधि का प्रयोग करने वाला उपन्यासकार विषय-वस्तु, पात्र, विचार तथा वातावरण को नवीन ढंग से प्रस्तुत करता है। विषय-वस्तु की दृष्टि से विचार किया जाय, तो कथाकार संपूर्ण जीवन के विस्तृत क्षेत्र को छोड़कर उसके किसी एक पहलू को लेकर विशेषज्ञ की भाँति उस पर प्रकाश डालता है। अब कथा संक्षिप्त होने लगी और उपन्यासकार कथा वहन के स्थान पर भाव तथा विचार वहन के कार्य में संलग्न हुआ। विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि के विकास के साथ ही प्लाट प्रधान विषय-वस्तु का ह्रास आरंभ हुआ। अब कथा में वाह्य क्रियाकलापों की कमी होने लगी। अंतर्मुखी प्रवृत्तियों तथा आंतरिक कारणों से ही कथा सम्बन्ध जोड़ने लगी। शनैः शनैः वाह्यात्मकता से मुक्त होकर कथा अनुभूति पर आधारित हुई। मानव के अंतर्मन में परस्पर विरोधी विचारों, घूर्णन-प्रतिघूर्णन, संघर्ष, तनाव, घुण्ठा, संत्रास, चिंता तथा आशंका को अभिव्यक्ति मिलने लगी।

इस विधि के कथाकारों ने वैयक्तिक जीवन को विषय-वस्तु के रूप में स्वीकार किया। व्यक्ति के अचेतन मन को वे प्रस्तुत करने लगे। उपन्यास की अंतर्प्रयाण वृत्ति ही मूल रूप से इस विधि के नियामक तत्त्वों में से एक है। इस विधि का दूसरा प्रमुख तत्त्व मनोविज्ञान का द्रुत विकास है। संसार के आधे से भी अधिक, कथा-साहित्य को उसने अपने अंचल में ले लिया है। मनोविज्ञान के अंतर्गत अचेतन मन का अन्वेषण एवं उसके अध्ययन की

विश्लेषणात्मक प्रणाली ने इस शिल्प-विधि के स्रोत का मार्ग तैयार किया है । मनुष्य की अंतश्चेतना में वर्तमान नाना ग्रंथियाँ, विविध कुण्ठाएँ, अनेक वासनाएँ एवं प्रश्नों का बोध सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा सहज हो जाता है । इस शिल्प-विधि के उपन्यासों में मूल केन्द्र कथा, घटना या सामाजिक समस्या न होकर वैयक्तिक अंतश्चेतना में वर्तमान कोई ग्रंथि या स्थिति होती है, जिसका सम्बंध अधिकतर हीनता या कामग्रंथि से होता है, जो व्यक्ति के जीवन में विपर्यस्तता ला देती है और उससे असामाजिक, अवांछित कार्य कराती है । परिणामत: व्यक्ति का व्यवहार जटिल, विचित्र तथा अकल्पनीय लगता है ।

इस शिल्प-विधि का मूलाधार मनोविज्ञान कहा जाता है । दर्शन-शास्त्र को भी इस विधि का उत्स माना जा सकता है ; क्योंकि इस विधि के उपन्यासों में मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों के साथ-साथ दार्शनिक ऊहापोह से पूर्ण कथानक भी उपलब्ध होते हैं ।"

इस विधि द्वारा उपन्यास की घटनाएँ बाह्यसंसार से रहकर मनस्तत्व में प्रवेश कर लेती है । इसी के परिणामस्वरूप उनमें सूक्ष्मता आ जाती है । इस विषय में एक आलोचक का कथन हमें तथ्यपूर्ण प्रतीत होता है कि 'इसमें मानवीय चेतना की निवृत्ति, उसकी तरलता, अनुरूपता, किसी रूप-रेखा को अपने प्रवेग से मटियामेट कर देने वाली आंतरिकता तथा प्राण-वत्ता के स्वरूप को चित्रित करना उपन्यासकार का ध्येय होता है ।'[1] इस विधि के उपन्यासों में कथातत्त्व गौण होता है और जो होता है वह भी सुसंगठित नहीं होता । कार्यकारण की शृंखला भी इसमें नियमित रूप से नहीं रहती । इस विधि के चरित्र-चित्रण में पात्रों के वैयक्तिक तत्त्व का पोषण हुआ करता है । इतना ही नहीं, समाज तथा समस्या का विश्लेषण भी व्यक्ति के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है । इस विधि के कथा-विधान तथा वातावरण में जो परिवर्तन आया, इस पर भी यहाँ क्रमश: विचार किया जायगा ।

विश्लेषणात्मक कथा-विधान :

मनोविज्ञान को प्रश्रय देने के कारण इस विधि के उपन्यास के कथा-विधान में भी परिवर्तन आ गया । अब कथा में से इतिवृत्तात्मकता का ह्रास होने लगा और इसका स्थान मनोविज्ञान पर आधारित घटनाओं ने ले लिया । बाद में ये घटनाएँ भी नाममात्र की रह गईं । अब प्रमुखता आंतरिक वृत्तियों को प्राप्त होने लगी । अत: कहा जा सकता है कि इस

1- आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, डा० देवराज उपाध्याय, पृ० 314

विधि के उपन्यासों की द्वितीय प्रमुख प्रवृत्ति अंतर्मुखी कथायोजना है । अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप को अब अधिक महत्त्व प्राप्त होने लगा । कथाकार द्वारा वर्णित घटनाएँ अपनी वस्तुगत प्रमुखता का त्याग करके पात्रों की मानसिकता में प्रवेश करके अब नाना द्वन्द्व दिखाने लगीं । इस विधि में रचित उपन्यासों में सुसंगठित कथा-वस्तु के प्रति उदासीनता ही दृष्टिगोचर होती है ।

कथा की समयावधि तथा सामग्री में भी अब पर्याप्त अंतर आ गया । केवल चौबीस घण्टे की घटनाओं को लगभग सात सौ पृष्ठों का बृहदाकार देकर 'यूलिसस' का सृजन किया गया । 'चाँदनी के खण्डहर' में भी एक दिन और एक रात की कथा है । अज्ञेय के प्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' में एक रात में देखे गये 'विजन' का वृतांत है । कथा में जीवन की सामग्री व्यापक क्षेत्र से नहीं, अपितु सीमित क्षेत्र से जुटाई जाने लगी । समाज, इतिहास एवं राजनीति के स्थान पर अब वैयक्तिक कुण्ठा अनेक प्रकार की सामग्री प्रस्तुत करने के लिए उचित मानी गई ।

विश्लेषणात्मक कथा-विधान में विस्तार का स्थान गहनता तथा वर्णन का स्थान विश्लेषण ने ले लिया । घटना-विधान का संयोजन इस तरह होने लगा कि उसमें अंतश्चेतना का मुक्त प्रवाह निर्बाध रूप में गतिमान रहने लगा । कार्य-कारण परम्परा का पालन भी इसमें कम होता है । आदि, मध्य एवं अंत का बंधन भी इसमें नहीं रहता ; क्योंकि इनका प्रभाव क्षेत्र वाह्य जगत् है ।

चिंतन प्रधान वातावरण :

इस विधि के उपन्यास दार्शनिक प्रश्नों से आवृत रहने के कारण चिंतन-प्रधान वातावरण प्रस्तुत करते हैं । दार्शनिकता का आग्रह आधुनिक उपन्यासों की विशेषता बन चुकी है । इस विधि में रचना करने वाला उपन्यासकार कथा को सीमित कर प्रत्येक घटना के साथ-साथ चिंतनमय वातावरण का सृजन करता चलता है । चिंतन के लिए एकांत एवं अंतर्मुखी वृत्ति सुविधा जुटाने वाले तत्त्व हैं । इस विधि के उपन्यासों में नायक केवल एकांतवास का अवसर ही नहीं पाते, अपितु उस समय मनन भी करते हैं । विश्लेषण के लिए चिंतन पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता रहता है ।

इस शिल्प-विधि को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1- मनोविज्ञान प्रधान विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि,

2- दर्शन प्रधान विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि,

3- चेतना-प्रवाहवादी विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि,

4- पूर्व दीप्ति शिल्प-विधि (Flash back Technique)

वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में आवश्यकतानुसार यू प्रमुख रूप से अंतिम दो शिल्प-विधियों का ही प्रयोग किया है ; अत: उन पर संक्षेप में विचार करना समीचीन प्रतीत होता है ।

(1) चेतना-प्रवाहवादी विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि :

इस विधि को अंग्रेजी में "Stream of Consciousness" कहते हैं । इस शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम विलियम जेम्स ने किया था । अपनी पुस्तक "प्रिंसिपल्स ऑफ साइकोलॉजी (Principles of Psychology-1890) में वे लिखते हैं -"मस्तिष्क की प्रत्येक निश्चित मूर्ति उसमें स्वच्छन्दता पूर्वक प्रवाहित होने वाले जल प्रवाह के रंग में डूबी रहती है । इस मूर्ति की सार्थकता एवं महत्त्व प्रदान करने वाली वस्तु यही आभा ज्योतिर्वलय या छायावेष्ठित ज्योति है, जो संरक्षक भाव से सदा उसे आवृत रखती है । चेतना अपने समस्त छोटे-मोटे टुकड़ों में कटकर उपस्थित नहीं होती, इसमें कहीं जोड़ नहीं, यह प्रवाहमय होती है । इसे हमें चेतना के विचार का या आत्मनिष्ठ जीवन का प्रवाह ही कहना चाहिए ।"[1]

इस विधि में कोई व्यक्ति विगत घटनाओं के सम्बंध में चिंतन करने बैठता है और उस चिंतन में बीच-बीच में वह वर्तमान को भी समेटता चलता है । इस तरह उसके चिंतन में अतीत तथा वर्तमान आपस में टकराते हैं ।

---

1. "Every definite image in the mind is seeped and dyed in the free water that flows round it. The significance, the value of the image is all in this helo or penumbra that surrounds & escarts it...Consciousness does not appear to itself chopped up in bits... It is nothing jointed..It flows..Let us call it the stream of thought of consciousness or of subjective life". - Principles of Psychology(1890),William James P.86.

वाजपेयी जी के उपन्यासों में इस शिल्प-विधि के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। यहाँ उनमें से एक उदाहरण दिया जा रहा है -

"त्रिवेणी मुस्कराते हुए सोचने लगा -'यह आदमी मुझे मूर्ख बना रहा है।' फिर भी वह बोला-'बात यह है कि हमारे यहाँ डी.डी.टी.का प्रयोग प्रायः नित्य होता है।' फिर इस कथन के साथ ही उसको फिर रमा का स्मरण हो आया। -'उपालंभ की बात तो रमा ने कह दी थी लेकिन ऐसा कभी न हुआ कि खाने के समय वह एक सैकण्ड के लिए भी मेरे सामने से हटी हो। इसके बाद जब मैं सोने को जाने लगा, तब उसने कहा था- 'अच्छा जीजा, मधुरयामिनी।' तो उसका मधुयामिनी कहना! --- रायेमोहन की बात के जबाब में अब त्रिवेणी के मुँह से निकल गया - 'आवश्यकता का अथ-ही-अथ मैं जानता हूँ,रायेबाबू। अंत मैंने न देखा है, न पाया है और न पाना चाहता हूँ। आपका क्या खयाल है ?'---- त्रिवेणी सोचने लगा -'रमा की कोई-कोई बात बड़ी मार्मिक होती है'--- "[1] प्रस्तुत उद्धरण में होटल में त्रिवेणी का खाना-पीना, उसका रायेमोहन के साथ वातालाप तथा रमा की बातें सोचने का क्रम एक साथ चलता रहता है। इस शिल्प-विधि का प्रयोग संपूर्ण उपन्यास में केवल इसी स्थान पर प्राप्त होता है। इस शिल्प-विधि के अन्य उदाहरण 'निमंत्रण'[2], 'पिपासा'[3], 'राजपथ'[4], 'टूटा टी सेट'[5], आदि उपन्यासों में भी देखे जा सकते हैं। 'निमंत्रण' से इस विधि का एक उदाहरण दे रहे हैं। इस उपन्यास का नायक गिरधारी सोचता है -

" सबेरे ही उठकर मुझे संपादकीय लेख लिखना है। नौ बजते-बजते फोरमैन मैटर माँगेगा।---तनख्वाह उसकी कई मास की बढ़ गई है। आज कह रहा था -'पंडित जी,अब काम चल नहीं रहा। एक-एक दिन बड़ी मुश्किल से कटता है। किसी तरह कुछ रुपये का प्रबंध कर ही दीजिए।' यह वह आदमी है जिसने संकट के समय हमारा साथ दिया है।स्त्री के आभूषण गिरवी रखकर इसने हमें कागज़ खरीदने के लिए रुपया जुटाया है।-- मशीन के इंस्टालमेंट की तारीख भी आज बीत गई। कल ही मुमकिन है उसका तकाजा भी आ

1- दे.विश्वास का बल, पृ0 6-7

2- निमंत्रण, पृ0 4

3- पिपासा, पृ0 93

4- राजपथ, पृ0 167 से 169, 183

5- टूटा टी सेट, पृ0 120-121, 125-126

धमके । ---पत्र के लिए अब नया टाइप भी चाहिए । हमारे स्टैंटर्ड के अनुरूप छपाई हो नहीं रही है । हैडिंग-टाइप्स तो बहुत ज्यादा घिस गये हैं । ---ये मैहरोत्रा-वाटर-कम्पनी वाले आए एक पेज का विज्ञापन दे दें ----- ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में गिरधारी के मन में एक साथ अनेक विचार आते हैं । उन सभी विचारों को लेखक ने चेतना-प्रवाहवादी विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि द्वारा प्रस्तुत किया है ।

~~इस शिल्प-विधि में उपन्यासकार की ओर से कहीं भी विश्लेषण, टीका-टिप्पणी~~

इस शिल्प-विधि में उपन्यासकार की ओर से कहीं भी विश्लेषण, टीका-टिप्पणी या व्याख्या करने का प्रयत्न नहीं होता । उपन्यास के चरित्रों की बौद्धिक चेतना में हम प्रवेश कर जाते हैं - हम उन्हें भीतर से देखते हैं । इसमें भावों के स्वच्छन्द सम्मिलन(Free association) की सुविधा रहती है । किसी भी चरित्र के मस्तिष्क में वर्तमान गृहीत बिम्ब का सम्बन्ध अतीत जीवनगत स्मृतियों से जोड़ा जाता है ।

(2) पूर्व दीप्ति शिल्प-विधि :

यह विधि विश्लेषणात्मक विधि का ही एक नया रूप है । इसमें उपन्यासकार कथा को पात्रों के मस्तिष्क में उठी हुई स्मृति के रूप में प्रस्तुत करता है । कथा आत्म-विश्लेषणात्मक शैली में प्रस्तुत की जाती है । उपन्यासकार वर्तमान से सम्बद्ध या उसे सार्थकता प्रदान करने वाली जीवन-स्थिति को पात्रों के स्मृति-खण्डों के रूप में बिखेरता चलता है । पात्र कथा कहते-कहते अकस्मात् प्रसंग के सूत्र को अतीत की किसी घटना के सूत्र से जोड़ देते हैं, जिससे कथा की गति बनी रहती है ।

इस विधि में मनोविज्ञान का समावेश एक आवश्यकता है । इस विधि के उपन्यास वस्तुत: किसी मानसिक स्थिति के आधार पर खड़े होते हैं । कथानक का निर्माण बहिर्जगत् की अपेक्षा अंतर्जगत् को लक्ष्य में रखकर किया जाता है । कथा का आरंभ एक शब्द विशेष या स्मृति विशेष पर आधारित होता है । यह स्मृति साधारण नहीं, अपितु असाधारण होती है, जो प्रतिक्षण व्यक्ति के अंतर्मन को आंदोलित करती रहती है । कथा का आरंभ विश्लेषणात्मक प्रसंग के साथ-साथ होता है । उदाहरण के लिए वाजपेयी जी के एक उपन्यास से

1- निमंत्रण, पृ० 3-4

एक दृष्टांत देना हमें उचित प्रतीत होता है -

"स्वामी की बात वह सोचना न चाहती थी । मुश्किल से दस दिन वहाँ रह पायी थी । वे दस दिन अब भी उसके जीवन-पट पर अंकित थे । एक दिन एकाएक वे बोल उठे थे - "मुझे अब मालूम हो गया है । तुमसे अब इस सम्बंध में कुछ कहने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। अच्छा हो, तुम अपने पिता को पत्र लिखकर बुला लो । मैं उसी दिन तुमको सदा के लिए विदा कर दूँगा ।"

वह कुछ बोलने की स्थिति में न थी । फिर भी उसने पूछा - "किस कारण मुझे ऐसा प्राणान्तक दंड दे रहे हो , क्या मैं जान सकती हूँ ?

उस समय वे इतने आवेश में थे कि तपाक से बोल उठे-"बात करना दूर रहा, मैं अब इस घर में तुम्हारी शक्ल भी नहीं देखना चाहता ।"

इतना कहकर वे तुरन्त ए कहीं चले गये । यहाँ तक कि विवाह के समय तक नहीं लौटे । कई मास बाद पता चला था, कालेज से लौटते समय पीछा करने और छेड़ने के कारण जिस युवक की इसने एक बार चप्पल से मरम्मत कर दी थी, उसी ने उन्हें बहका दिया था । किसी से अपने नाम पत्र लिखवाकर पोस्ट आफिस में छोड़ दिया और फिर वही उनको दिखा दिया । बिना इस बात की परीक्षा किये कि उस पत्र की हस्तलिपि मेरी है भी या नहीं, उन्होंने इतना बड़ा दंड मुझे दे डाला था ।"[1] इस उद्धरण में कैसी परिस्थिति में पति ने नीलकमल का त्याग किया, यह सब उसे याद आता है । इतने छोटे से उद्धरण में लेखक ने कहीं-कहीं वर्णनात्मक शैली का तो अंत में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है । यह दोष माना जायगा । इसके अतिरिक्त "विजय श्री"[2] "टूटते बंधन"[3], "राजपथ"[4] आदि उपन्यासों में भी इस शिल्प-विधि के उदाहरण देखे जा सकते हैं ।

इस विधि की एक विशेषता यह भी है कि यह अधिकतर वैयक्तिक तत्त्वों से परिपूर्ण, कल्पनातीत मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों से अवतीर्ण होकर, पात्र के मुख से कही जाने वाली अपनी आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत होती है । प्रारंभ हमेशा वैचित्र्यपूर्ण ढंग से कौतूहल वर्धन करने वाला होता है, किन्तु कथा-कौतूहल शृंखला गौण जाने के कारण अपूर्ण रह जाता है । व्यक्ति विश्लेषणा की बहुलता एवं विचार-चिंतन की अधिकता के कारण रहा-सहा कौतूहल भी पूर्ण

1- टूटा टी सैट, पृ0 67

2- दे. विजय श्री, पृ0 28-29, 40-41, -42, 44

3 दे. टूटते बंधन, पृ0 170 से 172

4- दे. राजपथ, पृ0 108-109

नहीं होता । इस विधि की रचनाओं में पात्रों का वर्तमान अतीत से सम्बंधित अनुभूतियों तथा घटनाओं के आधार पर होता है । अत: इसमें अतीत का महत्त्व अक्षुण्ण रहता है ।

सन् 1936 ई० में 'पतिता की साधना' प्रकाशित होने के पश्चात् वाजपेयी जी के 'पिपासा' (1937) तथा 'दो बहनें' (1940) नामक उपन्यास प्रकाशित हुए । इन उपन्यासों में वाजपेयी जी ने प्रेमचंद परम्परा से खिंचाव प्रकट करके विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि की ओर अभियान किया । 'पिपासा' का नायक कमलनयन एक बेकार ग्रेजुएट है । उसके मित्र नरेन्द्र की पत्नी शकुन्तला उसे चाहती है । पति-प्रेम तथा प्रेमी की चाह का द्वन्द्व ही इस उपन्यास का मूल केन्द्र है , इसे केन्द्रस्थ करके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है ; किंतु पात्र उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली बनकर रह गये हैं । परिणामत: उनका व्यक्तित्व उभर नहीं पाया । उनका अन्तर्द्वन्द्व भी पूर्णत: प्रस्तुत नहीं किया गया है । 'दो बहनें' उपन्यास के पात्रों के घात-प्रतिघात का विश्लेषण 'पिपासा' की अपेक्षा अधिक सफल रहा है ।

'दो बहनें' के पश्चात् वाजपेयी जी का एक और मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'निमंत्रण' प्रकाशित हुआ । 'निमंत्रण' के बाद 'धरती की साँस', 'निरंतर' 'उनसे न कहना', 'टूटा टी सेट', आदि उपन्यासों में भी विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि का प्रयोग किया गया है ; किन्तु इन सब में इस शिल्प-विधि का 'निमंत्रण' उत्कृष्ट उदाहरण है । प्रस्तुत उपन्यास में मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक विचारों की प्रमुखता है । इसमें परिस्थितियों तथा पात्रों का सफल विश्लेषण हुआ है । उपन्यास का वातावरण प्रभावशाली रहा है । इस सम्बंध में हिन्दी के एक प्रखर आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है - 'भगवतीप्रसाद जी आरंभ में प्रेमचंद जी का आंशिक प्रभाव लेकर चले थे, पर शीघ्र ही उनके उपन्यासों में मनो - वैज्ञानिक दृश्य-चित्रों की प्रमुखता होने लगी और पात्रों और परिस्थितियों का अंतर्द्वन्द्व दिखाया जाने लगा । यह एक नया उपक्रम था, जो हिन्दी उपन्यास को वैयक्तिक चरित्र-सृष्टि और मनोवैज्ञानिक भूमिका पर ले आया । यह एक दृष्टि से पुरानी विवरणपूर्ण सामाजिक उपन्यासों की पद्धति से आगे बढ़ा हुआ प्रयास है, पर दूसरी दृष्टि से इसमें एक अनिवार्य दुर्बलता भी है । जब कभी ये उपन्यास सामाजिक प्रगति की भूमि को छोड़कर एकांतिक मनो-वैज्ञानिक ऊहापोह में लग जाते हैं, तब न तो सच्चे अर्थ में नया चरित्र-निर्माण ही हो जाता है, और न उपन्यास की सामाजिक उपादेयता ही रह जाती है । जो पात्र और परिस्थितियाँ इन उपन्यासों में चित्रित होती हैं, वे कभी-कभी दर्शन और मनोविज्ञान के नाम पर निरुद्देश्य

भावुकता या चारित्रिक दुर्बलता को ही अंकित करती है ।'[1] आचार्य वाजपेयी का उपर्युक्त कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है । एक अन्य आलोचक ने यही बात अपने शब्दों में प्रस्तुत करते हुए लिखा है -'भगवतीप्रसाद वाजपेयी पहले तो प्रेमचंद की पद्धति पर चले, पर धीरे-धीरे मनोविश्लेषणवादी बनते गये और अंतर्द्वन्द्व चित्रण की ओर झुकते गये हैं ।'[2]

इन दोनों आलोचकों के कथनों को लक्ष्य में रखकर 'निर्मंत्रण' की शिल्प-विधि पर विचार करना उपयुक्त होगा । प्रस्तुत उपन्यास का प्रत्येक अध्याय किसी न किसी दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक तथ्य की उद्घाटक पंक्तियों के साथ ही आरंभ होता है ।तदनंतर उस अध्याय की कथा, पात्र तथा कथोपकथन आदि उस कथन की सार्थकता सिद्ध करने में तत्पर दृष्टिगोचर होते हैं । इस उपन्यास में विचार ही प्रमुख हो गया है । घटना, पात्र एवं संभाषण विचारों के साथ -साथ घूमते हैं, ऐसा प्रतीत होता है ।'निर्मंत्रण' के नायक गिरधारीलाल को उपन्यास के प्रारंभ में ही विचारों में लीन बैठा हुआ हम देखते हैं । उसके पुत्र रंजन की अस्वस्थता के कारण उसकी धर्मपत्नी रेणु संतप्त है ; किन्तु गिरधारी को इसकी जैसे कोई परवाह नहीं । उसे केवल अपने विचारों की चिंता है ।'--- मनुष्य आदर्श के लिए लड़ रहा है --- बचना तो गति नहीं है । एक तो घसीटना है - दुर्गति --- दुर्गति से कैसे बचा जाए ---सम्पादकीय लिखना है ---'[3] आदि विचार उसके मस्तिष्क में खलबली मचा देते हैं । द्वितीय अध्याय में अचानक उसकी भेंट मालती से होती है । इस अध्याय के आरंभ में ही वाजपेयी जी ने लिखा है -'---- विवश अवसर आते हैं और व्यक्ति को अपना पूरक मिल जाता है ।'[4] इससे पता चलता है कि इन दोनों की मुलाकात विचार की पूरक भेंट है । इसे हम पूर्व-नियोजित, शृंखलाबद्ध तथा स्वाभाविक भेंट नहीं कह सकते ।

हम पीछे कह चुके हैं कि विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि में रचित उपन्यासों में शृंखला की अपेक्षा रखना उचित नहीं है । प्रस्तुत उपन्यास भी इसी विधि में रची गई कृति है । इसका कथा तत्त्व अत्यंत क्षीण है । कथानक के नाम पर देखा जाय तो गिरधारी के परिवार तथा मालती के प्रवेश की द्वन्द्वपूर्ण स्थिति ही सब कुछ है । गिरधारी एवं रेणु का दाम्पत्य-जीवन सुखी नहीं है । गिरधारी के जीवन में मालती के प्रवेश से बात और भी बिगड़ जाती है।

1- नया साहित्य : नये प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, पृ0 177

2- हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास, डा0 जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ0 134-135

3- निमंत्रण, पृ0 3

4- वही, पृ0 10

मालती एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है, जिसको विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि की सहायता से हल किया गया है । रेणु और गिरधारी के दाम्पत्य-जीवन की शुष्कता प्रस्तुत उपन्यास की केन्द्रस्थ स्थिति नहीं है ; गिरधारी एवं मालती के मनोद्वन्द्व के चारों ओर उपन्यास की सभी घटनाएँ तथा पात्र घूमते रहते हैं । वस्तुत: गिरधारी और मालती की भेंट के पश्चात् ही कृति में सक्रियता दृष्टिगोचर होती है । इस उपन्यास के पात्रों के व्यवहार में अद्भुत वैचित्र्य तथा जटिलता प्रविष्ट हुई है । वाजपेयी जी ने तीनों पात्रों के अंतर्मन में प्रवेश पाकर उनकी मनो-भावनाओं, क्रिया-कलापों, विचारों तथा संवेगों का कुशलतापूर्वक विश्लेषण किया है ।

इस उपन्यास के तीनों पात्रों- गिरधारी, विनायक तथा विपिन - के विषय में डा० पद्मसिंह शर्मा, 'कमलेश' का कहना है - "वे संघर्षरत कार्यकर्ता हैं, पर उनका मानसिक द्वन्द्व भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं । और यह कहना असत्य नहीं होगा कि 'निमंत्रण' में मानसिक द्वन्द्व ही प्रमुख हो गया है । हम सहज ही इस उपन्यास को अंतर्द्वन्द्वप्रधान उपन्यास कह सकते हैं ।"[1] डा० शर्मा का यह कथन तथ्यपूर्ण प्रतीत होता है । वस्तुत: अंतर्द्वन्द्व पूर्ण स्थिति ही विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि की आत्मा है । 'निमंत्रण' में ऐसे अंतर्द्वन्द्वपूर्ण अनेक स्थल प्राप्त होते हैं, जहाँ पात्र को अंतर्मन में द्वन्द्व की अनुभूति होती है । प्रस्तुत उपन्यास का नायक गिरधारी एक विवाहित एवं उत्तरदायित्वपूर्ण सामाजिक प्राणी है । मालती से उसकी भेंट उसके मन में एक ~~उलझन~~ द्वन्द्वपूर्ण स्थिति को जन्म देती है । मालती के निमंत्रण पर वह शीघ्र ही उसके साथ चल पड़ता है । उसके कानों में मालती के ये शब्द गूँजते रहते हैं -"तो मैं जीवनभर के लिए निमंत्रण देती हूँ । आपको कहीं जाने की आवश्यकता न होगी ।"[2] ये शब्द उसकी मनोदशा को परिवर्तित कर देते हैं और वह नितांत उत्तरदायित्वहीन व्यक्ति बन जाता है । परिणामस्वरूप उसकी सामाजिकता का लोप तथा वैयक्तिकता का विकास होने लगता है ।

उस ओर मालती की मनोदशा विकृत हो जाती है । गिरधारी का सामाजिक मान उसे एक नयी प्रेरणा देता है । वह सोचती है -"क्या मैं ऐसा नहीं बन सकती ?"[3] और दूसरे ही दिन उसके परिवार के सदस्य उसमें परिवर्तन देखते हैं । वह रेशमी साड़ियों के स्थान पर खद्दर की साड़ियाँ ला-लाकर घर भर देती है । उसके मन में यह भाव जम गया है कि किसी

1- 'साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी' में संगृहीत डा० पद्मसिंह शर्मा के 'निमंत्रण' एक अध्ययन' लेख से पृ० 177

2- निमंत्रण, पृ० 15

3- वही, पृ० 26

भी तरह से गिरवारी को पराभूत करना है । उसे खदर की साड़ी में देखकर गिरवारी के साथ-साथ पाठक के आश्चर्य की भी सीमा नहीं रहती । मालती प्रिय-अप्रिय सब कुछ करने को तैयार है । उसकी उच्छृंखलता सामाजिक मर्यादाओं के बंधन तोड़ने को तत्पर है ।उसकी वैयक्तिकता चरित्र की नव मीमांसा करती है -

" मैं आज़ाद हूँ - मैं पुरुषों के बीच रहती हूँ - उनसे स्वतंत्रतापूर्वक मिलती हूँ, बस, इसीलिए मैं चरित्रहीन हूँ । और घरों के अन्दर सीता और सावित्री जैसी सती, शकुन्तला और उर्वशी जैसी सुन्दर स्त्रियों को पालते हुए भी जो लोग कैप्ट प्रास्टीच्यूट(रखैल या वेश्या) रखते हैं, वे क्या हैं ? --- रह गई चरित्र की बात, सो वह केवल शरीर के ही स्थूल व्यापारों तक सीमित है, मैं नहीं मानती । चरित्र मानसिक सदाचार का दूसरा नाम है । जो लोग दुनिया भर के झूठ-सच, छल-प्रपंच, कपट, धूर्तता तथा ईर्ष्या-द्वेष के खून से रंगे रहते हैं, जो मनुष्य के साथ कुत्ते का-सा व्यवहार करते नहीं लजाते, जो सत्य और न्याय से दूर रहकर एकमात्र स्वार्थों में ही संलग्न रहते हैं, पैसे के बल पर जो जमीन और जायदाद, स्त्री और प्रेयसी के लिए भाई और पुत्र तक का क्षिपकर सत्यानाश कर सकते हैं जो समाज उन्हें चरित्रहीन नहीं मानता, मैं ऐसे समाज को नहीं मानती ।"[1]

मालती का यह द्रोह केवल समाज के प्रति नहीं, शिल्प के प्रति भी नया दृष्टिकोण है । आज उपन्यास एवं समाज तथा चरित्र के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहा है । और यही परिवर्तित दृष्टिकोण नवीन शिल्प में अपना स्थान पा रहा है ; किन्तु इसकी भी अपनी कुछ सीमाएँ हैं । इन सीमाओं का उल्लंघन किसी को भी मान्य नहीं हो सकता । नये शिल्प में एक ही विचार का पुनरावर्तन हमको ही नहीं, पाठकों को भी खटकेगा। प्रस्तुत उपन्यास में 'चरित्र' शब्द को लेकर दो बार विश्लेषण किया गया है । दोनों के शब्दों में भी अधिक अंतर नहीं पाया जाता । मालती के द्वारा किया गया चरित्र शब्द का विश्लेषण ऊपर हम देख चुके हैं । उपन्यास में आगे चलकर विचार प्रतिपादन के लिए इस शब्द को लेकर वाजपेयी जी पुन: एक बार विश्लेषण करने लगते हैं -

"चरित्र का मूल्यांकन करते समय हम प्राय: शरीर-धर्म की ओर ही अपनी दृष्टि रखते हैं , किन्तु पुरुष और स्त्री के मिलने को, जहाँ तक वह शरीर-धर्म से सम्बद्ध है, चरित्र के

1- निर्वेण, पृ0 31

2- वही , पृ0 101

मूल्यांकन में अधिक महत्त्व देने का अर्थ है - छल,कपट,अविश्वास, कृतघ्नता,दंभ तथा आडंबर आदि उन वृत्तियों की उपेक्षा करना, जिनका नियंत्रण मानवता के विकास के लिए आवश्यक है ।"[1]

'निमंत्रण' में दिये गये चरित्र शब्द के अर्थ एवं विश्लेषण अति की सीमा का भी अतिक्रमण कर गये हैं । विचारों के इस ऊहापोह में चरित्रों का स्वाभाविक विकास रुक गया है । प्रस्तुत उपन्यास के सभी चरित्र विचारों की कठपुतली बनकर रह गये हैं । चरित्र की व्याख्या भी बहुत ही सीमित अर्थ में की गई है । वह प्रेम, प्रवंचना तथा पीड़ा तक सीमित होकर रह गई है । मालती सोचती है कि प्रेम के बदले में उसे प्रवंचना मिली है । गिरधारी मालती के आह्वानों की अवहेलना करने पर भी अति पीड़ा का अनुभव करता है । यह पीड़ा पीड़ित एवं पीड़क दोनों को त्रस्त करती है और विश्लेषण की प्रक्रिया के लिए तैयार करती है । वैवाहिक जीवन की अभिशप्त दशा का विश्लेषणकरते हुए गिरधारी कहता है -

"विवाह का अभिशाप भोगते-भोगते स्वस्थ-से-स्वस्थ और सुन्दर -से-सुन्दर स्त्री दस वर्ष के अन्दर प्राय: सूखकर अमचुर हो जाती है ---गृहस्थी का भार उसकी समस्त महत्वाकांक्षाओं को धूल में मिला देता है । उसका सारा दिन केवल खाना बनाने, बच्चों की देखभाल करने और दैनिक आवश्यकताओं के अनुसार घर को परिपूर्ण और तत्पर रखने में बीत जाता है । व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सौन्दर्य और मानसिक विकास के रक्षण और उन्नयन का उसे अवकाश ही नहीं मिलता । चारों ओर से घिरकर, विवश होकर, वह पति की सहचरी न रहकर सर्वशि में एक अनुचरी हो जाती है ।"[2]

पूरे उपन्यास की एकमात्र महत्त्वपूर्ण घटना विनायक का आगमन कही जा सकती है । यह घटना ही उपन्यास के प्रमुख तीनों पात्रों- गिरधारी,रेणु तथा मालती-से कथा को ऊपर उठाती है । अन्यथा संपूर्ण उपन्यास में विचार एवं मनोद्वन्द्वपूर्ण स्थितियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं । अपनी रुग्ण पत्नी रेणु को गिरधारी विचारों की दवा से रोगमुक्त करना चाहता है । विनायक भी कथा-प्रवेशोपरांत विचार-वाहक का कार्य करता है । दर्शन,संस्कृत तथा इतिहास में तिहरी एम०ए० करने पर भी वह बेकार है । नारी की महानता में उसे विश्वास

1- निमन्त्रण, पृ0 101

2- निमंत्रण, पृ0 00 46

विश्वास है , इसी लिए वह कहता है -"स्त्री में मैंने पाया वह हृदय ---जो, जो सब कुछ खोकर भी कभी रिक्त नहीं होता, अजेय होकर भी सदा पराजित, असमर्थ होकर भी सदा आत्मदान में तत्पर रहता है ।"[1] आगे चलकर मालती के साथ उसका विवाह संपन्न हो जाता है ।

इस उपन्यास के एक अन्य पात्र विपिन का प्रवेश नारी तथा पुरुष के दाम्पत्यजीवन की विषम विकृति पर प्रकाश डालता है । उसकी पत्नी में शारीरिक सौंदर्य का तो अभाव है ही, मन से भी वह विकृत है । अत: एक कहार से वह अनुचित सम्बंध स्थापित कर लेती है। प्रस्तुत उपन्यास का यह अंश मनोवैज्ञानिक अंश है । अपनी पत्नी सत्यवती का भृत्य कहार से अनुचित सम्बंध अपनी आँखों से देखकर विपिन विषपान करता है । 'निमंत्रण' में कुछ विश्लेषण ऐसे विद्यमान हैं, जो पति-पत्नी के दूरस्थ हो रहे सम्बंधों के रहस्य पर प्रकाश डालते हैं । एक-दो उदाहरण देखना असमीचीन न होगा -

"क्या इसमें कोई सन्देह है कि मैंने इनके पीछे अपनी समस्त महत्वाकांक्षाओं को मिट्टी में मिला दिया है ? कुछ-न-कुछ तो मैं हो ही सकती थी । मैं कविता नहीं लिख सकती थी ? कहानी-लेखिका होना मेरे लिए कौन मुश्किल था । आज जो यश मालती पा रही है, क्या मैं उसकी अधिकारिणी नहीं हो सकती थी ? वय में वह मुझसे सिर्फ़ दो वर्ष छोटी है ; किन्तु मेरे और उसके बीच खाई कितनी गहरी है । वह पास आ जाती है, तो उसे छाती से लगा लेने को जी आतुर हो उठता है । अपनी एक-एक भाव-भंगिमा से वह कितना आकृष्ट करती है । मेरा निमंत्रण-क्या ये - ऐसे उत्तम ढंग से नहीं कर सकते थे कि घर की इस चहार-दिवारी के बाहर भी मैं आ-जा सकती ? इन्हीं दीवालों के भीतर निरंतर बंद रखकर इन्होंने मुझे क्या दिया ? और अब, जब मैं उत्तरोत्तर मरण की ओर जा रही हूँ, ये पूछते हैं - "मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ?"[2]

प्रस्तुत उद्धरण में आत्म-विश्लेषण के साथ पर-विश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा गिरधारी के चरित्र-चित्रण और विचार -परम्परा का उद्घाटन किया गया है । रेणु अपने पति के ही शब्दों को मालती के सम्मुख कहते हुए उनके विचारों तथा पुरुष चरित्र का रहस्य खोलकर रख देती है।वह कहती है , -

---

1- निमंत्रण, पृ0 55

2- निमंत्रण, पृ0 80-81

"कहते थे प्रेयसी, प्रेयसी तो देवी होती है। वह अर्चना की वस्तु है। उसके साथ कहीं ब्याह हो सकता है! विवाह तो देवी को नारी बना डालता है। विवाह तो शरीर के उन स्थूल व्यापारों से सम्बद्ध है, जिनसे गंध आती है। - जो बासी पड़ते-पड़ते अंत में सड़ जाते हैं। किन्तु प्रेयसी तो प्राणेश्वरी होती है। विवाह तो भूख-शांति का एक मार्ग है। किंतु तृष्णा जो अजर होती है, उसकी शांति तो प्रेयसी ही करती है अपने आत्मदान से। वह बदला नहीं चाहती। उसे कोई आकांक्षा नहीं होती। वह अर्पित ही करती जाती है। किन्तु पत्नी ? वह तो बदला चाहती है। चाहती है कि वह कुछ पाये, उसको कुछ प्राप्त हो। कल्पना पर उसका निवास नहीं होता। मानसिक पूजा का जो एक सौंदर्य होता है, एक माधुर्य होता है, वह उससे दूर रहती है। वह नश्वर है।"[1]

गिरधारी एवं रेणु का विरोध वस्तुत: मानसिक ग्रंथियों का विरोध है। रेणु परिवरायणा नारी है। गिरधारी आधुनिक होने के कारण चाहता है कि रेणु महत्वाकांक्षाओं की बलि न देकर उसकी सहचरी बने ; किन्तु रेणु उसकी केवल अनुचरी ही बनी रहती है। गिरधारी भी मन ही मन घुट-घुट कर क्षीण हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सफल दाम्पत्य-जीवन के लिए केवल शारीरिक मिलन पर्याप्त नहीं, अपितु मानसिक मिलन भी अनिवार्य है। 'निमंत्रण' में इस तथ्य का उद्घाटन हुआ है। बाजपेयी जी एक स्थल पर लिखते हैं -

"हमारे देश में स्त्री का संसार प्राय: पुरुष से भिन्न होता है। व्यस्तता के और झीझ के कारण प्राय: पुरुष स्त्री की अपनी उलझनों, ग्रंथियों और असुविधाओं का परिचय तक नहीं देते। इसका परिणाम यह होता है कि स्त्री उनसे दूर हो जाती है।"[2] गिरधारी रेणु का प्रणय कुछ समय के पश्चात् विरोधी भावों के प्रवाह में गतिशील दृष्टिगोचर होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में दार्शनिक विश्लेषणों की भी कमी नहीं है। इस उपन्यास में सत्ताइस अध्याय हैं। उनकी आरंभिक पंक्तियाँ कहीं मनोवैज्ञानिक तो कहीं दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत करती हैं। इस उपन्यास के प्रथम, द्वितीय, षष्ठ, नवें, दसवें, तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, सोलहवें, अठारहवें, इक्कीसवें, तेइसवें, पच्चीसवें तथा सत्ताइसवें अध्याय का आरंभ दार्शनिक विश्लेषणात्मक पंक्तियों के साथ हुआ है। इनमें आदर्श, जगत्, अविवाहित नारी, सिद्धान्तों

1- निमंत्रण, पृ0 222

2- निमंत्रण, 111

के संघर्ष, हिंसा, आनंद और भोग, यथार्थ और जीवन के नाना दार्शनिक पक्षों का सूक्ष्म विश्लेषण कुशलतापूर्वक किया गया है । तत्पश्चात् तदनुकूल परिस्थितियों और पात्रों की अवतारणा हुई है ।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में यह देखा गया है कि उनके अधिकतर पात्र आदर्शवादी होते हैं, किन्तु प्रस्तुत उपन्यास में वे जीवन की यथार्थ परिस्थितियों की अवहेलना नहीं करते । गिरधारी, विपिन और विनायक तीनों आदर्शवादी हैं, तथापि वे यथार्थ की सीमा का अतिक्रमण नहीं करते । वे तो वैश्लेषिक प्रक्रिया द्वारा यथार्थ स्थिति के समक्ष विजय प्राप्त करना चाहते हैं । इनका व्यक्तित्व सूक्ष्मतापूर्वक अंकित किया गया है। उदाहरण के रूप में, गिरधारी के सम्बंध में वाजपेयी जी ने जो लिखा है, द्रष्टव्य है -

" गिरधारी : अवस्था बालीस के लगभग । बदन इकहरा, वर्ण गेहुँआ, लम्बी नाक पर सुनहले फ्रेम के चश्मे का ब्रिज । खादी का कुरता पहनते हैं । पैरों में अक्सर चप्पल रहती है ; कभी-कभी लाल महाराष्ट्रीयन जूता, जिसकी एड़ी मुड़ी रहती है । पैदल तेज़ चलते हैं । काम के समय मजाक से चिढ़ते हैं । हाथ में छाता-छड़ी कुछ नहीं रखते । सिर प्राय: खुला रहता है। बालों का एक गुच्छा कभी-कभी दायीं भौंह तक आ जाता है ।" [1]

उपर्युक्त उद्धरण में हम देखते हैं कि इतना थोड़ा लिखकर भी लेखक बहुत कह गया है । ऐसा ही एक और शब्दचित्र पूर्णिमा के सौंदर्य के सम्बंध में देखा जा सकता है ।[2] ऐसे सूक्ष्म चित्रण विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि में लिखे गये उपन्यासों में ही प्राप्त होते हैं ।

(क) समन्वित शिल्प-विधि :

यह शिल्प-विधि मुख्यत: यथार्थ जीवन चित्रण को समग्र रूप में प्रस्तुत करने के निमित्त प्रयोग में आई है । प्रस्तुत अध्याय में पीछे उल्लिखित शिल्प-विधियों में एकाधिक शिल्प-विधियों का मिश्रण हो जाने पर इस विधि का अभ्युदय होता है ।

इस विधि के अनुसार मूल विषय विश्लेषणोन्मुख होता है । वस्तु-विन्यास का गठन सामान्यत: वर्णनात्मक विधि के आधार पर संयोजित होता है । लेखक जब पात्र के विषय में कुछ कहता है, तब वह वर्णनात्मक शिल्प-विधि का प्रयोग करता है । अंतर्मुखी पात्र

1- निमंत्रण, पृ0 7

2- वही, पृ0 136

विश्लेषणात्मक विधि द्वारा चित्रित होते हैं।[1] इस विधि की रचना में वाह्य घटनाओं का वर्णन तीव्र, प्रवाहमान रूप में और आंतरिक स्थितियों का विश्लेषण सूक्ष्म रूप में संयोजित होता है।[1] उपन्यास में वर्णित घटनाएँ, उप कथाएँ एवं भाषण आदि जितने व्यापक होते हैं, विषय का विश्लेषण उतना ही गहन एवं सूक्ष्म होता है। कोई भी सामाजिक क्रिया, राजनैतिक घटना, धार्मिक परम्परा और आर्थिक समस्या इस शिल्प-विधि के उपन्यास में विस्तृत एवं सफल वर्णन पाती है।

टाइप, वैयक्तिक, तथा प्रतीक तीन प्रकार के चरित्रों का समन्वय इस विधि की रचनाओं में हुआ है। वाजपेयी जी का 'चलते-चलते' उपन्यास इस विधि का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस कृति का विस्तारपूर्वक विवेचन इस अध्याय में ही आगे किया जायगा। इस विधि की रचनाओं में व्यापकता तथा गहनता, सूक्ष्मता एवं सांकेतिकता एक साथ उपलब्ध हुई हैं। समाज का व्यापक रूप ऊपरिकथित प्रथम प्रकार के चरित्रों द्वारा, उनका गहन अध्ययन द्वितीय प्रकार के चरित्रों द्वारा तथा सांकेतिक स्वरूप तृतीय प्रकार के पात्रों द्वारा उद्घाटित हुआ है। इस विधि में रचे गये उपन्यासों के अध्ययन से पता चलता है कि समाज एवं राष्ट्र की वाह्य परिस्थितियाँ ही व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्माण नहीं करती, अपितु उसकी मन: स्थिति, उसके संपर्क में आने वालों की अचेतनावस्था, उसके स्वप्न आदि भी उसके मूर्त तथा अमूर्त वैयक्तिक सृष्टा हैं। घटनाओं की व्यापकता, पात्रों की सघनता, संवेगों की स्पन्दनता और विचारों की प्रौढ़ता आदि इस शिल्प की परिधि में आ जाते हैं।

वाजपेयी जी अपने लोकप्रिय, बहु चर्चित तथा प्रख्यात उपन्यास 'चलते-चलते' के पात्रों की बहुलता दर्शाते हुए उन्हें समन्वित शिल्प-विधि के परिवेश में घुमाते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक कहीं प्रत्यक्ष रूप से पात्रों की वेशभूषा तथा कार्य-कलाप की आलोचना वर्णनात्मक शिल्प-विधि में करता है, तो कहीं लिखित भ्रामक उद्धरण विधि द्वारा पात्रों का विश्लेषण करता है। यथा - छोटी भाभी अपने कथन को किसी के द्वारा कथित उद्धरण के रूप में रूपायित कर अपनी उस इच्छा को राजेन्द्र के आगे, विचित्र ढंग से, अभिव्यक्त करती है, जो प्रत्यक्ष रूप से कहने में कठिन होती।

प्रस्तुत उपन्यास का मूल विषय नारी एवं पुरुष की स्वच्छंद प्रेम-लीला है। इस विषय का अवलम्ब लेकर वाजपेयी जी ने जो कथावस्तु जुटाई है, वह वर्णनात्मक है, परन्तु

1- हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य, डा० प्रेम भटनागर, पृ० 61

मूल विषय विश्लेषणोन्मुख है । इस शिल्प-विधि के अधिकांश उपन्यासों का सृजन आत्म-कथात्मक शैली में हुआ है । 'चलते -चलते' उपन्यास का नायक राजेन्द्र आत्मकथा के रूप में अपनी जीवनी का वृहदांश पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है ; किन्तु वह समय-समय पर जीवन की विशिष्ट स्थिति का विश्लेषण करने बैठ जाता है । इस प्रकार आत्म निरीक्षण एवं समाज-परीक्षण कहीं विश्लेषणात्मक, तो कहीं वर्णनात्मक विधि द्वारा प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास के प्रारंभ में जो 'अंतर्कथा' दी गई है, उसका मुख्य कथा से निकटवर्ती सम्बंध है । यह कथा वर्णनात्मक है । तत्पश्चात् मुख्य कथा का आरंभ राजेन्द्र की बहिन माधवी के विवाह से किया गया है । यह प्रसंग वर्णनात्मक होते हुए भी राजेन्द्र के अपनी छोटी भाभी के प्रति आकर्षण की रोचक जीवन-स्थिति के विश्लेषण से भरपूर है । बहन के विवाह के शुभ अवसर पर राजेन्द्र ने छोटी-छोटी वस्तुओं का भी वर्णन किया है, जिनमें विवाह-मंडप घर के द्वार और उसकी शोभा, प्रीतिभोज और बारात आदि का विस्तृत वर्णन पठनीय है ।

राजेन्द्र तथा छोटी भाभी का परस्पर आकृष्ट होना ही इस उपन्यास की केन्द्रस्थ स्थिति है । यह छोटी भाभी राजेन्द्र के मौसेरे भाई वंशी की द्वितीया पत्नी है । वह अतृप्त वासना के कारण कुण्ठित है । राजेन्द्र के प्रति उसके आकर्षण का कारण यही है । इस भाभी के कारण ही राजेन्द्र को जीवन की विभिन्न अनुभूतियाँ प्राप्त होती है। भाभी के वर्णन के साथ राजेन्द्र ने अंत: प्रेक्षण विधि की सहायता से मन: स्थिति का पूर्ण विश्लेषण भी किया है । छोटी भाभी के प्रति राजेन्द्र के आकर्षण का एक वर्णन द्रष्टव्य है -

" मैं अभी इस आश्चर्य में ही पड़ा था कि वे इतना कहकर चल दीं । वे चली जा रही थीं और मैं एक साथ शिष्टता, आत्मीयता और व्यवस्था के प्रति, उनकी उचित सतर्कता का अनुभव करके, चकित-विस्मित और मुग्ध दृष्टि से उनकी स्फूर्ति देख रहा था ; और देख रहा था उसमें विकसित प्रस्फुटित उनके रूप-लावण्य का तरंगित वैभव । एक अमित आभा जैसे मेरे भीतर-बाहर फैल गई । सारा वातावरण मेरे लिए अत्यंत स्निग्ध, मधुर और मनोरम हो उठा ।"[1]

राजेन्द्र ने भाभी का वर्णन करते -करते अंतर्मुखी होकर अपनी मन: स्थिति का विश्लेषण भी किया है । यथा -

---

1- चलते-चलते , पृ0 16

"एक प्रश्न बार-बार मेरे भीतर उदय हो-होकर हलचल मचाने लगा कि एक क्षण, एक वाक्य और एक ही चितवन में जो नारी अपनी संचित राशि का समस्त अमृत एक साथ उँडेल देती है, वही दूसरे क्षण इतनी कठोर, रहस्यमयी, मायाविनी और निर्मम कैसे हो जाती है ? प्रेम और तिरस्कार के प्रयोग ये एक क्रम से क्यों करती है ? क्या ये इस प्रकार अपने आपसे ही लड़ती हैं ? क्या इनकी सारी अभिव्यक्ति केवल अपने लिए है । या जो कुछ यह दान करती हैं, अन्त में उसे स्वयं ही प्राप्त भी कर लेती हैं ?" [1]

'चलते-चलते' में विश्लेषण की यह प्रक्रिया केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं रही है, अपितु प्रस्तुत उपन्यास की रचना समन्वित शिल्प-विधि में होने के कारण उसके अंतर्गत समाज, राष्ट्र, राजनीति तथा धर्म आदि का भी समावेश हो गया है । जमना पागल क्यों हो गई, बंशी ने आत्महत्या क्यों की आदि सभी प्रश्नों के उत्तर में सामाजिक विषमता तथा वैयक्तिक कपट एवं स्वजनों का पूर्ण रूपेण विश्लेषण किया गया है । इस उपन्यास में बाह्य घटनाओं का वर्णन जितना विस्तार से हुआ है, विश्लेषण की क्रिया उतनी ही तीव्र एवं सूक्ष्म होती गई है । राजेन्द्र अपने पिता की मृत्यु तथा उनके शव के लुप्त हो जाने की घटना को अपनी बहन के विवाह के अवसर पर भी नहीं भूल सकता । बहन के विवाहोपरांत पिता की मृत्यु को सत्य स्वीकारने के लिए उसका मन तैयार नहीं होता । उस घटना को वह अशुभ मानता है और पिता के शव की दुर्गति के विषय में चिंतन करने लगता है । विभिन्न प्रश्न, समस्याएँ एवं शंकाएँ उसके मन को जड़ीभूत बना देती हैं । ऐसी मानसिक स्थिति में वह मानव-हृदय की एक घड़ी की मशीन से तुलना करता है । और उसे विश्वास हो जाता है कि उसके पिता जीवित हैं । आगे जाकर हम देखते हैं कि उसके यह विश्वास तथा चिंतन की परिणति सत्य में होती है ।

इस विधि में सृजित उपन्यासों में केवल किसी सामाजिक घटना, राजनैतिक कार्य, धार्मिक परम्परा या आर्थिक समस्या का विस्तृत वर्णन ही नहीं होता ; किन्तु उसका कारण, परिणाम तथा उसकी सीमा का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया जाता है । इस उपन्यास की घटनायें संख्या में सीमित हैं, परन्तु उनका वर्णन विवरणात्मक है और उनके घटित होने के कारण एवं प्रभाव सूक्ष्मतापूर्वक विश्लेषणात्मक विधि द्वारा उद्घाटित किया गया है । वस्तुत: पाँच घटनाएँ - राजेन्द्र के पिता की मृत्यु एवं पुनर्जीवन ; माधवी का विवाह, राजेन्द्र

1- चलते-चलते, पृ० 35

की चाची का अपनी विधवा पुत्री लाली के जेवर चुराकर तीर्थयात्रा के मिस दिल्ली में आवास तथा राजेन्द्र के पिता के साथ मुक्त मिलन, लाला सांवरे की पुत्री जमना का मुरलीमनोहर उर्फ राजहंस के साथ बम्बई भाग जाना और बाद में उसके व्यवहार से तंग आकर उसे चलती ट्रेन से धक्का देकर स्वयं पागल हो जाना, रामलाल का वंशी की प्रथम पत्नी विमला के साथ अनुचित सम्बंध स्थापित कर वंशी को धोखा देकर बीस हजार रुपये का चैक भुना लेना - ही इस उपन्यास की कथावस्तु का आधार है । इनकी योजना वर्णनात्मक शिल्प-विधि के अनुसार हुई है, परन्तु इनके घटित होने की खोज-बीन के लिए विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि का अवलम्ब लिया गया है ।

प्रस्तुत उपन्यास की प्रत्येक घटना के मूल में नारी-पुरुष की अतृप्त काम-वासना कार्य कर रही है । यह बात राजेन्द्र द्वारा किये गये विश्लेषण से ज्ञात होती है । उपन्यास में पाँच जोड़ों का त्रिकोणीय अवैध सम्बंध दिखाया गया है ।

1- राजेन्द्र के पिता पाण्डेय तथा चाची का अवैध सम्बंध ,

2- रामलाल तथा विमला का अवैध सम्बन्ध,

3- मुरलीमनोहर तथा जमना का अवैध सम्बंध,

4- वंशी तथा लाली का अवैध सम्बंध,

5- वंशी तथा अर्चना का अवैध सम्बंध।

एक त्रिकोणीय अवैध सम्बन्ध स्थापित करने का जो प्रयत्न किया गया है, उसमें छोटी भाभी, लाली तथा वैशाली का राजेन्द्र के साथ सम्बंध द्रष्टव्य है । राजेन्द्र के अति आदर्शवादी होने के कारण ये सम्बंध तीनों के साथ मन तक ही अवैध होकर रह गये हैं । इन सम्बंधों का मूल कारण भी अतृप्त कामवासना ही है । वंशी तथा लाली के अवैध सम्बंध की बात सुनकर राजेन्द्र हतप्रभ रह जाता है । मन: स्थिति का विश्लेषण करने के साथ-साथ वह इस अनहोनी घटना का मूल कारण खोज निकालता है । 'समाज की अंत: सलिला अंतर्वाहिनी स्रोतस्विनी' वृत्ति कामवृत्ति है, इसकी अतृप्ति ही मन को कुण्ठित कर देती है । इसकी पूर्ति के लिए उसे कुछ भी अवांछनीय दृष्टिगोचर नहीं होता । पिता के मिल जाने पर उसे प्रसन्नता होती है ; किन्तु उनके तथा चाची के अवैध सम्बंध के विषय में जानकर सारी प्रसन्नता कटुवाहट में बदल जाती है । यह वर्णन उपन्यास में इस प्रकार प्राप्त है -

" मेरा हृदय उमड़ उठना चाहता है उस उफान की तरह, जो उबलती दाल में पहली बार उठा करता है । मैं नहीं जानता, मैं इसे विषाद कहूँ या हर्ष । हर्ष इससे अधिक क्या होगा कि पिता जी जीवित हैं । और विषाद भी इससे अधिक क्या होगा कि उन्होंने फिर अपने वैधानिक परिवार में आना भी स्वीकार नहीं किया । उन्होंने मेरे और माँ के साथ इतना छल-उनका इतना तिरस्कार किया ।

लेकिन क्या यह अवसर इस बात पर रोने-धोने और वक्त करने का है ? जिनको मैंने अब तक 'चाची' शब्द से सम्बोधित किया है, क्या अभी इसी समय उनके मुँह पर फटाफट यह कथन जड़ दूँ कि तुम ऐसी --- हो । तुमसे तो बात करने में भी मुझे शर्म आ रही है । लेकिन अगर इनको ऐसा कहूँ, तो फिर अपने पूज्य पिता जी को किन शब्दों में याद करूँ ?

हे प्रभु, तेरी इच्छा पूर्ण हो ।

तेरी वह रचना पूर्ण हो, जिसमें अनैतिकता का इतना महत्त्व है ।" [1] तत्पश्चात् अवैध सम्बंध का विश्लेषण किया गया है ।

जमना पागल हो जाती है, तब उसकी विक्षिप्तावस्था के वर्णन के साथ-साथ राजेन्द्र ने जमना की अतृप्त काम-वासना की दशा का विश्लेषण भी किया है -"मेरे मन में आया- क्या यह किसी को खोज रही है ? क्या जीवन के पथ में चलते-चलते किसी ने इसका साथ छोड़ दिया है ? फिर राय चन्द्रनाथ का स्मरण आ गया । उनके रहते हुए यह नारी अन्य किसी व्यक्ति की ओर दृष्टि ही क्यों डालती है ? फिर उनका कथन है कि मैं ज़हर खा सकता हूँ, पर यह नहीं बता सकता कि मेरे इस जगह नासूर है । क्या इसका यह स्पष्ट ~~अभिप्राय~~ अभिप्राय नहीं कि वे जमना की यौन-लिप्सा शांत करने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं ।" [2]

इस उपन्यास में केवल वैयक्तिक नहीं, सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओं एवं समस्याओं का विश्लेषण भी हुआ है । एक रिक्शे पर बैठकर राजेन्द्र के मस्तिष्क में उस रिक्शेवाले की दयनीय स्थिति के प्रति करुणा ही नहीं उमड़ी है, अपितु समस्त समाज एवं उसकी अर्थ-व्यवस्था के प्रति क्रांतिकारी विचारधारा बह चली है। उस स्थिति का विश्लेषण वह

1- चलते-चलते, पृ0 384-385

2- चलते-चलते, पृ0 418

इस प्रकार करता है - "आज की इस सभ्यता ने मनुष्य को कुत्ता बना डाला है । पैसे की माँग, पैसे की पुकार और पैसे की भूख । पैसा । हाय पैसा ।' यह कैसी चिल्लाहट है ?--- उफ । बिलकुल वैसी ही आवाज़ें हैं, जैसी भौंकने पर होती है ।"[1]

उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता के साथ-साथ इस शिल्प-विधि का प्रमाण देते हुए एक आलोचक लिखता है -" उपन्यास का नाम 'चलते-चलते' बिलकुल सार्थक है । उसका नायक राजेन्द्र अपने जीवन-पथ पर चलते-चलते अपने चारों ओर जो कुछ देखता है, जो कुछ अनुभव करता है, उसका वर्णन करता है, विश्लेषण करता है ।"[2] 'चलते-चलते' में सामाजिक विषमता, वैधव्य, शोषण आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है, इतना ही नहीं, यौन-कुण्ठा, सौंदर्य-आकर्षण आदि शाश्वत जीवन-समस्याओं का विश्लेषण भी इसमें प्राप्त होता है । राजेन्द्र,लाला सांवरे तथा छोटी भाभी आदि पात्र समाज के घृणित व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते दिखाए गये हैं ।

राजेन्द्र एक वैयक्तिक चरित्र है । द्वन्द्वपूर्ण स्थिति में इसका चारित्रिक उत्थान विश्लेषणात्मक विधि द्वारा दर्शाया गया है । वैयक्तिक आदर्श और पारिवारिक आकर्षण निजी सिद्धांत और सामाजिक अनैतिकता राजेन्द्र के मानसिक द्वन्द्व को सदैव गतिशील रखते हैं। छोटी भाभी की एक ही लट उसकी मानसिक शांति को अस्तव्यस्त कर देने के लिए पर्याप्त है । भाभी का सौंदर्य उसके लिए परीक्षा-स्थल है । छोटी भाभी के मुख पर आयी लट को देखकर उसके मन में द्वन्द्व का जो ज्वार-भाटा उठा है, उसका सूक्ष्म चित्रण देना हमें समीचीन प्रतीत होता है -

"लट मुख पर- कपोल पर -आ गई । और फिर मैं अपने आपसे झगड़ने लगा-नहीं नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता । यह स्वप्न है, माया है, छलना है । भाभी के सम्बंध में ऐसी कल्पना । छि: ऐसा कभी नहीं हो सकता । यह सत्य भी हो, तो असत्य हो जाय । यह यथार्थ यथार्थ भी हो, तो मिथ्या बन जाय । यह असत्य है, मिथ्या है, भ्रम है, प्रमाद है, व्यर्थ है ।--- और साथ ही सौरभ का भान हुआ, सो अलग । वाह ! तब तो यह दमन भी मधुर है, आघात भी मृदुल । लेकिन मेरा मुँह क्यों नहीं खुल रहा है । न भी खुले, अथवा कुछ देर बाद ही खुले, तो क्या हानि है ? जो प्राप्य है, उसका तिरस्कार मैं क्यों करूँ । यह फुल्ल-सुमन-सौरभ-सा मेरे चारों ओर जो बिखर रहा है, फैल रहा है, लिप्त हो-होकर

1- चलते-चलते, पृ० 92

2- 'साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी' में डा० ब्रजमोहन गुप्त के लेख 'चलते-चलते एक मौलिक उपन्यास' से , पृ० 167

उड़ रहा है, उसकी उपेक्षा ? ना भई, यह मुझसे न होगा ।

---- एक बार पुन: मन में खटका-सा लगा । अब भी देख ले - देख ले मूर्ख - आँख खोलकर प्रत्यक्ष देख ले - कि यह स्वप्न है या यथार्थ । परन्तु फिर एक अभाव, असीम, अनन्त लज्जा का भाव मेरे अंतस्तल में फैल गया । मैं सोचने लगा - भाभी केवल भाभी है । और कुछ वे कैसे हो सकती हैं ? सम्भव है, कभी किसी विशेष अभाव की ज्वाला से झुलस उठती हों । पर वह ज्वाला जो वासना की अतृप्ति , तृष्णा के उद्रेक और अवांछनीय असंतोष से उत्पन्न होती है, उसकी सीमा कहाँ है ?[1]

इसी द्वन्द्वात्मक स्थिति में राजेन्द्र के चरित्र का विकास होता है । छोटी भाभी उसे कहती है कि तुम मुझसे या तो इस तरह की बातें न किया करो या मुझे प्राप्त कर लो, तब राजेन्द्र का मानसिक द्वन्द्व अधिक भयावह हो उठता है । छोटी भाभी की वाणी की तरलता, कण्ठ की आर्द्रता तथा मर्मस्पर्शी निकटता उसके कोमल मन में विभिन्न प्रकार के द्वन्द्व उत्पन्न कर देती हैं । लाली, वैशाली, अर्चना तथा हीरामानिक की यौवनगत मांसलता तथा शाब्दिक मधुरता उसके चारित्रिक दुर्बल क्षणों को प्रस्तुत करने के लिए लाये गये हैं ; किन्तु वे सब भी उसके मनोद्वन्द्व को भटका देने से आगे की सीमा को पार नहीं कर पाये हैं । लाली का अनावृत्त वक्ष:स्थल[2] उसके आदर्शों को डिगा देता है । इसके अतिरिक्त जमना का वस्त्र फाड़कर नंगी छाती दिखाना राजेन्द्र के मन को झंझोड़ देने वाला दृश्य है, जो उसे शारीरिक रूप से पवित्र रखने पर भी मनोविकार-ग्रस्त कर देने के लिए पर्याप्त है । छोटी भाभी उसके जीवन की सबसे बड़ी दुर्बलता सिद्ध होती है, जिनके सम्बंध में वंशी ने उसे आत्मसंयम की सीमा का अतिक्रमण करके देह- धर्म निभाने की भी आज्ञा दे दी ।

राजेन्द्र एक ज्ञानी, आदर्श तथा मातृभक्त व्यक्ति है, टाइप नहीं । नारी सौंदर्य को देखकर वह भावुक बन जाता है, तो दार्शनिक विषय पर विचार करते समय वह अपने विश्लेषणशील चिंतनशील स्वभाव का परिचय देता है । अपनी दुर्बलता से वह अनभिज्ञ नहीं है, इसीलिए लाली का तापमान लेने से वह घबराता है । वह सचेष्ट रहता है कि उसका तापमान देखते-देखते कहीं वह शरीर के धर्म का तापमान देखने में न उलझ जाए । वह अनुभूतिशील तथा

1- चलते-चलते, पृ0 38-39

2- वही, पृ0 334

कर्तव्यनिष्ठ प्राणी है । वह समझता है कि आदर्श के बिना उसका अस्तित्व ही नहीं है । वह विनम्र है और स्पष्ट वक्ता भी । अपने पिता को वह स्पष्ट रूप से कह देता है कि मेरे मुँह पर थप्पड़ मार दीजिए मगर सच्ची बात कहने का मेरा अधिकार मुझसे मत छीनिए ।

प्रस्तुत उपन्यास में कुछ पात्रों का व्यक्तित्व बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है । उदाहरण के रूप में लाली के चरित्र-चित्रण की विधि द्रष्टव्य है -

"सत्रह-अठारह वर्ष की लाली । गाय के ताजे मक्खन-सा वर्ण है, वैसी ही देह-यष्टि की चिकनाहट । लावण्य परिपक्व है । मृग-नयनों की नोंकदार कोरों की पतली कुशाग्र धार और गदराये यौवन की मंद चंचल मनुहार, ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे जीवन अगाध के उस पार तक साथ ले जाने को तैयार है ।"[1] इस प्रकार के वैशाली, अर्चना आदि पात्रों के शब्द-चित्र भी दिये गये हैं । इसे शब्दचित्र-विधि कहा जा सकता है ; किन्तु यह विधि भी समन्वित शिल्प-विधि का एक अंग बनकर आयी है ।

वाजपेयी जी के प्रारंभिक उपन्यासों में संयोगों एवं घटनाओं का अपेक्षाकृत अधिक अवलम्ब लिया गया है । फलतः उनमें सूक्ष्मता एवं इतिवृत्तात्मकता अधिक आ गई थी ; किन्तु कुछ समय के पश्चात् इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर वाजपेयी जी अपने उपन्यासों में विश्लेषण पर अधिक ध्यान देने लगे । सन् 1940 ई० के आसपास लिखे गये उनके उपन्यासों में कथा-शिल्प का एक नया ही विकास दृष्टिगोचर होता है । उक्त काल के उपन्यासों में इतिवृत्तात्मकता को त्याग कर उन्होंने छोटे-छोटे घटना-खण्डों, चिंतन तथा स्मृति-अंशों के बीच से कथासूत्र का नियोजन करना प्रारंभ कर दिया । इस काल के उनके उपन्यास सुसंगठित दिखाई पड़ते हैं । उनमें मूल कथा के साथ-साथ प्रासंगिक कथाएँ भी चलती हैं, जो अधिकांशतः मूल कथा से घनिष्ठ रूप से संबंधित रहती है, परन्तु विशेषतः सन् 1955 ई० के पश्चात् प्रकाशित उनके उपन्यासों में कथा-सूत्र विशृंखलित-सा दिखाई देता है । इसका कारण यह है कि एक ही उपन्यास में भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग उन्होंने किया है । 'विश्वास का बल' उपन्यास में मुख्य रूप से यही दोष है । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, सूत्रात्मक, विश्लेषणात्मक, भावात्मक अथवा काव्यात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया है । इसका कथानक सुसंगठित नहीं है, इतना ही नहीं, अनेक स्थलों पर उसमें शैथिल्य दिखाई देता है । इसमें अनेक घटनाएँ,

---

1- चलते-चलते, पृ० 76

वर्णन और प्रासंगिक कथाएं ऐसी हैं, जिनका मूल कथा से कोई सम्बंध नहीं है । कथा के बीच में ऐसे अनेक वर्णन तथा वार्तालाप आते हैं, जो पाठकों को उबा देते हैं । उपन्यास के प्रारंभिक पृष्ठों में कमरे का फर्श पाठकों को सम्बोधित करके आत्मकथा के रूप में अपनी दशा का वर्णन करता है ,[1] तब उपन्यासकार के इस नवीन शैली के प्रयोग के मोह को देखकर झुँझलाहट होती है । प्रस्तुत वर्णन मूल कथा का अंग नहीं बन पाता, अपितु उपन्यास में अनावश्यक रूप से जोड़ा हुआ प्रतीत होता है । इस उपन्यास का अठारहवाँ परिच्छेद विचित्र ढंग से आरंभ होता है । पत्र के संपादन-मंडल के सदस्य तथा अन्य कर्मचारी एक ऐसे विवाह में उलझे दिखाई देते हैं, जो न तो स्पष्ट है, न ही उसका कथा के विषय से कोई सम्बंध ही ठीक-से बैठ पाता है । रेलवे टाइम टेबुल का अनावश्यक विस्तृत वर्णन भी इस उपन्यास की कथा को विशृंखलित कर देता है ।[2] भवानीबाबू का मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर किया गया वर्णन रोचक अवश्य है,[3] तथापि वह मूल कथा से असंबद्ध है ; क्योंकि भवानीबाबू की ये चारित्रिक विचित्रताएँ उपन्यास में आगे कहीं भी उनके चरित्र-विकास में प्रतिफलित होती नहीं दिखाई देतीं । ये असंगतियाँ कथानक के स्वाभाविक विकास में बाधक प्रतीत होती हैं ।

साधारणत: नाटकीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करके उपन्यासकार पाठकों की उत्सुकता को जागृत करता रहता है ; किन्तु प्रस्तुत उपन्यास में वाजपेयी जी नाटकीय परिस्थितियों का सृजन करने में भी पूर्ण सफल नहीं हुए हैं । पूरे उपन्यास में दो-तीन स्थल ही ऐसे प्राप्त होते हैं, जहाँ लेखक ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सका है । बिहारीबाबू का अचानक ही स्वर्गवास हो जाना[4] और रमा का पहले विषपान कर आत्महत्या करने का प्रयास करना[5] तथा बाद में समुद्र में डूबकर जीवन का अंत लाने का निष्फल प्रयास करना[6] नाटकीय परिस्थिति के उदाहरण हैं, परन्तु प्रथम प्रयास में उसे उसकी दीदी बचा लेती है तथा द्वितीय प्रयास में अपने गर्भस्थ शिशु का विचार करके वह स्वयं लौट आती है । ये नाटकीय परिस्थितियाँ ऐसी नहीं बन पड़ीं, जो कथा की गति में कोई आकर्षक एवं उत्तेजक मोड़ उत्पन्न करने में समर्थ हो सकी हों ।

1- विश्वास का बल, पृ0 13

2- वही, पृ0 116

3- वही, पृ0 132 से 135

4- वही, पृ0 107

5- विश्वास का बल, पृ0 124

6- वही, पृ0 224-225

प्रस्तुत उपन्यास के वर्णन प्राय: नीरस तथा उबा देने वाले हैं । उनमें कहीं भी संगति नहीं मिलती । कथोपकथनों में भी रोचकता नहीं है, इतना ही नहीं, उनमें अधिकांशत: प्रत्युत्पन्नमतित्व का अभाव है । वाजपेयी जी ने इस उपन्यास में चार स्थल पर[1] विश्वास का बल' शब्द का प्रयोग किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस तरह वे उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु इसमें भी वे असफल रहे हैं । किसी भी उपन्यास में मूल उद्देश्य के प्रति इस प्रकार स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष संकेत बार-बार किया जाता है, तब कला प्रभावहीन हो जाती है । 'विश्वास का बल' उपन्यास में ऐसा ही हुआ है ।

'पिपासा' में भी सुगठित कथावस्तु का अभाव है । इसका मूल कारण इस उपन्यास में मनोविश्लेषण की प्रधानता है । वस्तुत: विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि में इस उपन्यास का सृजन होने के कारण इसमें कथानक नामपात्र का है । इस उपन्यास के तलस्पर्शी अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पृष्ठ 26 से 28 केवल विस्तार के लिए लिखे गये हैं । इन पृष्ठों का मूल कथा के साथ किसी प्रकार का सम्बंध नहीं है ।

'राजपथ' को भी पूर्ण रूप से सुशृंखलित उपन्यास नहीं कहा जा सकता । प्रस्तुत उपन्यास में दिलीप और सुरेन्द्र के विषय में लेखक लिख रहा है, वहाँ अचानक दादा की बात आ जाती है ।[2] लेखक की असावधानी का ही यह परिणाम है ।

'टूटा टी सेट' उपन्यास तो प्रारंभ से ही शिथिल प्रतीत होता है । उपन्यास की कुछ प्रारंभिक घटनाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि केवल पृष्ठ-वृद्धि के हेतु से ही उनका निर्माण किया गया है । उदाहरण के रूप में बुद्धि—रंजनबाबू से सम्बंधित घटनाओं को हम ले सकते हैं ।[3] इन घटनाओं की आवश्यकता पूरे उपन्यास में कहीं भी नहीं दिखाई देती । मूलकथा या उपन्यास के किसी भी पात्र के चरित्र से उनका कोई सम्बंध नहीं है । द्वितीय अध्याय में उपन्यासकार ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि बम्बई में फ्लैटों में रहने वाले कैसे रहते हैं ? इससे कथा का अनावश्यक विस्तार अवश्य हुआ है ; किन्तु कथा का संगठन शिथिल पड़ गया है, क्योंकि उपन्यास के कथानक के साथ उस अध्याय का कोई सम्बंध प्रतीत नहीं होता ।

1- विश्वास का बल, दे.पृ0 227, 249, 307 और 310

2- राजपथ, पृ0 108

3- टूटा टी सेट, पृ0 140 से 151

इन उपन्यासों के अतिरिक्त 'अधिकार का प्रश्न'[1] 'टूटते बंधन',[2] 'कपट-निद्रा'[3] आदि उपन्यासों में भी शिथिल कथा-संगठन के अनेक दृष्टांत प्राप्त होते हैं।

वाजपेयी जी अपने उपन्यासों का प्रारंभ प्राय: अपना मंतव्य देकर करते हैं। उपन्यास का उद्देश्य उस मंतव्य या प्राक्कथन में प्रकट हो जाता है। ये मंतव्य उपन्यासकार के उद्देश्य एवं विचारों को समझने में एक प्रकार से सहायता करते हैं। अपने मंतव्य को वाजपेयी जी ने 'अपनी बात', 'यह कृति', 'विशेषता', 'वक्तव्य', 'अंतर्वाद', 'अभिमत', 'दो शब्द', 'उपकथन', 'लेखकीय', तथा 'आश्वासन' आदि शीर्षकों से अभिहित किया है। 'सपना बिक गया', 'टूटा टी सेट', 'एक प्रश्न', 'उनसे न कहना', 'स्वप्नों की गोद', 'एक स्वर आँसू का', 'दूखन लागे नैन', 'टूटते बंधन', 'कपट निद्रा', 'पिपासा', 'निमंत्रण', 'दो बहनें', 'मुस्कान', 'मुसकान', 'अधूरा स्वर्ग', आदि उपन्यासों के प्रारंभ में लेखक ने संकेत-सूत्र नहीं दिये हैं; अत: पाठक को उपन्यास के सम्बंध में अपनी धारणा स्वयं बनानी पड़ती है। 'चलते-चलते' उपन्यास का प्रारंभ करने की शैली अत्यंत आकर्षक है। पाठक की कुतूहल वृत्ति को उपन्यास का प्रारंभ ही उद्वेजित करता है। इसमें प्रथम तो एक कल्पित कथा की संयोजना की गई है, जो दार्शनिक बन गई है। तत्पश्चात् उसी कथा से उपन्यास के सूत्र निकाले गये हैं। इसके साथ 'पूर्वकथा' भी दी गई है। ऐसी शैली वाजपेयी जी के अन्य किसी भी उपन्यास में प्राप्त नहीं होती। 'पूर्वकथा' के सूत्र अंत में मुख्य कथा के सूत्रों के साथ जोड़ दिये गये हैं। हिन्दी-उपन्यास-कला में वाजपेयी जी द्वारा किया गया यह एक अभिनव प्रयोग है।

अपने उपन्यासों के अंत के विषय में भी वाजपेयी जी नये-नये प्रयोग करते रहे हैं। कुछ उपन्यासों में कथा अचानक रुक जाती है, तो कुछ उपन्यासों का अंत वे किसी महापुरुष के आदर्श वाक्य से कर देते हैं। 'विश्वास का बल' का अंत कथा के रुक जाने के बाद रत्ना के कथन द्वारा हुआ है। 'टूटा टी सेट' के अंत में नीलकमल सोच रही है -' बापू ने कहा था - 'गुप्त हो या स्पष्ट, प्रेम की स्वतंत्र सत्ता में मेरा विश्वास नहीं है।'[4] 'चलते-चलते' का अंत निष्कर्ष देकर, 'यथार्थ से आगे' का अंत समस्या का निदान ढूँढकर तथा 'राजपथ' का अंत कथा को समेटकर किया गया है। 'सपना बिक गया' के अंत में दुष्यंत की आत्माभिव्यक्ति दी

1- दे. अधिकार का प्रश्न, पृ0 80

2- दे. टूटते बंधन, पृ0 171

3- दे. कपट-निद्रा', पृ0 123-124

4- टूटा टी सेट, पृ0 199

गई है ।'टूटते बंधन' में कहानी बीच से ही टूट गई प्रतीत होती है ।'कपट-निद्रा' के अंत में लेखक ने आकृति लाने का प्रयत्न किया है ।'मुसकान','अनाथ पत्नी','पिपासा,' 'उनसे न कहना','बंधन और पानी' तथा अधूरा स्वप्न' आदि उपन्यासों के अंत में उपसंहार प्राप्त होता है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी के प्रारंभिक उपन्यासों में जो प्रेमचंदीय छाप उभरती है वह अपने उपन्यासों में विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि को अपनाते ही अन्तर्धान हो गई है । सन् 1936 ई० के बाद वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में स्वतंत्र रूप से शिल्प का प्रयोग किया है । इस अध्याय में हम देख चुके हैं कि वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में आवश्यकतानुसार वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक अथवा समन्वित शिल्प-विधि का प्रयोग किया है । इन प्रयोगों में उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है । कुछ आलोचकों का मानना है कि वाजपेयी जी के उपन्यासों में शिल्प सम्बंधी कोई नवीनता प्राप्त नहीं होती । इस बात से हम सहमत नहीं हो पाते । उनके 'प्रेमपथ','अनाथ पत्नी','विजय' आदि उपन्यासों के अनुशीलन से उनके शिल्प में जो परिवर्तन आया है, वह अवश्य दीख पड़ता है । हाँ, इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि वाजपेयी जी में आधुनिकतम कहे जाने वाले शिल्प-विधि के विविध प्रयोगों के प्रति आकर्षण नहीं पाया जाता । इसका मुख्य कारण उनके संस्कार हैं । वे जिस युग में बने, उसी युग के रहे हैं । वाजपेयी जी के उपन्यासों के शिल्प का अनुशीलन करने के बाद अब हम उनकी कहानियों के शिल्प पर विचार करेंगे ।

वाजपेयी जी की कहानियों में संगठन-शिल्प

हिन्दी -कहानी -लेखन का प्रारंभ बीसवीं शती की प्रथम दशाब्दी से हो चुका था, इस दृष्टि से विचार किया जाय, तो प्रेमचंद युग हिन्दी कहानी का विकास युग माना जायगा इस विकास युग के प्रेमचंद और प्रसाद दो प्रमुख स्तंभ थे । इनसे दो स्वतंत्र कथा -प्रवृत्तियों का विकास हुआ, तथापि दोनों की कला का उद्देश्य जातीय गौरव की भावना था । इस एकांतिक भावना ने प्रसाद को अतीत के भाव लोक की ओर प्रेरित किया । प्रेमचंद को व्यापक समाज तथा उसकी दुर्व्यवस्थाओं का पथ प्राप्त हुआ । अत: समाज का वैषम्य, अत्याचारों का विरोध, शोषित निर्धन और जर्जर समाज के प्रति गहरी समवेदना आदि प्रेमचंद की कला के विशिष्ट स्वर थे ।

कला की यह परम्परा अधिक बलवती होकर आगे बढ़ी । इस विकास पथ में प्रेमचंदोत्तर जो कथाकार आये, उनसे इस कला को पर्याप्त समृद्धि प्राप्त हुई । इन कलाकारों ने प्रेमचंद की कला को विकसित ही नहीं किया, अपितु अपने-अपने विधानात्मक स्वर भी दिये । ये स्वर विशेषत: समाज की यथार्थ भाव-भूमि से उसके विश्लेषण, मूल्यांकन एवं उसके ह्रास के प्रति मानवीय सहानुभूति तथा आदर्श के स्वर थे । भगवतीप्रसाद वाजपेयी भी इसी स्वर के एक अग्रणी और विशिष्ट कहानीकार हैं । उन्होंने सन् 1922 ई० से कहानी-लेखन आरंभ किया था, यह हम प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय में देख चुके हैं । उनका प्रथम कहानी-संग्रह 'मतवाली' सन् 1929 ई० में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था । इस विकास-पथ में आगे चलकर उनके अन्य अनेक कहानी-संग्रह- 'दीप मालिका' (1931), हिलोर (1931), पुष्करिणी (1939), खाली बोतल (1940), [illegible], ज्वारभाटा (1940), मेरे सपने (1940), कला की दृष्टि (1942) उपहार (1943) अंगारे (1943), उतार-चढ़ाव (1950) लोकप्रिय कहानियाँ (1965) मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ (1965) स्नेह, बाती और लौ (1966), होटल का कमरा (1966), कबाड़ी का ताजमहल (1966) तथा बात एक नाते की (1967)- प्रकाशित हुए ।

उपर्युक्त सभी कहानी-संग्रहों में संकलित वाजपेयी जी की कहानियों के स्वर एक हैं - मध्य एवं निम्नवर्गीय समाज, उसकी अपनी मान्यताएँ, मान्यताओं में उतार-चढ़ाव तथा इसके भी ऊपर एक कटु आलोचक की भाँति समाज को अत्यंत निकट से देखना ; किन्तु साथ-साथ अपनी परम भावुकता, आदर्शवादिता एवं भारतीयता के स्पर्शों से समाज के कुचक्रों तथा भयंकर विवर्तों

पुरुष पात्र भी नारी पात्रों की तरह मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग से ही आये हैं ; किन्तु जितनी व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा नारी पात्रों की हुई है, इतनी पुरुष पात्रों की नहीं हुई । वाजपेयी जी की कहानियों में चरित्र अवतारणा मानवीय भूमिका से हुई है । उनके चरित्र जितने निर्बल तथा निकृष्ट हैं, इतने ही कहीं न कहीं महान और उत्कृष्ट हैं । सब चरित्र संघर्षों एवं जीवन के उतार-चढ़ावों के बीच से उभारे गये हैं । सब में गति है और अगति भी, तथापि बहुत कम चरित्र कुण्ठित होते हैं ।

रचना विधान की दृष्टि से विचार किया जाय, तो वाजपेयी जी की कहानियों में विशेष विभिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती । उनकी कहानियों का सृजन मुख्यत: निम्नलिखित शैलियों में हुआ है -

1- वर्णनात्मक अथवा ऐतिहासिक शैली :

'बारात में,' 'चोर', 'जहाँ सभ्यता साँस लेती है', 'लिली', 'आत्मघात', 'सम्बंध', 'रजनी', 'प्रतिदान', 'चार साथी', 'उस क्षण का सुख', 'रात के दो बजे', 'नैतिकता का दण्ड', 'सिंहनाद', 'पुनर्मिलन', 'सत्य की जय', 'हारजीत', 'वंशीवादन', 'प्रलोभन', 'चित्रकार', 'तेवर', 'मिठाई वाला', 'एक तृण' आदि कहानियों का सृजन इस शैली में हुआ है । इस शैली का एक उदाहरण 'बारात' में कहानी से यहाँ दे रहे हैं ।

'बारात को लेकर जब हाथी सुशील की ससुराल के ठीक द्वार पर आ गया, तो दिनेश चतुर्दिक देखने लगा । सुशील उतर गया । उसका विधिवत् तिलक हुआ । शास्त्रीय विधान और समाजगत प्रचलन के अनुसार पण्डितों और प्रमदाओं ने श्लोकों और गायनों के साथ उसका मांगलिक अभिनन्दन किया । दिनेश चुपताप सब कुछ देखता रहा । उसने लक्ष्य किया, यह ध्वनि छोटी मामी की है, यह बड़ी मामी की ।'[1]

उपर्युक्त उद्धरण में देखा जा सकता है कि कहानीकार एक इतिहासकार की भाँति पात्रों एवं घटनाओं का वर्णन करता जाता है । इस शैली में कहानीकार की विवरणात्मक प्रतिभा ही अधिक मुखरित हुई है ।

2-स्वगतकथन अथवा आत्मकथात्मक शैली :

'निंदिया लागी', 'बैकग्राउण्ड', 'हृदगति', 'तारा', 'शबनम', 'स्वप्नमयी', 'कबाड़ी', 'खाली बोतल', 'होटल का कमरा', 'उर्वशी', 'अपना', 'अभिशाप', 'नर्तकी', 'एक आदर्श वाक्य', 'निर्माल्य', 'नियम-नियम कायदा-कायदा', 'उद्धार', 'हत्यारा', 'अपमान का भाग्य', 'ठण्डी एक राख की लपट', 'महापुरुष', 'हाँ', 'वही रात', 'विद्रोही स्पर्द्धा', आदि कहानियाँ इस शैली

1- पुष्करिणी, पृ0 50-51

में लिखी गई हैं । इस शैली का एक उदाहरण 'हत्यारा' कहानी से देना समीचीन प्रतीत होता है ।

" उस दिन एक मित्र के यहाँ बैठा हुआ था । उस बैठक में, मेरे पहुँचने से पूर्व, और भी कई व्यक्ति बैठे वार्तालाप कर रहे थे, और वे सभी मेरे पूर्व-परिचित थे । कुछ तो मेरे नित्य के मिलने वालों में से थे । मैं भी उन्हीं के निकट बैठकर उस विनोद-वार्ता में सम्मिलित हो गया ।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण में लेखक स्वयं अपनी जीवन की घटनाएँ कहता चलता है, जैसे सब कुछ उसके अपने जीवन में ही गुजरा हो, स्वयं उसने देखा हो एवं सब घटनाओं में सक्रिय भाग लिया हो । आगे भी कहानी प्रथम पुरुष में ही चलती रहती है ।

3. पत्र शैली :

'अपराधी के पत्र', 'पुनर्विवाह', 'प्रयाण', 'परीक्षा' आदि कहानियों की रचना इस शैली में हुई है । इस शैली के विषय में वाजपेयी जी ने लिखा है -'हिन्दी में पत्र-रीति के अनुसार कई लेखकों ने कहानियाँ लिखी हैं । अन्य बंधुओं की देखा-देखी मैंने भी लिख डालीं, पर इस विधा का विशेष प्रचार नहीं हुआ ।'[2] वाजपेयी जी का यह कथन तथ्यपूर्ण प्रतीत होता है । इस विधा के प्रचार के अभाव में बाद में इस शैली में लिखी वाजपेयी जी की एक भी कहानी उपलब्ध नहीं होती । इस शैली का एक उदाहरण हम 'परीक्षा' कहानी से दे रहे हैं ।

"फांसी,

18-2-28

प्रिय रमेशबाबू,

बधाई । खेद है, परीक्षा के कारण मैं तुम्हारे विवाह में सम्मिलित न हो सका । आशा है, कृष्णा को लेकर अब तुम कानपुर आ गये होगे, और इस सम्मिलित जीवन में तुम स्वर्ग की कल्पना कर सके होगे ।

देवी जी को मेरी भी नमस्ते कहना । मैं भी उनके दिले बेकरार का एक खाकसार हूँ । मुझे भी मिठाइयाँ मिलनी चाहिए । पत्र देना ।

तुम्हारा -

मोहन प्यारे "[3]

1- हिलोर, पृ0 123

2- वाजपेयी जी के दिनांक 18-9-68 के पत्र से ।

3- मधुपर्क, पृ0 141

'परीक्षा' कहानी पत्रों के रूप में चलती है । प्रस्तुत कहानी में कुल मिलाकर सात पत्र हैं । उनमें से एक पत्र ऊपर दिया गया है । बाहर से सब पत्र स्वतंत्र रूप से लिखे गये प्रतीत होते हैं ; किन्तु उन्हें एक साथ पढ़ने के उपरांत एक समूची कहानी तैयार हो जाती है । यह शैली आकर्षक है, क्योंकि इसमें पात्रों के मानसिक रहस्य भी प्रकट कर दिये जाते हैं । कहानी में पत्र-व्यवहार नायक-नायिका के बीच ही हो, ऐसा कोई नियम नहीं है । उपर्युक्त पत्र लिखने वाला गौण पात्र मोहन, नायक रमेश का मित्र है । मोहन द्वारा लिखा गया ऊपर का छोटा-सा पत्र भी कथा की आवश्यक कड़ी है तथा कथा को सुसंबद्ध ढंग से अग्रसर करता है ।

4. डायरी शैली :

'अन्ना' कहानी इस शैली में लिखी गई है । इस शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है ।

'डायरी के एक अंश में लिखा है -

जब से इसे ब्याह कर लाया हूँ, तभी से यह निरंतर इसी तरह उन्मना रही है । मुसकान-माधुरी की वे रेखाएँ अधरों पर कभी देखने को नहीं मिलीं, जिनसे मेरा मन-मयूर नाच उठता । लावण्यबाला की एक मुसकान में गजब की शक्ति होती है । माता-पिता, भाई-बहन, धन-सम्पत्ति और अमित वैभव को लावण्यलता की एक मुसकान मात्र पर लोग निछावर कर देते हैं । सोचता हूँ अन्ना में क्या नहीं था ? शरीर की ऐसी सौष्ठव गठन तो मेरे देखने में कभी आई नहीं । उसकी जैसी नुकीली आँखें तो कहीं देखने को मिली नहीं । यदि वह एक बार- केवल एक बार- जरा-सा हँस देती, तो मैं कितना भाग्यशाली होता ।'[1]

उपर्युक्त उद्धरण में राजीव लोचन की डायरी का एक अंश दिया गया है । उसकी डायरी के कुछ पृष्ठ 'अन्ना' कहानी का रूप धारण कर लेते हैं । यह शैली अपेक्षाकृत अधिक नवीन है । मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर मनोविश्लेषणात्मक शैली अपनाने वाले कहानीकारों को यह प्रिय शैली है । वाजपेयी जी ऐसे ही कहानीकार हैं । प्रस्तुत कहानी 'अन्ना' में वे एक तटस्थ पर्यवेक्षक की भाँति पात्रों की भाव-ग्रन्थियों को विश्लेषण और मानसिक ग्रंथियों का समाधान प्रस्तुत करते चलते हैं । इस शैली में वाजपेयी जी ने केवल एक कहानी लिखी है, जो सुन्दर बन पड़ी है ।

5. मिश्रित शैली :

'प्रेमलता' कहानी में पत्र, डायरी तथा वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, अत:

1- बात एक नाते की, पृ0 83-84

उसे उस मिश्रित शैली में सृजित रचना मानते हैं । इस शैली में लिखी गई कहानी में कहानीकार अपने उद्देश्य को अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से स्पष्ट कर सकता है, क्योंकि स्थिति की आवश्यकतानुसार वह विभिन्न शैलियों का उपयोग कर सकता है । पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी इस शैली के उपयोग से अधिक ~~उँच~~ सूक्ष्मता आती है और वे पूर्णता के साथ प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

उपर्युक्त सभी शैलियों में से वाजपेयी जी को सबसे अधिक साफल्य स्वगत-कथन शैली में प्राप्त हुआ है । इस विधान में उन्हें अंतर्दृष्टि के साथ-साथ चरित्रों के विश्लेषण में भी अधिक सफलता मिली है । इस शैली में कलाकार के व्यक्तित्व के प्रक्षेपण की सबसे बड़ी आशंका रहती है । परिणामत: बड़े-बड़े कथाकारों को भी इस शैली में निष्फलता प्राप्त होती है ; किन्तु वाजपेयी जी को कुछ कहानियों में तो अभूतपूर्व सफलता मिली है । 'निंदिया लागी' तथा 'खाली बोतल' इसके ज्वलंत उदाहरण हैं ।

वाजपेयी जी की सन् 1939 ई० तक प्रकाशित प्रथम वरेण की कहानियों का आरंभ भूमिका के साथ होता है । उन कहानियों का विकास चमत्कारिक घटनाओं एवं अप्रत्याशित कार्य व्यापारों से किया गया है । उनकी चरम सीमाएँ भी घटना या संयोग पर प्रतिष्ठित हुई हैं । इस वरण की कहानियों में चरम सीमा के उपरांत उपसंहार भी जोड़ा गया है । जैसे - "यह कथा यहीं समाप्त हो गई ; किन्तु इस कथा के प्राण में जो अंतर्कथा है, उसी की बात कहता हूँ।--- कभी-कभी रात के घोर सन्नाटे में स्वप्नाविष्ट -सा मैं कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ सुनने लगता हूँ । कोई खिलखिल हँस रही है --- और उसके हाथों में जो छाले पड़ गये हैं, वे वहाँ से उठकर मेरे हृदय से आकर चिपक गये हैं ।"[1] इसके अतिरिक्त 'स्वप्नमयी' तथा 'प्रतिदान' में भी उपसंहार देखा जा सकता है ।

सन् 1939 ई० के पश्चात् प्रकाशित द्वितीय तथा तृतीय वरण की कहानियों में भूमिका तथा उपसंहार समाप्त हो गये । इन चरणों की कहानियों का आरंभ जीवन के एक प्रसंग को लेकर कौतूहल के साथ होता है, विकास क्रम में जिज्ञासा के सहारे सूक्ष्म घटनाएँ तथा कार्य - व्यापार आते रहते हैं और कहानियाँ अपनी चरम एकांतिकता पर समाप्त हो जाती हैं । वाजपेयी जी की कहानियाँ प्राय: छोटी होती हैं ; किन्तु निश्चित रूप से इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता । तीन से लेकर अड़तीस पृष्ठों में उनकी कहानियाँ फैली हुई हैं ।

1- पुष्करिणी, पृ० 14

'सेवक का सुख', 'परीक्षा : एक नया अर्थ' आदि छोटी तथा 'वीर' 'मैना' 'उर्वशी' आदि लम्बी कहानियाँ हैं। लम्बी कहानियों पर स्टीफेन ज्वीग का प्रभाव स्पष्टत: दृष्टिगोचर होता है।

वाजपेयी जी की प्रारंभिक कहानियों में कथा-भाग नहीवत् पाया जाता है। उनमें घटनाओं एवं प्रसंगों की योजना नाम-मात्र की होती है। अत: उन कहानियों में कथानक के विकास का चमत्कार नहीं मिलता। वाजपेयी जी की कहानियों के आदि तथा अंत अत्यंत रोचक होते हैं। विशेषत: अंत पर उनका ध्यान रहता है। उनकी कहानियों का अंत अन्य कहानी लेखकों से भिन्न होता है। अंत के विषय में वाजपेयी जी की यह विशेषता है कि कहानी के अंत के समीप पहुँचने पर भी वे पाठकों को स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहते, किन्तु कहानी के अंत में लिखे गये केवल थोड़े शब्दों से संपूर्ण कहानी का सौंदर्य हमारी समझ में आ जाता है। यह वाजपेयी जी की मौलिकता है। इस प्रकार की कथानक की लघुता में वाजपेयीजी की कहानियाँ गठन एवं प्रभाव की दृष्टि से गद्य-काव्य के पर्याप्त निकट आ जाती है। उनकी कहानियों में घटनाओं की व्यंजकता, गति की क्षिप्रता तथा संवेदन की गंभीरता का आनन्द विद्यमान रहता है। आचार्य शुक्ल ने उनकी कहानियों के विषय में उचित ही लिखा है कि उनकी कहानियां 'सादे ढंग से केवल कुछ अत्यंत व्यंजक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गति से किसी एक गंभीर संवेदना या मनोभाव में पर्यवसित होनेवाली हैं।'[1]

वाजपेयी जी की कहानियों में वाह्य कथानक का अभाव-सा भले ही रहता हो, किन्तु चरित्र-चित्रण की गंभीरता उनमें बराबर बनी रहती है। उनकी कहानियों में चरित्र-चित्रण की गहराई के साथ-साथ स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता पूर्ण रूप में विद्यमान है। उनकी मनोवैज्ञानिक कहानियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान का उनका ज्ञान बड़ा गंभीर है। अपने इस ज्ञान का वे चरित्र-विश्लेषण में पूर्ण सहयोग लेते हैं। पात्रों की मनोवृत्तियों तथा गुणावगुणों का सूक्ष्म मनोविश्लेषण अपनी कहानियों में उन्होंने कुशलतापूर्वक किया है। साधारण-असाधारण परिस्थितियों में अपने पात्रों को डालकर वे उनके चरित्र को उद्घाटित करते हैं। इससे पात्र के गुण-दोष स्पष्ट हो जाते हैं। 'उपहार', 'वंचना : एक सत्य' आदि कहानियों में फ्रायड के मनोविश्लेषण से भी उन्होंने सहायता ली है और अपने पात्रों के मन की कुण्ठाओं को खोलने में वे सफल हुए हैं। जहाँ वे विवेचन-विश्लेषण में अधिक

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 500

उलझ गये हैं, वहाँ उनकी कहानियाँ दुरूह हो गई हैं। परिणामस्वरूप वे उबाने वाली बन गई हैं। उदाहरण के लिए 'सूखी लकड़ी' कहानी देखी जा सकती है। मनोविश्लेषण और दार्शनिक विवेचन से मुक्त होकर जहाँ उन्होंने स्वनिरीक्षण से काम लिया है, वहाँ वे मर्मस्पर्शी तथा कलात्मक कहानियाँ दे सके हैं। 'ठण्डी राख की लपट', 'उर्वशी', 'नैतिकता का दण्ड', 'लाहौल्स की सुबी', 'कबाड़ी का ताजमहल' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं।

उनकी कहानियों के कथोपकथन रोचक, प्रभावशाली, सजीव, स्वाभाविक, संक्षिप्त तथा पात्रानुकूल पाये जाते हैं। वाजपेयी जी जहाँ कहीं भी दार्शनिक संवाद देते हैं, वहाँ उनके संवाद बोझिल एवं अस्वाभाविक हो गये हैं। उदाहरण के रूप में 'सूखी लकड़ी', 'विच्छेद', 'महापुरुष' आदि कहानियाँ देखी जा सकती हैं।

आजकल कहानियों में एक विचित्र बात देखी जाती है। वह है वाक्यों के बीच-बीच में --- इस प्रकार के चिन्हों से पद-विभाजन करना। यह कृत्रिम शैली के अंतर्गत माना जाता है। इस शैली के अंतर्गत प्रायः कहीं-कहीं वाक्य भी जान-बूझकर अपूर्ण छोड़ दिये जाते हैं; अतः साधारण पाठकों के लिए कहानी समझने में कठिनाई उपस्थित होती है। 'नर्तकी' कहानी का आखिरी वृत्तांत द्रष्टव्य है -

> " और अन्त में प्रतिहिंसा की यथेष्ट पूर्ति न होने पर ऐसे विघ्नों के शिलाख में --- !
> --- तत्पश्चात् विमला देवी - । यह विघ्नों और --- !!" [1]

वाक्यों के बीच-बीच में पद-विभाजन करने के उदाहरण इसी कहानी में और भी देखे जा सकते हैं। [2]

वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों को अनेक प्रकार से विभाजित किया है। 'रमता - योगी', 'सत्य का पाप', 'पीपल का पेड़', 'प्रलोभन', 'छलना', 'खाली बोतल', 'स्वयंवर' 'झरना' 'गृहस्वामिनी', 'जो मैं ऐसा जानती', 'प्रेमलता', 'आत्मघात', 'टिकुली', 'मैना', 'शबनम', 'सम्बंध', 'दृग्गति', 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब', 'रजनी' आदि कहानियों के परिच्छेदों को नम्बर में सूचित किया है। इन कहानियों में से कुछ कहानियों की पुनरावृत्ति में शीर्षक तो बदल दी गये हैं, साथ-साथ नंबर भी हटा दिये गये हैं। ऐसी कहानियों में प्रमुख हैं -'जब सत्य ने काट खाया', (पहले 'सत्य का पाप'), 'आत्मरस' (पहले 'झरना'), 'पागल शिष्य' (पहले 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब'),

---

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 161

2- वही, पृ0 154, 156, 157, 158.

'रजनी : एक चेतना' (पहले 'रजनी'), तथा 'एक आर' (पहले 'जो मैं ऐसा जानती।') आदि कहानियाँ। नंबर हटा देने से कहानी पढ़ समझने में कठिनाई होती है। 'हत्यारा', 'अपमान का भाग्य', 'सत्य की जय', 'अन्याय' आदि कहानियों के परिच्छेदों को नम्बर न देकर बिन्ह से सूचित किया गया है। 'पुनर्मिलन' का × × × बिन्ह से तथा 'विद्रोही' कहानी के परिच्छेदों का ... ... बिन्ह से सूचन दिया गया है। कुछ कहानियों में परिच्छेदों को सूचित करने के लिए 'फूल' का बिन्ह रखा गया है, तो कुछ कहानियों में एक से अधिक बिन्ह प्राप्त होते हैं।

वाजपेयी जी ने अपनी 'अभिशाप', 'ज्वाला', 'एक आदर्श वाक्य', 'जहाँ सभ्यता साँस लेती है', 'दुग्धपान', 'इन्द्रजाल', 'अपमान का भाग्य', 'अपराधी के पत्र', 'झाँकी', 'उर्वशी', 'झरना', 'गमनागत', 'गृहस्वामिनी', 'कर्तव्याघात' आदि कहानियों में पूर्व दीप्ति (Flash back) का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। 'पुनर्मिलन' कहानी में पूर्व दीप्ति के आत्यंतिक प्रयोग के कारण कहानी की सरसता नष्ट हो गई है।

वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों के चरित्रों का मनोविश्लेषण कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। 'ललना' कहानी के प्रथम भाग में तारा[1], 'अँधेरी रात' में शिवराम[2], 'समर्पण' में गज्जू[3], 'साँप का बील' में रानी[4], 'उर्वशी' में बिहारी[5] तथा राजपथ' में अनामिका[6] तथा रमानाथ[7] का मनोविश्लेषण द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त 'उपहार' कहानी में लेखक ने विमला के मन की बातें बताने के लिए स्वप्न का प्रयोग भी किया है।[8]

वाजपेयी जी की कुछ कहानियों में संकलनत्रय का अभाव-सा प्रतीत होता है। उनकी 'मिठाईवाला', 'एक आदर्शवाक्य', 'कर्तव्याघात', 'पेन्सिलस्केच', 'परीक्षा के वे दिन' आदि कहानियों में समय का ऐक्य तथा 'तेवर', 'अधिकार पत्र' आदि कहानियों में समय तथा स्थल का

1- दे. उतार-चढ़ाव, पृ0 48 से 50

2- दे. स्नेह, बाती और लौ, पृ0 140-41

3- दे. वही, पृ0 22

4- दे. वही, पृ0 76

5- दे. होटल का कमरा, पृ0 128-29

6- दे. वही, पृ0 41-42

7 - दे. वही, पृ0 42

8- दे. वही, पृ0 84

के ऐक्य का निर्वाह वे नहीं कर सके हैं, तथापि कहानी-कला की दृष्टि से इन कहानियों को कोई हानि नहीं पहुँची है। 'एक आदर्श वाक्य' में लेखक स्वयं कहानी के बीच आकर हस्तक्षेप करता है, इसके परिणामस्वरूप वह कहानी की गति में अवरोध उत्पन्न करता है। ऐसा ही 'परीक्षा के वे दिन' कहानी के विषय में हुआ है। प्रस्तुत कहानी में लेखक अपने दार्शनिक विचार व्यक्त करने का लोभ संवरण नहीं कर सका है[1], अत: कहानी की गति उस स्थल पर रुकती-सी प्रतीत होती है। 'उतार-चढ़ाव' कहानी घुमा-फिराकर कही गई है, अत: (Complicated) हो गई है।

सांकेतिकता वाजपेयी जी की कहानियों का विशेष गुण है। 'चित्रकार', 'स्पर्धा', 'लाइसेंस की सुर्खी', 'जब सत्य ने काट खाया' आदि कहानियों में प्रत्यक्ष रूप से लेखक कुछ भी नहीं कहता, तथापि संकेतों द्वारा उसने सब कुछ कह दिया है। 'जब सत्य ने काट खाया' कहानी से एक उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है -

" गली से नर-नारियों का एक दल निकलता है, फिर एक शव।

"हटो, रास्ता दो बाबू। एक तरफ हो जाओ। गजब हो गया।"

"क्या हुआ भाई ?"

"कैसे बताऊँ, क्या हुआ ? एक साहब कल मिल गुलाब के यहाँ आये थे। नाम वे अपना कुन्दन बतलाते थे। बस, उनके चले जाने के बाद से ही मालूम नहीं उन्हें क्या हो गया। खुदा जाने क्या बात हुई।"

तब तक आत्मा आ पहुँची। बोली अपने आघात को दबाते हुए -

"ओह तुमने उसे मार डाला, बाबू ? भला ऐसा भी कोई करता है ? लेकिन मैं तुमको भी क्या कहूँ। बस आप जाइए यहाँ से। देर मत कीजिए। खैरियत इसी में है। जाइए मैं कहती हूँ, जाइए।"

लक्ष्मण ने पूछा-"क्यों ? आखिर क्यों ??"

आत्मा इस बार अपने को सम्हाल न सकी। बोली-" यह मत पूछो बाबू- कहा मानो, मत पूछो।"[2]

उपरोक्त उद्धरण में लेखक ने कहीं भी स्पष्टत: यह नहीं बतलाया है कि सरोज की मृत्यु क्यों हुई, तथापि सुज्ञ पाठक समझ जाता है कि बारह वर्षों के बाद सरोज तथा उसका

1- दे. बात एक रात की, पृ0 81

2- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 86

भाई लक्ष्मण एक दूसरे को नहीं पहचान सकते । सरोज ने वेश्यावृत्ति अपनाने पर गुलाब नाम धारण किया है तथा लक्ष्मण, कुंदन नाम धारण करके अपनी ~~xxxxx~~ वासना-पूर्ति के हेतु अनजाने में अपनी ही बहन के पास जाता है । बाद में हक़ीक़त का पता चलने पर सरोज व्याकुल हो जाती है । अज्ञानतावश जो अनुचित कार्य उससे हो गया, उसका आघात उसके लिए असह्य हो जाता है और इस आघात में वह मर जाती है । ये सारी बातें वाजपेयी जी ने संकेतों द्वारा कही है ।

एक आलोचक का कहना है, "वाजपेयी जी ब्रिलीयेंट ऑथर नहीं है । उनका कोई व्यक्तित्व नहीं । नाइन्टीन्थ सेन्चुरी के उपक्रम उनके उपन्यासों में आ गये हैं ।"[1] यह नितांत असत्य एवं भ्रांतिपूर्ण है । किसी भी साहित्यकार के संपूर्ण कथा-साहित्य का सम्यक् अध्ययन किये बिना, केवल एक-दो रचनाओं के आधार पर ऐसा कहना, किसी भी परिस्थिति में उपयुक्त प्रतीत नहीं होता । उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के सम्बंध में हम पीछे विस्तार पूर्वक विचार कर चुके हैं, अत: पुन: इस सम्बंध में कुछ भी लिखना केवल ~~xxxxxx~~ पिष्टपेषण होगा । वाजपेयी जी की बौद्धिकता के बारे में विचार किया जाय, तो कहना पड़ेगा कि उनके कथा-साहित्य में यत्र-तत्र प्राप्त संकेतों एवं प्रतीकों का उपयुक्त प्रयोग ही उन्हें ब्रिलीयेंट सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है । एक अन्य आलोचक ने उनकी कहानियों के विषय में उचित ही लिखा है, "सांकेतिकता एवं प्रतीकात्मकता का भी उन्होंने सफल उपयोग किया है, जिससे उनकी कहानियों में बौद्धिकता का समावेश हो गया है, पर इसके बावजूद उन्होंने अपनी कहानियों में कथा तत्त्वों का संगुफन इस प्रकार किया है कि वे बड़े तीव्र रूप में गतिशील होती हैं ।"[2] डा० सुरेश सिनहा का उक्त कथन हमारे मत की पुष्टि कर देता है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी की प्रारंभिक कहानियाँ गल्पकथा के अधिक निकट पड़ती हैं । उनमें इतिवृत्तात्मकता अधिक है, किन्तु शनै: शनै: यह इतिवृत्तात्मकता कम होती गई है और उसका स्थान मनोविश्लेषण ने ले लिया है । अब तो उनकी कहानियाँ मानव-जीवन के किसी एक प्रसंग को लेकर ही लिखी जाने लगी हैं । इतिवृत्तात्मकता अब का अब उनमें नितांत अभाव प्रतीत होता है । प्रारंभिक कहानियों में आरंभ भूमिका के तथा अंत उपसंहार के साथ होता था ; किन्तु अब एक-दो कहानियों को छोड़कर न आरंभ में भूमिका दिखाई देती

1- डा० भगवतशरण उपाध्याय से भेंटवार्ता , दिनांक 23-10-72

2- हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास, डा० सुरेश सिनहा, पृ० 406

है, न ही अंत में उपसंहार । उनकी किसी भी कहानी में कहीं भी अश्लीलता नहीं आने पायी है । वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखा है । जहाँ उन्हें मर्यादा-भंग होने की संभावना लगी है, वहाँ सांकेतिकता से काम लिया है ।

अपने उपन्यासों की भाँति ही वाजपेयी जी ने कहानियों का सृजन प्रमुखत: वर्णनात्मक तथा स्वगतकथन शैली में किया है । आवश्यकतानुसार उन्होंने पत्रात्मक, डायरी तथा मिश्रित शैली का भी प्रयोग किया है । उन्हें वर्णनात्मक तथा स्वगतकथन शैली में अधिक सफलता प्राप्त हुआ है । कुछ आलोचक मानते हैं कि वाजपेयी जी के टेकनिक में कोई परिवर्तन नहीं आया । प्रेमचंद परम्परा में उनकी शैली इतनी रूढ़ हो गई है कि उसे बदलने में वे असमर्थ हैं । किन्तु यह कथन हमें सत्यपरक प्रतीत नहीं होता । वाजपेयी जी की प्रारंभ की एवं सन् 1934 ई० के पश्चात् लिखी गई कहानियों में शिल्पगत अंतर अवश्य पाया जाता है । प्रारंभ की कुछ कहानियों पर प्रेमचंद एवं शरदबाबू का प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर होता है ; किन्तु बाद की कहानियों में पुरानी परम्परा से अलग हटकर उन्होंने अपने अलग मार्ग का निर्माण किया है । उनकी 'सूखी लकड़ी', 'खाली बोतल', 'विच्छेद', 'यदि', 'प्रतिदान', 'जब सत्य ने काट खाया', तथा 'लाइसेंस की सुखी' आदि कहानियों के अध्ययनोपरांत कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी ने टेकनीक का निर्माण स्वतंत्र रूप से करना प्रारंभ कर दिया है । 'सीढ़ियाँ'[1] नामक कहानी उनके परिवर्तित शिल्प-विधि का उत्कृष्ट उदाहरण है । प्रस्तुत कहानी में कहानी-सृजन का वाजपेयी जी का नवीन दृष्टिकोण ही दृष्टिगोचर नहीं होता, अपितु कहानी की शैली एवं शिल्प में भी नव्यता पायी जाती है । अपने संस्कारों के कारण आधुनिकतम शिल्प-विधि के विभिन्न प्रयोगों ने उन्हें आकर्षित तथा प्रभावित नहीं किया है, अत: शिल्प के ऐसे प्रयोग उनकी कहानियों में नहीं पाये जाते । वस्तुत: वे कहानी में कहानीपन के समर्थक हैं । शिल्पगत वैचित्र्य, जो कहानी की सम्पन्नता होती है, उनकी कहानियों में सहज उपलब्ध है ; किन्तु वह केवल साधन के रूप में है, ध्येय के रूप में नहीं । कहानी कहते-कहते संवेदना को अंत में नाटकीय बना देना वाजपेयी जी की विशेषता है । इस नाटकीयता में जीवन का मर्म उद्घाटित हो जाता है और कहानी के अंत तक पहुँचते-पहुँचते पाठक को ओ. हेनरी याद आ जाता है ।

अपनी मनोवैज्ञानिक कहानियों में वाजपेयी जी ने विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि का प्रयोग किया है । इस शिल्प-विधि की सहायता से वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों के पात्रों के

1- दै. अमृत, '70 के 'सारिका' में इस शीर्षक से प्रकाशित वाजपेयी जी की कहानी ।

अंतर्मन में उठने वाले संघर्षों, विचारों, कुण्ठा आदि को चित्रित किया है। इस दृष्टि से उनकी 'यदि', 'प्रतिदान', 'मैना', 'रात के दो बजे' आदि कहानियाँ उल्लेख्य हैं। आवश्यकतानुसार अपनी 'होटल का कमरा', 'पुनर्मिलन', 'उर्वशी', 'आत्मघात', 'मैना', 'विद्रोही', 'दुग्धपान', 'ज्वाला' आदि कहानियों में लेखक ने पूर्व दीप्ति शिल्प-विधि का भी प्रयोग किया है। 'अपमान का भाग्य' कहानी में तो इस शिल्प-विधि का अतिरेक हो गया हो ऐसा प्रतीत होता है। प्रस्तुत अध्याय में वाजपेयी जी के कथा-साहित्य के शिल्प-संगठन का अनुशीलन किया गया। अगले अध्याय में वाजपेयी जी ने अपने कथा-साहित्य में चरित्र-चित्रण की किन-किन प्रणालियों को अपनाया है यह उनके कथा-साहित्य में से उदाहरण देकर देखा जायगा। तत्पश्चात् उनके उपन्यासों तथा कहानियों के प्रमुख पात्रों का चरित्र-विवेचन भी किया जायगा।

--

तृतीय अध्याय

वाजपेयी जी के कथा-साहित्य में चरित्र-चित्रण और प्रमुख पात्रों का चरित्र- विवेचन

तृतीय अध्याय

'वाजपेयी जी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण और प्रमुख पात्रों का चरित्र-विवेचन ।'

पिछले अध्याय में हम वाजपेयी जी के कथा-साहित्य के शिल्प-संगठन की चर्चा कर चुके हैं । जिस प्रकार किसी कथा कृति में शिल्प का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, उसी प्रकार कृति में पात्र भी अनिवार्य रूप से स्वीकार किये गये हैं । बिना पात्रों की कथा की कल्पना भी नहीं की जा सकती । पात्रों का चरित्र-चित्रण एक लेखक जितनी कुशलतापूर्वक करता है, पात्र उतने ही सशक्त बनते हैं । प्रस्तुत अध्याय के प्रारंभ में उपन्यास के प्रमुख तत्त्व चरित्र-चित्रण पर विचार कियाजायगा । वाजपेयी जी ने चरित्र-चित्रण की किन-किन प्रणालियों का अपने उपन्यासों में प्रयोग किया है इस पर भी विचार किया जायगा । तत्पश्चात् उनके उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का चरित्र विश्लेषण किया जायगा ।

उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व चरित्र-चित्रण है । जैसे मानव आकृतियों में वैविध्य परिलक्षित होता है, उसी प्रकार उपन्यास के पात्र भी एक-से नहीं होते । उनकी अपनी रुचियाँ, गुण-दोष, आचार-विचार आदि में अंतर होता है । उन्हीं के अनुरूप उपन्यासकार पात्रों का चरित्रांकन करता है ।'उपन्यास में पात्रों का चरित्रांकन अनिवार्य है - चरित्रांकन करने वाली अन्य विधाओं से उपन्यास में इसकी सर्वाधिक गुंजाइश है, अतएव इसका पृथक् उल्लेख आवश्यक है ।'[1] विद्वानों ने चरित्र-चित्रण की अनेक विधियाँ अपने-अपने ढंग से देने का प्रयास किया है ।'चरित्र चित्रण के लिए आजकल प्रधानत: दो रीतियाँ प्रयुक्त होती हैं - विश्लेषणात्मक (एनेलिटिक) और कार्य कारण सापेक्ष या नाटकीय(ड्रामेटिक) ।'[2] डा० भगीरथ मिश्र ने भी इन्हीं दो शैलियों को मान्यता दी है ।[3] प्रथम में उपन्यासकार अपने पात्रों को नि:संग दृष्टि से देखता है । उनके भावों, विचारों, प्रवृत्तियों आदि का विश्लेषण वह करता है । और यदा-कदा आधिकारिक निर्णय भी दे डालता है ; किन्तु आधुनिक प्रवृत्ति इससे भिन्न है । आजकल चरित्र-चित्रण की सबसे उत्कृष्ट कला तो यह है कि अपने पात्रों को प्राण शक्ति से सम्पन्न करके लेखक उनको जीवन की रंगस्थली में सुख-दु:ख से आँख मिचौनी

1.Human beings have their great chance in the novel.They say to the novelists'Recreate us if you like,but we must come in.'E.M.Forster, 'Aspects of the Novel'P.169

2- हिन्दी उपन्यास, शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ0 448

3- चरित्र-चित्रण के लिए प्राय: दो शैलियों का अवलम्बन किया जाता है - 1-विश्लेषणात्मक, 2- नाटकीय ।

4- ~~हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा - डा० मक्खनलाल शर्मा, पृ० 59~~

खेलने के लिए छोड दे । जीवन के घात-प्रतिघात, उत्कर्ष-अपकर्ष में जब बहता हुआ चरित्र स्वयं ही अपने को अनावृत करे- अपनी दुर्बलता-सबलता एवं सुरूपता-कुरूपता का प्रदर्शन करे । लेखक का कार्य केवल दूर से बैठकर उसकी गतिविधि का निरीक्षण करना और उसमें सतत प्राणधारा प्रवाहित करते रहना मात्र है । दूसरी प्रणाली के लिए डा० मक्खनलाल शर्मा ने 'अभिनयात्मक' शब्द-प्रयोग किया है ।[1] इन दोनों प्रणालियों के अंतर्गत विवरणात्मक,संकेतात्मक, प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक आदि कुछ अन्य पद्धतियों को भी स्वीकारा गया है ; अत: इनको अलग से वर्गीकृत करना समीचीन प्रतीत नहीं होता । डा० श्यामसुन्दरदास ने भी 'साहित्यालोचन' में इन्हीं दो प्रणालियों को स्वीकार किया है -

'चरित्र-चित्रण में प्राय: दो उपायों का अवलम्बन किया जाता है, एक को विश्लेषणात्मक या साक्षात् और दूसरे को अभिनयात्मक या परोक्ष कहते हैं । पहले प्रकार का उपन्यास लेखक अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वयं अपने शब्दों में करता है । वह पात्रों के भावों, विचारों, प्रकृतियों और राग-द्वेषों को समझता, उनकी व्याख्या बताता और प्राय: उन पर अपना विवेचनापूर्ण मत भी प्रकट करता है । दूसरे प्रकार में लेखक आप मानो अलग खड़ा रहता है । स्वयं पात्रों को अपने कथन में और व्यापार से तथा उसके सम्बंध में दूसरे पात्रों की टीका-टिप्पणी तथा सम्मति से अपना चरित्र-चित्रण करने देता है ।'[2] इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा ही दी गई चरित्र-चित्रण की प्रणालियों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि सभी ने केवल शब्दों में कुछ परिवर्तन करके एक-सी विधियाँ दी हैं । डा० रणवीर रांग्रा ने अपने शोध-प्रबंध में जिन प्रणालियों का उल्लेख किया है,[3] वे उपर्युक्त सभी विद्वानों द्वारा दी गई विधियों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और ग्राह्य है, अत: उन्हीं का अवलम्बन लेकर हम वाजपेयी जी के उपन्यास में प्राप्त चरित्र-चित्रण की प्रणालियों का विश्लेषण करेंगे ।

पात्रों के नाम द्वारा चरित्र-चित्रण -

वस्तु जगत में प्राय: व्यक्ति के नाम और उसके चरित्र में साम्य प्राप्त नहीं होता, परन्तु उपन्यास जगत में ऐसे अनेक पात्र प्राप्त हो जायेंगे, जिनके नाम उनके चरित्रानुकूल होते हैं । अपने पात्रों का स्रष्टा होने के कारण उपन्यासकार को अपने पात्रों का पूर्णरूपेण परिचय रहता

1- ~~साहित्यालोचन, डा० श्या~~

1- दे.हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा - डा० मक्खनलाल शर्मा, पृ० 59

2- साहित्यालोचन, डा० श्यामसुंदर दास, पृ० 165

3- दे.हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास-डा० रणवीर रांग्रा,पृ०65 से 89

है और वह उनके भावी चरित्र-विकास के सम्बंध में सब कुछ जाना करता है।"[1] अत: पात्रों के नामकरण के समय उसके समक्ष उनका सम्पूर्ण चरित्र उपस्थित हो जाता है और यथा गुण तथा नाम रखने के मोह को वह टाल नहीं सकता। उसके लिए श्रेयस्कर यही है कि इस प्रकार के मोह से वह बचे, अन्यथा पात्रों के नाम में अस्वाभाविकता आ जाने का पूरा संभव है। कथाकार वाजपेयी जी भी अनेक बार अपने पात्रों के नामों को सार्थक बनाने का तथा उनके नामों द्वारा ही उनके किसी विशेष गुणावगुण को व्यक्त करने का मोह नहीं त्याग सके। परिणामत: उनके कई पात्रों के नाम सहज-स्वाभाविक न बनकर प्रतीतात्मक या व्यंगात्मक हो उठे हैं।

(अ) पात्र के गुणानुरूप नाम :

ऐसे वे नाम हैं, जो पात्र के चरित्र के किसी विशेष गुणावगुण को व्यक्त करते हैं। जैसे, सुमन, विजय, अजय, नीलकमल, शंकर, मीरा, प्रतिभा, मालती आदि। इन पात्रों के नामों से ही इनका चरित्र व्यक्त हो जाता है। ऐसा संयोगवश हुआ हो ऐसा नहीं है, अपितु इनके स्रष्टा ने जान-बूझकर इनके चरित्र की किसी एक उभरी हुई विशेषता का आधार अवलम्ब लेकर इनका नामकरण किया है। वस्तु जगत के लोगों के नाम और चरित्र में साम्य बहुत कम होता है और होता भी है तो केवल संयोगवश-इस विषय में कोई भी सांसारिक प्रयत्न फलीभूत नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त पात्र के जीवन की एक-दो घटनाओं से उसके नाम तथा चरित्र में साम्य देखकर उसके भावी विकास के प्रति पाठक का औत्सुक्य मन्द पड़ जाता है ; क्योंकि पात्र के नाम से उसके चरित्र का अनुमान आवश्यकता से पूर्व ही प्रकट हो जाता है।

(ब) व्यंगात्मक पात्र :

पात्रों के व्यंग्यात्मक नाम दो प्रकार के होते हैं। एक तो ऐसे हैं, जो पात्रों के चरित्र की किसी विशेषता के एकांगी विकास पर व्यंग्य कसने के लिए रखे गये नाम। वाजपेयी जी के पात्रों के ऐसे नाम उपलब्ध नहीं होते। दूसरे प्रकार के व्यंग्यात्मक नाम हैं - पात्र के किसी विशेष अवगुण पर व्यंग्य कसने के लिए- उसके गुण विपरीत नाम - जैसे सरस्वती, विमला, शांतिप्रिया आदि। 'कर्मपथ' के एक पात्र पद्मधर की पत्नी अनपढ़ थी। "पढ़ाई-लिखाई के नाम

---

1. Forster, 'Aspects of the Novel, P.55

".....And -Most important-We can know more about him(character) than we can know about any of our fellow creatures, because his creator and narrator are one".

पर तो आप निरक्षर भट्टाचार्या थी, लेकिन नाम था आपका सरस्वती ।'[1] इसी प्रकार 'चलते-चलते' के वंशी भैया की प्रथम पत्नी का नाम तो है विमला, किन्तु वह चरित्र की शुद्ध नहीं है । रामलाल के साथ उसकी स्वच्छंदलीला पूरे उपन्यास में चलती रहती है । 'वासना से परे' में एक शिक्षिका के सम्बन्ध में अनूप कहता है -'सच पूछिये तो वे नाम मात्र को ही शान्तिप्रिया हैं । वास्तव में वे इसके विपरीत अशांतिप्रिया हैं ।'[2]

(क) एक नाम के एकाधिक पात्र :

विश्व में एक ही नाम के एकाधिक व्यक्ति मिल जाते हैं, किन्तु उनके चरित्र में वैभिन्य पाया जाता है । यदि दो व्यक्तियों के नाम और चरित्र में साम्य प्रतीत हो, तो वह केवल संयोग माना जायगा । वाजपेयी जी के उपन्यास जगत् में एक ही नाम के एकाधिक पात्र मिल जाते हैं । विमला नाम के दो स्त्री पात्र- 'चलते-चलते' के वंशी भैया की प्रथम पत्नी तथा 'रात और प्रभात' की रायसाहब की पुत्री (अर्थात् बड़े भैया की भानजी । इसी प्रकार घनश्याम नाम के दो पुरुष पात्र मिलते हैं -'कर्मपथ' के नायक अजय का मित्र तथा 'मूदान' में कानपुर के एक हिन्दी दैनिक 'लोकमान्य' का एक पत्रकार । इन पात्रों में नाम साम्य अवश्य है, किन्तु चरित्र साम्य नहीं है ।

(ख) स्वाभाविक नामकरण :

वाजपेयी जी ने जहाँ नामों को सार्थक बनाने का मोह त्याग कर पात्र के प्रदेश,काल, जाति तथा वर्ग को ध्यान में रखकर उसका नामकरण किया है, वहाँ उनके नाम अत्यंत स्वाभाविक बन पड़े हैं । वाजपेयी जी के अधिकतर पात्रों के नाम उनके प्रदेश,काल, जाति और वर्ग के अनुसार ही हैं और वे दीर्घकाल पर्यन्त हमारी स्मृति में बने रहते हैं । इनमें ग्रामीण पात्रों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । जोधा, गोपी लोध, मटरू, मंगू, छटंकी, बफाती, बिलुचिया मातादल चमार इत्यादि नाम अत्यंत स्वाभाविक बन पड़े हैं, शायद इसलिए भी कि इनके नामकरण के पीछे लेखक का कोरा शब्द-ज्ञान नहीं, प्रत्युत ग्रामीण जीवन से कभी जो उसकी एकात्मीयता रही है, वह है ।

पात्रों का प्रथम परिचय

किसी चरित्र की रूपरेखा करते समय हुलियानवीसी की जरूरत नहीं । दो-चार वाक्यों

1- कर्मपथ, पृ0 127

2- वासना से परे , पृ0 116

में मुख्य-मुख्य बातें कह देना चाहिए ।'[1] अपने पात्रों से पाठकों कीप्रथम भेंट के समय उनका परिचय कराते हुए प्रेमचन्द जी ने प्राय: इसी शैली को निभाया है - पात्र की आकृति तथा वेशभूषा के संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् दो-चार वाक्यों में उसके चरित्र की कुछ-एक उभरी हुई विशेषताएँ बता देना, यह तो परिचय का एक ढंग हुआ । इसमें दो व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति की सहायता से एक दूसरे से परिचित होते हैं । परन्तु परिचय का केवल यही तरीका नहीं है । कोई तीसरा व्यक्ति ही परिचय कराये यह हमेशा आवश्यक नहीं होता, न तो संभव होता है । लोग अपने आप भी परिचय प्राप्त कर लेते हैं । पात्रों के प्रथम परिचय को स्वाभाविक बनाने के लिए उपन्यास में परिचय के जिन-जिन प्रकारों का प्रयोग किया जाता है । वे इस प्रकार हैं -

(य) औपचारिक परिचय :

वाजपेयी जी अपने उपन्यासों में पात्रों का परिचय कराते समय कभी-कभी भाषण शैली से काम लेते हैं । 'गुप्तधन' के एक पात्र आचार्य गौरीशंकर का परिचय इसी प्रकार का है - 'गुरुदेव को क्रोध से बात करते हुए किसी ने कभी नहीं देखा । विरोधी मतों और तर्कों का उत्तर भी वे कोमल, संयत और शिष्ट भाषा में देते थे । उनका हास शब्दों और ध्वनियों से ही कभी-कभी -सा भी यत्किंचित - झलक पाता था । होठों पर यदि कभी आता भी था तो बस उतने ही क्षण के लिए, जितने में उनकी उत्पत्ति मात्र उद्भासित हो जाय ।'[2]

कहीं बार वाजपेयी जी अपनी औपचारिक शैली में एक साथ चार-पाँच पात्रों का परिचय करा देते हैं, जैसे वे पात्र एक पंक्ति बाँधे खड़े हों और लेखक पाठक से एक के बाद एक उनका परिचय करा रहा हो । 'राजपथ' में गिरधारीलाला की पाँच लड़कियों का परिचय लेखक इसी प्रकार कराता है -'गिरधारी की बड़ी लड़की शारदा रसोई घर में बैठी बिगड़ रही थी --- सरला मैट्रिक के बाद पढ़ना छोड़ चुकी थी । वह इस समय अपने कमरे में बैठी एक कहानी की पत्रिका पढ़ने में लीन थी ।--- लाला गिरधारी की धर्मपत्नी, जो स्थूलता में अत्यधिक प्रगतिशील थीं, दरवाजे पर खड़ी हुई उसे पुकार रही थी । उनकी गोद में एक आठ महीने की बच्ची थी । उसे पलने पर झुलाने के लिए उन्हें सरला की जरूरत थी -- एक थी कमला । वह बेचारी बीमार थी । उसको टायफायड हो गया था ---सबसे छोटी निर्मला केवल डेढ़ साल की थी।'[3]

1- 'कुछ विचार', प्रेमचन्द, पृ0 60

2- 'गुप्तधन' पृ0 6-7

3- 'राजपथ' पृ0 62-63

इसी प्रकार इस उपन्यास में लोकनाथ बनिया, गनी, परसादी, बफाती तथा मियाँ अकराम का परिचय क्रमशः कराया गया है।[1]

ऐसे स्थलों पर प्रतीत होता है कि एक साथ अनेक पात्रों का परिचय कराकर लेखक मानों बेगार टाल रहा हो। ऐसे समय अनेक पात्रों को एक साथ संभालना पाठक के लिए मुश्किल हो जाता है। क्योंकि कथावस्तु और चरित्र के भावी विकास को भली प्रकार समझने के लिए उसे पात्र से प्रथम भेंट या परिचय तक को भी भूलना नहीं होता और ऐसे स्थल उसके मस्तिस्क पर जोर डालते हैं। इसके अतिरिक्त पात्रों को उनका परिचय कराने के लिए उपन्यास के रंगमंच पर ले आना और जब तक उनकी आवश्यकता न हो, उन्हें निश्चेष्ट पड़े रहने देना, कहीं समीचीन प्रतीत नहीं होता। 'उपन्यास में पात्रों का परिचय तब तक नहीं कराना चाहिए जब तक कि उनके करने के लिए कोई आवश्यक काम न हो। आवश्यकता से पहले उनके दर्शन कराना भी उपन्यास में शैथिल्य का कारण बन सकता है।'[2] इस कथन में काफी बल है। अनावश्यक पात्र-परिचय के कारण वाजपेयी जी के कुछ उपन्यासों में भी यत्र-तत्र शैथिल्य आ गया है।

(ग) पूवाग्रहग्रस्त प्रथम परिचय :

पात्रों की रचना में लेखक की निजी मान्यताएँ भी होती हैं। किसी पात्र से उसे अनुराग होता है, तो किसी से विराग। कोई पात्र उसकी सहानुभूति प्राप्त करता है, तो कोई उसकी घृणा का भाजन बन जाता है; किन्तु प्रथम परिचय ही में उसके प्रति अपने भाव व्यक्त करके पाठकों पर अपना पूवाग्रह लादना, कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है।

वाजपेयी जी की यह प्रवृत्ति रही है कि पात्रों के प्रथम परिचय में ही उनका पूवाग्रह व्यक्त हो उठता है। 'उनसे न कहना' उपन्यास के प्रारंभ में ही कीर्तिदेव का चरित्र-चित्रण लेखक इस प्रकार करता है -'कीर्तिदेव की अभी नई उमर थी। यौवन की आँधियों में पड़कर मानसिक सन्तुलन प्रायः खो बैठते थे। अभिमान इस सीमा तक था कि अपने बराबर किसी को समझते न थे। हठ इस सीमा तक कि तथ्य की भी उपेक्षा कर जाते और वस्तुस्थिति के मर्म

1- 'राजपथ' पृ0 72,73,74,76

2- हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास - डा0 रणवीर रांग्रा - पृ0 165

को समझने की चेष्टा न करते ।'[1] कीर्तिदेव अभिमानी और हठी थे या नहीं, यह तो उपन्यास पढ़ चुकने पर ही पता चलता, पर उपन्यासकार पहले से ही आग्रह करने लग जाता है कि उसे अभिमानी एवं हठी मान लिया जाय ।

(ल) प्रभावोत्पादक प्रथम परिचय :

अपनी कृतियों में जहाँ-जहाँ वाजपेयी जी ने तटस्थ रहकर सहज स्वाभाविक ढंग से, पात्रों का प्रवेश कराके उन्हें अपने आप पाठकों पर खुलने दिया है, वहाँ उनका प्रथम परिचय प्रभावोत्पादक बन पड़ा है ।'विजय श्री' में हरीतिमा का परिचय बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ है ।

'मैंने अभी इतना ही कहा था कि दीदी ने कह दिया -'जीवन को पराठा परसो हरीतिमा ।'

सहसा मैं चौंक पड़ा । -'ओ : तो इसका नाम हरीतिमा है ।'

नाम सुनकर मैंने जो उस लड़की की ओर देखा, तो क्या देखता हूँ कि हरीतिमा ने पराठा तो मेरी थाली में डाल दिया, लेकिन दृष्टि उसकी नतमुखी ही बनी रही ।'[2] यहाँ लेखक ने जिस कौशल्य से उसका नाम बताया है तथा उसकी लज्जाशीलता की ओर संकेत किया है, यह बड़ा ही स्वाभाविक तथा रोचक है ; परन्तु इस प्रकार प्रथम परिचय में किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में सब कुछ जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती । जो थोड़ा-बहुत जाना जा सकता है, उस पर भी पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता । प्रथम परिचय में अपर्याप्त समय के कारण चरित्र की सभी विशेषताओं को प्रकट होने का अवसर नहीं रहता और जिनको प्रकट होने का अवसर प्राप्त होता है, वे अनेक कारणों से दबी रहती हैं या अपूर्ण व्यक्त हो पाती हैं । प्रथम भेंट में कभी-कभी व्यक्ति स्वयं भी नैसर्गिक आचरण पर कृत्रिम शिष्टाचार का आवरण डाले रहता है ; अत: प्रथम भेंट में हमारे हृदय पर पड़ी छाप की सत्यता को परखने के लिए जीवन की विविध परिस्थितियों में व्यक्ति की शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है ।

वाजपेयी जी अपने पात्रों का प्रथम परिचय देकर ही चिन्ता मुक्त नहीं हो जाते, प्रत्युत उन्हें भिन्न-भिन्न स्थितियों में डालकर उनकी क्रियाओं -प्रतिक्रियाओं, भाव-भंगिमाओं,

---

1- उनसे न कहना - पृ0 5

2- विजय श्री - पृ0 26-27

आँख, नाक, कान, मुँह, सिर, हाथ, पाँव आदि की विभिन्न मुद्राओं तथा उनके हाव-भाव, हँसने-खेलने और खाने-पहनने की निजी विचित्रताओं के इतने सजीव शब्दचित्र उपस्थित करते हैं कि पात्र पाठकों की कल्पना में मूर्त हो उठता है।

आकृति - वेशभूषा-चित्रण

पाठकों की कल्पना में औपन्यासिक पात्र साकार होकर नाच उठें, इस उद्देश्य से उपन्यास में पात्रों की आकृति, वेशभूषा आदि का वर्णन करना उपन्यासकार के लिए आवश्यक हो जाता है। कथाकार वाजपेयी जी भी समय-समय पर अपने पात्रों की आकृति, वेशभूषा, चालढाल आदि का वर्णन करते रहते हैं, किन्तु वे उनके नखशिख के ब्यौरेवार वर्णन में न उलझकर उनके अंग-प्रत्यंग के, उनके व्यक्तित्व के सामूहिक प्रभाव के अंकन की ओर अधिक प्रवृत्त होते हैं। 'गुप्तधन' के आचार्य के प्रथम दर्शन से ही पाठक उसके व्यक्तित्व की महानता स्वीकार कर लेता है। उनका वर्णन यदि अपेक्षाकृत विस्तार से मिलता है, तो ऐसा उनकी महानता मुखरित करने के लिए ही हुआ है।

(अ) रूप- सौंदर्य का चित्रण :

अपने उपन्यासों के नारी-पात्रों के रूप-सौंदर्य का चित्रण करते समय वाजपेयी जी उन पात्रों के अंग-प्रत्यंग की सुघड़ता का ब्यौरेवार वर्णन करते हैं। उनके उपन्यासों में नायिकाओं का रूप-सौंदर्य वर्णन एक ही प्रकार का प्राप्त होता है। कई बार तो ऐसा लगता है जैसे - लेखक अपनी उस रचना की रूप-माधुरी पर मुग्ध होकर एकाएक उस छवि को निहारने के लिए रुक गया हो। 'चलते-चलते' में मिस्टर मोदी के अपनी बहन का परिचय कराने पर तत्काल राजेन्द्र की दृष्टि मिस मोदी पर जाती है -"जारजेट की श्वेत साड़ी है और चिकन का ब्लाउज। काली जाली से बँधा हुआ केश-गुच्छा सिर पर सघन-घन-घटा की भाँति छाया है। एक-आध उच्छृंखल लट मस्तक पर कभी-कभी लहरा उठती है। फाउन्टेन पेन का क्लिप ग्रीवा के नीचे ब्लाउज में उस स्थल पर नत्थी किया हुआ है, जहाँ से यौवन की आँधियों के आक्रमण होते हैं। पहलदार लेंसेज का रिंगलेस चश्मा नासिका को दबाता हुआ सा फिट किया हुआ है। नेल पालिश से कनिष्ठिका का बढ़ा हुआ नख गहरा लाल रंगा हुआ है।"[1] 'निमंत्रण' में मालती का रूप-सौंदर्य चित्रण भी ऐसा ही पाया जाता है।[2] उसका वर्णन मांसलतायुक्त है।

1- चलते-चलते - पृ0 146

2- दे. निमंत्रण - पृ0 11

(आ) विविध वेशभूषा में चरित्र-विकास के मोड़ -

किसी व्यक्ति की आकृति वेशभूषा एवं उसकी प्रभावोत्पादकता हमेशा एक-सी नहीं बनी रहती । जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है ; किन्तु देखा यह गया है कि प्रेमचन्द जैसे कुछ उपन्यासकार अपने पात्रों की 'हुलियानवीसी' उपन्यास में उनके प्रथम प्रवेश के समय, केवल एक बार, कर देते हैं,परिणामस्वरूप पाठकों की कल्पना में उपन्यास के अंत तक पात्रों का प्रथम रूप ही बना रहता है । वाजपेयी जी इस दोष से सर्वथा बच गये हैं ; ऐसा नहीं कहा जा सकता । उनके उपन्यासों में भी पात्र की वेशभूषा का वर्णन एक ही बार आ जाता है ।

स्थित्यंकन

स्थिति-चित्रण में वाजपेयी जी प्रेमचंद की ही तरह बड़े सिद्धहस्त हैं । जिस स्थिति में पात्र को डालना होता है, उसकी पूर्व तैयारी वे बहुत ही पहले से कर लेते हैं । 'टूटते बन्धन' में उपन्यास के अंत में मुरली और बुद्धिबाबू का विवाह वे करा देना चाहते हैं । इसके लिए पहले लिखते हैं -'बुद्धिबाबू की अवस्था बत्तीस वर्ष की थी, लेकिन उन्होंने विवाह नहीं किया था । इसका कारण था । बुद्धिबाबू सोचते थे -'विवाह तो मैं उस लड़की से के साथ करूँगा, जो रूप-सौंदर्य में ही नहीं, विचारधारा में भी मेरे मन के अनुकूल होगी । भले ही वह किसी अन्य जाति की हो । विधवा हो, तो भी कोई हर्ज नहीं ।''[1] जैसी लड़की वे चाहते हैं, ऐसी ही लड़की मुरली है । अपनी भतीजी का ट्यूशन बंद हो जाने पर बुद्धिबाबू उसे और नौकरी दिलवाते हैं और उपन्यास के अंत में यशवन्त को भूलकर अपने साथ विवाह करने के लिए समझाते हैं ।[2] इसमें बुद्धिबाबू के विवाह के लिए लेखक ने बहुत पहले से ही अनुकूल स्थिति का आयोजन कर रखा है ।

अनुभाव-चित्रण

पात्र की प्रतिक्रिया किसी स्थिति-विशेष में पड़ते ही प्रकट नहीं हो जाया करती । उसकी प्रतिक्रिया स्थिति विशेष पर इतना अवलम्ब नहीं रखती, जितना इस बात पर कि पात्र उसे किस रूप में ग्रहण करता है । स्थिति गंभीर होने के साथ-साथ पात्र की मनस्थिति में भी अंतर आ जाता है और जब तक उसके मनोवेग प्रतिक्रिया का रूप धारण नहीं करते, उसकी

1- टूटते बन्धन - पृ0 102

2- वही, - पृ0 195

मनोदशा में होनेवाला प्रत्येक क्षण का परिवर्तन उसकी विभिन्न भावभंगिमाओं एवं मुद्राओं द्वारा प्रकट होता है रहता है । किसी भी स्थिति में पड़ने के बाद तथा प्रतिक्रिया होने से पहले पात्र के अंग-प्रत्यंग में जो परिवर्तन होते हैं, उनमें पात्रों का तत्कालीन मानसिक संघर्ष प्रतिबिम्बित होता है । अत: दोनों स्थितियों के बीच की स्थिति का वर्णन भी उतना ही आवश्यक होता है, जितना स्थिति और उसके प्रति पात्र की प्रतिक्रिया का चित्रण ।

पात्रों की पारस्परिक बातचीत के समय वाजपेयी जी उनकी भावभंगिमा का सूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण और उनकी विभिन्न मुद्राओं का वर्णन करते जाते हैं, जिसके अनेक उदाहरण उनके उपन्यासों में मिलते हैं ।'विश्वास का बल' में पत्नी की बात पर वकील साहब का 'अपने भरे हुए पान के मुख पर मुस्कराहट झलकाते हुए बोलना'[1], बिहारीबाबू का कथन के साथ'कुछ उग्र और गंभीर हो उठना' और'फिर कुछ सम्हलकर हँसते-हँसते कहने लगना'[2], 'भूदान ' में 'प्रपंचभरी मुस्कराहट के साथ'[3] परमेश्वरीदयाल का बोलना, यमुना का 'मुँह बनाते हुए कह उठना'[4] आदि । 'राजपथ' में एक और उदाहरण द्रष्टव्य है -'दिलीप उत्तर तो दे गया, लेकिन उसका मुँह तमतमा उठा । उसके होंठ हिल उठे और भृकुटियों पर तनाव आ गया'[5] इत्यादि अनेक ऐसे स्थल उद्धृत किये जा सकते हैं, जहाँ वाजपेयी जी ने बातचीत के समय पात्रों की मुखमुद्राओं का सुन्दर चित्रण किया है ।

प्रतिक्रिया चित्रण :

अपने पात्रों का विस्तारपूर्वक सूक्ष्म वर्णन करने के अनंतर वाजपेयी जी शीघ्र उनकी प्रतिक्रिया के चित्रण की ओर ध्यान देते हैं । कई बार तो यह सब जादू-सा प्रतीत होता है अर्थात् परिस्थिति के अंकन और पात्रों की प्रतिक्रिया के बीच समय का बिलकुल अंतर नहीं रहता।

उपन्यासकार की ओर से टीका-टिप्पणी :

लेखक पात्र की अवस्था का वर्णन केवल एक पंक्ति में करके अपनी ओर से लम्बी टिप्पणी

1- विश्वास का बल, पृ0 30
2- वही, पृ0 63
3- भूदान, पृ0 62
4- वही, पृ0 144
5- राथपथ, पृ0 252

देकर अपने विचार व्यक्त करने लगता है । 'चलते-चलते' में राजेन्द्र के साथ चाची के सम्बन्ध में बात करते समय उसकी माँ अत्यंत गम्भीर हो जाती है और उसी क्षण वह कण्ठावरोध के कारण रुक जाती है । उसकी आँखें भर आती हैं । इसके पश्चात् शीघ्र लेखक ने रुदन एवं आँसू पर दो पृष्ठ भरके अपने विचार व्यक्त किये हैं ।[1] वस्तुत: बाजपेयी जी के वर्णनों में टीका-टिप्पणी के रूप में उनके अपने विचारों के प्रकटीकरण ही को अधिक स्थान मिला है ।

(2) विश्लेषणात्मक प्रणाली :

दूसरों पर मनुष्य का जो रूप प्रकट होता है, वही उसका वास्तविक रूप नहीं होता, अत: उसकी काल विशेष की परिस्थिति, उस परिस्थिति के प्रति उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया एवं उसका संपूर्ण व्यवहार ज्ञात होने पर भी उसे पूर्णरूप से समझने का दावा नहीं किया जा सकता । व्यक्त व्यवहार में उसके चरित्र का अंश ही प्रतिबिम्बित होता है । मनुष्य के अव्यक्त चरित्र को भी जाने बिना उसे पूरी तरह समझना कदापि संभव नहीं, इसीलिए बाजपेयी जी अपने पात्रों की परिस्थिति विशेष का विस्तार सहित वर्णन करने के बाद उनकी व्यक्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं, उनके हाव-भाव आदि के चित्रण में ही उलझे न रहकर उनके मानसिक संघर्ष एवं उनके व्यवहार की अंत: प्रेरणाओं (इन्टर्नल मोटिव्स) को प्रकाश में लाते हैं ।

अंत: प्रेरणाओं का चित्रण :

किसी के व्यवहार को देखकर कभी-कभी हमारे मन में उसकी वास्तविकता के सम्बंध में प्रश्न उपस्थित होता है । उसके पूर्व विदित स्वभाव के बिलकुल प्रतिकूल व्यवहार देखने पर तो हमारा कौतूहल और भी बढ़ जाता है । हमें ज्ञात होता है कि उसकी प्रकट प्रतिक्रिया के आधार पर उसके उस आचरण का मूल्यांकन करना भ्रामक सिद्ध होगा, अत: उसकी मूल प्रेरणा तक पहुँचना आवश्यक हो जाता है । उसके उस आचरण के विषय में अपनी निश्चित धारणा बनाने से पूर्व उसके पीछे काम करने वाली अंत: प्रेरणा (मोटीव) को जानना होता है कि वे अच्छी थीं या बुरी, अर्थात् उसकी नीयत अच्छी थी या बुरी ।

अव्यक्त प्रेरणाओं का चित्रण :

वाजपेयी जी के उपन्यासों में ऐसे उदाहरण भी प्राप्त होते हैं, जिनमें उन्होंने

1- दे. चलते -चलते - पृ0 210-11

अंत: प्रेरणाओं के चित्रण द्वारा अपने पात्रों के चरित्र के उस अंश को भी व्यक्त किया है जिसका उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं में आभास तक प्राप्त नहीं होता और जिसे जाने बिना उनके चरित्र का उचित मूल्यांकन संभव नहीं हो पाता। 'टूटते बन्धन' का यशवन्त दूसरे ही दिन ससुराल से घर जाना चाहता है, किसी का कहा नहीं मानता ; किन्तु मुरली के कहने पर रुक जाता है।[1] इसमें अपनी पत्नी बेला की अपेक्षा मुरली के प्रति जो अव्यक्त प्रेम एवं लगाव है, वही कार्य कर रहा है। माली की मृत्यु के पश्चात् यशवन्त मालिन भौजी को आर्थिक सहायता करने जाता है,[2] इस प्रसंग में भी सहायता की व्यक्त भावना के पीछे उसका अव्यक्त स्नेह ही उसे ऐसा करने की प्रेरणा देता है।

इस प्रकार वाजपेयी जी पात्रों की अव्यक्त ~~एवह~~ प्रेरणाओं के चित्रण द्वारा अपने पात्रों के परस्पर विरोधी व्यवहार में भी संगति बैठा देते हैं।

आवेगज (इमोशनल) आवरण का चित्रण

आवेशयुक्त मन:स्थिति में कोई भी मनुष्य क्या कर डालेगा, यह अनुमान लगाना या कह सकना कठिन कार्य है। आवेग के कारण मनुष्य अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और ऐसी प्रतिक्रियाएँ करने लगता है जो स्वाभाविक एवं साधारण न हों। उस समय उसे वस्तुस्थिति या अपने व्यवहार से उत्पन्न हानि-लाभ की तनिक भी चिन्ता नहीं रहती। सामान्य रूप से साधारण लगने वाला वातावरण उस समय उस पर असाधारण चोट करता है और उसकी संपूर्ण मानसिक प्रक्रिया में अजब-सी खलबली मच जाती है। अपने पर संयम न रख सकने के कारण उसमें अपूर्व बल का संचार होता है और सामान्यत: जो कार्य, अच्छे या बुरे, कर सकने के लिए वह असमर्थ होता है, आवेश की स्थिति में सरलतापूर्वक वह कर डालता है। इस तरह, आवेशपूर्ण स्थिति में मनुष्य की उन्नति एवं अवनति दोनों के बीज छिपे रहते हैं।

आवेगज आवरण की उपन्यास में उपादेयता

वस्तु जगत के व्यक्तियों की भाँति औपन्यासिक पात्र भी आवेश में आने पर बहुत-कुछ कर बैठते हैं। दोनों में केवल इतना अन्तर है कि उपन्यास में उसका ऐसा करना सोद्देश्य होता है। कुशल उपन्यासकार कुछ भी निरुद्देश्य नहीं लिखता और फिर वाजपेयी जी जैसा उपन्यास-कार, जो उपन्यासों की रचना ही सामाजिकोद्देश्य से करता हो, ऐसा क्यों करेगा ? अपने पात्रों

1- टूटते बन्धन - पृ0 49

2- वही, पृ0 40

की उत्तेजना का वाजपेयी जी इस तरह लाभ उठाते हैं - कथानक को गति देने में, पात्रों के चरित्र को विकास की ओर ले जाने, उनके अप्रत्यक्ष गुणावगुणों के प्रकाशन, अन्य पात्रों का दम्भस्फोट करने और पात्रों की आत्महत्या कराकर कथानक को समेटने में ।

(क) चरित्र-विकास के लिए :

अपने पात्रों की आवेगज मनोस्थिति में वाजपेयी जी उनसे ऐसी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ कराते हैं जो उन्हें जीवन के नये मोड़ पर ला खड़ा करती हैं और उनके मार्ग को कंटकाकीर्ण बनाकर उन्हें जीवन की यथार्थताओं से संघर्ष करने के लिए विवश कर देती हैं । उस संघर्ष में वे जितना धैर्य दिखाते हैं उतना ही उनके चरित्र में निखार आता है । 'कर्मपथ' का नायक बेकार अजय अपने पिता श्री का क्रोध सहन करते हुए कहता है 'केवल दो वक्त की रोटियों का अपराधी हूँ । नौकरी मिलते ही पाई-पाई चुका दूँगा ।'[1] नौकरी न मिलने के कारण पिता श्री के साथ का संघर्ष उसे घर छोड़ने के लिए विवश करता है और जीवन की कठोर वास्तविकता से ला टकराता है । यदि उसने घर न छोड़ा होता, तो उसके चरित्र का विकास न हो पाता ।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में से ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जहाँ वह पात्रों की आवेशपूर्ण मनोस्थिति का प्रयोग उनके चरित्र के विकास के लिए करते हैं ।

(ख) अव्यक्त गुणावगुणों के प्रकाशन के लिए -

मनुष्य के कई स्वाभाविक गुणावगुण कुछ कारणों से अव्यक्त ही रह जाते हैं, जिनमें मुख्यत: उपयुक्त एवं अनुकूल वातावरण का अभाव, राजनीतिक, धार्मिक या सामाजिक भय अथवा प्रलोभन आदि को माना जा सकता है ; परन्तु आवेश की मनोस्थिति में जब कि वह अपना सन्तुलन खो बैठता है और उसका चेतन मन उसके अवचेतन मन को दबाए रखने में असमर्थ हो जाता है, तब अवचेतन मन में दबे हुए भाव वस्तुस्थिति की चिन्ता छोड़ तथा सब प्रकार के भय-प्रलोभन की उपेक्षा कर अपने वास्तविक रूप में फूट पड़ते हैं ।

वाजपेयी जी ने इस प्रकार की मनोस्थिति का सदुपयोग करके उनके हृदय की परतों को खोलने का प्रयास किया है । संसार को भोग माननेवाले त्रिवेणीबाबू को रमा सिनेमा के चार टिकट लाने के लिए कहती है ; किन्तु शाम के समय शिक्षा-विभाग के अनुसचिव पधारने वाले थे,

---

1- कर्मपथ - पृ0 29

अत: जीवन को छुट्टी न मिल सकी और पेचिश के कारण कभी-कभी पेट में मरोड़ हो उठने के कारण रमा की भाभी ने भी सिनेमा जाने से इनकार कर दिया। तब त्रिवेणी असमंजस में पड़ गया। सुबह से तय किया था इसलिए अब इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता, रमा के ऐसा कहने पर त्रिवेणी आवेश में आ कर गर्ज उठता है -'---- कान खोलकर सुन लो - मुरारी की दुलहिन और जीवन की अनुपस्थिति में तुम्हारा मेरे साथ सिनेमा देखने का हठ करना मुझे स्वीकार न होगा। और मुझे इस बात का भय नहीं है कि तुम इसका बुरा मानोगी ---।'[1] सामान्य मनोस्थिति में रमा के प्रति अपने प्रेम के कारण उसे अप्रसन्न करना त्रिवेणी के लिए संभव न था ; किन्तु आवेशपूर्ण स्थिति में उसका विवेक जाग उठता है और उसका गुण व्यक्त हो जाता है।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में ऐसे अनेक स्थल उदाहरण के रूप में दिये जा सकते हैं, जहाँ लेखक ने पात्रों की आवेशपूर्ण स्थिति में उनके अप्रत्यक्ष गुणावगुणों का चित्रण करके उन्हें सद्गुण एवं दुर्गुण युक्त मिश्रित मानव के रूप में उपस्थित किया है।

(ग) पात्रों से आत्महत्या कराकर कथानक को समेटने के लिए -

वाजपेयी जी का उपन्यास-साहित्य आत्महत्याओं से भरे पड़े हैं। उनके उपन्यासों के अध्ययन करने पर यह देखकर आश्चर्य होता है एवं मन में प्रश्न उपस्थित होता है कि अपनी कृतियों में अहिंसा के सिद्धान्त का समर्थन करने वाला, गांधीवाद से अत्यंत प्रभावित लेखक किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट के बिना केवल उपन्यास की कथा समेटने के लिए पात्रों का गला क्यों घोंट देता है ?

'गोमती के तट पर' में वसंत अपने अनुज राकेश को द्वेष की दृष्टि से देखता है। उसे पिटवाने के षड्यंत्र की भी वह रचना करता है, परन्तु दुश्मनों के प्रति भी राकेश का स्नेहपूर्ण व्यवहार देख कर उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। उत्तरोत्तर आत्मग्लानि से उसका हृदय भरता जाता है और गोमती में डूबकर आत्महत्या के लिए वह तैयार हो जाता है।[2]

वाजपेयी जी की रचनाओं में किसी पात्र का विकास रुक जाता है और वह कथानक या किसी अन्य पात्र के विकास में बाधक होने लगता है तथा कृतिकार की समझ में यह नहीं आता कि अब क्या किया जाय, तो उस पात्र से पीछा छुड़ाने के लिए वह उससे आत्महत्या कर

1- विश्वास का बल - पृ0 258

2- गोमती के तट पर - पृ0 322

देता है । पात्र से आत्महत्या करवाने के लिए लेखक उसे शनैः शनैः ऐसी मनोस्थिति में ले जाता है कि जीवन में प्राप्त निष्फलताओं के लिए वह अन्य किसी को नहीं, किन्तु केवल अपने को दोषी समझे । इस प्रकार आत्मग्लानि का भाव उसमें इतना भर जाता है कि किसी भी समय आवेश के कारण वह आत्महत्या कर लेता है ।

अन्तर्मन का चित्रण

वस्तु जगत के मनुष्यों की भाँति ही उपन्यास के पात्रों के मन में भी ऐसी अनेक ग्रंथियाँ पड़ी होती हैं, जिन्हें खोले बिना उनके वास्तविक स्वरूप को पहचानना कठिन हो जाता है । उनमें से कुछ ग्रंथियाँ तो ऐसी भी होती हैं जिन्हें वे समझते या पहचानते तो हैं - परन्तु उनके अनैतिक, असामाजिक या किसी अन्य रूप में लज्जास्पद होने के कारण उनका उल्लेख नहीं कर पाते और उन्हें हृदय में छिपाये हमेशा मानसिक यातना भोगते रहते हैं । इसके अतिरिक्त उनकी अनेक मानसिक उलझनें ऐसी भी होती हैं, जिनके अस्तित्व की अनुभूति तो उन्हें होती है, पर उनके वास्तविक स्वरूप का परिचय पाने की सामर्थ्य उनमें नहीं होती । मनोवैज्ञानिक की भाँति उपन्यासकार भी अपने पात्रों की चारित्रिक गुत्थियों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करता है ।

अचेतन प्रेरणाओं का चित्रण :

अपने पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए वाजपेयी जी विभिन्न मनोस्थितियों में अपने पात्रों के मन के विचार, उनकी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों द्वारा उत्पन्न अंतः संघर्ष, उनकी गोपनीय इच्छाओं, उनके भाव-जगत के सुख-स्वप्नों आदि का चित्रण करते हुए या अन्य पात्रों से करवाते हुए उनके हृदय में प्रवेश करते जाते हैं तथा कभी-कभी उनके बाल्यकाल की ऐसी घटनाओं का उल्लेख भी कर देते हैं, जिन्होंने उनके हृदय पर अमिट प्रभाव डाला हो । यह स्थायी प्रभाव उनके भावी चरित्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग देता है । अपनी कृतियों के पात्रों का मनश्चित्रण करते समय वाजपेयी जी कभी तो सर्वज्ञ बन जाते हैं और उनके हृदय में हो रहे उतार-चढ़ाव से पाठकों को परिचित कराते रहते हैं और कभी-कभी पात्रों को स्वयं अपनी पीड़ा की कहानी कहने देते हैं । ऐसा कराते समय वे स्वगतकथन शैली को प्रयुक्त करते हैं । असह्य मनोवेदना के कारण रात को कोई पात्र सो सकने में असमर्थ हो जाता है और लेटे लेटे-लेटे वह सोचता जाता है ; किन्तु इस शैली का प्रयोग वाजपेयी जी अधिक देर तक नहीं करते । 'गुप्तधन' में जोधा माली रात के दो बजे भी नहीं सो सकता । अतीत की घटनाओं को याद कर-करके

माँ-गुरुदेव की पत्नी- ने आत्मघात किया था यह सोच-सोच के, वह दुखी हो जाता है ।[1] पात्रों की मनोदशा पर लेखक अपनी ओर से टीका-टिप्पणी करता जाता है ; क्योंकि ऐसा किये बिना उसे चैन नहीं पड़ती । पाठकों को अपनी इच्छानुसार पात्रों की मनोस्थिति का अर्थ लगाने की अनुमति देना उसे स्वीकार्य नहीं ।

अंतर्द्वन्द्व :

वाजपेयी जी के औपन्यासिक पात्रों के जीवन में कितनी ही बार ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं, जो किसी भी व्यक्ति के मन में घोर संघर्ष को जन्म दे सकती हैं, परन्तु वाजपेयी जी के सभी उपन्यासों के पात्रों में उतना अंतर्द्वन्द्व नहीं छिड़ता, जितने की अपेक्षा उस मनोस्थिति में उनमें की जा सकती थी । कभी-कभी तो उनके पात्रों में ऐसी स्थिति में भी अंतर्द्वन्द्व का नितान्त अभाव दिखाई देता है । 'पिपासा' में पूरे उपन्यास में शकुंतला, नरेन्द्र और कमलनयन के मन में, 'अधिकार का प्रश्न' के कुंदनबाबू के मन में[2] तथा 'टूटा टी सैट' की नीलकमल के मन में[3] जो अंतर्द्वन्द्व चल रहा है उसका लेखक ने सुन्दर चित्रण किया है । इससे विरुद्ध 'कर्मपथ' के अजय के मन में घर छोड़ने से पहले किसी प्रकार का द्वन्द्व उत्पन्न नहीं होता, न ही 'चलते-चलते' के राजेन्द्र की रूढ़िवादी माँ के मन में वंशी भैया की दूसरी पत्नी को राजेन्द्र की के साथ विवाह करने की अनुमति देते समय किसी भी प्रकार का अंतर्द्वन्द्व छिड़ता है ।[4] कई बार "मानसिक व्यग्रता के पर्याप्त कारण विद्यमान होने पर भी पात्रों के मन में द्वन्द्व न उठना और उठना भी तो नाममात्र कई बार उन्हें अस्वाभाविक-सा बना देता है ।"[5] वाजपेयी जी के कुछ उपन्यासों में भी केवल नाममात्र के लिए अंतर्द्वन्द्व पाया जाता है ।[6] क्योंकि पात्र मान लेता है कि भाग्य में जो लिखा है वही होगा ।[7] इस प्रकार कुछ पात्र सिद्धान्तों को अपनाकर चलते हैं और जीवन भर उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करते रहते हैं ।

चरित्र-चित्रण की नाटकीय प्रणाली

अपने पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए वाजपेयी जी प्रत्यक्ष प्रणाली को तो अपनाते ही हैं,साथ ही साथ नाटकीय प्रणाली द्वारा भी उनके चरित्र के अनेक रूपों को प्रकाश में लाते जाते

1- दे.गुप्तधन - पृ0 16,17,18,19
2- अधिकार का प्रश्न, पृ0 24-25
3- टूटा टी सैट - पृ0 115 से 125
4- चलते-चलते- पृ0 381
5- हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास - डा0 रणधीर राँगा- पृ0 191
6- दे.कर्मपथ - पृ0 32,44
7- वही, पृ0 32

हैं । उस समय न तो अपनी ओर से किसी प्रकार का वर्णन करते हैं न विश्लेषण और न टीका-टिप्पणी । अपितु पात्रों के चारित्रिक गुणावगुणों को उनके जीवन की विविध घटनाओं उनके कथोपकथनों, अन्य पात्रों पर पड़े प्रभावों और उनके आधार पर की गई उनकी टीका-टिप्पणी के रूप में उनके चारित्रिक गुणावगुणों को व्यक्त होने देते हैं ।

घटनाओं द्वारा चरित्र-चित्रण

वाजपेयी जी के उपन्यासों में ऐसी अनेक घटनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं जिनका समावेश उन्होंने अपने पात्रों के चरित्र-प्रकाशन के लिए किया है । कुछ घटनाएँ तो पात्रों के चारित्रिक गुणों की अभिव्यक्ति ए इतने सहज रूप में करती हैं कि बड़े-बड़े वर्णन, मनोविश्लेषणात्मक चित्रण या कथोपकथन भी उनके चारित्रिक गुणों का प्रकाशन करने के लिए असमर्थ रहते हैं । लेखक ने घटनाओं का प्रयोग पात्रों के चरित्र को विकास की ओर ले जाने के लिए तथा तात्कालिक मनोस्थिति के चित्रण के लिए किया है ।

(क) चरित्र-विकास के लिए :

उपन्यास के आरंभ में ही में वाजपेयी जी अपने प्रमुख पात्र के जीवन में कुछ-एक घटनाएँ घटित करके उन्हें उस मोड़ पर ले जाते हैं जहाँ से लेखक की अभीष्ट दिशा में उनका चरित्र-विकास किया जा सके । 'मुसकान' के आरंभ में ही विजय ललिता को डूबने से बचाता है, उसके बाद दोनों सम्पर्क में आते हैं, उसे बचाते समय विजय एलिस की ओर आकृष्ट होता है और तीनों का प्रेमी-प्रेमिकाओं के रूप में विकास होता है । 'कर्मपथ' में अजय का अपने पिता श्री के साथ झगड़ा हो जाता है, इसी घटना से लेखक ने उसके चरित्र विकास को अभीष्ट दिशा दे दी है ।

(ख) तात्क्षणिक मनोस्थिति के चित्रण के लिए -

अपने उपन्यासों में वाजपेयी जी यत्र-तत्र घटनाओं का समावेश अपने पात्रों की तात्क्षणिक मनोस्थिति के चित्रण के लिए भी करते हैं । 'निरन्तर' में परमेश्वरीलाल की भाग जानेवाली घटना में उनकी पलायनवृत्ति मुखरित हो उठी है । 'कर्मपथ' में रामनारायण का अपने पुत्र अजय को धक्का देने की घटना से मुंशी जी की तत्कालीन आवेशपूर्ण मनोदशा का उद्घाटन हो जाता है ।

कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण

वाजपेयी जी ने दो या उससे अधिक पात्रों के बीच के वार्तालाप द्वारा भी चरित्र-चित्रण करने का प्रयत्न किया है। उनके उपन्यासों में कहीं संवाद तो ऐसे हैं कि उनमें भाग लेने वाले पात्र के चरित्र के किसी न किसी अंश का उद्‌घाटन हो ही जाता है। इसके साथ-साथ उन सबके चरित्रों का तुलनात्मक परिचय भी प्राप्त हो जाता है। अपने उपन्यासों में संवाद की रचना करने का लेखक का उद्देश्य पात्र के किसी विशेष गुणावगुण के प्रकाशन का ही है।

चरित्र का तुलनात्मक परिचय -

कथोपकथन द्वारा वाजपेयी जी परिस्थिति-विशेष में अपने पात्रों के दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण तो कर ही देते हैं, साथ ही उनके उस दृष्टिकोण के प्रेरक चारित्रिक गुणावगुणों का तुलनात्मक परिचय करा देते हैं। 'अधिकार का प्रश्न' में उपेन्द्र विवाह के समय मिली वस्तुओं से असंतुष्ट है। ससुराल में जाकर वह अनेक वस्तुएँ माँगता है, तब महावीरबाबू अपनी पत्नी से कहते हैं, '---तुम देख लेना कि यह इसी तरह जीवन भर हम लोगों को दुहता रहेगा। तुम्हें मालूम नहीं, मैंने हिसाब लगा कर देखा है कि कल से आज की इस घड़ी तक इसके पास पाँच सौ रुपये से ऊपर इकट्ठे हो गये हैं। सूट का कपड़ा और झुमकी का वादा अलग।'

प्रेमा बोली -'चिन्ता मत करो मंजू के बाबू, दामाद को दिया हुआ धन कहीं जाता है? मंजु सुखी रहे, तो यह सब देना हमको कभी खल नहीं सकता।'[1]

इन संवादों में लेखक बड़ी कुशलता से पति-पत्नी के चरित्र की तुलना उपस्थित कर देता है। इसमें महाबीरबाबू के संकुचित मानस तथा व्यवहारहीनता का पता चलता है, तो प्रेमा के उदार औदार्य तथा व्यवहारकुशलता का भी विशेष परिचय मिल जाता है।

इस प्रकार पात्रों का तुलनात्मक शैली में चित्रण करने के लिए वाजपेयी जी ने कथोपकथनों से काम लिया है। कोरे विश्लेषणात्मक वर्णनों से शायद पाठक ऊब जाते, किन्तु संवादों से रोचकता निरंतर बनी रहती है।

व्यक्ति पात्र का चरित्र-चित्रण :

कभी-कभी किसी एक पात्र के गुणावगुणों को प्रकाश में लाने के लिए या उसके चरित्र

1- अधिकार का प्रश्न - पृ0 69

के विभिन्न रूपों को चित्रित करने के लिए वाजपेयी जी संवादों की रचना करते हैं। ऐसे संवादों में दो या दो से अधिक पात्र भाग लेते हैं, किन्तु चरित्र प्रकाशन तो उनमें से मात्र एक का होता है। 'राजपथ' में सुरेन्द्र दिलीप से पूछता है -'इस लक्ष्मणा को तुम कब से जानते हो दिलीप ?' तब इससे पहले कि दिलीप कुछ उत्तर दे, लक्ष्मणा कहती है -'आपको मालूम नहीं, जब मैं पैदा हुई थी, तब छठी के दिन ये मेरे घर दावत खाने आये थे ---और जब मेरा मुण्डन संस्कार हुआ था, तब इन्हें मिठाई खाने को मिली थी। इतना परिचय कम है ?'[1] इस संवाद की रचना केवल यह दिखाने के लिए ही हुई है कि लक्ष्मणा मुखरित एवं विनोदी स्वभाव की है। इसी तरह 'अधिकार का प्रश्न' में सिद्धान्तों को लेकर उपेन्द्र और उसके जीजा के बीच जो बहस होती है, इससे उसका जीजा और बुरा मान जाते हैं और अपने घर जाने के लिए स्टेशन चले जाते हैं; किन्तु ट्रेन छूट जाने से वापस आते हैं तब उपेन्द्र उनके पैर छूते हुए कहता है -'मुझे अपनी गलतियों के लिए, अब जब मैं उन्हें अनुभव कर रहा हूँ, बड़ा खेद हो रहा है।'[2] उपन्यास के आरंभ में ही उसके उग्र स्वभाव का परिचय हमें मिल जाता है। इस उद्धरण में उसका नम्र स्वभाव झलक पड़ता है।

अपने उपन्यासों में वाजपेयी जी ने इस प्रकार के संवादों का निर्माण पात्रों के चरित्र के किसी विशेष रूप के उद्घाटन के लिए ही किया है।

अन्य पात्रों द्वारा टीका टिप्पणी

पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं द्वारा उनके विशेष चारित्रिक गुणावगुणों के प्रकाशन के साथ-साथ वाजपेयी जी अन्य पात्रों पर पड़े उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं के प्रभाव का भी चित्रण करते जाते हैं। किसी पात्र के विषय में अन्य पात्रों के विचार व्यक्त करने के लिए तथा उन पर पड़े उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं के सामूहिक प्रभाव को प्रकट करने के लिए, वे उसे अन्य पात्रों के बीच चर्चा का विषय बनाकर उनसे उस पात्र पर या उसके चरित्र के किसी विशेष अंश पर टीका-टिप्पणी कराते ही रहते हैं। उस पात्र की अनुपस्थिति के कारण दूसरे पात्र उसके चरित्र या चरित्र के किसी विशेष गुणावगुण के बारे में अपना स्वतंत्र मत अभिव्यक्त कर सकते हैं।

प्रशंसा :

अपने पात्रों की प्रशंसा उनके मित्र तथा निन्दा उनके शत्रु ही न करें इसके लिए वाजपेयी जी का प्रायः यह प्रयत्न रहा है कि टीका-टिप्पणी करने वाले तटस्थ हों, किन्तु तटस्थ पात्र

1- राजपथ, पृ0 106

2- अधिकार का प्रश्न, पृ0 42

के अभाव में वे प्रशंसा उस पात्र की अनुपस्थिति में उसके किसी शत्रु से और निन्दा उसके किसी मित्र या सम्बंधी द्वारा करवाते हैं, ताकि उनके मत विश्वसनीय माने जायें । जिस पात्र की प्रशंसा उसकी अनुपस्थिति में उसके शत्रु भी करें उसके चरित्र में अवश्य ही कोई असाधारण गुण होगा और जिसकी निन्दा उसके मित्र तथा सम्बंधी तक करें, उसके चरित्र में अवश्य कोई असंगति होगी, यह मानने के लिए पाठक विवश हो जाता है ।

निष्पक्ष आलोचक :

तटस्थ मनुष्य बहुत कम मिलते हैं, तथापि 'कर्मपथ' के ठाकुरसाहब को इस रूप में निष्पक्ष कहा जा सकता है । वे अजय के मित्र हैं न शत्रु । अजय के कहने पर कि उसने बी० ए० पास किया है, वे कहते हैं -"वह तो मैं देखते ही समझ गया था कि तुम गाँव के अन्य लड़कों की तरह नहीं हो, जो झूठी शान में आकर पतलून पहने इधर-उधर फिरा करते हैं।"[1] इसमें किसी भी प्रकार का संम्बन्ध न होते हुए भी ठाकुरसाहब अजय की प्रशंसा करते हैं ।

शत्रु द्वारा प्रशंसा :

इसी प्रकार वाजपेयी जी के पात्रों के साहस, त्याग, धैर्य, मनोबल, सहृदयता, नि:स्वार्थता आदि की प्रशंसा जब उनके दुश्मन भी करते हैं, तो उनके गुणों की असाधारणता पर हमें दृढ़ विश्वास हो जाता है । 'भूदान' में हीरा देवकी के प्रति सदा शत्रु भाव रखती है, किन्तु जब वह परमेश्वरीदयाल को कहती है कि 'देवकी जिज्जी ने मुझे जिला लिया'[2] तब देवकी के चरित्र की महानता को मानना पड़ता है । इसी तरह अनेक पात्रों की प्रशंसा उनके शत्रुओं तक को करते देख उनकी सच्चरित्रता पर पाठकों का विश्वास जम जाता है ।

मित्र द्वारा निन्दा :

अपनी कृति के किसी पात्र के चारित्रिक दोषों को सिद्ध करके उसके प्रति जब वाजपेयी जी पाठकों का घृणाभाव जागृत करना चाहते हैं तब उसके बारे में वे उसके मित्रों या सम्बंधियों का मत प्रकट करते हैं । वे पात्र अपने ही लोगों की दृष्टि में गिरे हुए हैं यह बताना वे आवश्यक समझते हैं । एक बात यहाँ उल्लेखनीय है कि लेखक को अपने पात्रों के दोषों के बारे में उनके

1- कर्मपथ, पृ० 76

2- भूदान, पृ० 118

मित्रों की राय का स्वयं अपने शब्दों में ही वर्णन करना होता है, क्योंकि ऐसी सम्मितियाँ उनके हितैषियों के अपने मन में ही सुरक्षित रहती हैं, किसी अन्य पर टीका-टिप्पणी के रूप में प्रकट नहीं हो पातीं, कारण ऐसी बातें करना निन्दा करने के समान समझी जाती है और मित्र की निन्दा नहीं की जाती। 'कर्मपथ' में अजय को उसके पिता जी बुरी तरह से मारकर, घसीट कर बाहर फेंक देते हैं, तब अजय की माँ अपने पति के सम्बंध में सोचती है -'यह व्यक्ति सचमुच राक्षस है। बाहर इसका एकमात्र पुत्र बेहोश पड़ा है और यह मुझसे कह रहा है -'सो रहो।'[1] अजय की माँ को पति की निर्दयता देखकर खेद होता है और उसका रौद्र रूप देखकर भय लगता है ; किन्तु वह कुछ कह नहीं सकती।

इस प्रकार पात्रों के चरित्र के बारे में उनके मित्रों -सम्बंधियों आदि की गुप्त धारणा जान लेने पर उनके चरित्र की हीनता के बारे में हमें सन्देह नहीं होता।

डायरी द्वारा चरित्र-चित्रण

कई व्यक्ति नियमित रूप से डायरी लिखते हैं, तो कई कभी-कभी डायरी लिखा करते हैं। उनकी डायरी व्यक्तिगत नोट बुकों से लेकर आत्मकथा तक किसी भी रूप में हो सकती है। यह डायरी व्यक्ति को समझने में सहायक सिद्ध होती है। उपन्यासकार अपने पात्र के चरित्र की विशृंखलित कड़ियाँ जोड़ने के लिए उसकी डायरी पाठकों के समक्ष खोल देता है। डायरी के माध्यम से लेखक पात्रों की ऐसी मानसिक समस्याओं का आभास करा देता है, जो पात्रों को निरन्तर बेचैन किये रखती है, पर जिन्हें वह किन्हीं कारणों से दूसरों पर प्रकट नहीं कर पाता।

'पिपासा' का नायक नरेन्द्र यदि डायरी न लिखता, तो वह जो शकुन्तला का कल्लोल हास देखकर कृतार्थ होना चाहता है तथा आगरा में उसकी भी 'मुमताज' है, पर वह प्रकट रूप से उसे मिल नहीं सकता,[2] यह सब कभी प्रकाश में ही न आता। डायरी पढ़ने पर शकुन्तला नरेन्द्र का सच्चा रूप देख सकती है।

'सूनी राह' में गोपालबाबू की बिना दिनांकों की लिखी डायरी भी उनके जीवन का गुप्त रहस्य खोलती है। डायरी में लिखा उनका कौमार्य जीवन का इतिहास समाज में बड़े और

1- कर्मपथ, पृ0 44

2- दे. पिपासा, पृ0 17, 18, 19

चरित्रवान् माने जाने वाले लोगों का वास्तविक चरित्र सामने लाता है ।[1] गोपालबाबू यदि डायरी नहीं लिखते, तो उनके चरित्र का गोपनीय पक्ष कभी प्रकाश में न आता ।

पत्रों द्वारा चरित्र-चित्रण

कभी-कभी अपने पात्रों के चरित्र के किसी पक्ष-विशेष का उद्घाटन करने के लिए लेखक को पत्रात्मक शैली का अवलम्ब लेना पड़ता है । पात्र जब किसी मित्र या सम्बंधी को पत्र लिखता है, तो उसके स्वभाव का अप्रकट अंश सहसा व्यक्त हो जाता है और उसमें पात्रों द्वारा स्वीकारोक्ति के रूप में उनकी अनेक परस्पर विरोधी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का वर्णन कराके कृतिकार उनके चरित्र विकास की अनेक उलझनों को सुलझाता हुआ उन्हें पाठकों के लिए सुबोध बना देता है । वाजपेयी जी ने पत्रों द्वारा पात्रों के चरित्रोद्घाटन की शैली को भी अपनाया है । 'चलते-चलते' में वैशाली द्वारा राजेन्द्र को लिखा गया छोटा-सा पत्र पढ़कर हमें यह ज्ञात हो जाता है कि कहने को ही वह बहन है, उसका व्यवहार प्रेमिका जैसा है । 'अधिकार का प्रश्न' में श्यामबिहारी ने उपेन्द्र को जो पत्र लिखा है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि श्यामबिहारी भावनावादी है । वह स्पर्द्धा से बढ़ कर प्रगति का कोई मार्ग नहीं मानता । केवल मित्रता के नाम उसने उपेन्द्र से आगे बढ़ने की चेष्टा नहीं की ।[2] यह बात पत्र से ही जानी जा सकती है । 'पिपासा' के अंत में उपसंहार के रूप में कमलनयन के नाम शकुन्तला द्वारा लिखा गया पत्र उसकी निर्दोषता सिद्ध करता है तथा नारी स्वातंत्र्य के पक्ष में उसके विचार प्रस्तुत करता है, इससे उसके चरित्र को समझने में पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है ।

स्वप्न और दिवास्वप्न

वाजपेयी जी ने कहीं-कहीं अपने पात्रों के स्वप्नों और दिवास्वप्नों द्वारा उनके अवचेतन मन में गहरी धंसी हुई असामाजिक वासनाओं को और उन द्वारा उत्पन्न आंतरिक तनावों को, जो उनकी व्यक्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं को गुप्त रूप से प्रेरित करते हैं, प्रकाश में लाकर उनके चरित्र विकास में पड़ी अनेक गांठों को खोलने का प्रयत्न किया है ।[3] फ्रायडवादी

1- अधिकार का प्रश्न, पृ0 59

2- दे सूनीराह, पृ0 109

3- Fielding. 'Self-Mastery through Psycho-analysis', P.49: 'Dreams often reflect charges in our attitude towards life in general & persons and things in particular, as well as our innermost desires and secret cravings-unconscious.

मनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि स्वप्नों और दिवास्वप्नों में मनुष्य प्राय: अपनी चेतन या अचेतन आकांक्षाओं को तृप्त किया करता है[1] अत: किसी व्यक्ति के स्वप्न की उचित व्याख्या द्वारा उसके चरित्र के अव्यक्त अंश तक पहुँचा जा सकता है। लोकापवाद के डर से जब कोई वासना व्यक्त न होकर चेतन मन से निकल कर अचेतन मानस में धँस जाती है, तो वह बारम्बार स्वप्नों के रूप में व्यक्त हुआ करती है। यदि इस रूप में प्रकट नहीं हो सकती, तो प्रतीकों के सहारे रूप बदलकर प्रकट हुआ करती है।

'एक स्वर आँसू का' में अरुण के लिए आरती सुलभ नहीं। परन्तु वह सिनेमा देखने जाता है वहाँ आरती दो सखियों के साथ मिल जाती है। उस रात उसे बहुत मीठी नींद आई और मधुर स्वप्न भी आया। जिसमें वह किसी प्रकार के बंधन के बिना आरती के साथ विहार करने लगा। दोनों सरिता में स्नान करते-करते एक दूसरे पर पानी उछालते हैं, फिर जब इससे भी तृप्ति न हुई, तो एक दूसरे को कुछ और गहराई में ले गया। उसके बाद झरने के नीचे 'दोनों खूब नहाते हैं। बदन थरथराता है। कँपकँपी उत्पन्न होती है। फलत: दोनों एक दूसरे से लिपट जाते हैं।'[2] इस प्रकार आरती के साथ घूमने-फिरने की तथा उसे आलिंगन करने की उसकी इच्छा की स्वप्न में पूर्ति होती है। 'एक प्रश्न' में कमलेश प्रबोधबाबू के यहाँ जाता है, तो सोचता है 'कोई-कोई स्वप्न इतना प्यारा लगता है कि जान पड़ता है अब स्वर्ग जाने की आवश्यकता नहीं रह गई है। इसके साथ ही पहले उसके जीवन में जो स्वर्ग आ चुके हैं, उनके ख्यालों में वह खो जाता है।[3] दिवास्वप्न के माध्यम से सुंदर ढंग से यह प्रस्तुत किया गया है। अपनी मृत पत्नी के प्रति उसके हृदय में असीम स्नेह था, इस बात की प्रतीति इस दिवास्वप्न से होती है।

इस प्रकार वाजपेयी जी स्वप्न और दिवास्वप्नों के द्वारा पात्रों के चरित्र विकास में पड़ गई ग्रंथियों को ही खोलने का प्रयत्न नहीं करते वरन् उनके सहारे अन्य सम्बंधित पात्रों के चरित्र विकास को भी गति देते हैं।

गीत

अपने उपन्यासों में कुछ स्थलों पर वाजपेयी जी ने गीतों द्वारा भी पात्रों की तात्कालिक मनोव्यथा को अभिव्यंजित किया है। गाने का या लिखने का अवसर प्राप्त होने पर

---

1. ~~I bid. P. 37~~. Fielding, Self-Mastery through Psycho-analysis, P. 37
   "The dream is always the fulfilment of a wish or craving of the unconscious".
2. एक स्वर आँसू का - पृ0 107
3. एक प्रश्न, पृ0 33

पात्र अपनी मनोदशा के अनुकूल ही कोई गीत गाता या लिखता है । ऐसा करने से जैसे उसकी व्यथा को बाहर निकलने का रास्ता मिल रहा हो और उसे जैसे शांति और संतोष प्राप्त हो रहा हो ।

'विश्वास का बल' में राजीव के नये रिकार्ड की शब्दावली 'भूलकर मेरी याद न करना'[1] में उसके मनोभाव ही व्यक्त हो गये हैं । उस गीत को सुनकर वन्दना रो पड़ती है । इस तरह यह गीत उनकी मनोव्यथा का चित्रण करता है । वंदना, राजीव के गीत के साथ तादात्म्य का अनुभव करती है । इसी प्रकार 'गोमती के तट पर' में वसंत द्वारा लिखी गई कविता भी व्यक्तिगत आधार रखती है । अपनी तात्कालिक मनोदशा को कवि ने अपनी कविता द्वारा अभिव्यंजित किया है ।

"क्यों गाऊँ ?
क्यों जी की जलन मिटाऊँ ?
क्यों न जलूँ तिल-तिल जीवन-भर
पल-पल जलता जाऊँ ।"[2]

इस गीत में कवि वसंत का हृदय ही बोल रहा है । कला के प्रति उसके हृदय में जो प्रेम है, उसके फलस्वरूप उत्पन्न पीड़ा को उसने इस कविता द्वारा अभिव्यक्त किया है ।

इस प्रकार वाजपेयी जी ने गीत से चरित्रोद्घाटन करने का प्रयत्न किया है ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अपने उपन्यासों के पात्रों के चरित्र-विश्लेषण में चरित्र-चित्रण की अनेक पद्धतियों एवं विधियों का प्रयोग किया है, जिससे उनके पात्रों का चरित्र-चित्रण वैविध्यपूर्ण हो गया है । आगे हम वाजपेयी जी के उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का चरित्र-विवेचन कर लेना समीचीन समझते हैं ।

वाजपेयी जी के उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का चरित्र-विवेचन

वाजपेयी जी के उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का चरित्र विवेचन करने से पूर्व सुविधा की दृष्टि से उनके चरित्रों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर लेते हैं । (1) नारी पात्र और (2) पुरुष पात्र । प्रथम यहाँ नारी पात्रों का चरित्र विवेचन प्रस्तुत है -

---

1- विश्वास का बल, पृ0 231-232

2- गोमती के तट पर, पृ0 255

नारी पात्र :

वाजपेयी जी के प्रारंभिक उपन्यासों के नारी पात्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लेखक की अनुभूति एक ओर काम करती रही है और दूसरी ओर उसकी सजगता भी सक्रिय रही है। समाज के किसी भी चरित्र का चित्रण यथावत् प्रस्तुत करना लेखक के लिए आवश्यक नहीं। वह अपनी आवश्यकतानुसार उसमें काट-छाँट करता है। समाज के चरित्र का चित्रांकन करने के साथ-साथ बीच-बीच में अपनी रुचि के अनुकूल कुछ अनोखापन भी लाने का वह प्रयत्न करता है। यह अनोखापन हमेशा पाठकों की रुचि के अनुसार ही हो, ऐसा संभव नहीं होता, परन्तु वाजपेयी जी के स्त्री पात्र इस दोष से सर्वथा मुक्त है। उनके उपन्यासों के प्रमुख नारी पात्रों की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि अपने आकर्षक व्यक्तित्व की छाप वे चिरकाल पर्यन्त छोड़ जाते हैं। उनके प्रारंभिक उपन्यास- 'प्रेमपथ' और 'अनाथ पत्नी' - के नारी पात्रों की रचना में स्वाभाविकता कम और नवोदित लेखक के जागरूक कौशल का आधिक्य है ; किन्तु 'पतिता की साधना' तक आते-आते वे अपने पाठकों को आकर्षित कर लेते हैं।

'निमंत्रण' के नायक गिरधारी की पत्नी होने के कारण रेणु को प्रस्तुत उपन्यास की नायिका माना जाना चाहिए ; किन्तु पूरे उपन्यास में रेणु का चरित्र उभर नहीं पाया है। इतना ही नहीं, मालती के चरित्र के सामने उसका चरित्र निस्तेज-सा लगता है। अन्य उपन्यासों के प्रमुख नारी पात्रों की भाँति ही मालती का भी मांसलता युक्त चित्रण लेखक ने किया है। 'वाजपेयी जी की प्रत्येक रचना में एक नवयौवना अपने -उच्छृंखल रूप व्यापार का प्रदर्शन करती-सी दिखाई पड़ती है, किन्तु उसे प्राय: अपने समर्पण में सफलता नहीं मिलती। उसके इस चाहम का वातावरण सारे कथानक को छा लेता है।'[1] 'निमंत्रण' में ऐसी नारी मालती है। वह बंधन युक्त वैवाहिक जीवन से दूर रहना चाहती है। उसमें यौवन की मादकता है, बंधन रहित प्रेम विहार में ही उसका विश्वास है। सम्पूर्ण उपन्यास में उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली रहा है। उसकी वाणी में संगीत का माधुर्य है और बातों में चापल्य एवं गांभीर्य। समाज-सेवा में उसकी दृढ़ आस्था है। इसीलिए तो खद्दर के कपड़े पहन कर वह समाज सेवा के लिए तैयार हो जाती है। वह अपना सर्वस्व किसी के प्रति समर्पित करने के लिए उद्यत रहती है, किन्तु उसको कोई भी पात्र उचित नहीं लगता। गिरधारी के प्रति वह आकर्षित होती है ; परन्तु प्रारंभ में वह उसका समर्पण स्वीकार नहीं करता। अपने आप पर केवल निजी अधिकार ही उसे मान्य है। यह उसके उत्कट वैयक्तिक स्वातंत्र्य भाव का परिणाम है। यह उस उसके अंतर में अभाव की

1- हिन्दी कथासाहित्य- गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ0 160

जो आग प्रज्वलित है, उसका शमन करने के लिए समाज-सेवा भी उसके लिए सहायक सिद्ध नहीं होती । 'निमंत्रण' का उद्देश्य मालती के चरित्र में अभिव्यक्त हुआ है, जिसमें समर्पण की सनातन भावना जागृत रहती है । वह शर्मा से कहती है - ऐसी बात है तो मैं जीवन भर के लिए 'निमंत्रण' देती हूँ । आपको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं होगी ।'[1] परन्तु शर्मा को उसका यह निमंत्रण स्वीकार्य नहीं है ।

वह स्वाभिमानी नारी है । घूमने जाने के उसके प्रस्ताव को शर्मा जी अस्वीकार करते हैं, तो उसे अपमान-सा लगता है और वह क्रोधावेश में शर्मा से कह देती है -'आप एक सुसंस्कृत नारी का सम्मान करना तो दूर, उसके साथ बैठने और उससे बात करने योग्य भी नहीं हैं । आप असभ्य और कायर हैं । ऐसा पुरुष कभी नेता नहीं हो सकता । ऐसे पुरुष को सेवा के किसी जिम्मेदार पद पर रहने का अधिकार नहीं है । मैं जाती हूँ और अब आपके पास कभी नहीं आऊँगी ।'[2] वस्तुत: गुस्से में बोले गये ये शब्द गिरधारी के चरित्र को उद्घाटित करने में सहायक नहीं होते । शर्मा के पास कभी नहीं जाने का कहने पर भी वह बाद में जाती है, यही उसकी सबसे बड़ी निर्बलता है । अंत में कहा जा सकता है कि उसके चरित्र-चित्रण में सजीवता पाई जाती है ।

वाजपेयी जी के बहुचर्चित उपन्यास 'चलते-चलते' के बहुसंख्य नारी पात्रों में उसकी नायिका-राजेन्द्र की छोटी भाभी- ही कुछ स्मरणीय पात्र बन सकी है । उसका सरल स्वभाव उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है । उसके स्वभाव के सम्बंध में चंदिया के ये शब्द उल्लेखनीय हैं -' स्वभाव की वह बड़ी सीधी है । घमण्ड तो जैसे रत्ती भर भी नहीं है ।'[3] सम्पूर्ण उपन्यास में उसके चरित्र का यही रूप प्राप्त होता है । उसका सौंपा हुआ कार्य करते-करते राजेन् को भोजन करने का भी ध्यान न नहीं रहता, तब उसे दु:ख होता है और अपनी भूल स्वीकार करती हुई वह उससे क्षमायाचना करती है ।[4] क्षमाप्रार्थना के उसके इस कथन में क्षमा नहीं, अपितु नीतिमत्ता है । इस तरह बात करना नम्रता का ही द्योतक है । उसके इस गुण के साथ-साथ उसमें निहित चातुर्य की झलक भी उपन्यास में यत्र-तत्र मिल जाती है । दूसरों से काम ले लेने की उसकी चतुरता से प्रभावित होकर राजेन की माँ कहती है -'देखने में अभी बिलकुल नन्हीं सी बतिया है । लेकिन काम लेने में कितनी चतुर है ।'[5] अपने इस चातुर्य का

1- निमंत्रण, पृ0 15
2- वही, पृ0 37
3- चलते-चलते, पृ0 72
4- वही, पृ0 19
5- वही, पृ0 20

उपयोग वह केवल राजेन्द्र के आगे ही नहीं करती, अपितु अपने पति के साथ भी उसका चातुर्य - पूर्ण व्यवहार रहता है । भगवान के प्रति अनास्था प्रकट करते हुए बड़ी भाभी जब एक कोढ़ी के असहाय बच्चे की ओर से मुँह मोड़ लेती है और कहती है कि भगवान की ही प्रेरणा से कभी-कभी आदमी भूखा भी रह जाता है, तब छोटी भाभी कहती है - 'बुरा न मानियेगा जीजी, मेरे भगवान ऐसे पत्थर के नहीं बने, जो पहले तो मनुष्य को सहर्ष जन्म दें और फिर उसे दो टुकड़ा रोटी के लिए तरसा-तरसा कर मार डालें । ऐसे भगवान की कल्पना आप ही कर सकती हैं ।'[1] उसके इस कथन में ईश्वर के प्रति अटूट आस्था प्रकट होती है । प्रतिकूल परिस्थितियों में भी भगवान के प्रति उसकी आस्था बनी रहती है । संगम-स्नान के पश्चात् कोढ़ी के उस बच्चे को पूरे दिन में केवल तीन ही पैसे मिले थे और अधिक पैसे नहीं मिलने के कारण वह कहता है कि बाप मारेगा, तब बड़ी भाभी फुटकर पैसे तो है नहीं कहके तांगे पर आ जाती है, तब बड़ी मुश्किल से नोट भुना कर व छोटी भाभी आठ आने पैसे उसे देती है ।[2] इस प्रसंग में उसके हृदय में निहित दया के अतिरिक्त उसकी मानवता पर भी प्रकाश पड़ता है । इस उपन्यास में उसका मानसिक संघर्ष, संवेदनशीलता तथा क्रांतिकारिता सभी मार्मिक है । वह वर्गीय नहीं, अपितु व्यक्तिपात्र है । राजेन्द्र की स्वच्छंदी प्रकृति के कारण उसे स्वानुकूल बनाने की उसकी सामर्थ्य नहीं है, तथापि अंत में वह पचास हजार रुपया उसके नाम कर देती है । यह राजेन्द्र के प्रति उसके प्रेम की अनन्यता की पराकाष्ठा है ।सम्पूर्ण उपन्यास में कृतिकार छोटी भाभी के प्रारंभिक जीवन के सम्बंध में मौन रहा है, अतएव उसके जीवन के संस्कारों तथा मूल प्रेरणाओं को स्पष्टता से नहीं समझा जा सकता । वस्तुत: 'आत्मकथात्मक उपन्यासों के लिए- जिनमें आत्म-कथा-वक्ता नायक भी हो- दूसरे पात्रों के चरित्र को उनके जीवन के प्रारंभिक संस्कारों तक ले जाना वैसे ही कठिन होता है ; क्योंकि औपन्यासिक रंगमंच पर सदैव नायक रहता है - और बहुसंख्य पात्रों को लेकर तो यह और भी कठिन हो जाता है ।'[3] 'चलते-चलते' में भी यही हुआ है । इसका नायक राजेन्द्र आत्मकथा कहता है और पात्रों का ऐसा मेला लगा हुआ है कि पात्रों के प्रारंभिक संस्कारों तक जाना तो ठीक, पात्र- छोटी भाभी- का नामोल्लेख भी संपूर्ण उपन्यास में कहीं भी नहीं आता । प्रारंभ से अंत तक नायक ही उपन्यास में छा जाता है, अत: विभिन्न पात्रों के जीवन के कुछ पक्ष ही सामने आ सके हैं ।

1- चलते-चलते, पृ0 111

2- वही, पृ0 108

3- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास की शिल्पविधि- डा0 सत्यपाल चुघ, पृ0 165

'विश्वास का बल' के नायक राजीव की पत्नी ~~[illegible]~~ होने के कारण शास्त्रीय दृष्टि से रमा को ही इस उपन्यास की नायिका माना जाना चाहिए । वह आधुनिक शिक्षिता नारी का प्रतिरूप है । बी० ए० में पढ़ती है, अत: अध्ययनशीला है । मुखरित स्वभाव की होने के साथ-साथ चिन्तनशील भी है । वह चाहती है कि जीजा जी की भेंट लौटा दे, उन्हें अपने यहाँ आने के लिए ना कह दे, किन्तु ऐसा कर नहीं सकती ; क्योंकि उनके प्रति उसके हृदय में गहरा प्रेम है । उसका यह प्रेम उसकी अचेतनावस्था में प्रकट हो जाता है । अत्यधिक संवेदनशील होने के कारण दो बार वह आत्महत्या का प्रयत्न करती है । प्रथम बार गंगा में डूबकर मर जाने के प्रयास में असफलता प्राप्त होने के बाद अपने भाई मुरारी के मुँह से सुनने पर कि बिहारीबाबू की मृत्यु का कारण वही है, वह दूसरी बार विषपान करके अपने जीवन का अन्त ला देना चाहती है ; किन्तु लक्ष्मी दीदी के अचानक आ जाने से साफल्य प्राप्त नहीं होता । इस तरह बार-बार आत्महत्या का प्रयत्न करना मानसिक निर्बलता को ही सूचित करता है।इसी मानसिक निर्बलता के कारण वह संदेहशील स्वभाव की बन जाती है । परिणामस्वरूप अपनी दीदी की मृत्यु का कारण वह अपने जीजा त्रिवेणीबाबू ही को समझती है । परन्तु वास्तव में रमा के कारण ही लक्ष्मी की मृत्यु होती है । त्रिवेणी और रमा के बीच चल रहे प्रेम का पता यदि उसे न चलता, पति द्वारा उसका अपमान तथा उपेक्षा न की गई होती, रमा के विवाहोपरांत मानसिक उद्विग्नता के कारण त्रिवेणी उसे न फटकारता, इसकी प्रतिक्रियास्वरूप वह बीमार न पड़ती, तो इतनी जल्दी घुल-घुल कर वह कभी न मरती । रमा में भी नारी सहज ईर्ष्या है । असहिष्णु स्वभाव के कारण वंदना के साथ अपने पति का किसी भी प्रकार का सम्बंध उसे स्वीकार्य नहीं । खानपान आदि विषयों में वह स्वच्छंद प्रकृति की है । कभी उसके कमरे से हड्डी का टुकड़ा निकल आता है, तो कभी अण्डे का छिलका- कभी मछली के काँटे, कभी बोटी ।[1] इससे पता चलता है कि वह सामिषाहारी भी है । स्वच्छंद प्रकृति के कारण ही विवाहिता नारी होने पर भी वह पर-पुरुष से प्रेम करती है । उसके ऐसे स्वभाव के फलस्वरूप ही उसके दाम्पत्य-जीवन में दु:ख व्याप्त हो जाता है । अंततोगत्वा अपनी परिस्थितियों से ऊबकर रात्रि के सन्नाटे में वह अपना घर छोड़कर चली जाती है ; किन्तु त्रिवेणी में विवेकोदय होने के पश्चात् उसके समझाने पर वह पुन: स्नेहमयी पत्नी बन जाती है । फ्रायड की अवचेतनवादी कुण्ठा के दर्शन उसके चरित्र में होते हैं । उसका चरित्र कुण्ठाग्रस्त होने से उसका स्वभाव अस्थिर है, फलत: निर्णय शक्ति का उसमें नितान्त अभाव पाया जाता है । उसके ऐसे स्वभाव का उसके दांपत्य-जीवन पर भी न्यूनाधिक मात्रा में प्रभाव पड़ता है । वह स्पष्टवादिनी एवं निर्भीक है, परन्तु

1- विश्वास का बल, पृ० 228

आदर्शवादिनी नहीं है । पति के साथ मनमुटाव हो जाने पर गाड़ी में बैठकर वह इलाहाबाद वापस आ जाती है । राजीव के कहने पर कि 'वैसे उचित तो यही है रमा कि जैसे तुम अपने मन से यहाँ से चली जा रही हो, वैसे ही अवसर आने पर अपने मन से यहाँ लौट भी आओ । पर यदि कभी मान का प्रश्न तुम्हारे मन में उठे, तो मुझे बुलाने के लिए एक तार की आवश्यकता होगी ।'

'रमा ने इस पर कह दिया' इस जीवन में तो ऐसी आवश्यकता पड़ेगी नहीं ।''[1] उसके इस कथन में उसका आत्मविश्वास स्पष्ट झलकता है । परन्तु उससे अपने कथन का पालन हो नहीं सकता । त्रिवेणी के समझाने पर उसे आना ही पड़ता है ।

इतना सब होने पर भी वह विनोदी स्वभाव की है । व्यंग्य और कटाक्ष के आधार पर मज़ा लेना वह खूब जानती है । सुहासिनी के घर पर राजीव से रमा का प्रथम बार परिचय कराने के पश्चात् राजीव ने रमा से नमस्ते करते हुए कहा था -'आपका परिचय पाकर मेरे आत्मीय जगत् में एक संवृद्धि हुई है ।'

रमा ने प्रति -नमस्कार के उत्तर में कह दिया -'बड़ा गड़बड़ हो गया ।'

उत्तर सुनकर सुहासिनी और राजीव दोनों आश्चर्य-गंभीर हो उठे । इतने में रमा मुस्कान-माधुरी बिखेरती हुई बोली -' जो कुछ कहने के लिए मैंने सोचा था, सो तो आपने कह डाला । अब मैं क्या कहूँ ?'[2] इस छोटे से प्रसंग से उसके विनोदी स्वभाव का परिचय प्राप्त होता है । रमा का चरित्र स्थिर नहीं, अत: उसे गतिशील पात्रों के अंतर्गत रखा जाना उचित होगा । इसी गतिशीलता के कारण वह पुन: अपने पति के पास जाती है । वस्तुत: यह भारतीय सामाजिक परम्परा है जिसने वाजपेयी जी को प्रेरित किया कि वे रमा को राजीव के लिए पुन: वापस कर दें ।

इस उपन्यास के नारी पात्रों में सर्वाधिक सशक्त चरित्र वंदना का ही माना जायगा । यद्यपि वह नायिका नहीं है, तथापि उपन्यास में अपने आकर्षक व्यक्तित्व के कारण वह पाठकों पर गहरा प्रभाव छोड़ जाती है । वह महत्वाकांक्षिणी नारी है और अपनी महत्वाकांक्षा की सिद्धि के लिए राजीव को चाहने पर भी विवाह निर्देशक वसंतराम व्यास से करती है । व्यवहार कुशलता उसके चरित्र का विशेष गुण है । उसकी व्यवहारकुशलता का सुन्दर उदाहरण

1- विश्वास का बल, पृ० 228

2- वही, पृ० 105

तो तब मिलता है, जब उसके अपने पति की अनुपस्थिति में राजीव उसके घर में होता है और व्यास का सहायक चंद्रकांत अचानक वहाँ पहुँच जाता है । तब वन्दना उसे एकान्त में ले जाकर कहती है -"मुझे तुम पर पूरा विश्वास है । इसलिए किसी को यहाँ की कोई बात कभी मालूम न होने पाये ।"[1] और जब वह जाने लगता है, तो कहती है -" अच्छा यह बिसकिट का डब्बा अपने घर लेते जाना । दुलहिन से कहना- भाभी ने लल्ली के लिए दिया है ।"[2] यदि और कोई नारी अपने प्रेमी के साथ अपने पति के सहायक के हाथों पकड़ी जाती, तो उसकी बुद्धि पर पत्थर पड़ जाता, परन्तु वंदना तनिक भी नहीं घबडाती । उसे इस बात का ज्ञान है कि किस समय किस व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए । अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए मन ही मन जो व्यक्ति उसे पसन्द नहीं है, उसके साथ भी वह आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करती है ।एक बार विनोदबाबू को अपमानित करने के पश्चात् भी जब वह उसे गीतकार बना देने का प्रलोभन देता है, तो वह उसका स्वागत्-सत्कार करने में कोई कोर-कसर नहीं उठा रखती । स्पष्ट - वादिनी इतनी है कि विनोद बंधु से वह साफ शब्दों में कह देती है -"आप मेरे लिए यदि कुछ करें, तो गलती से कहीं यह न समझ लें कि मैं भी आपके लिए कुछ करूँगी । करना या न करना मेरी इच्छा पर निर्भर रहेगा । मैं जानती हूँ आप कब से मेरी कहानियों की प्रशंसा कर रहे हैं ; लेकिन मैंने तो कभी आपकी पत्रकार-कला की प्रशंसा नहीं की । आपको कदाचित् मालूम नहीं कि जो लोग जीवन को व्यवसाय मानते हैं, मैं उनमें से नहीं हूँ ।"[3] ये शब्द उसके चरित्र के विविध पक्षों को उद्घाटित करते हैं, उनमें मुख्यत: आत्मनिर्भरता, स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता है । इसके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि किसी की भी चाटुकारिता उसे कतई पसन्द नहीं । वह आदर्शवादी नहीं है ; अत: किसी भी कलाकार का दायित्व वह यथार्थ के अंकन को ही मानती है । इसीलिए राजीव से वह कहती है -"आप सामाजिक रौरव भोग का चित्रांकन क्यों नहीं करते ? आज जो एक पुरुष दूसरे को खाए जा रहा है - बेईमानी और विश्वासघात से, अहं और काटकपट से - मानवता जो मर रही है, स्पष्टरूप से उसी पर आपका ध्यान क्यों नहीं जाता ?"[4] उसके यथार्थवादी दृष्टिकोण का पता राजीव को किये गये इस सूचन से चलता है । जीवन में जो कुछ उसने अनुभव किया है, उसी का प्रतिबिम्ब उसके साहित्य-

---

1- विश्वास का बल, पृ0 262

2- वही, पृ0 263

3- वही, पृ0 216

4- वही, पृ0 165

सृजन में झलकता है । राजीव के मंतव्यानुसार वंदना की कहानियों में स्वानुभूति का चित्रण पाया जाता है, इसीलिए उसके पात्र सजीव और यथार्थ पाये जाते हैं । अपने व्यक्तिगत जीवन में भी उसे हम पूर्णरूपेण यथार्थवादी पाते हैं । वह जानती है कि आज के युग में धन की ही प्रतिष्ठा होती है, अत: धन कमाने में ही अपनी पूरी शक्ति वह लगा देती है । हिन्दी और अंग्रेजी में कहानियाँ और नाटक लिखने के अतिरिक्त फिल्मों की कहानी, संवाद तथा गीत भी वह लिख लेती है । सभी क्षेत्रों में उसे सफलता मिलती है ।

इतना सब होने पर भी, विवाहिता होने पर भी, वह पर-पुरुष से प्रेम करती है । राजीव उसकी सबसे बड़ी, एकमेव, निर्बलता है । स्वच्छन्दतावादी होने से नैतिक बंधनों को वह महत्व नहीं देती । सच्चे अर्थ में वह पत्नी नहीं, अपितु प्रेयसी है । वह कहती है - हर विवाहित नारी विवश प्यार देती है । हर विवाहित पुरुष विवश प्यार ही पाता है । निर्मल प्यार के बल वह नारी दे सकती है, जो प्रेयसी होती है ।'[1] अपने स्वच्छंद एवं अक्खड़ स्वभाव के कारण अपने पति के घर का वह त्याग करती है ; किन्तु राजीव के समझाने पर पुन: स्नेहमयी पत्नी बन जाती है ।

'टूटा टी सैट' की नायिका नीलकमल संयोगबाबू की परित्यक्ता पत्नी है । उसके पति ने उसका त्याग केवल इसीलिए किया है कि उसके चरित्र के सम्बंध में उसके मन में एक ग्रंथि बन जाती है । वस्तुत: वह बड़ी सीधी और सच्ची, छल कपट से दूर'[2] है । उसकी यह सरलता ही उसके लिए अभिशाप बन जाती है और उसे बहुत कुछ सहन करना पड़ता है । उसके परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी विषम है कि अपने कुटुम्ब के सदस्यों की उदर-पूर्ति के लिए उसे अपने शील का भी सौदा करना पड़ता है । यह सब कुछ वह अपने लिए नहीं, अपने माता-पिता आदि के लिए करती है । वह सोचती है - 'इतना कम है कि मैं सब कुछ सहन कर रही हूँ ? इसके पीछे मेरा एक उद्देश्य है, एक लक्ष्य । पाप्पा, अम्माँ और सुशीला की जीवन रक्षा- एक पारिवारिक नाते का पवित्र निर्वाह !--- मैं अपने लिए नहीं, उनके लिए जी रही हूँ ।'[3] इन विचारों में उसके चरित्र की महानता पर प्रकाश पड़ता है । जिस परिवार में उसने जन्म लिया है , उसके लिए वह अपने आपको समर्पित कर देती है । इससे मध्यवर्ग की नारी की विवशता

1- विश्वास का बल, पृ0 309

2- टूटा टी सैट, पृ0 9

3- वही, पृ0 162

का भी सच्चा चित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित होता है । विवशता के कारण वश पारिवारिक सदस्यों की जीविका के निमित्त उसे अनेक व्यक्तियों के तलवे सहलाने पड़ते हैं । क्रमश: गोखले और माहेश्वरी उसे प्रलोभन देकर उसके साथ अपनी वासना-तृप्ति चाहते हैं, पर वह अपने सतीत्व की रक्षा करके उनका अवलम्बन त्याग देती है । अपने पड़ोसी अरुण के प्रति उसके हृदय में प्रेम है, तथापि अपने पति के प्रति वह अकृतज्ञ नहीं है । संयोगबाबू की अस्वस्थता का तार पाते ही वह उनके यहाँ जाने के लिए बिना विलम्ब तैयार हो जाती है । पति के सामने जाकर बिना कुछ बोले उनके चरणों पर अपना मत्था टेक देती है । इन प्रवृत्तियों के आधार पर ही कहा जा सकता है कि वह एक पतिपरायणा नारी है । विषम परिस्थितियों के दुर्दम प्रहारों से प्रताडित विवश वह अरुण से प्रणय-सम्बंध स्थापित कर लेती है, किन्तु सानुकूल परिस्थिति उत्पन्न होते ही वह उसे कह देती है - चाची और सुरेश के जीवन-सौख्य के नाम पर अब आशा है तुम मुझे सदा के लिए भूल जाओगे ।'[1] यहाँ वह कुशल पत्नी के रूप में उपस्थित होती है । वह आस्थावादी है । वर्तमान और भविष्य को वह ईश्वराधीन मानती है । दादर स्टेशन पर ट्रेन के एक ही डिब्बे में अचानक दोनों की भेंट होने के पश्चात् अरुण के कहने पर कि ईश्वर हमारा नियन्ता नहीं है । हम स्वयं अपने नियन्ता हैं । वह कहती है- 'मैं नहीं मानती कि इन संयोगों की रचना में भगवान का कोई विधानात्मक हाथ नहीं है ।'[2] उसकी यह आस्था ही जीवन में उसके लिए सहायक सिद्ध होती है । उसके चरित्र के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्ग की नारी की विवशताओं का चित्रण प्रस्तुत किया है ।

'टूटते बन्धन' के नायक यशवन्त की पत्नी होने के नाते बेलु को ही इस उपन्यास की नायिका माना जाना चाहिए ; किन्तु मुरली का चरित्र इतना सशक्त है कि उसके आगे बेलु का चरित्र दब-सा जाता है । अत: यहाँ हम मुरली के चरित्र का ही विवेचन करना उचित समझते हैं । वह बेला की अपेक्षा अधिक स्वस्थ है । उसकी मुखछवि उतनी सुन्दर नहीं है, जितनी बेला की । गोल मुख होने के कारण वह अधिक मोहक प्रतीत नहीं होती, परन्तु बात करते समय वह उत्फुल्ल बहुत रहती है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसके यौवन सरोवर में कमल के फूल सदा खिले रहते हों । उदास होना वह जानती नहीं ।[3] नये-नये पुरुषों से सम्पर्क स्थापित करके, थोडी छूट देकर, उन्हें तडपाने में उसे मज़ा आता है । 'गुंजन' नामक एक छात्र के साथ पहले

1- टूटा टी सैट , पृ0 199

2- वही, पृ0 64

3- टूटते बन्धन, पृ0 46-47

:284:

घनिष्ठ सम्बंध स्थापित करके उसे दुतकार देने से आघात के कारण ह टी.बी. से उसकी मृत्यु हो जाती है। दुष्यन्त को भी वह जीवन भर भूल नहीं सकती। इन सब बातों से बेला परिचित है, अत: वह यशवन्त को कहती है - 'मुरली को तुम नहीं जानते। अगर उसकी परीक्षा में तुम परिपूर्ण रूप से उसके अनुकूल सिद्ध हुए, तो वह तुम्हें छोड़ेगी नहीं। मेरी क्या विसात है! वह इस विषय में किसी की परवाह न करेगी।'[1] बेलु के इन शब्दों से मुरली की स्वच्छंद प्रकृति का परिचय प्राप्त होता है। येन-केन प्रकारेण अपना मनचाहा पुरुष प्राप्त करने के लिए वह प्रयत्नशील रहती है। उसका चरित्र किशोर वयवाली नारियों को झकझोर डालने वाला है। बेला के प्रति उसकी आस्था है, इसीलिए यशवन्त के बनावटी प्रेम के रेशमी फन्दे में फँस जाने के बाद एक रात को मिलने पर यशवन्त जब उसके देह के उपभोग के लिए कहता है, तब पूर्ण इच्छा होने पर भी बात को टालती-सी वह कहती है -'लेकिन इस तरह हम दीदी के साथ विश्वासघात के अपराधी न बन जाएँगे ?'[2] परंतु यह तो केवल आडम्बर था। मुरली हृदयपूर्वक चाहती है कि उसके नाम के बिगड़े स्वरूप का उपयोग यशवन्त बोलने में करे। यशवन्त को स्वेच्छा से वह अपना शरीर तक सौंप देती है। बेला की दृष्टि से वह एक नम्बर की अवसर-वादिनी है। गर्भवती बेला को अपने पति पर सम्पूर्ण विश्वास है, पर मुरली के प्रति उसकी भावना में अब अंतर आने लगता है; अत: मुरली के यहाँ भोजनोपरांत वह सोचती है - 'मुझे जिस बात का संदेह था, वह अंत में सही निकला। अब मुरली स्वयं इनको फाँसना चाहती है। वह इनको प्रेम नहीं करती। अब तो उसके भीतर एक उद्दाम वासना ने जन्म ले लिया है। वह अवसरवादिनी है और मेरी इस दयनीय परिस्थिति से अनुचित लाभ उठाना चाहती है।'[3] बेला के इस कथन से मुरली का चरित्र उद्घाटित होता है। उसके इस सन्देह एवं अभियोग की आगे चलकर सत्य में परिणति होती है। यशवन्त और मुरली का अध: पतन होता है। परि-णामत: कुंआरी अवस्था में ही वह गर्भवती बन जाती है। अपने किये का उसे पश्चाताप होता है। उसकी ऐसी अवस्था में माँ-बाप भी उसे सहायता करना बंद कर देते हैं, तब चारपाई पर लेटे-लेटे उसे सब कुछ याद आता है -'---आज की यह गर्भावस्था अगर मेरे विधिवत् वैवाहिक जीवन में होती, तो स्वामी के अतिरिक्त सास-ननद का असीम प्यार मुझे मिलता! हाय, मैंने यह क्या कर डाला! कल के लिए राशन नहीं है। आज मैं रोटी खा भी लूँ, मगर कल

1- टूटते बन्धन, पृ0 72

2- वही, पृ0 108

3- वही, पृ0 83

क्या होगा ?'[1] इससे स्पष्ट पता चलता है कि वह भी विधिवत् विवाह करके सुखी दाम्पत्य-जीवन की अनुभूति चाहती है ; किन्तु उसके दुष्कर्मों ने सब असंभव-सा बना दिया है । परन्तु 'वह बहुत 'बोल्ड' और 'स्टेट फारवर्ड' लड़की है ।'[2] अत: वह हतोत्साह नहीं होती । ऐसी अवस्था में भी वह न घबराती है, न रोती है । संतान-निग्रह की कुछ विधाएँ ज्ञात होने पर भी वह ऐसा कोई प्रयत्न तक नहीं करती । साहस की प्रतिमा वह अकेली कानपुर जाकर एम० ए० करना चाहती है, ताकि अपने दुष्कर्म का किसी को पता न चले । कानपुर में बुद्धिरंजनबाबू की भतीजी अष्टमी को पढ़ाने वह जाती है, वहाँ सबको अपने व्यक्तित्व से प्रभावित करती है ।उसके सम्बन्ध में हरिप्रिया बुद्धिबाबू को सच ही कहती है -'आजकल जो लड़की अष्टमी को पढ़ाने आती है, वह किसी संभ्रात परिवार की है । उसका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है और मनोहर है ।'[3] हरिप्रिया की दोनों बातें तथ्यपूर्ण हैं । वह संभ्रात परिवार की है, किन्तु स्वयं संभ्रात नारी नहीं है । उसका वाह्य व्यक्तित्व प्रभावशाली और मनोहर है, यह बात भी सच है ; किन्तु उसका आंतरिक व्यक्तित्व पाठकों पर अच्छा प्रभाव नहीं डालता । विवाहित यशवन्त के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने से पाठकों की दृष्टि में वह गिर जाती है । उपन्यास के पूर्वार्द्ध में उसे किसी भी रूप में पाकर सब अपने को सद्भागी समझते हैं । उसके चरित्र पर बेला के कीचड़ उछालने पर यशवन्त उसे मुरली का साथ छोड़ देने के लिए कहता है, तब बेला कहती है- '---- सखी के रूप में उसे पाकर कौन अपने को भाग्यशाली नहीं मानेगा ?'[4] वस्तुत: ऐसा मानने वाली बेला को मुरली पर विश्वास नहीं है, यह पीछे देखा जा चुका है । केवल नारी पात्रों की ही बात नहीं, पुरुष भी उसका प्रेम प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है ।'ऐसी नारी का प्यार मिले तो आदमी उसके आधार पर अमर न सही, दीर्घजीवी तो हो ही सकता है ।'[5] लेखक के इस कथन में तथ्य हो या न हो, यह अलग बात है ; किन्तु इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि उसका प्रेम प्राप्त करने वाले पात्र के जीवन पर न्यूनाधिक मात्रा में उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता । उसके जीवन में कितनी ही ऐसी बातें प्राप्त होती हैं जो सामंजस्यपूर्ण हैं -' उसकी हर बात में भावना और विवेक दोनों का रस मिलता है । वह चोट भी करती है

टूटते०ब

1- टूटते बन्धन, पृ० 111
2- वही, पृ० 58
3- वही, पृ० 102
4- वही, पृ० 73
5- वही, पृ० 47

तो प्यार ध करती हुई । प्यार की बात करती है, तो सीमाओं का संकेत देती हुई । जैसे सेवा करने में उसे संकोच नहीं होता, वैसे आग्रह को आदेशात्मक रूप देने में वह झिझकती नहीं ।'[1] परन्तु मुरली के विषय में यशवन्त का इस प्रकार सोचना केवल भ्रामक प्रतीत होता है ; क्योंकि प्यार की बातें करते समय न वह सीमाओं का संकेत देती है, न तो मर्यादा-पालन करती है । इतना ही नहीं, सखी के पति को देह तक, बिना किसी प्रकार के विलम्ब के, उपभोग के लिए सौंप देती है । सखी के साथ विश्वासघात करने से भी वह नहीं हिचकती । उसका यह पर-पुरुष प्रेम ही उसके जीवन में संघर्ष को जन्म देता है और उसके जीवन में शान्ति का अभाव दिखाई देता है ।

'राजपथ' की नायिका लक्षाणा क्लांत दिलीप की प्रेरणा है । दिलीप से बाढ़-ग्रस्त पीड़ितों की सहायता के लिए पाये गये पाँच हजार रुपये की अटैची बदल जाती है और वह रोने लगता है, तब उसके आँसू पोंछती हुई कुछ लाड़ के साथ वह कहती है - भगवान ने रोने-धोने का काम तो हम लोगों को सौंप रखा है । तुम उसमें भी हस्तक्षेप करने लगे ! छि, यह बात हमें पसन्द नहीं । ---साहसी,वीर और पुरुषार्थी लोग तो उस समय भी नहीं रोते,जब रण में उनके पक्ष की हार हो जाती है । तुमने तो ऐसा कोई काम नहीं किया जिसके लिए तुमको रोने का अवसर हो !'[2] इस तरह बोल-बोलकर वह दिलीप को प्रोत्साहित करती है । उसके कथन से नारी जाति की विवशता पर प्रकाश डाला गया है । विवश नारी रोने के अतिरिक्त और कुछ कर नहीं सकती ; किन्तु पुरुष को किसी भी परिस्थिति में रोना नहीं चाहिए, ऐसा उसका अभिप्राय है । उसका स्वभाव विनोदी है । सुरेन्द्र दिलीप से पूछता है कि इस लक्षाणा को तुम कब से जानते हो दिलीप ? दिलीप कुछ प्रत्युत्तर नहीं देता, तब लक्षाणा प्रत्युत्तर देते हुए कहती है -'आपको मालूम नहीं, जब मैं पैदा हुई थी, तब छठी के दिन ये मेरे घर दावत खाने आये थे ।'[3] इतने उत्तर से भी उसे संतोष न हुआ, तब आगे बढ़कर कहती है - 'और जब मेरा मुण्डन-संस्कार हुआ था, तब इन्हें मिठाई खाने को मिली थी । इतना परिचय कम है ?'[4] वस्तुत: अपनी छठी के दिन कौन आता-जाता है, किसी को इस बात का पता नहीं होता, परन्तु लक्षाणा की बातों का वास्तविकता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है । अस्वाभाविक

1- टूटते बन्धन, पृ0 55
2- राजपथ, पृ0 253
3- वही, पृ0 106
4- वही, पृ0 106

बातें करके केवल विनोदपूर्ण स्वभाव का परिचय देना ही उसका अभीष्ट है । उसके सम्पर्क में एक बार भी आने वाले सभी उसके स्वभाव से परिचित हो जाते हैं । दिलीप के मुँह से उल्टी-सीधी बातें सुनकर दादी समझती है कि लक्षाणा ने इसे तंग किया होगा । दादी लक्षाणा के सम्बंध में कहती है -'वह इतनी ढीठ हो गई है कि मौका पड़ने पर छोड़ तो सकती ही नहीं किसी को। फिर चाहे वह चन्द्रलोक का राजा ही क्यों न हो ।'[1] दादी के ये शब्द उसके चरित्र को उद्घाटित करते हैं । यदि कोई पात्र उसे मिलजाता है, तो उससे ठठोली वह अवश्य करती है । नौका में प्रथम बार दिलीप से मिलने पर वह अपने इसी स्वभाव का परिचय देती है । दिलीप के प्रति उसके प्रेम में कहीं भी कलुष नहीं । वह शुद्ध सात्विक प्रेम की प्रतिभा है । यदा-कदा अपने प्रेमी पर व्यंग्यात्मक, किन्तु सुधा सिंचित छींटे भी फेंकना वह नहीं चूकती । गंगा जी में नौकाविहार के समय भाभी और दीदी को निरुत्तर पाकर दिलीप की ओर इकटक देखती हुई वह बोलती है -'सभ्यता जीवित न होती, तो भाई बनकर तृषित नयनों की साध मिटाने के लिए, यहाँ हम लोगों के बीच, अचानक कूद न पड़ते छद्मवेशी युवा सन्यासी !'[2] दिलीप की सभ्यता सम्बंधी बात के प्रत्युत्तर में लक्षाणा ने जो कुछ कहा है इसमें उसकी तार्किकता दृष्टिगोचर होती है । इस तरह लेखक का तार्किक रूप पाठकों के समक्ष आता है ।

इस उपन्यास में लक्षाणा के चरित्र को कृतिकार द्वारा नवीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है । अन्तर्मन की बात वह कभी अधरों पर आने नहीं देती । उसके चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता का गुण प्राप्त होता है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह हमारे ही समाज की पात्र हो ।पाठकों पर वह अमिट प्रभाव छोड़ जाती है ।

'विजय श्री' की हरीतिमा का चरित्र इस उपन्यास के नारी पात्रों में सर्वाधिक सशक्त एवं दीर्घकाल तक अपना प्रभाव पाठकों पर छोड़ जाने वाला है । वह शंकरलाल की कन्या है । राजनाथ के साथ विवाह होने के पश्चात्, हरीतिमा के प्रति अपने प्रेम में सफलता न मिलने के कारण बिल्वमंगल उसे चरित्रहीन सिद्ध करने की चेष्टा करता है । परिणामस्वरूप अपनी पत्नी की अपेक्षा दूसरों की बातों का अधिक विश्वास करने वाला राजनाथ उसका त्याग करता है, परन्तु सर्वथा निर्दोष होने पर भी वह अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए अपने पति से

1- राजपथ, पृ0 56

2- वही, पृ0 245

सफाई में कुछ नहीं कहती । ऐसी शिक्षित युवती को चुपचाप पति का अभियोग स्वीकार करते तथा बिना किसी प्रकार के अंतर्द्वन्द्व के घर छोड़ते देख सखेदाश्चर्य होता है । पति के घर से वह अपनी दीदी के यहाँ जाती है, वहाँ जीवनशंकर से परिचय होने के बाद शीघ्र वह उसके प्रति आकृष्ट होती है, परन्तु उसका छोटा-सा उपकार भी उसे स्वीकार्य नहीं । वह कहती है- 'उस दिन आपकी लाई हुई एनासिन की टिकियाँ मैंने ले तो लीं, किन्तु फिर उनका उपयोग नहीं किया था । मैं यह बात केवल इसलिए कह रही हूँ जिसमें आप इतना जान लें कि किसी के उपकार पर मेरी कोई आस्था नहीं है । जब जरूरत पड़े, तो आप वे टिकियाँ मुझसे ले सकते हैं - या आप कहें तो अभी मैं आपको दे जाऊँ ।'[1] परित्यक्ता होने के कारण उसके मन में लोगों की ऐसी ~~धवल~~ भावनाओं के प्रति एक अनास्था-सी पैदा हो जाती है ; क्योंकि पति द्वारा उसकी भावनाओं का कोई मूल्यांकन नहीं किया गया । उसने सब कुछ समर्पित कर दिया, तथापि उसे ठुकरा दिया गया । ऐसी अवस्था में अन्य पुरुषों की भावनाओं का आदर वह क्यों करे ? वस्तुत: यह तो उसकी क्षणिक प्रतिक्रिया है, जो अनिच्छा होने पर भी प्रकट हो जाती है । परीक्षा के दिनों में शान्तिपूर्वक अध्ययन किया जाय, इस हेतु वह अपनी सखी वल्लरी के यहाँ जाती तो है, पर उसके व्यंग्य बाणों से वह पीड़ित होकर ~~विवशतावश~~ उसका घर छोड़कर अपने जीजा जी के यहाँ जाने के लिए तैयार हो जाती है, तब वल्लरी क्षमा प्रार्थना करती है । उस समय हरीतिमा कहती है -'मैंने आज तक कभी कोई अपराध नहीं किया और मेरा दावा है कि मैंने कभी किसी से क्षमा भी नहीं माँगी । ऐसी दशा में अगर मैं तुम्हें भी क्षमा न करूँ, तो मैं समझती हूँ, इससे बढ़कर मैं अपनी हार्दिकता का और क्या परिचय दूँगी ? कुछ भी हो, संयम मेरे जीवन की पहली शर्त है । भाषा का उतना नहीं, जितना चरित्र का ; उदारता का भी उतना नहीं, जितना अटूट दृढ़ता और धैर्य का ।'[2] उसके ये शब्द उसके चरित्र के उज्ज्वल पक्ष को प्रकाशित करते हैं । इन्हीं शब्दों से उसके औदार्य तथा सहृदयता की भी प्रतीति होती है । उसे अपने आप पर पूर्ण विश्वास है । उचित चिकित्सा के अभाव में माँ की मृत्यु होने के कारण राजनाथ अस्वस्थ होता है, तब किसी भी प्रकार की चिकित्सा यह मानकर नहीं करवाता कि 'जब हम होनहार को नहीं टाल सकते, तब चिकित्सा के इन प्रयत्नों का मूल्य क्या है ?' किन्तु पति के इस भाग्यवाद को ललकारते हुए वह कहती है -'लेकिन यह कैसे मान लिया जाय कि होनहार मृत्यु है ? होनहार का निर्माण तो हम स्वयं करते हैं । अपने क्रिया-कलाप से हम ऐसे

1- विजय श्री, पृ0 34

2- वही, पृ0 101

संयोगों को जन्म देते हैं, जो हमारे जीवन के मोड़ तथा निर्माण का आधार बन जाते है ।"[1] उसके कथन से यह जाना जा सकता है कि भविष्य पर उसे पूर्ण आस्था है । अपने पति की भाँति भाग्यवाद के नाम पर वह अंधश्रद्धालु तथा निराशावादी नहीं है । पति से दूर रहने पर भी उसका उसे सदैव ध्यान रहता है । उसकी निरंतर उपेक्षा के कारण वह अपना स्वास्थ्य खो बैठती है । उस समय जीवनशंकर द्वारा राजनाथ को लिखा गया पत्र उसके चरित्र पर विशेष प्रकाश डालता है । वह लिखता है -' मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यह नारी भौतिक दृष्टि से एक शरीर और मन, व्यक्ति और प्राणी है, तो आभ्यांतरिक दृष्टि से वन्दना । अतिशय सेवा-परायणा, कर्तव्यनिष्ठ और अंतर्मुखी ।---- यहाँ मैं केवल एक बात कहना चाहता हूँ कि वह मानसिक और शारीरिक रूप से श्रम बहुत करती है और सहन शक्ति में अद्वितीय है । शील, सौजन्य में सर्वथा अप्रतिम ; उसकी तुलना नहीं हो सकती ।"[2] यहाँ लेखक ने पत्र द्वारा हरीतिमा का चरित्रोद्घाटन किया है । इसी के कारण उसके कितने ही चारित्रिक गुण पाठक के ध्यान में आते हैं । इसी पत्र से प्रभावित होकर विपथगामी राजनाथ, जिसे अपनी पत्नी के पावन चरित्र पर सन्देह था, उसे अपना लेता है ।

वाजपेयी जी के अन्य उपन्यासों की नायिकाएँ परित्यक्ता होने पर अपना सब कुछ पर-पुरुष को सौंप देती है, परन्तु हरीतिमा ऐसा न करके अपने संयमशील स्वभाव का परिचय देती है । यहाँ तक कि अन्य पुरुष द्वारा दी गई कोई वस्तु भी उसे स्वीकार्य नहीं । उसके चरित्र की महानता का परिचय तो हमें तब प्राप्त होता है जब वह उसको चरित्रहीन सिद्ध करने का प्रयत्न करने वाले, अपने दाम्पत्य-जीवन के स्वर्ग को विषाक्त कर देने वाले, बिल्वमंगल की पत्नी को दस रुपये की सहायता करती है ।[3] हरीतिमा के चरित्र से ऐसा प्रतीत होता है जैसे 'विश्वास का बल' की रमा पुन: एक बार उपस्थित हुई हो ।

'वासना से परे' उपन्यास की नर्स वायलेट भले ही नायिका नहीं है, किन्तु नायक की प्रेयसी अवश्य है और नायक मनोहर की पत्नी अभिलाषा का चरित्र नहीं उभर पाने से, उसकी तुलना में वायलेट का चरित्र अधिक सशक्त होने से उसका चरित्र-विवेचन करना हम आवश्यक समझते हैं ।

1- विजय श्री, पृ0 39

2- वही, पृ0 78-79

3- विजय श्री पृ0 198

~~समझते हैं~~ ।

नर्सिंग होम में सेवा देते समय ही वह सर्वप्रथम मनोहर के परिचय में आती है । मनोहर उसके प्रति आकृष्ट होता है और दोनों भागकर बम्बई में जाकर होटल खोलने का निश्चय करते हैं । तदनुसार मनोहर पत्नी के गहने लेकर विवाह के दूसरे ही दिन भागता है ; किन्तु वह जानता है कि 'वायलेट की लालसा में कोरा भोग (लिप्सा) है, विलास का लास्य है, उसकी केलि-क्रीडा है । उसके व्यवहार में कपट है ।'[1] अत: स्टेशन से वह घर वापस लौटता है । वह जिसे पकड़ती है, उसे चूसकर फेंक देती है । यह सब अनुचित है, ऐसा जानते हुए भी केवल पैसा प्राप्त करने के लिए वह सब कुछ करती है । अपने आपसे लड़ती हुई वह सोचती है -'मेरा प्रेम एकनिष्ठ कभी नहीं रहा । मैंने सदा एक को उठाया और दूसरे को गिराया है । वचन एक को दिया और अवसर आने पर अपनाया दूसरे को । हालांकि ऐसा मैंने मजबुरन्, विवश होकर, किया है ; क्योंकि पैसे के बिना जीवन चलता नहीं और धोखा दिये बिना पैसा मिलता नहीं।[2] उसके इस अंतर्द्वन्द्व से पता चलता है कि वह यथार्थवादी है । इससे यह भी स्पष्टरूप से जाना जा सकता है कि वह एक नम्बर की अवसरवादिनी है । स्टेशन पर मनोहर के नहीं आने पर भी वह ट्रेन में बैठ जाती है, वहाँ राजीवलोचन पन्त से परिचय होने पर धन कमाने का यह अवसर भी वह हाथ से जाने देना नहीं चाहती । बिना किसी प्रकार के संकोच के वह अपना शरीर भी उसे भोग के लिए सौंप देती है ।'वायलेट तबियत की स्पष्ट और तेजस्विनी थी । व्यावहारिक इतनी कि चाहे जितना उदास मन हो, मन को गुदगुदाने वाली बात कुछ ऐसे अनोखे ढंग से कहती थी कि जीवन में किसी अभाव की कल्पना करना मुश्किल हो जाता था । सब प्रकार से वह एक चलती हुई गाड़ी थी ।'[3] उसके चरित्र को भली प्रकार समझने में लेखक द्वारा दी गई यह - टिप्पणी सहायक होती है । वह क्रिश्चियन है, फिर भी सभी भगवान के प्रति उसके हृदय में समान प्रेम है । वह कहती है - क्रिश्चियन होने के नाते हमारी जातीयता का सबसे बड़ा देवता- आर चे प्रभु ईसु ख्रष्ट हैं, फिर भी मैं भगवान् राम, कृष्ण और बुद्ध के प्रति अटूट श्रद्धा रखती हूँ ।'[4] उसके चरित्र एवं विचारों के माध्यम से कृतिकार ने सर्व देवों के प्रति समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया है । अपने देश के प्रति उसे असीम प्रेम है । भारत की भूमि को वह अपनी

1- वासना से परे, पृ0 24

2- वही, पृ0 46

3- वही, पृ0 56-57

4- वही, पृ0 162

माता से भी अधिक पवित्र मानती है । वह मानती है कि इस देश की जनता के साथ उसका केवल रात-दिन का नहीं, जीवन भर का अटूट सम्बंध है । भारतमाता का आत्मगौरव छीनने और लूटने की चेष्टा करने वाले को वह अपना दुश्मन समझती है । वह प्रतिज्ञा लेती हुई कहती है -' मैं अपनी जान हथेली पर लेकर कसम खाती हूँ कि भारतमाता का अपमान करने वाला मेरा शत्रु है, मैं अगर उसे पा जाऊँ, तो नारी होने पर भी उसका दम घोट दूँ, प्राण ले लूँ, खून पी डालूँ ।'[1] ये शब्द उसके चरित्र के उज्जवल पक्ष को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं । वह केवल ऐसा बोलकर ही नहीं रह जाती, परन्तु राजीवलोचन शत्रु है इस बात का पता चलते ही वह अपनी जान की भी परवाह न करके उसे गिरफ्तार करवा देती है । उसके चरित्र के द्वारा लेखक यही कहना चाहता है कि भोगी से भोगी व्यक्ति के हृदय में भी अपने मूल रूप में कहीं न कहीं देश भक्ति की पावन भावना निहित रहती है । इस बात का उसे ज्ञान नहीं होता, किन्तु तिरस्कार और भर्त्सना के द्वारा उसकी उन भावनाओं को जाग्रत किया जा सकता है । वायलेट जैसी भोगरत नारी की अप्रकट देश-भक्ति की भावना को डॉट-फटकार द्वारा मनोहर जाग्रत करता है और वह पन्त को गिरफ्तार करवा देती है । पन्त की पिस्टल का शिकार बनने पर मन ही मन वह कहती है - प्रभु, एक पतित नारी का यह समर्पण भी तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा । आज मैं अपनी आत्मा के रूद्ध द्वार खोलकर कह सकती हूँ कि देश का गौरव सबसे बड़ा है । वह वासना से परे है, जीवन से परे है और प्रेम से भी परे है ।[2] संपूर्ण उपन्यास में वायलेट का चरित्र अस्वाभाविक-सा जान पड़ता है ।

वाजपेयी जी के नारी-चरित्र इहलोक के प्राणी हैं । वे स्वाभाविक गति से अपना जीवन जीते जाते हैं । परिवार और समाज से सम्बंधित कई प्रकार के नारी पात्रों का चित्रण वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । अपनी रुचि के नारी चरित्र इसी समाज से लेखक ने चुने हैं । उनमें आदर्श पत्नी, यौवन-वाटिका में विहार करने वाली रमणी, समाज से वंचिता वेश्या, परित्यक्ता युवती, नयी सभ्यता की रोशनी में रूप-लावण्य बिखेरने वाली आधुनिका, माँ, बहन, भाभी तथा नारी के अन्य सभी रूपों का लेखक ने बड़े मनोयोग से चित्रण किया है । उपर विवेचित नारी पात्रों के अतिरिक्त 'गोमती के तट पर' की कला,'मनुष्य और देवता' की जानकी, 'निरन्तर' की जाह्नवी,'कपट निद्रा' की रानी,'सपना बिक गया' की राका, 'सूनी राह' की करुणा,'यथार्थ से आगे' की रंजना और हेमा आदि स्त्रीपात्र

1- वासना से परे, पृ0 162

2- वही, पृ0 174

ऐसे हैं जो अपने-अपने वर्गों की विशेषताओं से युक्त हैं । कुछ उपन्यासों में ऐसा भी हुआ है कि अपनी विशेषताओं के कारण कोई स्त्री पात्र पाठकों का ध्यान अपने प्रति आकर्षित करता है ; किन्तु आगे चलकर उसका विकास रुक जाता है । 'चलते-चलते' की वैशाली के सम्बंध में यह बात कही जा सकती है ।

अंत में नारी पात्रों के चित्रण के विषय में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उनको चित्रित करने में लेखक ने समाज की कुत्सा, घृणा, निर्लज्जता और मलिनता ही नहीं बटोरी है, परन्तु भिन्न-भिन्न रूपों में उन्हें चित्रित करके पाठक को जीवन जीने की एक नयी दिशा दी है ।

पुरुष पात्र

पुरुष वर्ग के जो चरित्र वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में चित्रित किये हैं, वे मुख्य रूप से मध्य वर्ग के हैं । वैसे तो उच्च और निम्न वर्ग के चरित्र भी प्राप्त होते हैं, किन्तु आधिक्य मध्य वर्ग के चरित्रों का ही है । वाजपेयी जी के पुरुष चरित्रों के जीवन की अपनी एक अलग ही शैली है । उनके अध्ययन से चोर को सुधार का पथ प्राप्त होगा, प्रेमी को रसमयता की तृप्ति मिलेगी और तापविह्वल प्राणी को जीवन प्रदायिनी शीतल छाया मिलेगी । यहाँ पर वाजपेयी जी के उपन्यासों के कुछ प्रमुख पुरुष पात्रों का चरित्र-विश्लेषण करेंगे, जिससे उनके पुरुष पात्रों की विशेषताएँ तो स्पष्ट होंगी ही, साथ ही यह भी उद्घाटित हो जायगा कि वाजपेयी जी को सर्वाधिक सफलता किन पात्रों के चरित्र-चित्रण में मिली है- पुरुष पात्रों में ~~यथार्थवादी~~ अथवा नारी पात्रों में ।

उनकी प्रारंभिक रचना 'पिपासा' में दो प्रधान पुरुष पात्र हैं । नरेन्द्र और कमलनयन । नरेन्द्र जज है । उसे अपनी पत्नी शकुंतला के प्रति अनन्य प्रेम है । इसीलिए यह जानते हुए भी कि वह कमलनयन की ओर आकृष्ट है, दोनों का प्रणय-सम्बन्ध दिन-प्रतिदिन विकासोन्मुख होता जा रहा है, वह उस विषय में जान-बुझकर मौन रहता है । दोनों के प्रणय-निवेदन को अपने कानों सुनने के पश्चात् भी जब वह शकुन्तला को मिलता है, तो अबोध-सा बना रहता है और ऐसी बातें करता है, जिनसे शकुन्तला को बुरा न लगे । वह अपने मनोभावों को हृदय में गोपनीय रखता है । कमलनयन को शकुन्तला चाहे, इस विषय में उसे कुछ आपत्ति

नहीं है, परन्तु किसी भी परिस्थिति में वह उसे खोना नहीं चाहता । पत्नी के प्रेम में वह इतना पागल हो गया है कि अपने कहने की बुरी प्रतिक्रिया होगी, यह सोचकर वह चुप रहता है । वह सोचता है -'इस प्रकार शकुन्तला यदि कमलनयन से भीतर से प्यार भी करती रहे ; परन्तु हमारे सम्बन्धों को, हमारे अधिकार को, कभी क्षीण न होने दे, कभी उसमें कोई किन्तु न झलकने दे, तो वह शकुन्तला धन्य है, पूजनीय है ।'[1] वस्तुत: यह उसका औदार्य नहीं किन्तु भीरुता है, आत्म-प्रवंचना है । एक समय तो ऐसा आता है जब क्रोधावेश में वह कल कमलनयन और शकुन्तला को पिस्तौल से समाप्त कर देना चाहता है, पर अपने भीरु स्वभाव के कारण ऐसा कर नहीं सकता । शकुन्तला से उसके पूछने पर कि 'तुम्हारे हृदय में उस कमलनयन के लिए अधिक आदर है या मेरे लिए ?' वह जो उत्तर देती है उसकी शब्दावली से नरेन्द्र के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । वह कहती है -'तुम मुझे इतना अधिक क्यों चाहते हो कि एक भी आशंका को अपने भीतर ठहरने नहीं देना चाहते ? फिर यह भी एक विचित्र बात है कि सब कुछ जानते हुए भी तुम मुझे अस्वीकार नहीं करते । तुम कैसे पुरुष हो कि अपने धन को अपने आगे से खिसकता हुआ देखकर भी प्रतिस्पर्द्धा की उत्तप्त कुत्सा से अपने आपको अक्षुण्ण ही रखना चाहते हो ? तुम मुझसे घृणा की चरम कर्कशता से क्यों नहीं पेश आते ? ऐसे निष्कपट , ऐसे दुर्लभ्य, ऐसे पत्नी-परायण तुम क्यों हो मेरे स्वामी ?'[2] इसमें नरेन्द्र के जिन गुणों का उल्लेख शकुन्तला ने किया है, वे वास्तव में गुण नहीं, पर उसकी निर्बलता है । वस्तुत: उसका चरित्र सरल नहीं, अपितु बड़ा पेचीदा है । उसके चरित्र के बहिस्वरूप और आन्तरिक स्वरूप में पर्याप्त अन्तर है । पत्नी के प्रति वह ईर्ष्यालु है और कमलनयन के प्रति उसके हृदय में घृणा है । एक ओर तो अधिक भावुक होने के कारण वह कमलनयन को अपने साथ अपने छोटे भाई सुरेन्द्र की तरह बंगले में रखना चाहता है, ताकि किसी भी प्रकार शकुन को खोना न पड़े ।[3] दूसरी ओर वह कमलनयन को अपमानित करता है ।[4] नरेन्द्र के प्रति कमलनयन का इस तरह व्यवहार करने का मुख्य कारण उसका मानसिक अस्वास्थ्य ही है । शकुन्तला की मृत्यु से वह पूर्वरूपेण मानसिक सन्तुलन खो बैठता है । सम्पूर्ण उपन्यास में यथास्थान उसका मानसिक संघर्ष यथोचित ढंग से प्रस्तुत किया गया है, परन्तु पात्रों के मनोविश्लेषण तथा अंतर्द्वन्द्व की अधिकता के कारण किसी का भी चरित्र उभर नहीं पाया है । सब कहा जाय, तो चरित्र-चित्रण की ओर

1- पिपासा, पृ0 111
2- वही, पृ0 121
3- वही, पृ0 122
4- वही, पृ0 127

और लेखक ने ध्यान ही नहीं दिया है । पूरे उपन्यास में कृतिकार पात्रों को विषम परिस्थिति में छोड़कर उनकी प्रतिक्रिया देखता रहता है ।

इस उपन्यास के प्रणय-त्रिकोण के दूसरे प्रमुख पुरुष पात्र कवि कमलनयन में भी आत्मगोपन तथा आत्मप्रवंचना की प्रवृत्ति उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक देखी जा सकती है । प्रारंभ में ही वह अपने मित्र नरेन्द्र के यहाँ जाता है, तब सोचता है -' यही, इसी प्रकार का सुख-संतोषमय जीवन वह चाहता था - यही, बस इतनी ही, उसकी आकांक्षा थी, परन्तु और तो सब हुआ, यही नहीं हो सका ।'[1] यहाँ अभावों के कारण उसका असंतोष व्यक्त हो जाता है, परन्तु इसके अतिरिक्त अपने इन मनोभावों को वह संपूर्ण उपन्यास में कहीं भी कभी भी अभिव्यक्त नहीं करता । वह अपने मन को मनाता रहता है -'नहीं, कमलनयन जरा भी दु:खी नहीं है । कौन कहता है कि वह अपने जीवन से असंतुष्ट है ?---[2] यह उसकी निरी आत्मप्रवंचना ही है । नरेन्द्र के यहाँ शकुन्तला के विशेष अनुरोध पर कवि-सम्मेलन का आयोजन किया जाता है । उसमें कमलनयन भी निमंत्रित किया जाता है । सभापति के प्रार्थना करने पर कि' अब कमलनयन जी काव्यामृत की वर्षा कर हम लोगों को कृतार्थ करें ।' वह गंभीरता से कहता है - 'किन्तु मैंने तो कविता लिखना और पढ़ना एकदम स्थगित कर रक्खा है । मेरी तबियत ठीक नहीं रहती । कविता लिखने या पढ़ने के पश्चात्, मस्तिष्क पर दबाव पड़ने के कारण मुझे मूर्छा आ जाती है । मैं तो आप सब लोगों के दर्शनार्थ चला आया हूँ ।'[3] वस्तुत: कवि-सम्मेलन में वह काव्य- पठन के हेतु ही आया था, तथापि वह असत्य बोलता है । नरेन्द्र से जब उसे ज्ञात होता है कि कवि-सम्मेलन में पठित सर्वोत्तम कविता पर शकुन्तला के कहने पर पुरस्कार देने का उसने निश्चय किया था, तब वह सोचता है -'रुपया मिलेगा । अच्छा तो है । मामी को दूँगा, तो वह कितनी प्रसन्न होगी । मैया भी कम आनन्दित न होंगे । सोचेंगे - कमल की पहली कमाई का रुपया है ।'[4] परन्तु अपने मनोभावों को वह हृदय में ही छिपाये रखता है । और प्रकट रूप में कहता है -'इस तरह मैं रुपया ले न सकूँगा । मैं मनुष्य हूँ, मुझमें कमजोरियों का अभाव नहीं है, तो भी इस तरह रुपया लेना मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती । मैं इसे आत्मप्रवंचना समझता हूँ ।'[5] यहाँ विचारणीय प्रश्न तो यह है कि कौन-सी बात आत्मप्रवंचना

1- पिपासा, पृ0 9

2- वही, पृ0 9

3- वही, पृ0 31

4- वही, पृ0 33

5- वही, पृ0 33

की है, रुपया लेने की या नहीं लेने की । वह शकुन्तला को चाहता है, तथापि उपन्यास के उत्तरार्ध में शहर छोड़ने सेपूर्व नरेन्द्र को मिलने जाता है, परन्तु यह जानते हुए भी कि शकुन्तला अस्वस्थ है, वह उसे मिलने की बात टालता है । यह भी आत्मप्रवंचना ही है । कवि होने के कारण कमलनयन कल्पना की दुनिया में जीता है, फिर भी वह निराशावादी है । क्योंकि उसके प्रिय पात्र का विवाह अन्य के साथ हो जाता है । उसकी भाभी जब विवाह की बात छेड़ती है, तो तुरन्त वह कहता है - ब्याह-वाह अब मैं नहीं करूँगा भाभी ! मेरे जीवन का यह अट्ठाइसवाँ वर्ष समाप्त हो रहा है । आजकल जिन्दगी का कुछ ठीक नहीं है । कौन बहुत दिन जीता है । अधिक से अधिक दस-पन्द्रह वर्ष !'[1] अट्ठाइस वर्ष के युवक कवि का जीवन इतना नैराश्यपूर्ण क्यों है, यह लेखक ने उपन्यास के प्रारंभ में ही बतला दिया है । इतना सब होने पर भी वह आदर्शवादी है । शकुन्तला को चाहने पर भी अपनी परिस्थिति का उसे पूरा ध्यान रहता है । शकुन्तला आर्थिक सहायता के रूप में उसे नोटों का बंडल देती है, तब उसे लौटाते हुए वह कहता है - '----तुम मुझे ये नोट दे रही हो । इनको सुरक्षित रख छोड़ो। अब इन्हें मैं तुम्हें दे रहा हूँ । जरूरत पड़ेगी, तो तुम इन्हें दे सकोगी, इसका मुझे विश्वास है । बात यह है कि कुछ भी हो, मैं पुरुष हूँ शकुन्तला । इसलिए मैं भूल-भटककर भी ठिकाने लगता हूँ तो संसार की आँखों में किरकिरी नहीं बन पाता । लेकिन तुमने तो आदिशक्ति का रूप पाया है । तुम पुरुष के जीवन को उत्थित करनेवाली हो । जरा अपनी ओर एक बार फिर से देखो तो ।...।' मैं कमल कमलनयन हूँ । बोलो शकुन, मैं नरेन्द्र कैसे हो सकता हूँ।'[2] इन्हीं शब्दों में उसका आदर्श रूप प्रकट हो जाता है । समाज नारी और पुरुष को भिन्न दृष्टि से देखता है,यह उसे ज्ञात है । जिसके प्रति उसके हृदय में स्नेह है, उसकी पवित्रता का उसे सदैव ध्यान रहता है । पति और प्रेमी के बीच जो एक निश्चित अंतर है उसे वह भली प्रकार समझता है, इसीलिए एक प्रेमी होने के कारण वह सीमोल्लंघन करना नहीं चाहता । कमल कमलनयन का चरित्र भी प्रस्तुत उपन्यास के अन्य पात्रों की तरह उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली बन गया है । अत: इसका चरित्र भी उभरने नहीं पाया है ।

'दो बहनें' उपन्यास का नायक ज्ञानू रायसाहब का पुत्र है । एक दिन बात ही बात में पिता पुत्र में समाज-सुधार के विषय को लेकर बहस होती है । सिद्धान्तों की चर्चा में व्यक्तित्व

1- पिपासा, पृ0 15

2- वही, पृ0 86

पर आक्षेप होता है, तो रायसाहब गरजकर कहते हैं - मेरी ही पैदा की हुई सम्पत्ति के बल पर गुलछर्रे उड़ाते हो। एक दिन खाना न मिले, तो आटा-दाल का भाव मालूम पड़ जाय।'[1] इसका परिणाम यह हुआ कि स्वाभिमानी ज्ञानू चुपताप घर छोड़कर चला जाता है और कानपुर में ही एक काटन मिल में नौकरी करके अलग रहने लगता है। अपने स्वाभिमान की रक्षा के हेतु वह किसी भी चीज की परवा नहीं करता। स्वमान के बदले में वह सहजभाव से सब कुछ छोड़ देने के लिए तैयार है। उसके सम्बन्ध में उसके पिता भी यही सोचते हैं कि जिस व्यक्ति के जीवन में इतनी दृढ़ता हो सकती है कि वह अपने एक सिद्धान्त पर अड़कर सारे वैभव का ही नहीं, अपने आत्मीय सम्बन्धों के मोह तक का त्याग कर दे, सत्य से दूर, न्याय से हीन, विवेक-बुद्धि से वंचित वह हो कहाँ तक सकता है।[2] उसके पिता का इस प्रकार सोचना ज्ञानू की सत्यप्रियता, न्यायशीलता, विवेक-बुद्धि आदि गुणों को उद्घाटित करता है। वह जितना स्वाभिमानी और दृढ़ है, उतना ही सच्चा भी है। दीवाकर ज्ञानू की पुस्तकें अपने मित्रों को देता है, तब ज्ञानू के फरियाद करने पर दीवाकर यज्ञोपवीत हाथ में लेकर, कसम खाकर कहता है कि उसने रायपत्नी को पुसला लिया। परन्तु रायपत्नी को विमाता होने पर भी ज्ञानू पर विश्वास है, अत: वह कहती है -'बात यह है कि कुछ हो, ज्ञानू को मैंने कभी बात बनाते नहीं पाया।'[3] विमाता के मुख में ऐसे शब्द रखकर, लेखक ने ज्ञानू की सत्यनिष्ठ प्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण दिया है। दीवाकर आगे भी दीदी के कान ज्ञानू के विरुद्ध भरता ही रहता है। वह तो यहाँ तक कहता है कि 'मुझे अभी-अभी एक मित्र बतला गये हैं कि उनको तो मैंने एक रेस्तराँ में शराब पीते देखा है।' किन्तु दीवाकर, अपने सगे भाई- पर रायपत्नी को इतना विश्वास नहीं जितना अपने सौतेले पुत्र ज्ञानू पर। वह कहती है'---- ज्ञानू और सब कुछ कर सकता है ; पर इतना पतित वह कभी नहीं हो सकता।'[4] इन शब्दों में रायपत्नी का अपने सौतेले पुत्र के प्रति अटूट विश्वास प्रकट होता है। सौतेले पुत्र के सम्बंध में माँ द्वारा प्रशंसा हो, तब उसकी सत्यता पर विश्वास रखना ही पड़ता है। जिस दिन मंदा उसके साथ थी, उस दिन की घटनाओं के विषय में सब कुछ ज्ञानू से जान लेने के पश्चात् जब इसकी सत्यता के बारे में मंदा से पूछा जाता है, तो वह भी अपने भैया की सत्यप्रियता के प्रति अटूट आस्था प्रकट करती हुई कहती है - 'दद्दा कभी झूठ नहीं बोलते'।[5]

1- दो बहनें, पृ0 26
2- वही, पृ0 51
3- वही, पृ0 66
4- वही, पृ0 93
5- वही, पृ0 149

वस्तुत: विमाता तथा सौतेली बहन के द्वारा ज्ञानप्रकाश के एक गुणविशेष-सत्यप्रियता पर प्रकाश डालागया है । अनेक सद्गुण उसमें निहित है । अपनी उपस्थिति में ही कोई उसकी प्रशंसा करे, यह उसे कतई पसन्द नहीं । इसीलिए लता उसे कहती है तुम केवल कवि ही नहीं, फिलॉसफर भी हो' तो वह कुछ सोचता हुआ गंभीर होकर कहता है-' मेरे सामने कभी मेरी प्रशंसा मत किया करो लता । मुझे यह बात पसन्द नहीं है'[1]। अर्थात् उसके मुँह पर उसकी प्रशंसा की जाय, तो उसे आपत्ति और अनुपस्थिति में किसी अन्य पात्र से उसके सम्बन्ध में प्रशंसा की जाय, तो उसे किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं है । सौंदर्य उसे प्रिय है ; किन्तु केवल नारी-सौन्दर्य में ही उसकी रुचि नहीं, मानवमन में निहित पवित्र वृत्तियों में उसे अनुराग है । इसीलिए आशा के विरुद्ध, द्वेष के कारण, लता अपना अभिमत देती है तो वह उसे डाँटता हुआ कहता है - सौंदर्य तुमने अधिक पाया है--- लेकिन वर्ण का नहीं, त्वचा और रक्त-मांस का भी नहीं । मैं तो सौंदर्यमयी पावन वृत्तियों का पुजारी हूँ ।'[2] उसकी यह स्पष्टवादिता ही उसका कभी भी पतन नहीं होने देती । वाजपेयी जी के अन्य उपन्यासों के नायकों की तरह नारी के प्रति वह आकृष्ट अवश्य होता है ; किन्तु नारी उसकी निर्बलता नहीं । प्रसंगानुसार वह सुन्दरी युवती को भी डाँट-फटकार सकता है । इसी बात में वह अन्य उपन्यासों के नायकों से भिन्न प्रतीत होता है । नारी-सौंदर्य उसकी निर्बलता होती, तो लता में वह अवश्य उलझ जाता और 'चलते-चलते' के राजेन्द्र की तरह किसी भी सुन्दरी नारी को अपनी ओर से असंतोष न होने देता । परन्तु लता को वह आशा की अस्वस्थता के दिनों का स्मरण दिलाता हुआ कहता है -' तुम्हें स्मरण होना चाहिए कि एक दिन था, जब तुमने कहा था - दीदी के चंगे होने में अगर मुझे मरना भी पड़े, तो मैं हँसी-खुशी के साथ उसे स्वीकार कर लूँगी । उस दिन की लता को मैं कभी प्यार कर सकता था, किन्तु आज जिस लता ने आशा के पावन पथ में काँटे बिखेर देने की चेष्टा की है, मैं उससे घृणा करता हूँ ।'[3] ऐसा वह क्रोधावेश में कहता है, परन्तु उसका गुस्सा अधिक समय टिकता नहीं । बुरा लग जाने से होटल में जाने के उसके प्रस्ताव का लता अस्वीकार करती है, तो वह तुरन्त बोल उठता है - 'मैं तुमसे घृणा भी असल में कर नहीं सकता । उत्तेजनावश कह जाना दूसरी बात है । और सच पूछो तो घृणा मैं किसी से नहीं कर सकता । - दुश्मन से भी नहीं । फिर

1- दो बहनें, पृ0 173

2- वही, पृ0 186

3- वही, पृ0 186-87

तुम तो---।[1] वस्तुत: प्राणीमात्र से उसे प्रेम है । चींटी भी उसे प्यारी है, सर्प को भी वह मार नहीं सकता । उसका चरित्र आदर्श है । दो बहनों के प्रेम के बीच वह घिरा हुआ है, पर दोनों को वह समान रूप से चाहता है । बड़े ही स्वाभाविक ढंग से उसका चरित्र-चित्रण हुआ है ।

'चलते-चलते' के प्रमुख पात्र राजेन्द्र का चरित्र अन्य पात्रों की अपेक्षा स्थिर-सा है । वह अनेक नारियों के सम्पर्क में आता है, आंदोलित होता है, अनेक सामाजिक विषमताएँ उसे आलोडित कर देती है, किन्तु उसके सामाजिक माप-मानों के निर्वाह की मूल मान्यता में जरा भी अंतर नहीं आता । अज्ञेय के शेखर के भाँति राजेन्द्र विद्रोही नहीं, अपितु भीरु है । अपने पिता का उस पर कुछ प्रभाव नहीं, परन्तु माता से वह पूर्णरूपेण प्रभावित है । वह सोचता है " मैं उसे मनुष्य नहीं, श्वान मानता हूँ, जो माँ का एक आँसू भी देखकर चुप रहता है । मैं प्राय सोचा करता हूँ कि अगर माँ की आँखों में आँसू है, तो पुत्र उसका जीवित क्यों है ?"[2] इसमें उसकी माँ के प्रति अनन्य भक्ति तथा संवेदनशील स्वभाव प्रकट होता है ।

वह छोटी भाभी- अपने मौसेरे भाई वंशीधर की पत्नी-के प्रेम में निरन्तर जलता रहता है । प्रगति की अनेक बातें करता हुआ वह कहता है- 'आज हमारे समाज की जैसी स्थिति है, उससे उद्धार का एक ही मार्ग है, नैतिक मानों का निर्वाह ।'[3] इसी कारण से वह किसी युवती से निश्चित सीमा तक ही सम्पर्क रखता है । वास्तव में प्रेम के संघर्ष में विशेष मात्रा में जिस विद्रोह वृत्ति की अनिवार्यता है, इसका उसमें नितान्त अभाव है । उसके घर के संस्कारों के कारण वह ऐसा बना है, अत: विद्रोह करने की सामर्थ्य उसमें नहीं है । दूसरे शब्दों में कहा जाय, तो उसका व्यक्तित्व उपन्यास के अन्य पुरुष पात्रों की तरह नपुंसक है । विद्रोह वृत्ति की ओर वह बढ़ना चाहता भी है, तो उसकी माँ की चेतावनी उसे संभाल लेती है । भाभी का 'प्रण पोषाक प्यार' उसे एकाग्र नहीं होने देता । किसी भी सुन्दरी युवती को देखते ही वह पुलकित हो उठता है । संयम का उसमें अभाव है, यह सम्पूर्ण उपन्यास में देखा जा सकता है । इसी के परिणाम स्वरूप कभी-कभी उसका मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है । माँ उसके मानसिक अस्वास्थ्य को ताड़ जाती है, अत: यह सोचकर वह

1- दो बहनें, पृ0 188

2- चलते-चलते, पृ0 211

3- वही, पृ0 287

चिन्तित होती है कि छोटी भाभी के चले जाने के बाद उसका क्या होगा। माँ रूढ़िवादी है, फिर भी छोटी भाभी अपने घर जाते समय रो पड़ती है, तो उसे कहती है -"इसी जीवन में अगर कभी अगले जीवन की आशाएँ पूरी किये बिना प्राण न बचते हों, तो यह घर भी तुम्हारा है।"[1] यहाँ यह बात विचारणीय है कि माँ रूढ़िवादी है, फिर भी राजेन्द्र और छोटी भाभी के प्रेम-सम्बन्ध को सहन कैसे करती है ? हो सकता है कि भावुकतावश पुत्र प्रेम में खींचकर उसने छोटी भाभी को अपने यहाँ रहने की अनुमति दी हो, परन्तु इससे पूर्व सब कुछ ज्ञात होते हुए भी माँ का अंतर्द्वन्द्व लेखक ने नहीं दिखाया है। न ही माँ अपने पुत्र को कुछ कहती है। यह लेखक की निर्बलता है। राजेन्द्र में मानवीय सभी दुर्बलताएँ हैं, मन का वह मैला है। जिसे वह चाहता है, उसके लिए भी वह पूर्ण आत्मदान नहीं कर सकता। इसी के फलस्वरूप वह पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। डा० ब्रजमोहन गुप्त ने राजेन्द्र के चरित्र की एक अन्य विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है -"मानवीय दुर्बलताओं के विरुद्ध स्वच्छ मन के उस संघर्ष और पूर्ण आत्मदान या विवश पराजय का भी उसके जीवन में अभाव है, जो शरद की रचनाओं में नायक को पाठकों की सहानुभूति और उसके माध्यम से स्नेह का पात्र बना देते हैं।"[2] ध्यान से देखा जाय, तो वैचारिक धरातल पर भी कथा-नायक में परस्पर विरोधी या असंगत कही जानेवाली बातें प्राप्त होती हैं। इससे नायक के चरित्र के प्रति एक झुंझलाहट -सी उत्पन्न होती है और उपन्यास के प्रभाव को क्षति पहुँचती है। यहाँ ऐसी दो पंक्तियाँ दी जा रही हैं, जो स्पष्टत: परस्पर असंगत हैं -

(1)---मानव-चेतना सदा गतिशील रही है। इसलिए मानवधर्म भी अचल नहीं हो सकता। जीवन बदलेगा, तो जीवन के मान भी बदलेंगे। इसके लिए हम क्या कर सकते हैं और कोई भी क्या कर सकता है ?"[3]

(2) आज हमारे समाज की जैसी स्थिति है उसके उद्धार का एक ही मार्ग है - नैतिक मानों का निर्वाह।"[4]

यह उसके चरित्र का सबसे बड़ा दोष है। इसी के कारण राजेन्द्र का चरित्र अस्वाभाविक बन गया है। उसकी उक्तियों की असंगति उसकी अस्थिर मानसिक अवस्था की परिचायक है।

1- चलते-चलते, पृ० 381

2- साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी (अभिनन्दन ग्रन्थ) पृ० 168

3- चलते-चलते, पृ० 282

4- वही, पृ० 287

'राजपथ' के पुरुष पात्रों में दिलीप का स्थान प्रधान है । यद्यपि उसके चरित्र-निर्माण में कृतिकार ने पर्याप्त परिश्रम किया है तथापि कहीं-कहीं उसके चित्रण में अस्वाभाविकता आ गई है । दैवी प्रकोपों - बाढ़, हैज़ा आदि - के कारण जनता की सेवा करने के हेतु वह निकल पड़ता है । चन्दे के प्रश्न पर वह अपने मित्र सुरेन्द्र से जो चर्चा करता है, उसके आधार पर उसका चरित्र जाना जा सकता है । वह कहता है -

"देखो सुरेन्द्र, मैं उन चन्दाखोर लोगों में नहीं हूँ, जो सम्पूर्ण देशभक्त जाति के मुख-मण्डल पर दोनों हाथों से कलंक की कालिमा पोतने पर तुले हैं ।× × × पिछले दिनों बाढ़ पीड़ित जनता के बीच रहकर मैंने ऐसे-ऐसे भयानक दृश्य देखे हैं कि सरल, कोमल और भावप्रवण सुजन यदि उन्हें देख लें, तो उनकी मानसिक शान्ति लुप्त हो जाय --- तब ऐसे दृश्य देखकर भी जो लोग हृदय खोलकर पीड़ित मानवता की रक्षा के लिए अपने संचित कोष का मुँह देखते हैं, वे मनुष्य नहीं ०००००० राक्षस हैं ।"[1] देश सेवा का व्रत, समाजोद्धार का संकल्प, पीड़ितों की सहायता के प्रति जागरूकता, गरीबों-असहायों को प्रोत्साहित करने का स्वर-यह सब कुछ उसके चरित्र में पाया जाता है । उपर्युक्त उद्धरण के द्वारा उसके विचारक पक्ष को भी अच्छी तरह से समझा जा सकता है । कभी-कभी वह सोचता है -" वे सभी वस्तुएँ जो अभी देख पड़ती हैं, एक दिन नष्ट हो जायँगी । केवल वे विचार और शब्द अमर रहेंगे, जो मनुष्य का दु:ख, संताप और क्रन्दन दूर करने में सहायक होंगे ।"[2] इसमें उसके दार्शनिक विचार प्रकट हुए हैं । यह उसके चिन्तनशील स्वभाव का ही परिणाम है ।

महात्मा गांधी की विचारधारा से वाजपेयी जी का यह पात्र प्रभावित है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है । सत्य के प्रति उसे अटूट आस्था है । काशी से दीदी को चेक के साथ उसके द्वारा लिखे गये संक्षिप्त किंतु मार्मिक पत्र में वह लिखता है -"दुनियाँ में चाहे जो कुछ हुआ करे, कुछ हुआ होता रहे ; किन्तु बापू की यह वाणी मैं कैसे भूल सकता हूँ कि निरन्तर विपत्तियाँ भोगना और सत्य का पालन करना ही भगवान के निकट पहुँचने का एक सीधा और सच्चा मार्ग है ।"[3] यह पत्र उसके चरित्र को समझने में सहायक सिद्ध होता है । महात्मा जी की तरह वह भी सत्य को ही परमेश्वर मानता है, इसकी प्रतीति उसके पत्र में लिखी गई उपर्युक्त पंक्तियों से

1- राजपथ, पृ0 104-5

2- वही, पृ0 28

3- वही, पृ0 240

होती है । सत्य के अतिरिक्त अहिंसा में भी उसे दृढ़ विश्वास है ; अत: बफाती को समझाते हुए और हिंसा का विरोध करते हुए वह कहता है -"हिंसा के द्वारा अगर आप मज़दूरों और दुनियाँ के दु:ख दूर करना चाहें, तो मुझे साफ कहना पड़ेगा कि यह रास्ता गलत है, इसका परिणाम कभी अच्छा नहीं हो सकता ।"[1] संसार की बुराइयों को नष्ट करने के लिए गलत रास्ते पर चलना उसे स्वीकार्य नहीं है । अपने आदर्शों की रक्षा हेतु वह विवाह करना भी नहीं चाहता । उसकी माँ उसे ~~स्पष्ट~~ ब्याह करने के लिए समझाती है तो वह यह कहकर चल देता है कि "हम एक आदर्श को लेकर पैदा हुए हैं और उस आदर्श के पालन में मर भी जाना चाहते हैं ।"[2] वस्तुत: दिलीप एक आदर्शवादी पात्र है और उपन्यास के अंत तक वह अपने आदर्श का निर्वाह करता है ।

'भूदान' का नायक शंकर कैलासबाबू का ज्येष्ठ पुत्र है । वह अध्ययनशील है । बी० ए० प्रथम वर्ग में उत्तीर्ण करने के पश्चात् एम० ए० के अध्ययन के लिए इलाहाबाद चला जाता है । वहाँ मायाबाबू की पत्नी मीरा और उसके बीच स्नेह-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । पूरे उपन्यास में उनके इस स्नेह में कहीं भी वासना की गंध तक नहीं आती । ~~अ~~ तथापि मायाबाबू के परिवार के सदस्य उनके स्नेह को संदेह की दृष्टि से देखते हैं ; अत: शीघ्र उनका घर छोड़कर वह नेता जोशी जी की छत्रछाया में रहकर ही एम० ए० के पश्चात् पी.सी.एस. भी कर लेता है । अपनी विद्यार्थी अवस्था में वह किसी को नोटस् तक देता नहीं था । इसी के कारण कुछ लोग उसके सम्बन्ध में गलत धारणाएँ बना लेते हैं । नोटस् देने के सम्बन्ध में शंकर की नीति सुनकर उसका मित्र त्रिलोचन चकित हो जाता है । भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के मुँह से उसने तरह-तरह की बातें शंकर के सम्बंध में सुनी थी । उसने तो सुना था कि 'शंकर बहुत गम्भीर प्रकृति का व्यक्ति है । उसने यह भी सुना था कि वह बड़ा घमण्डी है, किन्तु यह उसने अभी तक न किसी से सुना था, न उसको जानने का अवसर मिला था कि शंकर मूलत: वस्तुवादी, कठोर संयमी और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है ।"[3] वह गंभीर प्रकृति का अवश्य है ; किन्तु पूरे ~~उपन्यास~~ उपन्यास में कहीं भी एक भी स्थल ऐसा नहीं आता जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि वह घमण्डी है । वस्तुत: उसका चरित्र आदर्श है । अपने छोटे-बड़े सभी कार्य वह अपने हाथों करता है । यथासमय कोर्ट पहुँचकर प्रामाणिकता से नौकरी करता है । इस विषय में वह

1- राजपथ, पृ० 289

2- वही, पृ० 94-95

3- भूदान, पृ० 161

अपनी माँ से कहता है - "पेशकार, चपरासी, कोर्ट साहब, वकील लोग मेरी इस ठीक समय पर काम करने की आदत से घबराते हैं। घूसखोरी से मुझे घृणा है। पेशकार लोग जो अपना हक और शुकराना ले लिया करते हैं, उसको भी मैं बहुत बुरा समझता हूँ। किसी दिन भी मेरी निगाह तिरछी हो सकती है।"[1] उसके इस कथन से उसके चरित्र का उज्जवल पक्ष उद्घाटित होता है तथा इसके साथ-साथ वर्तमान भारतीय कोर्ट का परिचय भी प्राप्त होता है। घूसखोरी तो जैसे हमारे देश के प्रत्येक क्षेत्र के लिए प्राणवायु बन गई है। उसके बिना कोई भी कार्य आगे नहीं बढ़ सकता। इसको जड़ मूल से दूर करके वह देश में क्रांति लाना चाहता है। परन्तु भ्रष्टाचार दूर करने में सफलता नहीं मिलती तो त्यागपत्र दे देता है। पूरे उपन्यास में वह नम्र ही बना रहता है। डिप्टी कलेक्टर बन जाने के पश्चात् भी अपनों के प्रति वही 'मुन्नी' रहता है, जो पहले था। अपने चाचा केदारबाबू, जिन्हें वह दादा सम्बोधन करता है, के पैर वह दाबता है, तब वे अनुभव करते हैं - 'मुन्नी जरा भी नहीं बदला है। न तो उसमें कहीं अहंकार है, न भोग लिप्सा, न अधिकार का मद, न आलस्य। वह अपना उत्तरदायित्व समझता है, वह परिश्रम की कमाई पर अवलम्बित है, अपने गुरुजनों के प्रति श्रद्धालु और आश्रितजनों के प्रति सख्य वत्सल।'[2] दादा के इस चिन्तन के आधार पर कहा जा सकता है कि एक आदर्श व्यक्ति में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सभी गुण शंकर में हैं। उसमें कुछ गुण तो ऐसे भी हैं जो उसको शासनाधिकार का ऊँचे-से- ऊँचा पद दिलाने में समर्थ हो सकते हैं। उसके यहाँ किसी भी चीज की कमी नहीं है, तथापि सुख के दिनों में भी वह भगवान को नहीं भूलता। उन पर उसे अटूट श्रद्धा है। रेणु को पढ़ाने जो शिक्षक आता था, उसे शंकर द्वारा ना कहे जाने पर गोमती अपनी बेटी की पढ़ाई के लिए चिन्तित हो उठती है, तब वह कहता है - "----तुम चिन्ता मत करो माँ। भगवान के बड़े-बड़े हाथ हैं। वह कुछ न कुछ अवश्य करेगा।"[3] उसके इस कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि वह आस्थावादी है। अन्य उपन्यासों के नायकों की भाँति नारी उसकी निर्बलता नहीं है, न ही उसमें किसी प्रकार के संयम का अभाव है। अपने जीवन में आदर्शों का पालन वह उपन्यास में अंत तक करता है।

'विश्वास का बल' के दो प्रमुख पुरुष चरित्रों में एक चरित्र है राजीव का। वह अत्यंत परिश्रमी एवं दृढ़ है। यद्यपि वह प्रस्तुत उपन्यास का नायक है, तथापि उसका परिचय

1- भूदान, पृ0 243

2- वही, पृ0 407

3- वही, पृ0 11

०००००० पाठकों को उपन्यास के एक तिहाई भाग के पश्चात् प्राप्त होता है । एक पार्श्व-गायक के रूप में वह हमारे समक्ष प्रस्तुत किया जाता है । उपन्यासकार उसके चरित्र के सम्बंध में कहता है -"राजीव- एक विवेकशील पुरुष था । उसमें जितना आकर्षण, सान्निध्य, सम्पर्क, स्पर्श और क्रीड़ा-कौतुक का भाव था, विवेक उससे कम नहीं था । चिन्तन उसकी प्रकृति थी । वह प्रत्येक कार्य को सोच-समझ कर करने का अभ्यासी था । वह किसी बात को इसलिए नहीं मान सकता कि उसे कोई भला आदमी कह रहा है । निरपराध व्यक्ति पर वह अन्याय करना नहीं जानता । उससे जो कोई भी बात करता है उसको वह (उस समय) अपना आत्मीय ही समझता है । यह बात दूसरी है कि वह किसी का मिथ्या दंभ सहन नहीं करता । चाटुकारिता से वह घृणा करता था ।"[1] पात्र के बारे में सब कुछ कहकर चरित्र के गुणावगुणों पर प्रकाश डालकर चरित्र-चित्रण करने का यह ढंग बड़ा विचित्र लगता है । यदि लेखक ने चाहा होता, तो यह सब अन्य पात्रों के मुँह से कहलवा कर या योग्य घटनाओं का सृजन करके कलात्मक ढंग से कह सकता था ; किन्तु पात्र के चरित्र के बारे में अपनी ओर से सब कुछ कहने का लोभ वह संवरण न कर सका, यह उसकी निर्बलता ही है । राजीव का स्वर इतना प्रभावोत्पादक है कि सहृदय श्रोता को वह रुला देता है । एक गायक कलाकार और कवि होने के कारण वह अत्यधिक भावुक है । अपनी इसी भावुकता के परिणामस्वरूप मुरारी के पूछने पर कि "भइया, तुम बम्बई में कहाँ रहते हो ? "वह जो उत्तर[2] देता है, उसमें अवास्तविकता ही दिखाई पड़ती है । वह आदर्शवादी है । अपनी पत्नी के साथ वह आदर्श पतियों का-सा व्यवहार करता है ; तथापि वह उसे छोड़कर चली जाती है । उस समय की उनकी बातों में उसके आदर्श रूप के अतिरिक्त उसका औदार्य भी दृष्टिगोचर होता है । वह स्वाभिमानी इतना है कि जब उसकी आवारगी देखकर बाबू तक ने उसे साफ़-साफ़ कह दिया था कि "अगर तुम अपना खर्च नहीं चला सकते, तो अलग रहो ।"[3] तब वह अलग रहने लगता है। विषम आर्थिक परिस्थितियों में, वंदना से घनिष्ठ सम्बंध होने पर तथा उसके कहने पर भी, वह किसी प्रकार की सहायता नहीं चाहता । उसके सम्बंध में व्यास जी सोचते हैं -"राजीव का जवाब

1- विश्वास का बल, पृ० 233

2- वही, "जहाँ रत्नाकर की चमकती हुई लहरें नित्य हमारे बालमानस को दुलराया करती थी हैं, भगवान अंशुमाली की पावन किरण मालिका जिसके ऊपर खिलखिलाती हुई अहर्निशि हमारे तन मन प्राण को स्पन्दनशील बनाये रखती है । रत्नाकर के स्वर, ध्वनि-संवाद, हास-परिहास, आक्रोश-रोष-चीत्कार जहाँ मुझे सदा सुनाई और दिखाई पड़ते हैं ।" पृ० 173

3- वही, पृ० 167

नहीं है । इतना पवित्र जीवन मैंने आज तक किसी कवि का नहीं देखा ।'[1] अन्य पात्र के द्वारा इस प्रकार सुन्दर ढंग से कवि ने उसकी ~~पि~~ पवित्रता की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है । वह स्वावलम्बी, निष्कपट, आडम्बरहीन तथा ईमानदार है । फोटोग्राफी तथा चित्र-कला का उसे शौक है । उसके यहाँ विवाह के सम्बंध में बातें करने सब आते हैं, तब अंत में संजीव दादा का चरणस्पर्श करना उसकी व्यवहार कुशलता का परिचायक है । उसके चरित्र का अध्ययन करने पर कहा जा सकता है कि वह एक ऐसा नवयुवक है, जो शिकायत करना नहीं जानता । प्रत्येक स्थिति उसके लिए एक राजपथ है ।[2] कठिन से कठिन परिस्थिति में भी वह हतोत्साह नहीं होता, अपितु कठिनाइयों का प्रतिकार करता हुआ अपना जीवनयापन करता है । उसका जीवन नवयुवकों के लिए प्रेरणादायी है ।

दूसरा महत्त्वपूर्ण पुरुष चरित्र इस उपन्यास में त्रिवेणीबाबू का है । वह संसार को केवल भोग मानने वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । उषा को अस्सी रुपये प्रतिमास सहायता के रूप में देकर वह केवल ~~एकमात्र~~ वासना-तृप्ति करना चाहता है । उसके सम्बन्ध में उषा सोचती है -' अब मैं लक्ष्मी भाभी के यहाँ जाकर क्या करूँगी । वे इसी ~~एक~~ व्यक्ति की भार्या तो हैं, जो इतना लम्पट है । पहले दानापैंकता है, फिर जाल में फाँस लेना चाहता है । यह कितना उत्तम हुआ कि मैं उसके जाल में फँसते-फँसते बच गई ।[3] उषा के इन विचारों से त्रिवेणी का चरित्र जाना जा सकता है । हिमानी के साथ भी उसका यही रूप दृष्टिगोचर होता है । अपनी साली रमा के प्रति भी उसके हृदय में सच्चा स्नेह नहीं है । एकाधिक बार उसे ~~स~~ उपहार देकर वह उसे प्रभावित करना चाहता है । बिहारीबाबू की भतीजी कमला पर भी वह मुग्ध हो जाता है । अन्य उपन्यासों के नायकों की भाँति नारी उसके लिए भी सबसे बड़ी निर्बलता है । स्वच्छंद प्रकृति के कारण वह अनेक नारियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है । इसी के फलस्वरूप अपनी पत्नी लक्ष्मी को वह स्नेह नहीं दे सकता । तथा उसके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार भी नहीं कर सकता । यह सब उसे ज्ञात है, तथापि उचित बात को वह आचरण में नहीं रख सकता । इतने दुर्गुण होने पर भी उसके चरित्र में एक गुण उभर आता है । वह है उसकी संवेदनशीलता । बिहारीबाबू की मृत्यु पर वह रो उठता है । बिहारी की

1- विश्वास का बल, पृ0 291

2- वही, पृ0 क

3- वही, पृ0 209

मृत्यु के पश्चात् लखनऊ स्टेशन पर मुरारीबाबू से भेंट होने पर भी वह रोता और अपने कर्मों का प्रायश्चित करता है । वह सोचता है -"कहीं बाबू की मृत्यु का कारण मेरी और रमा की निकटता तो नहीं है ।" जीवन में प्राप्त असफलताओं के कारण उसका चरित्र कुण्ठित हो जाता है । ये कुण्ठाएँ उसे भीरु बना देती है, इसी के कारण उसे आत्मग्लानि होती है । जैसा कि प्रारंभ में कहा जा चुका है वह भोग का उपासक है, अत: अपने प्रति भी इमानदार नहीं है ।" वह जीवन को भोग के सिवा और कुछ न मानता था । खाना मनुष्य इसलिए खाता है कि जीने के लिए उसे उसकी आवश्यकता है । भोग भी मनुष्य के लिए आवश्यक इसी अर्थ में है कि वह जीवन का अवलम्ब है । पर त्रिवेणी तो भोग को ही जीवन मान बैठा था ।"[1] यहाँ लेखक ने पात्र के चरित्र के सम्बन्ध में अपनी ओर से टिप्पणी देकर त्रिवेणी के चरित्र की सारी खूबियाँ नष्ट कर डाली है । वास्तव में लेखक न कहता तो भी सम्पूर्ण उपन्यास के अध्ययन के पश्चात् पाठक को बिना किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी पढ़े बिना ही उसके चरित्र का पता चल जाता । इस प्रकार से किया गया चरित्र-चित्रण स्वाभाविक भी बन पाता । वस्तुत: उपन्यासकार ने उसके चरित्र सम्बंधी जैसी टिप्पणी दी है, ऐसा ही सदैव राजीव नहीं रहता । लक्ष्मी की मृत्यु के अनन्तर उसमें विवेकोदय होता है । उसके साथ सिनेमा देखने के रमा के दुराग्रह करने पर वह गर्ज कर कहता है -"---मुरारी की दुलहिन और जीवन की अनुपस्थिति में तुम्हारा मेरेसाथ सिनेमा देखने का हठ करना मुझे स्वीकार न होगा । और मुझे इस बात का भय नहीं है कि तुम इसका बुरा मानोगी । क्योंकि जिस विराट जगत में सूर्य दूर से हथेली के चार इंच के व्यास में छिप जाता है, वहाँ अपने को बड़ा समझना मूर्खता ही नहीं, असभ्यता भी है ।"[2] रमा के विवाह हो जाने के बाद बात-बात में लक्ष्मी पर गुस्सा हो जाने वाला त्रिवेणी जब रमा की परवाह किये बिना उसे ऐसा उपालम्भ देता है, तब हमें आश्चर्य होता है, परन्तु उसमें विवेक का उदय हो जाने के बाद उसका ऐसा व्यवहार स्वाभाविक लगता है । प्रारंभ में वह अपने उत्तरदायित्व से अवश्य भागा-भागा फिरता है, किन्तु उपन्यास के अंत तक पहुँचते-पहुँचते उसके जीवन में ऐसा परिवर्तन आता है जो पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहता । ऐसा परिवर्तन उपन्यासकार ने अनेक उपन्यासों के अनेक चरित्रों में किया है । फास्टर ने पात्रों को जिन दो श्रेणियों में विभाजित किया है[3] उनमें से त्रिवेणी के पात्र को गतिशील पात्रों के अंतर्गत रखा जायगा । क्योंकि वह

1- विश्वास का बल, पृ0 148

2- वही, पृ0 258

3. We may devide charactors in to flate and round.

3- - Aspects of the Novel.E.M.Forster-P.75

परिस्थितियों से प्रभावित होता है । अंत में कहा जा सकता है कि एक वकील के रूप में जीवन-यापन, अलीकवादिता पर आस्था, साली से प्रेम, वेश्याओं के प्रति आकर्षण, गृहस्थ जीवन के प्रति उदासीनता और अंत में विवेकोदय-यही है त्रिवेणी का चरित्र । अंतर्द्वन्द्व द्वारा सफलता-पूर्वक उसका चरित्र-चित्रण किया गया है ।

'गोमती के तट पर' का नायक वसन्त कवि है । उपन्यास के प्रारंभिक पृष्ठों में ही वह सोचता है -'कहीं माँ को, छिपकर, अकेले ही, कभी-कभी कुछ उड़ा खा लेने की मेरी आदत का पता तो नहीं चल गया । कुछ भी हो, मैं इस साधारण जीवन से ऊब गया हूँ । मैं संयम से रहते-रहते निष्प्राण जर्जर होता जा रहा हूँ । मुझको सर्वथा स्वच्छंद विचरना चाहिए ।'[1] उसकी इस विचारधारा के आधार पर उसके चरित्र के कुछ निर्बल पक्ष जाने जा सकते हैं । इसी का अवलम्ब लेकर यह कहा जा सकता है कि वह बड़ा स्वार्थी, भोगलोलुप और पेटू है । साधारण जीवन में संयमपूर्ण जीवन जीने के कारण अवचेतन मन की उसकी वृत्तियाँ उसे स्वच्छंद जीवनयापन करने के लिए प्रेरित करती है । उप-सचिव कैलासबाबू से परिचय होने के पश्चात् उनके पूरे परिवार के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वह सदैव लालायित व प्रयत्नशील रहता है । अपना एक कविता-संग्रह वह उनकी पुत्री कला को भेंट के रूप में देता है । कला उसकी ओर आकृष्ट होती है । अपनी पत्नी मौलश्री के प्रति विकर्षण के कारण वह भी उसकी ओर आकर्षित होता है । दांपत्य-जीवन में परस्पर जिस निष्ठा को अनिवार्य माना जाता है, इसका उसमें नितांत अभाव है । कैलाशबाबू के यहाँ वह सोचता है -'---यह तो मानी हुई बात है कि कमजोरियाँ मुझमें भी हैं मगर तुरन्त इसी क्षण उसके भीतर का शैतान बोल उठा -' इस समय अगर मौलश्री न होती तो कला के साथ मेरा ---।' फिर इसके बाद एक बात और उसके मन में आई कि अगर वह राकेश न होता तो -- ?'[2] परन्तु तुरन्त वह संभल जाता है । ऐसी निकृष्ट भावनाओं के उद्भव पर उसे पश्चाताप होता है । अन्य उपन्यासों के नायकों की भाँति कला के रूप को देखकर वह भी मुग्ध हो उठता है, राकेश के साथ कला के विवाह की बात सोचकर उसके भावि सौभाग्य पर ईर्ष्या के कारण वह द्वेषाग्नि में जलने लगता है । ये सभी बुरी भावनाएँ उसके मानस को क्षुब्ध कर देती है । परिणामत: दोनों भाई अलग-अलग रहने लगते हैं । भाई एवं माँ से अलग रहने के बाद अपने यहाँ पुत्र जन्म- जन्म होने पर भी वह माँ को बुलाता नहीं । व्यवहार का उसे बिलकुल ज्ञान नहीं है । कैलाशबाबू

1- गोमती के तट पर, पृ0 3

2- वही, पृ0 101

के यहाँ बिरजूबाबू उन्हें कहते हैं -' एक बात और है भाई साहब । वसन्त व्यावहारिक बिलकुल नहीं है । आपने सुना ही होगा - उसके लड़का हुआ है । अगर उसके हृदय में अपनी माँ के लिए श्रद्धा होती तो ऐसे अवसर पर सारे वैर विरोध को ताक में रखकर उन्हें जरूर लिवा ले जाता और उनका सम्मान करता । लेकिन जान-बूझकर उसने ऐसा नहीं किया ।'[1] जायदाद सम्बंधी मुकदमा हार जाने पर वह अपने भाई को कुछ लोगों की सहायता से पिटवाने का षड्यंत्र रचता है ; किन्तु वह स्वयं उसे मार नहीं सकता । अपने शत्रुओं के प्रति भी राकेश के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को देखकर वसन्त का हृदय-परिवर्तन हो जाता है । आज तक जो भी बुरे कार्य उसने किये थे, सब विकृति के कारण किये थे । जीवन में व्याप्त बेचैनी उसके समग्र व्यक्तित्व को बिखेर देती है । वस्तुत: उसका चरित्र मानवतापूर्ण है । अंत:निरीक्षण की अद्वितीय शक्ति उसमें निहित है । इसलिए अन्त: निरीक्षण करना वह जानता है । अपनी भूल समझ में आने पर प्रायश्चितरूप में वह गोमती में डूबकर आत्महत्या कर लेता है । सम्पूर्ण जीवन में एकाध० स्वार्थी एवं द्वेषपूर्ण व्यवहार करने वाले वसन्त के चरित्र की महानता तो उसकी मृत्यु के पश्चात् तब प्रकट होती है, जब मकान के प्लाट की फाइल में, प्लाट के स्वामीत्व के प्रमाण-पत्र में राकेश का नाम मिलता है । तब तक राकेश स्वयं भी अपने भाई को समझ सकता नहीं है । उपन्यास के अन्त में भाई का सच्चा रूप ज्ञात होने पर वह सोचता है -'--- चित्र एक ही रहता है, पर उसके पार्श्व दो । भला से भला व्यक्ति भी कहीं न कहीं से क्षुद्र और हीन होता है - जैसे मैं । और ऊपर से हीन और पतित दिखाई देनेवाला व्यक्ति भी कहीं न कहीं से महान वन्दनीय - जैसे भैया ।'[2] त्रिवेणी की तरह वसंत का चरित्र भी विकसनशील है । चिर-काल तक वह अपना प्रभाव पाठकों पर छोड़ जाता है ।

'टूटा टी सैट' का प्रमुख पुरुष पात्र अरुण ही माना जायगा । वाजपेयी जी के अन्य उपन्यासों के नायकों -'चलते चलते' का राजेन्द्र, 'विश्वास का बल' का त्रिवेणी आदि-तथा प्रस्तुत उपन्यास के नायक में०एह०ह एक ही समान दुर्बलता देखी जा सकती है । पड़ोसिन परि-त्यक्ता नीलकमल के प्रति वह आकृष्ट होता है । नीलकमल के पिता श्री को जिन विषम आर्थिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, उनसे वह भली-भाँति परिचित है । अत: आवश्यकतानुसार वह नीलकमल को आर्थिक सहायता करता रहता है । यह सहायक वृत्ति उसकी

1- गोमती के तट पर, पृ0 248

2- गोमती के तट पर, पृ0 323

सहृदयता की परिचायक है । उसके सम्बन्ध में चन्द्रबिन्दु उचित ही कहता है -" मैं अरुण जी का नाम सुना करता था । जब लोगों ने मुझे बतलाया कि जहाँ तक गुण ग्राहकता का सम्बंध है, वे बड़े सहृदय, जिन्दादिल, निष्पक्ष और पारखी ही नहीं, सच पूछिये, तो पूरे जौहरी हैं, तो मुझे लोगों की इस बात पर सहसा विश्वास न हुआ था । लेकिन आज मैं उनका कायल हो गया ।"[1] इस कथन में अन्य पात्र द्वारा अरुण के गुणों का विवेचन कराते हुए लेखक ने उसका चरित्र-चित्रण किया है । नीलकमल के पति संयोगबाबू के यहाँ से तार आने पर नीलकमल अहमदाबाद जाती है, तो अरुण भी उसके साथ जाता है । वहाँ से अपने घर वापस लौटने से पूर्व वह यह कहकर एक ट्रंक नयनरंजन को देता है कि जल्दी में नीलकमल का यह ट्रंक स्टेशन पर ही छूट गया था । नीलकमल के ट्रंक खोलने पर वह देखती है कि शृंगार- प्रसाधन सामग्री के साथ लगभग बीस साड़ियों के सेट रखे हुए हैं ।[2] इस प्रसंग में उसका औदार्य दृष्टि-गोचर होता है । उसका चरित्र, वह नायक होने पर भी, धुँधला-सा प्रतीत होता है ।वाजपेयी जी को अन्य उपन्यासों के नायकों की तुलना में अरुण के चरित्र-चित्रण में सफलता मिली है, ऐसा नहीं कहा जा सकता ।

'अधिकार का प्रश्न' का नायक उपेन्द्र एक पोस्ट मास्टर काशीबाबू का यथार्थवादी पुत्र है । उपन्यास प्रारंभ होने से पहले, जैसा कि पात्र-परिचय में लिखा गया है, वह सनकी तथा उग्र स्वभाव का है । पात्र का इस प्रकार परिचय देकर पाठकों के मन में उसके लिए पूर्वाग्रह पैदा करना हमें समीचीन नहीं लगता । इससे चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है और उस चरित्र के विकास में कृत्रिमता आ जाती है । परिणामत: पात्रों का चरित्र-चित्रण यथोचित ढंग से नहीं होता । उचित तो यही है कि पात्र अपने कार्यकलापों, दूसरों के साथ अपनी बातचीत तथा मनोव्यापारों से अपना परिचय दे । प्रारंभ में दिये गये अपने इसी स्वभाव के कारण पिता जी के साथ बातें करते समय भी वह अशिष्टतापूर्ण भाषा का प्रयोग करता है । उसे पूछे बिना अपनी पत्नी को विदा कर देने पर वह पिता से पूछता है -"आपने अपनी बहू की बिदा कर दी । मैं जानना चाहता हूँ विवाह मेरा हुआ कि आपका ? विदा के सम्बंध में क्या एक बार भी आप मुझसे पूछ नहीं सकते थे ? मनोहर को आप अपने पास बुलाकर कह नहीं सकते थे कि अभी रुखसत नहीं होगी । हो सकता है कि इस अवसर पर आप सोचते हों कि मैं सामाजिकता की घिसी-पिटी मान्यताओं और रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़ने की

1- टूटा टी सेट, पृ0 97

2- वही, पृ0 194 :309:

अशिष्टता का अपराधी हूँ, लेकिन फिर मुझे यह कहना पड़ेगा कि मनुष्य के प्रत्येक अधिकार का उद्भव-उद्भव ही नहीं, विकास भी-परम्पराओं को तोड़े बिना संभव नहीं होता ।"[1] वह निर्भीक है । पुरानी सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ियों आदि में उसे कतई आस्था नहीं है । इसीलिए वह समाज से विद्रोह करना चाहता है । पर वह सफल नहीं होता । जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है वह उग्र प्रकृति का तो है ही, साथ-साथ यदा-कदा उसमें नम्रता की एक झलक भी दिखाई देती है । सिद्धान्तों को लेकर अपने जीजा कुन्दनबाबू के साथ उसका विवाद हो जाता है । इसे कुन्दनबाबू एक बार तो अपना अपमान समझ लेते हैं, पर सारी बातों का पता चलने पर वह उनके पैर छूकर कहता है -"मुझे अपनी गलतियों के लिए, अब जब मैं उन्हें अनुभव कर रहा हूँ, बड़ा खेद हो रहा है ।"[2] सामान्यत: उग्र एवं सनकी स्वभाव के व्यक्तियों में विवेक का अभाव होता है ; किन्तु उपेन्द्र इस बात का अपवाद है । उसके इस कथन में उसकी नम्रता की चरम-सीमा प्रकट होती है । पूरे उपन्यास में कहीं भी इतना नम्र वह नहीं दिखाई देता । 'वह आदमी तो वास्तव में वीर है ; लेकिन एक नम्बर का जिद्दी, अहंकारी और और थोड़ा बहुत सनकी अवश्य है ।'[3] उपन्यास में अनेक प्रसंगों में उसका उग्र व जिद्दी स्वभाव देखा जा सकता है । उसके मन पर जिस बात का भूत एक बार सवार हो जाता है, उसे पूर्ण किये बिना वह मानता नहीं । ससुराल जाने पर उसका मित्र श्यामबिहारी उसे जो पत्र लिखता है उसमें वह स्पष्ट स्वीकार करता है कि उपेन्द्र बौद्धिक है ।[4] देश-भक्ति के नाम पर झूठी प्रदर्शनी (आडम्बर) का वह सदैव विरोध करता है । उसका कहना है कि मैं वेशभूषा को देश-भक्ति का अंग नहीं मानता । नेताओं की आरती उतारने पर भी मेरी आस्था नहीं । केवल पुरुषार्थ की महानता मुझे स्वीकार है ।" मुझे खादी पसन्द नहीं है इसीलिए मैं स्वदेशी वस्त्र पहनना स्वीकार कर लेता हूँ । विदेशी से मुझे घृणा नहीं, इसीलिए उसका बहिष्कार भी मैं नहीं कर सकता ।[5] फलस्वरूप वह सदा विदेशी वस्त्र ही परिधान करता है । विवाह के अवसर पर दहेज में उसे जो कुछ मिला है, उन चीजों से वह संतुष्ट नहीं है । इसीलिए बार-म्बार वह अपनी सास से वस्तुएँ माँगता ही रहता है । उसके ऐसे व्यवहार को देखकर ही उसकी

1- अधिकार का प्रश्न, पृ0 9-10
2- वही, पृ0 42
3- वही, पृ0 51
4- वही, पृ0 59
5- वही, पृ0 57

पत्नी मंजु स्पष्ट कह देती है -'देखती हूँ, तुममें तृष्णा बहुत है। संतुष्ट तो तुम कभी हो ही नहीं सकते।'[1] मंजु के ये शब्द उपेन्द्र के चरित्र को समझने में सहायक होते हैं। पत्नी द्वारा उपेन्द्र के चरित्र के अवगुणों पर प्रकाश डाला गया है ; अत: पाठक उसके इस कथन पर विश्वास रख सकता है और उसको उसके चरित्र का सच्चा ख्याल आ सकता है। उपेन्द्र का चरित्रांकन करने में लेखक ने पर्याप्त परिश्रम किया है ; तथापि उसके चरित्र का स्वाभाविक विकास नहीं हो पाया है। उसके चरित्र का विकास स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता ; क्योंकि कृतिकार ने उपन्यास के प्रमुख चरित्रों की जो सूचि प्रारंभ में दी है, उसमें उसके चरित्र की विशेषताओं को निश्चित करके उसका विकास सीमित कर दिया है। ऐसा लगता है कि इस उपन्यास के सभी पात्र कृतिकार के हाथ की कठपुतली बन गये हैं। लेखक ने उनका सृजन करके उनकी डोर तो अपनी ही उँगलियों में बाँधकर रखी है।

'विजय श्री' का नायक राजनाथ, जैसा कि उपन्यास के एक पात्र राधाकुमुद द्वारा कहा गया है, विवेकशील पुरुष है। उसके सम्बंध में राधाकुमुद कहता है -" इस राजनाथ से हरीतिमा का विवाह मैंने ही करवाया था, उसके केवल एक लक्षण-गुण पर मुग्ध होकर। वह था उसका विवेक। वाणिज्य विषय में उसने प्रथम श्रेणी ही नहीं प्राप्त की थी, विश्वविद्यालय में भी सर्व प्रथम आया था। गौर वर्ण के गोल मुख में हँसती हुई उसकी मुद्रा मुझे बहुत प्रिय लगी थी। प्रकृति का वह साधु था और शरीर से भी बड़ा स्वस्थ-एकदम से किसी मर्यादा-विहित साहब जैसा व्यक्तित्व था।"[2] परन्तु राधाकुमुद के इस मंतव्य के साथ हम सहमत नहीं हो सकते। हमारी दृष्टि से सत्यासत्य विवेक का राजनाथ में नितांत अभाव है। यदि विवेक का अंशमात्र भी उसमें विद्यमान होता तो बिल्वमंगल द्वारा कान भरे जाने पर अपने पत्नी के प्रति प्रति अविश्वास प्रकट करके, उसे चरित्रहीन मान कर, वह कदापि उसका त्याग न करता। परन्तु न ही सत्यासत्य कुछ भी वह सोचता है, न पत्नी को त्याग करने के पश्चात् उसके मन में अंतर्द्वन्द्व पैदा होता है। उसके सरल स्वभाव का ही बिल्वमंगल लाभ उठाता है।'राजनाथ-बाबू बड़े भले आदमी हैं, किन्तु हठी और दुराग्रही भी कम नहीं है।'[3] राधाकुमुद का यह मत सत्य से दूर नहीं है ; परन्तु राजनाथ के मन में जो ग्रंथि बन गई है उसी के परिणामस्वरूप वह हठी बन जाता है और अपना विवेक तक खो बैठता है। जीवन में प्रत्येक क्षेत्र में उसने

1- अधिकार का प्रश्न, पृ0 63

2- विजय श्री, पृ0 105

3- वही, पृ0 56

सदैव विजय ही प्राप्त की है, इसीलिए हरीतिमा को मिलने की उत्कट भावना उसके मन में जागृत होती है, तब पराजय हो जाने के डर से उसका अहं उसे यह सोचने के लिए विवश करता है " अगर मैं राधाकुमुदबाबू के घर जाता भी हूँ, तो प्रकट रूप में मेरा अभिप्राय क्या होगा ? यही न कि मैं हरीतिमा से मिलने आया हूँ ? तब उस घर के लोग यही न समझेंगे कि मैंने हार मान ली है जब कि आज तक के जीवन में सदा विजय श्री का ही वरण किया है ।"[1] परन्तु अपने इस अहं का भी, जीवनशंकर के द्वारा हरीतिमा के चरित्र की शुद्धता के विषय में लिखे गये पत्र की प्राप्ति के बाद, वह त्याग कर देता है और निर्दोष हरीतिमा को सम्मान-पूर्वक स्वीकार कर लेता है । धनाभाव में उसकी माता की मृत्यु ७०० उस पर चिर प्रभाव छोड़ जाती है, अत: किसी की भी माँ को चिकित्सा के अभाव में वह मरने देना नहीं चाहता। इसीलिए घासीराम की माँ को बचाने के लिए अन्य कर्मचारियों के विरोध करने पर भी वह रुपये देता है । माँ के प्रति असीम आस्था का यह प्रसंग प्रमाण है ।

'कर्मपथ' का अजय, जो बी० ए० प्रथम श्रेणी में पास होने पर भी बेकार है, उपन्यास के प्रारंभ में ही एक स्वाभिमानी पुत्र के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होता है । अपने परिवार की आर्थिक परिस्थिति विषम होने के कारण पिता जी से संघर्ष होने पर भी वह संयम से काम लेता है और उन्हें नम्रतापूर्वक उत्तर देता है ।[2] यही तो उसमें और उपेन्द्र में सबसे बड़ा अन्तर है । पिता जी के आदेशानुसार गृहत्याग करने के पश्चात् उसके मित्र घनश्याम के पूछने पर कि बिना सहारे जाओगे किधर ? वह तनिक भी हतोत्साह नहीं होता । उसे अपनी सामर्थ्य पर पूर्ण विश्वास है । अत: घनश्याम से वह कहता है -'जंगल में शेर का बच्चा जब भोजन की खोज में निकलता है, तो वह किसी का सहारा नहीं ढूंढता । मुझे भी अपने पौरुष पर पूरा भरोसा है । मैं अभी से कुछ कहने की स्थिति में नहीं हूँ । लेकिन तुम देख लेना, मैं एक दिन सफल होकर मानूँगा ।"[3] उसका यही आत्म विश्वास बाद में साकार रूप धारण करता है । अपने प्रति किसी के द्वारा भी किये गये उपकारों को वह सदैव स्मरण में रखता है । अजनबी लोगों के बीच बैठकर भुनी हुई शकरकन्दी खाने के पश्चात् वह हाथ जोड़कर राम-राम कहता है और कहता है -' आप लोगों के उपकार को मैं कभी नहीं भूलूँगा । कभी दिन फिरे, तो अवश्य भेंट करने आऊँगा ।"[4] परन्तु यह उसका निरा विवेक ही है । वास्तव में बम्बई जाकर

1- विजय श्री, पृ० 80
2- कर्मपथ, पृ० 29
3- वही, पृ० 37
4- वही, पृ० 56

अथाक परिश्रम के पश्चात् होटल चालू करने के बाद उसके दिन तो फिरते हैं, पर वह कभी उन लोगों के पास नहीं जाता, जिन्होंने विपत्तिकाल में उसकी सहायता की थी, तथापि वह उन सभी सहायकों को कभी भूलता नहीं । उनके प्रति हृदय से वह कृतज्ञ है ।

बम्बई में वह सुमन के साथ रात को एक ही कमरे में सोता भी है ; परन्तु कभी भी वह अनुचित व्यवहार नहीं करता । यह संयम ही उसका कभी भी पतन नहीं होने देता । सुमन के विषय में वह दिन भर सोचता रहता है -' यह सत्य है कि इससे पहले कभी कोई लड़की उसके चिन्तन में स्थान ग्रहण नहीं कर पाई थी । विश्वविद्यालय में तो अनेक लड़कियों से उसका परिचय था, लेकिन कोई लड़की उसके संयम को झकझोर नहीं पाई थी ।'[1] विद्यार्थी अवस्था के पश्चात् बम्बई में भी उसके इसी संयमपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय हमें प्राप्त होता है । अन्य ग्राम युवकों की तरह उच्छृंखलता उसे छू तक नहीं गई है । प्रथम परिचय में ही वह किसी भी व्यक्ति को न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य प्रभावित करता है । ठाकुर साहब की अनुभवी आँखें उसे देखते ही समझ जाती हैं कि वह गाँव के अन्य लड़कों की तरह नहीं है, जो झूठी शान में आकर पतलून पहने इधर-उधर फिरा करते हैं ।[2] होटल में भी वह सबके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करता है । उसकी व्यवहार कुशलता के कारण ही होटल का कार्य समान गति से चलता रहता है । अन्य उपन्यासों -'टूटा टी सैट', 'राजपथ' आदि- के नायकों की भाँति वह भी आस्थावादी है । बम्बई जाते समय ट्रेन में सुमन के कहने पर कि 'कहीं भी चलिए । काम हमें मिल जाना चाहिए ।' वह कहता है -'भगवान पर विश्वास रखो । उसका विश्वास छोड़कर कोई व्यक्ति न कभी सुख प्राप्त कर सकता है, न शांति ।'[3] उसका यह कथन ईश्वर के प्रति उसकी अटूट श्रद्धा ही व्यक्त करता है ।

वह आदर्शवादी पात्र है । संसार में सामान्यत: ऐसा पात्र नहीं मिलता ।' वह एक ऐसा आदर्श पात्र है जो साधारण जीवन में बहुधा नहीं मिलता ; क्योंकि वह सुमन के साथ एकान्त मिलन की घड़ियाँ भी स्वतंत्रता और निर्भीकतापूर्वक व्यतीत और वहन नहीं करता । मानवीय वृत्तियों का स्वाभाविक किन्तु रागात्मक उन्मेष आर उसमें नहीं होता, तो उसका चरित्र आदर्श होते हुए भी जड़, यंत्रवत्, अपवादमूलक और अस्वाभाविक हो जाता । कृतिकार ने

1- कर्मपथ, पृ0 98

2- वही, पृ0 76

3- वही, पृ0 116

अपने अजय नामक नायक में जिस सामाजिक प्रतिनिधि को देखा है, वह एक सभ्य मानव अधिक है और पशु मानव बहुत कम ।"[1] अर्थात् वह भी मानवीय दुर्बलताओं से सर्वथा परे हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता । क्योंकि कहीं न कहीं अपने ढंग, प्रकार और शिष्ट सौंदर्य-बोध से अनुरंजित भाषा में उसने अपने मनोभाव अवश्य व्यक्त किये हैं । इसीलिए उसका चरित्र-चित्रण भी स्वाभाविक ढंग से हुआ है ।

ऊपर किये गये चरित्रों के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी जैसा जीवन जीते हैं, ऐसा ही अपने पात्रों के माध्यम से चित्रित करते हैं । उनके कुछ उपन्यासों में स्त्री चरित्रों एवं कुछ में पुरुष चरित्रों का चित्रण सुन्दर बन पड़ा है । प्रारंभिक उपन्यासों में नारी-पात्रों के चरित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है, तो 'राजपथ','निमंत्रण','विश्वास का बल' आदि उपन्यासों में पुरुष चरित्र विशिष्ट हैं ।'सूनी राह','टूटा टी सैट' तथा 'अधिकार का प्रश्न' में नारी तथा पुरुष दोनों चरित्र समान रूप से सुन्दर बन पड़े हैं । चरित्र-चित्रण करने का वाजपेयी जी का कौशल देखने के लिए 'चलते चलते','विश्वास०काल का बल', 'राजपथ','टूटते बन्धन','सूनी राह','गोमती के तट पर','अधिकार का प्रश्न' तथा 'भूदान' आदि प्रमुख कृतियाँ ही पर्याप्त होंगी । उनके उपन्यासों में दुकानदार, अध्यापक, वकील, चलचित्र-दिग्दर्शक, अभिनेता, अभिनेत्री, मजदूर, कृषक, नेता, आफिसर, डाक्टर, नर्स, जज, मजिस्ट्रेट आदि सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण किया गया है । ये सभी भारतीय समाज के अंग है । अत: हमें वे अपरिचित नहीं लगते । इन पात्रों में सामान्यत: उनके नारी पात्र अधिक सबल प्रतीत होते हैं । उनके सशक्त होने के कारण पुरुष पात्र उपन्यास में उभर नहीं पाते । उदाहरण के रूप में 'निमंत्रण' की मालती,'चलते-चलते' की छोटी भाभी,'विश्वास का बल' की वंदना,'वासना से परे' की वायलेट,'प्रेमपथ' की तारा, 'अनाथ पत्नी' की रजनी तथा 'पतिता की साधना' की नन्दा को देखा जा सकता है । वाजपेयी जी के चरित्र व्यक्ति हैं । आगे पृष्ठों के प्रारंभ में वाजपेयी जी की कहानियों में प्राप्त चरित्र-चित्रण सम्बन्धी प्रमुख विशेषताओं सम्बंधी विचार किया जायगा । तत्पश्चात् उनकी कहानियों के प्रमुख पुरुष एवं नारी पात्रों का क्रमश: चरित्र-विवेचन किया जायगा ।

1- कर्म-पथ, (परिदृष्टि) पृ0 14

'वाजपेयी जी की कहानियों में चरित्र -चित्रण और प्रमुख पात्रों का चरित्र-विवेचन'

कहानी का फलक उपन्यास की तुलना में सीमित रहता है ; अत: उपन्यास की भाँति उसमें पात्रों का चरित्र-चित्रण विस्तार से प्राप्त नहीं होता । इस बात को एक आलोचक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है,'कहानी में रचना विस्तार की सर्वांगिण परिमिति दिखाई पड़ती है । इस तथ्य का प्रभाव चरित्र और उसके विकास-क्रम पर भी पड़ता है ।'[1] कहानी में इस स्थान-संकोच के कारण कुछ विद्वानों का मत है कि'वास्तव में कहानियों का काम चरित्र-चित्रण है भी नहीं ।'[2] डा0 श्री कृष्णलाल ने भी इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'कहानी में उपन्यास की भाँति किसी चरित्र का अनेक कार्यों और प्रसंगों के बीच यथाविधि विस्तृत चित्रण संभव ही नहीं है, इसीलिए कहानी का केन्द्र बिन्दु चरित्र चित्रण नहीं हो सकता ।'[3] उनके मंतव्यानुसार कहानी का केन्द्र बिन्दु चरित्र-चित्रण भले ही न हो, परन्तु उसका कहानी में महत्वपूर्ण स्थान तो है ही । कथाकार वाजपेयी जी की अधिकांश कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं । चरित्र-चित्रण की विभिन्न प्रणालियों के विषय में इस अध्याय में पीछे हम विस्तारपूर्वक देख चुके हैं, अत: यहाँ वाजपेयी जी की कहानियों में प्राप्त चरित्र-चित्रण कला की प्रमुख विशेषताओं पर हम विचार करेंगे ।

वाजपेयी जी की कहानियों में प्राप्त चरित्र-चित्रण सम्बंधी प्रमुख विशेषताएँ :-

वाजपेयी जी की कहानियों के चरित्रों की सर्व प्रमुख विशेषता यह है कि वे घटनाओं के अनुरूप ही चित्रित हुए हैं । उनकी कहानियों के पात्रों का व्यक्तित्व उनके उपन्यासों के पात्रों के व्यक्तित्व की भाँति पूर्ण एवं निखरा हुआ भले ही न हो, परन्तु जितना भी वह चित्रित हुआ है, पूर्ण, स्वाभाविक एवं सजीव है । उदाहरण के लिए हम उनकी 'बाती और लौ','प्रलोभन','मिठाई वाला','साँप का बिल','दुग्धपान','खाली बोतल','कबाड़ी', 'गृहस्वामिनी','उर्वशी','मिलन : एक बलिदान','ठंडी राख की लपट','निंदिया लागी', 'चोर','स्पर्द्धा','मैना','हृदगति','शबनम','रजनी','ट्रेन पर''टिकुली' आदि कहानियों के चरित्रों को ले सकते हैं ।

1- कहानी का रचना विधान, डा0 जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ0 93

2- 'कहानी में चरित्र-चित्रण','कहानी' (मासिक) में प्रकाशित डा0 देवराज का निबन्ध वर्ष-3, अंक-1, पृ0 40

3- आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास, डा0 श्री कृष्णलाल, पृ0 328

वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों की भाँति अपनी कहानियों के पात्रों के व्यक्तित्व विकास में मनोविज्ञान का यथावश्यक अवलम्ब लिया है । उपन्यासोंमें की भाँति ही अपनी कुछ कहानियों में व्यावहारिक मनोविज्ञान का वाजपेयी जी ने आवश्यकतानुसार उपयोग किया है । ऐसी कहानियों में मनोवैज्ञानिक कहानीकारों की भाँति उन्होंने पात्रों का मनोविश्लेषण किया है । अपने उपन्यासों की भाँति इस प्रकार की कहानियों में भी उन्होंने मनुष्य के आंतरिक भावों को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है । उदाहरण के लिए 'परीक्षा के वे दिन', 'राजपथ' 'उपहार', 'उर्वशी', 'अंधेरी रात', 'समर्पण', 'अपना', 'साँप का बिल', 'यदि', 'प्रतिदान' आदि कहानियों को ले सकते हैं । इनके अध्ययनोपरान्त हम यह निश्चितरूप से कह सकते हैं कि पात्रों के बाह्य चित्रण में वाजपेयी जी को जितनी सफलता मिली है, उतनी ही पात्रों के मानसिक चित्रण मेंभी मिली है । इस प्रकार की कहानियों में चरित्रों के भीतर पैठकर उनके मानसिक ऊहापोह तथा विचारों के संघर्ष का चित्रण करने की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है ।

अपने उपन्यासों की भाँति ही वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों के चरित्र-चित्रण में भी चरित्र-चित्रण की दोनों प्रणालियों - प्रत्यक्ष तथा परोक्ष - का आश्रय लिया है । जिन कहानियों में उन्होंने चरित्रों के भाव जगत को उभारना चाहा है, वहाँ उन्होंने पात्रों के अंतर्द्वन्द्व को दिखाकर उनके चरित्र को स्पष्ट किया है ।

वाजपेयी जी की कहानियों के चरित्रों की महत्वपूर्ण विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब हम उनकी कहानियों के प्रमुख पात्रों का चरित्र विवेचन प्रस्तुत करेंगे । प्रथम हम उनके पुरुष पात्रों के चरित्र पर विचार करेंगे ।

मिठाई वाला :

'मिठाई वाला' कहानी के नायक मिठाई वाला का चरित्र आरंभ से अंत तक प्रस्तुत कहानी में छाया हुआ है । इसी चरित्र के कारण ही इस कहानी की घटनाओं को गति - मिलती है । पूरी कहानी में मिठाई वाला हमारे समक्ष तीन बार उपस्थित होता है । सबसे प्रथम खिलौने वाले के रूप में, उसके बाद मुरली वाले के रूप में और अंत में मिठाई वाले के रूप में ।

खिलौने बेचने के बाद छः महीने के पश्चात् उसी नगर में वह मुरली बेचने के लिए आता

है । कहानी में उसका प्रथम परिचय दो व्यक्तियों की बातचीत के द्वारा प्राप्त होता है - 'उम्र तो उसकी अभी अधिक न होगी, यही तीस-बत्तीस का होगा । दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफा बाँधता है ।'[1]

बच्चे उसे अति प्रिय हैं । बच्चों के साथ वह भी बच्चा बन जाता है । उनके साथ वह बहुत ही स्नेह से बातें करता है, तभी तो रोहिणी अनुभव करती है,' बच्चों के साथ इतने प्यार से बातें करने वाला फेरी वाला कभी पहले नहीं आया । फिर वह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है । भला आदमी जान पड़ता है । समय की बात है, जो बेचारा इस तरह मारा मारा फिरता है । पेट जो न कराये, सो थोड़ा ।'[2] उसके आगमन के समाचार दो-चार दिनों में नगर भर में फैल जाते हैं । लोग कहते हैं- -'भई वाह । मुरली बजाने में वह एक ही उस्ताद है । मुरली बजाकर, गाना सुनाकर, वह मुरली बेचता है । सो भी दो-दो पैसे । भला, इसमें उसे क्या मिलता होगा ? मेहनत भी न आती होगी ।'[3] लोगों के इस कथन से ज्ञात होता है कि उसे संगीत का भी ज्ञान है । कभी-कभी सस्ते दामों में मुरली बेचने में उसे कुछ भी नहीं मिलता है, तभी तो अपनी बातों के प्रति अविश्वास प्रकट करने वाले विजयबाबू को विनयपूर्वक वह कहता है,'---आप भला काहे को विश्वास करेंगे । लेकिन सच पूछिये, तो बाबू जी, इनका असली दाम तीन ही पैसा है । आप कहीं से भी दो-दो पैसे में यह मुरलियाँ नहीं पा सकेंगे । मैंने पूरी एक हजार बनवाई थी, तभी मुझे इस भाव पड़ी हैं ।'[4] वह कभी भी किसी पर गुस्सा नहीं होता । विजयबाबू को दिये गये उत्तर में उसका मृदुभाषी स्वभाव स्पष्ट झलकता है । अपने विभिन्न व्यवसायों में से उसे खाने भर को मिल जाय, तो भी वह संतुष्ट हो जाता है । कभी-कभी तो उसे कुछ भी नफा नहीं होता । परन्तु उसे संतोष,धीरज और कभी-कभार असीम सुख की प्राप्ति अवश्य होती है और यह सब वह चाहता भी है ।

उसके चरित्र के उदात्त पक्ष का परिचय तो हमें तब प्राप्त होता है, जब वह अपनी करुण कथा कहता है । रोहिणी के उसके सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने के औत्सुक्य को देखकर वह कहता है-'मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था । मकान,व्यवसाय,

---

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 114
2- वही, पृ0 117
3- वही, पृ0 114
4- वही, पृ0 116

गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर सभी कुछ था । स्त्री थी ; छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे । मेरा वह सोने का संसार था । बाहर संपत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख का आनन्द । स्त्री सुन्दर थी, मेरा प्राण थी । बच्चे ऐसे सुन्दर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने । उनकी अठखेलियाँ xxx के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था । समय की गति ! विधाता की लीला ! अब कोई नहीं है ! दादी, प्राण निकाले नहीं निकले, इसलिए अपने उन बच्चों की खोज में निकला हूँ । वे सब अंत में होंगे तो यहीं कहीं । आखिर कहीं-न-कहीं जन्मे ही होंगे । उस तरह रहता, घुल-घुल कर मरता । इस तरह संतोष-सुख के साथ मरूँगा । इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की झलक-सी मिल जाती है । ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे इन्हीं में उछल-उछल हँस-खेल रहे हैं । पैसे की कमी थोड़े है, आपकी दया से पैसे तो काफी हैं । जो नहीं है, इस तरह उसी का पा जाता हूँ ।'[1]

इसमें उसकी भावुकता दिखाई देती है । परन्तु वह मात्र कोरी भावुकता नहीं है । इस भावुकता में उसका विवेक भी बोल रहा है । ऐसी 'विवेकपूर्ण' भावुकता निराश मन को सहारा देती है और फिर वह दूसरों को सहारा देने के लिए उत्सुक होती है ।'[2] (सन.सं० भ-प्र-बन. पृ०-88) वह संयमी है भी है । यदि वह संयमी न होता, तो धनवान् होने के कारण, वह भी 'उर्वशी' कहानी का जौहरी बनकर अज्ञानजनित प्रतिकार में विश्वास रखता और जौहरी की भाँति वह भी अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ईश्वर से कहता,' तुमने यदि मुझसे एक को छीन लिया, तो देख लो, मैं, फिर वैसी ही तीन रखता हूँ ।'परन्तु ऐसा न करके वह अपने संयम तथा ईश्वर के प्रति आस्था का ही परिचय देता है । बच्चों के साथ का वातलिाप[3] उसके उदार, उन्नत और विनोदी स्वभाव पर अच्छा प्रकाश डालता है ।

वाजपेयी जी ने समाज के यथार्थ को सभी स्तरों पर देखा है - मिठाई वाले के संयमित और जौहरी के प्रतिक्रियात्मक स्तर पर भी । वस्तुत: दोनों स्तर यथार्थ हैं । समाज में सभी प्रकार के पुरुष प्राप्त होते हैं ; किन्तु समाज को अभीष्ट तो मिठाई वाला ही होगा । वह दूसरों के बच्चों की किलकारियों में अपने बच्चों की स्मृति टटोलता है । पुनर्जन्म की भारतीय आस्था उसका एकमेव सहारा है । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मिठाई वाले में संयम, औदार्य, धैर्य, संतोष आदि गुण पाये जाते हैं । उसका उदार व्यक्तित्व पाठकों के मन पर अमिट छाप छोड़ता है ।

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ० 119
2- साहित्यकार पं.भगवतीप्रसाद वाजपेयी पृ. ६०
3- वही, पृ० 116-117

केदारबाबू :

वे 'खाली बोतल' कहानी के प्रमुख पुरुष पात्र है। उनका परिचय देते हुए उनका मित्र बिहारी कहता है -'इन केदारबाबू को मैं बीस वर्षों से जानता हूँ। इस मकान में वे तब भी अकेले ही रहते थे। स्वास्थ्य में अब थोड़ा अंतर आ गया है। गाल अब थोड़े पिचके-से मालूम होते हैं। आँखों के नीचे की पलकों में अब कुछ गहरी कालिमा झलकने लगी है। केश भी इक्का-दुक्का पका देख पड़ता है। बस, इतना ही अंतर आ गया है। पर शरीर इनका जैसा दोहरा तब था, वैसा ही अब भी है। अत्यधिक पान खाने की आदत अब तक नहीं गई। चश्मा पहले भी लगाते थे। हाँ, अब दाढ़ी-मूँछ बिलकुल साफ रखते हैं, पहले मूँछ जरा भरी-भरी-सी रहती थी।'[1]

अविवाहित एवं अकेले होने के कारण दोनों वक्त का खाना वे होटल से मंगा लेते हैं। प्रात:काल तथा संध्या समय घण्टे भर के लिए एक नौकर भी नियमित रूप से उनके यहाँ आता रहता है। वे कुछ भी कार्य नहीं करते। उनके पिता कुछ रुपये छोड़ गये हैं। वही बैंक में जमा है। उसी से थोड़ा-थोड़ा लेकर खर्च करते हैं। सायंकाल पाँच-छ बजे पब्लिक लाइब्रेरी जाते हैं। वहाँ कई घण्टे बैठते हैं। फिर रात के दस-ग्यारह बजे तक का कार्यक्रम अनिश्चित रहता है। कभी घर पर मिलते हैं, तो कभी घर बंद रहता है। प्रात: काल आठ बजे से लेकर साधारणतया शाम तक वे घर पर मिलते हैं। उनके एकाकी जीवन का प्रभाव उनकी दिनचर्या पर भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

उनकी मनोदशा(Mood) सदा समान नहीं रहती। यदि वे बात करने के मूड़ में है, तो कुछ बातचीत करेंगे, नहीं तो मौन ही बने रहेंगे। यह उनके चरित्र की प्रमुख विशेषता है। मध्य वर्ग के पात्र होने पर भी मालती और उसके साथ आनेवाले मेहमान उन्हें गरीब समझें, ऐसा वे नहीं चाहते, अत: उनको घूमने के लिए मोटर की व्यवस्था करते हैं तथा एक कमरे को सुचारु रूप से सजाते हैं। मालती के अनुरोध करने पर उसके यहाँ वे जाते हैं और कई दिनों के पश्चात् लौट आते हैं, तो अस्वस्थ हो जाते हैं।

बिहारी के उनके यहाँ जाने पर वे उसे रोज़ कहते हैं-'अब इस बार मर जाना चाहता हूँ, बिहारी। जीवन को खूब समझ लिया। तबियत ऊब गई। कहीं कुछ नहीं है। व्यर्थ का

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 37-38

बोझ कौन संभाले ? -स्वप्नों की माया । पागल मन का प्रमाद । कोरी मृग-तृष्णा । जानते हो, क्यों बीमार पड़ा हूँ ? जब से आया हूँ, बराबर उपवास ही करता रहा । फिर जो तोड़ा भी, तो प्रतिक्रिया को संभाल न सका, अत्यधिक प्यार की भी प्रतिक्रिया होती है, बिहारी ! कभी अनुभव किया है ?---तब तुम कुछ जान नहीं सके- जीवन को कतई समझ ही नहीं पाये । इतने दिनों तक मेहमानदारी में रहा । चाहता तो और भी कुछ दिनों तक रह सकता था । किन्तु सोचा- सब व्यर्थ है । मान लो कि कोई किसी का है ही ; तो इससे क्या ? केवल होकर ही क्या होता है ? फिर मान लो कि कुछ हुआ भी, तो वह 'कुछ' जीवन की अनंत-अगाधधारा में कितने दिन साथ चलेगा ?'[1]

मालती उन्हें बहुत चाहती है । वे भी उसे चाहते हैं । जीवन उन्हें अर्थहीन लगता है। प्रेम ने उन्हें हतोत्साह बना दिया है । वे टूट गये हैं । मालती के प्रेम के कारण ही वे अत्यधिक अस्वस्थ हो जाते हैं । उस समय तार करने का प्रस्ताव करके वे रुक जाते हैं । स्वस्थ हो जाने पर तार देने का प्रस्ताव करते क्षण जो विमल हास उनकी मुद्रा पर झलक उठा था,उसको याद करते हुए बिहारी कहता है -' ऐसा जान पड़ता है, जैसे वही उनका आंतरिक स्वरूप था। ऊपर से उत्तरंग, भीतर से तपस्वी । प्रकट में विलसित- अंतर में शांत और जागरूक ।'[2] उनके यही आंतरिक गुण उन्हें असाधारण मनुष्य बना देते हैं ।

यद्यपि उनका जीवन सरल है, तथापि उनके जीवन-काल में कोई अन्य भी उन्हें सही अर्थ में नहीं समझ पाता है । यहाँ तक कि उनका अभिन्न मित्र बिहारी भी बीस वर्ष के मैत्री-काल में उन्हें 'चिर विरही-मात्र' तथा 'निराश प्रेमी' समझता रहता है । परन्तु उनके जीवन के अंतिम दिनों की एक घटना उसका यह भ्रम दूर कर देती है । मालती, दूर के सम्बंध से, केदारबाबू की बहन होती थी । एक बार उसके कहने पर योरप घूम आने की उनकी भी कुछ इच्छा होती है, परन्तु फिर यह सोचकर वे इनकार कर देते हैं कि 'उसके स्वामी को क्या यह कभी सहन हो सकता है ? समाज के प्रति विद्रोही बनना और बात है, पर यह तो सामाजिक धर्म के प्रति एक प्रकार का अनाचार हुआ न ? मनुष्य को इतनी हिंसा कभी शोभा नहीं दे सकती ।'[3] मालती को चाहते हुए भी वे कभी अपना विवेक नहीं भूलते । इन शब्दों में उनके विचारशील स्वभाव का परिचय हमें मिलता है । वे संवेदनशील हैं । मालती के दुख से वे पीड़ित

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 42-43
2- वही, पृ0 43
3- वही, पृ0 44

है । उसके दु:खी दाम्पत्य-जीवन की बातें करते-करते उनका कण्ठ रुद्ध और नयन सजल हो उठते हैं ।

एक दिन मालती के उनके यहाँ आने पर उसकी पसंद की सब चीजें खरीदकर वे उसे देना चाहते हैं । उन्हें यह मालूम है कि असल चीज-पति का प्रेम- तो उसे मिल नहीं रही । यह सब तो केवल आत्मप्रवंचना है । मालती प्यासी है, यह वे जानते हैं । शायद इसीलिए वे रिस्क में पड़ना नहीं चाहते । मालती ने केदारबाबू के प्रति अपने प्रेम में अपना जीवन तक उत्सर्ग कर दिया है, इस बात को प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं -' जो नारी अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने को तत्पर हो, उससे भी कुछ छिपाया जाये ? इसका तो मतलब यह हुआ कि मैं केवल ग्रहण कर सकता हूँ, अनुग्रहण नहीं कर सकता । केवल ले सकता हूँ, दे नहीं सकता ।'[1]

यह पीड़ा उनके हृदय में घर कर जाती है । दु:ख भूलने के लिए वे मद्यपान करते हैं, परन्तु दिन-प्रतिदिन उनका विषाद बढ़ता ही जाता है, परन्तु इस विषय में वे मालती से कभी कुछ नहीं कहते । वह सुखी रहे, यही उनकी एक मात्र इच्छा है । अपने घर जाते समय मालती रोती है, तो वे उसे खूब समझाते ही रहते हैं । वे उसे इतना सामान देते हैं कि बुक कराने में ही बीस रुपये खर्च होता है । नौकर कहता है -'कपड़े, खिलौने, तस्वीरें, पुस्तकें-सब कुछ दे दिया और जबरदस्ती दिया । ग्यारह हजार रुपये का चेक दिया, सो अलग ।'[2] नौकर के ये शब्द केदारबाबू के औदार्य पर प्रकाश डालते हैं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि केदारबाबू आदर्शप्रेमी हैं । मालती के प्रति उनके प्रेम में कहीं भी कलुष नहीं दिखाई देता । उसे वे आश्वासन देते रहते हैं, समझाते रहते हैं । संयम, उदारता, संवेदनशीलता, सहनशीलता आदि गुणों का सामंजस्य उनके चरित्र को उभारता है । पूरी कहानी में उनका चरित्र ही महत्वपूर्ण है । कहानी में से केवल उनके पात्र को हटा दिया जाय, तो कथानक का अस्तित्व ही समाप्त हो जाय ।

राधाकुमुद :

वाजपेयी जी की आदर्शवादी कहानी 'ट्रेन पर' का नायक राधाकुमुद भी प्रस्तुत कहानी के शेष दो पात्रों की तुलना में आदर्श के विषय में तनिक भी पीछे नहीं है । कहानी

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 45

2- वही, पृ0 46

के प्रारंभ में ही लेखक ने उसके वाचाल स्वभाव का परिचय दिया है । तत्पश्चात् शीघ्र ही वाजपेयी जी उसके विषय में लिखते हैं,'उसका नाम है राधाकुमुद । लम्बा कद है । बदन पर स्लेटी कलर का मुलायम ओवरकोट और उसके नीचे पैरों पर कभी-कभी झलक उठने वाला (उसी से मिलते-जुलते रंग का) पैंट उस पर बहुत खिल रहा है । सिर पर ऊपर की ओर करीने से सँवारे हुए, मर्यादित केश कभी-कभी भीनी-भीनी खुशबू से लहरा उठते हैं । आँखें कुछ-कुछ लाल हैं और रात के जागरण को बिना पूछे बतला उठती हैं । पैंट के पाकेट से कभी-कभी सिगरेट निकाल कर दो-चार कश लेकर, इसकी आग बुझाकर फेंक देता है ।'[1]

ट्रेन के जिस रिजर्व्ड डिब्बे में राधाकुमुद सपत्नीक यात्रा कर रहा है, उसी डिब्बे में विवशता के कारण किसी व्यक्ति के अचानक आ जाने पर, उसकी परिस्थिति से अवगत हो जाने के अनन्तर, वह उसके साथ सौजन्यपूर्ण व्यवहार करता है । आगन्तुक राधाकुमुद से अत्यधिक प्रभावित होता है ; अत: राधाकुमुद के सो जाने पर, आगन्तुक जाते समय, सुनन्दा के सुखी दाम्पत्यजीवन से संतुष्ट होकर उसे कहता है -' अपने प्राणों का मोह तो मैं संवरण कर सकता हूँ, किन्तु तुमको स्वामी के रूप में यह जो देवता मिला है, उसके विमल जीवन के उत्तरंग मोह को मैं किसी तरह का आघात नहीं पहुँचा सकता ।'[2] सुनन्दा के प्रेमी के मुख से नि:सृत ये शब्द राधाकुमुद के चरित्र -प्रकाशन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं । साथ ही आगन्तुक की सज्जनता का भी परिचय हमें प्राप्त होता है । यहाँ एक साथ दो पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है ।

राधे बहुत समझदार आदमी है । आगन्तुक के सम्बंध में'वह कौन था ?' का संक्षिप्त उत्तर सुनन्दा से प्राप्त करने पर भी वह सब कुछ समझ जाता है । आगन्तुक के साथ जो वार्तालाप हुआ था, उसका प्रत्येक शब्द सुनन्दा के उसके साथ के सम्बंध को समझने में उसे सहायता पहुँचाता है । वह जितना समझदार है, उतना ही उदार भी है । उसके औदार्य की चरमसीमा तो तब दिखाई देती है, जब वह अपनी पत्नी से कहता है -'तुम उसके साथ जाना चाहो, तो उसे खोजकर मैं तुम्हें सौंप सकता हूँ ।'[3] इन शब्दों के द्वारा राधाकुमुद के आदर्श रूप का चरित्रोद्घाटन होता है । सुनन्दा को भी पति पर विश्वास है, तभी तो वह कहती है -

---

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 128

2- वही, पृ0 134

3- वही, पृ0 135

मैं जानती हूँ, तुम ऐसा कर सकते हो । तभी तो मैं तुम्हें पा सकी हूँ । लेकिन तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि वह मेरा कोई नहीं है । रह गई उसकी बात । सो मनुष्य के इस पागल मन को तुम बाँध भी सकते हो कि बाँधने ही चले हो ।'[1] सुनन्दा के इन शब्दों में राधाकुमुद के प्रति अटूट आस्था ही प्रकट होती है । राधाकुमुद का यह औदार्य दाम्पत्यजीवन के बंधन को दृढ़तर तथा सुनन्दा को पति-परायणा नारी बना देता है ।

छोटी-सी कहानी में तीन पात्र हैं - राधाकुमुद, सुनन्दा तथा उसका पूर्व प्रेमी । तीनों के चरित्र-चित्रण के लोभ में लेखक एक भी पात्र का चरित्र-चित्रण पूर्ण ढंग से नहीं कर सका है । छोटी-सी कहानी में इतना अवकाश भी नहीं रहा है । परन्तु तीनों का चरित्र-चित्रण जितना हुआ है, सजीव हुआ है । राधाकुमुद के चरित्र को पाठक दीर्घकाल तक नहीं भूल सकते ।

टिकुली :

टिकुली एक बाल विधवा है । उसके चरित्र का निर्माण लेखक ने यथार्थ तथा आदर्श के ताने-बाने बुनकर किया है । उसका परिचय देते हुए वाजपेयी जी ने लिखा है -'टिकुली वंशी की स्त्री नहीं है ; बहन या भाभी भी नहीं । क्या है, यह खुलकर एक शब्द में, शायद कहा नहीं जा सकता । गाँव के लोग उसके सम्बंध में सिर्फ इतना ही जानते हैं कि वह बंशी की ससुराल के पास-पड़ोस की लड़की थी और बाल विधवा थी । और उसी नाते से, वह शुरू से ही, उसे जीजा कहती आई है ।'[2] इससे उसकी कुछ जानकारी हमें प्राप्त होती है ।

गाँव की जासूस नारी गुलबिया नाइन टिकुली को बंशी की पत्नी के रूप में संबोधित करती है, यह सुनकर एकाध क्षण के लिए वह क्रोधित होती है, परन्तु शीघ्र ही वह अपने आप को संभाल लेती है । नाइन को वह एक भी कटु शब्द नहीं कहती, वरन् कोमल वाणी में इतना ही कहती है -'तुमको मैंने पहचाना नहीं, बहन ।'[3] उसकी मधुर वाणी तथा आत्मीयता पूर्ण व्यवहार से नाइन पराजित हो जाती है । टिकुली की व्यवहार कुशलता के कारण ही नाइन का भ्रम भी दूर हो जाता है । टिकुली नाइन को बायने में जो अभूतपूर्व भेंट देती है, इससे वह कृतज्ञ हो जाती है । अपने विषाय में टिकुली गंभीर होकर स्पष्ट रूप से गुलबिया को बतलाते

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 135

2- वही, पृ0 121

3- वही, पृ0 123

हुए कहती है -" मैं जीजा की ससुराल की जरूर हूँ, उनके साथ रहने के लिए भी चली ही आयी हूँ। लेकिन मैं और चाहे जो होऊँ- उनकी घर वाली नहीं हूँ। मैं विधवा हूँ और जिन्दगी भर मुझे इसी तरह रहना है। मैं किसी को जानती नहीं, मैंने किसी को देखा भी नहीं। किसी तरह की याद मुझे उनकी नहीं है। तो भी मैं इन्हीं की हूँ। आदमी बात करने के लिए अपने पास किसी को चाहता है। चाहता है, दु:ख में वह उसे उठकर पानी पिला सके और सुख में पास बैठकर दो बातें कर ले। पर ऐसे आदमी दुनिया में मिलते कहाँ हैं? मैंने देखा जीजा जी में कुछ सचाई और लोगों से ज्यादा है, भीतर से कमजोर भी शायद और लोगों की तरह नहीं है। इसीलिए यहाँ चली आई हूँ।"[1] उसके इस कथन से यह पता चलता है कि अपने पति को उसने देखा नहीं है, तथापि उनके प्रति, उनके मृत्यु के उपरान्त भी, उसके हृदय में अटूट श्रद्धा है। वह सच्चे अर्थ में भारतीय नारी है तथा उसके ऐसे कथन से प्रतीत होता है कि लेखक भारतीय संस्कृति का चाहक है।

टिकुली के मुँह से उपर्युक्त बातें सुनकर नाइन सन्न रह जाती है। उसे अनुताप होता है। वह सोचती है -"अरे बाप रे! ऐसा अखण्ड जिसका वैधव्य है उसके लिए कैसे अपमान की बात सोच डाली। ऐसी स्त्री तो देवी होती है। कहीं शाप दे दे, तो मैं तो कहीं की न रहूँ!"[2] यह भारतीय संदर्भ ही उसे असाधारण बना देता है।

वह दिन-भर वह घर-गृहस्थी के कार्यों में व्यस्त एवं लीन रहती है। रात को सब कार्यों से निवृत्त हो जाने पर रामायण तथा महाभारत की कथा बांचती है। इसमें उसकी धर्मप्रियता दिखाई देती है। पवित्र ग्रंथ पढ़कर अपनी युवावस्था के दिन वह बहुत ही संयम से व्यतीत करती है।"आज टिकुली की उमर कुछ लंच आई है। उसके सिरके बाल पक रहे हैं। मुख पर झुर्रियाँ स्पष्ट झलकने लगी हैं। शरीर से भी वह दुर्बल हो गई है।"[3] वह सेवापरायण नारी है। वंशी के अस्वस्थ हो जाने पर वह उसकी सेवा-सुश्रूषा निष्ठापूर्वक करती है। उसमें सात्त्विकता तथा शालीनता का भी गुण है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि टिकुली साहसी, संयमी, मृदुभाषिणी, उदार, धर्मप्रिय तथा सेवा परायण नारी है। मनुष्य को वह शीघ्र परख लेती है, तभी तो वंशी के के साथ, रहने के लिए वह तैयार होती है।

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 124

2- वही, पृ0 124

3- वही, पृ0 122

कजली :

वह 'अंधेरी रात' कहानी की नायिका है । उसके नामानुरूप उसका जीवन भी है । उसका प्रथम परिचय हमें कहानी में लेखक द्वारा इस प्रकार प्राप्त होता है -' वह गद्दे पर बैठी पान लगा रही थी । दरवाजे की ओर वह पीठ किये थी । पतली बारीक रेशमी साड़ी के भीतर से उसकी नागिन -सी चोटी झलक रही थी । सिर उसका खुला हुआ था ।'[1] उसकी 'आँखें प्यारी लगती हैं । ओठों पर पान की लालिमा कुछ कह उठती है । यौवन के मद का मध्यकाल चल रहा है ।---उसके मुख पर एक अभिनव श्री है । देहयष्टि भी उसकी बड़ी मोहक है ।'[2] उसका ऐसा सौंदर्य देखकर ही शिवराम अपने संकल्प में दृढ़ रहना चाहता है, तथापि कुछ क्षणों के लिए अस्थिर हो उठता है । और उसके हृदय की धड़कनें तेज़ हो जाती हैं । कहानी में आगे कजली का शब्द चित्र इस प्रकार प्राप्त होता है -

'साटन की चमकती कंचुकी महीन साड़ी के भीतर से झलक रही थी, हँस रही थी । उसकी गुंथी हुई, चढ़ाव-उतार के क्रम से सँवारी चोटी कमर के भी नीचे लटक रही थी और पुंदना उसका तितली-सा उड़ना चाहता था । कानों में पड़े जो नीलम थे, बिजली की रोशनी में चमकते हुए बड़े शोभन प्रतीत हो रहे थे । उसकी देहयष्टि में जो माधुरी और मोहकता थी, लतिका-सा दोलन था, वह भी सौन्दर्य के भार से लदकर, फूलकर हास का भी हास, लास का भी लास और एक अप्रतिम मार्दव बिखेर रहा था ।'[3] उसका यही सौंदर्य शिवराम को किंकर्तव्यविमूढ़ - सा बना देता है । उसका पति शिवराम उसकी हत्या करने आया है, इस बात से वह अनभिज्ञ है ; अत: सहज रूप से वह उसके निकट जाती है, परन्तु शिवराम को यह स्वीकार्य नहीं है । तब वह कह उठती है-'तो आप कृपा करके मेरे यहाँ से चले जाइए । मैं कुछ सुनना नहीं चाहती । मैं जैसी भी हूँ, अच्छी हूँ । मुझे आपका ऐसे उपदेश सुनने की जरूरत नहीं है । मैं तो एक दम से काली अंधेरी रात हूँ । मुझे उजाला अच्छा नहीं लगता । मैं उसे नहीं चाहती । मुझे वह न चाहिए ।'[4] उसके इस वक्तव्य में उसका स्वाभिमान प्रकट होता है । वह वेश्या है, तथापि किसी की भी उपेक्षा उसे सहन नहीं । ऐसी परिस्थिति में वह किसी की सहानुभूति की भी आवश्यकता नहीं समझती । विवशता के कारण वह अपने शरीर का सौदा करती है, परन्तु स्वाभिमान बेचना उसे स्वीकार्य नहीं ।

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 135
2- वही, पृ0 136
3- वही, पृ0 143
4- वही, पृ0 142-43

शिवराम को लगता है जैसे उसके चारों ओर घृणा ही घृणा फैल गई है, वह नरक में आ गया है । तब वह कजली को अपने निकट बैठने के लिए कहता है और पूछता है कि 'वेश्या के लिए निकट और दूर में भेद नाम की चीज का अर्थ क्या ?' इस प्रश्न का उत्तर, उत्तेजित होकर, देती हुई कजली कहती है - ' मैं वेश्या हूँ । क्या मेरे हृदय नहीं है, आत्मा नहीं है । मांस, रक्त और हड्डियाँ मेरी लोहा है या लकड़ी ? क्या मनुष्यता मेरी मर गई है ? मैं इतना भी नहीं समझती कि आप मुझसे घृणा करते हैं । मैं पूछती हूँ, तो फिर आप यहाँ आये ही क्यों ? क्यों आपने मेरा वक्त खराब किया ? आप मेरा अपमान करने, मुझे जलील करने क्यों आये । मुझे मिट्टी में मिल जाने से आपको ऐतराज क्यों है ? मैं तो कालिमा हूँ। अपना उजाला आप मुझ पर बेकार क्यों डालते हैं ? क्या आप चाहते हैं कि अँधेरा दुनियाँ से मिट जाय ? मैं पूछती हूँ, क्या यह संभव है ? उजाला ही उजाला आप देखना चाहते हैं,- तो शौक से देखिए । मुझे भी बतलाइए कि उसकी शुरूआत कहाँ से होती है । मुझे भी समझा दीजिए कि अंधकार से परे प्रकाश का क्या अस्तित्व है ।'[1] प्रस्तुत उद्धरण में भी प्रत्येक शब्द में उसका स्वाभिमान झलक उठा है । वह नहीं चाहता कि वेश्या होने पर भी कोई उसका अपमान करे । शिवराम से वह पूछती है कि आपको मालूम है कि मैंने क्यों यह जीवन स्वीकार किया, वह कहता है - 'कहने को ही तुम बेनीमाधव की लड़की हो, यद्यपि तुम्हारे असल वास्तविक पिता का नाम था गंगाप्रसाद । कुल से तुम एक भले घर ब्याह दी गई थी । ब्याह के बाद जब बात उन लोगों पर प्रकट हो गई और कई वर्ष तक तुम्हारा गौना नहीं लिया गया, तो तुमने अपनी आत्मा को बेचना शुरू कर दिया और होते-करते तुम इस घाट आ लगीं । शरीर के ही धर्म को तुमने महत्व दिया । कष्ट सहन में नारी की जो महत्ता है, उसकी ओर से तुमने आँखें फेर लीं । ऐन्द्रिक स्वाद को ही तुमने देखा, वासना ही वासना की ओर तुम्हारा ध्यान रहा । नाबदान का पानी और पवित्र गंगाजल तुमने एक में मिला दिया । मनुष्य को तुमने जानवर बना डाला । मातेश्वरी सीता और भवानी पार्वती के पावन आदर्शों की सारी प्रतिष्ठा तुमने अपनी लोल-लालसाओं से लीप-पोतकर साफ कर दी । तुमसे और कुछ नहीं हो सकता था, तो क्या तुम मर भी नहीं सकती थी ? मैं पूछता हूँ - नर्क का कीड़ा नहीं हो तुम, तो और क्या हो ?'[2]

शिवराम के उपर्युक्त वक्तव्य से कजली के पूर्व जीवन का पता चलता है । वह निर्दोष

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 144-145

2- वही, पृ0 147

है । समाज की जड़ रीतियों ने उसे वेश्या बनने को विवश किया है । उस पर बिहारी द्वारा जो अपराध लगाये जाते हैं, वे अंशत: सत्य है । शिवराम उसे चरित्रहीन नारी के रूप में देखता है और डाँटता-फटकारता ही रहता है । भारत देश की आदर्श नारियों के विषय में कहने के पश्चात् वह कजली से कहता है -'---जीवन की आहुति दे-देकर उन्होंने आत्मदान के अमरत्व की जो प्राण प्रतिष्ठा की, आशाओं और उमंगों के महावारिधि को मरुस्थल बना-बनाकर उन्होंने नारी के वास्तविक स्वरूप को जो अमर ज्योति प्रदान की, अपने मुख पर कालिमा पोतकर तुमने उसको भुलुण्ठित कर डाला है , हत्या की है तुमने गौरव की । तुम्हारा मुख देखना xxxx भी पाप है ।'[1] ऐसा प्रतीत होता है कि शिवराम कजली के सम्बन्ध में जो कुछ कहता है, पूर्वाग्रहयुक्त है । क्रोधावेश में वह जो कुछ सोचता है, उसे ही वाणी का रूप दे देता है । कजली को कहने के लिए उसके पास जब कुछ नहीं बचता, वह उसकी हत्या करने के लिए छुरी लेकर तैयार हो जाता है । कजली कुछ नहीं बोलती । वह चुपचाप खड़ी हो जाती है । चरित्रहीनता का तथा अन्य जो अपराध शिवराम द्वारा उस पर लगाये जाते हैं, वे उसे सह्य नहीं, स्वीकार्य नहीं ; अत: उन अपराधों का उत्तर देने के लिए वह पहले कंचुकी, फिर साड़ी और तत्पश्चात् पैटीकोट उतारती है । शिवराम चित्रलिखित-सा सब कुछ देखता रहता है । एक बार तो अस्थिर होकर वह अपनी आँखें भी मूँद लेता है । वह पूछना चाहता है कि आखिर इस नग्नता का अभिप्राय क्या है ? परन्तु वह कुछ भी नहीं पूछ सकता । अपादमस्तक वस्त्रहीन होकर शिवराम के अपराधों का उत्तर देती हुई कजली कहती है -

' जो अपराध तुमने मुझ पर लगाये हैं, उनकी सफाई मेरे बदन भर में पड़ी इन काली-नीली, मिटी और बनी, रेखाओं से पूछो - घावों के निशानों और जली हुई खाल की सफेदी से पूछो । रो मैं सकती नहीं ; नहीं तो आँसुओं से भी बहुत कुछ बतला सकती थी । था कभी आँसुओं का सोता, लेकिन अब वह भी सूख गया है । इतने पर भी अगर विश्वास न हो, तो पुलिस के पुराने कागजों में दर्ज आत्मघात के मेरे प्रयत्नों से पूछ देखो ।'[2]

उपर्युक्त उद्धरण में 'खाल xx की सफेदी' का जो उल्लेख आता है, वह सफेदी वास्तव में कजली की अपनी चेतना की और अपने मन की है । अपनी पवित्रता की रक्षा करने की वह बहुत चेष्टा करती है और मानसिक रूप से पवित्र रहने में उसे सफलता भी मिलती है ।

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 148

2- ,, ,, पृ0 149

उद्धरण के अंत अंतिम वाक्य में उसकी व्यथा की असहायता सजीव हो गई है । कजली के ये शब्द निराशामूलक हैं । समाज की निर्ममता ने ही उसे वैश्या बनने के लिए विवश किया था । वस्तुतः वह निर्दोष है । उसका स्पष्टीकरण एक बार तो शिवराम को भी स्तब्ध कर देता है । कजली जो कुछ कहती है, इससे शिवराम के चरित्र तथा तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है ।

फूलमती :

'हृदगति' कहानी की नायिका फूलमती राजीवलोचन की साली थी । बाल-विधवा होने के कारण वह उनके साथ ही रहती थी । उसका परिचय इस प्रकार दिया गया है - 'उसका नाम तो था फूलमती, पर वह पुकारी जाती थी केवल 'फूल' नाम से । फूल सचमुच फूल ही थी । उसके कुंदन वर्ण और सुगठित शरीर की शोभा सदा झलमलाती रहती थी । उसका कण्ठस्वर ऐसा मधुर था, ऐसा मधुर था कि कुछ न पूछो । कभी वह स्वर कान में पड़ जाता, तो मेरे मुँह का कौर मुँह में ही रह जाता था ।'[1] नायक के इन शब्दों से पता चलता है कि फूल पुष्प -सी कोमल एवं सुन्दर थी । उसकी आवाज़ मधुर थी । नायक आगे उसका परिचय देते हुए कहता है -'फूल थी तो विधवा, पर अपनी आत्मा से वह विधवा न थी । विधवा का तो कोई खो जाता है । फूल का कुछ खोया न था । विधवा प्राण रखते हुए निष्प्राण रहती है । फूल में तो प्राण खूब ही उज्जवल था, खूब ही चेतन । इसीलिए फूल हँसती खूब थी ।--- फूल गाती भी खूब थी ---फूल रोना और मुँह लटकाना तो जानती ही न थी । और इस इस अर्थ में फूल अपराधिनी थी ।'[2] विधवा का हँसना रूढ़िग्रस्त समाज कैसे देख सकता है ? हिन्दू विधवा पर-पुरुष से हँसकर बात भी नहीं कर सकती । अन्य पुरुष के विषय में यदि वह कुछ कहती है, तो भी उसके साथ निंदय व्यवहार किया जाता है । विधवा को तो उदास रहना चाहिए । उसे तो घुल-घुल कर मर जाना चाहिए, परन्तु फूल ऐसा नहीं कर सकती । इसीलिए तो जरा-सी बात पर वह इतनी अधिक पिटी जाती है कि बेहोश हो जाती है ।

नायक की पत्नी रानी इस सम्बन्ध में उसे कहती है -'आप जानते हो, वह स्वभाव की बड़ी चंचल है । मेरे सामने ही तुम्हारे लिए कहने लगी- 'जीजा जी मुझे बड़े अच्छे लगते

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 35

2- वही, पृ0 36

हैं । ऐसी सुन्दरता मैंने अब तक किसी में नहीं पाई । सब जानो जीजी, अगर इनके साथ मेरा ब्याह हुआ होता, तो मैं तो इनका नित्य चरणामृत लेती ।'[1] इस कथन से उसकी अबोधता का पता चलता है । अपने सरल स्वभाव के कारण जब वह ऐसा कहती है, तब उसकी बड़ी बहन भी उसके पास बैठी थी । यह बात वह अपने पति से कह देती है । परिणामस्वरूप अक्षम्य अपराध के बदले में फूल को मिलती है निर्दय मार और फूहड़ गालियाँ ।

नारी की यौन पवित्रता समाज की मर्यादा है । वैधव्य सामाजिक अत्याचार नहीं, ईश्वरीय व्यवस्था है । इसी 'ईश्वरीय व्यवस्था' के अंतर्गत फूल में महीनों अधपेटे रहकर चेष्टा करती है कि वह दुर्बल होकर बीमार पड़ जाए । उसने एक बार विष भी खाया, परंतु बचा ली गई । एक युवक उसे उड़ा ले जाता है, परन्तु कुछ समय बाद वह उसे छोड़ देता है। वह पथ की भिखारिणी बन जाती है, तो विवश होकर वेश्यावृत्ति अपना लेती है । यह सब कुछ समाज की निर्दय मर्यादा का ही परिणाम है । फूल मानती है कि 'यदि कष्ट झेलना ही निश्चित है, तो उसकी चरम सीमा ही देखना चाहती हूँ । कष्टों से भागना कायरता है ।

एक बार फूल के कोठे पर अचानक नायक की उससे भेंट हो जाती है । फूल को जीवितावस्था में देखकर उसे सानंदाश्चर्य होता है ; क्योंकि फूल के जीजा जी से तो नायक को उसकी मृत्यु के समाचार प्राप्त हुए थे । यह बात वह फूल से कहता है, तो प्रत्युत्तर में वह कहती है -'ठीक ही कहा था उन्होंने । तुम्हारी उस फूल की सचमुच मृत्यु हो गई है । उसमें कितनी पवित्रता थी, वह कैसी निर्मल थी । मैं पापिन हूँ, पतिता हूँ, ज्वालामुखी हूँ। लेकिन मैं तो खैर जो कुछ हो गई, अपने दुर्भाग्य से हो गई ; पर तुम इस कूचे में कैसे आये ? क्या जीजी भी मर गई है ?'[3] भले ही वह वेश्या बन गई है, तो भी जिसे वह चाहती है, उसका नैतिक अध: पतन वह कदापि नहीं चाहती । उपर्युक्त उद्धरण में रानी के प्रति उसके अच्छे भाव तथा नायक के प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया है । अपनी स्थिति के लिए वह किसी व्यक्ति को दोष नहीं देती, अपितु अपने दुर्भाग्य को ही कोसती है । वह नहीं चाहती कि नायक वेश्यालय में जाय ।

ईश्वर के प्रति उसके हृदय में अटूट आस्था है । अत: वह कहती है -'---जीजी, संसार

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 37

2- वही, पृ0 43

3- वही, पृ0 42

मुझसे घृणा कर ले, लेकिन मेरा विश्वास है, पूरा विश्वास है, ईश्वर मुझसे घृणा नहीं करेगा । उसकी दया-ममता अथाह है ।'[1] यही श्रद्धा उसे जीवित रखती है । जिस समाज में वह रहती थी, वह समाज इतना खोखला है कि वह व्यक्ति के हृदय को नहीं समझता, केवल उसकी स्थिति को देखता है । जो फूल हिन्दू समाज के लिए अग्राह्य थी, वह अभिनेत्री बन जाती है, तब उसे देखकर, उससे बातें करके, उसी समाज का शिक्षित समुदाय गौरव का अनुभव करने लगता है । अभिनेत्री बन जाने के पश्चात् भी नायक के प्रति उसके प्रेम तथा व्यवहार में तनिक भी अंतर नहीं आता । वह प्रारंभ में तो प्रत्येक सप्ताह चिट्ठी भेजती है, महीने में एक बार मिलने के लिए बम्बई से कानपुर आती है, परन्तु एक दिन तो वह उसे सपरिवार अपने यहाँ ले जाती है । जब वह साधारण जीवन व्यतीत करने की बात करता है, तो वह भी उसके साथ जाने के लिए तैयार हो जाती है, परन्तु नायक को यह स्वीकार्य नहीं है । अत: वह उदास और खामोश हो जाती है । नायक के परिवार को छोड़ने के लिए वह स्टेशन पर आती है, पर बोलती कुछ नहीं । ट्रेन चालू होते ही उसकी हृदगति रुक जाती है । उसकी खामोशी तथा अत्यधिक भावुकता तथा संवेदनशीलता उसके प्राण ले लेती है। यहीं पर उसके प्रेम की चरम सीमा है । वह उदार भी है । मरने से पहले वह रानी को नायक के नाम दस हजार रुपये का चेक दे जाती है ।

बिन्दो :

'बाती और लौ' कहानी की नायिका एक भिन्न प्रकार की नारी है । समाज में सामान्यत: देखा जाता है कि पति, पत्नी का त्याग करता है, परन्तु बिन्दो के विषय में इससे बिलकुल उल्टा है । सुधाकर के साथ रहकर वह सेवा-कार्य में जुट जाती है । सुधाकर अपने मित्रों का भ्रम दूर करने के लिए उन्हें जब अपने यहाँ ले जाता है, तब बिन्दो को देखकर घनश्याम को लगता है -'रमणी कुछ दुर्बल है । उसके मुख पर गंभीरता की कुछ छाप है, वेश-भूषा में एक चारुता, स्वच्छता और सुरुचि है ।'[2] ललित देखता है -'अवस्था अधिक नहीं है, तरुण जीवन में नारी का रूप जितना मोहक हो सकता है, उसमें पूर्ण रूप से झलक रहा है । लेकिन स्वर में न वैसी कोई लिप्सा है, न वह मादक आकर्षण । एक तरह की शांति-सी

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 45

2- स्नेह,बाती और लौ, पृ0 237

निखर रही है ।'[1] इससे पता चलता है कि वह सुन्दर युवती है । पवित्रता का उसके भाल पर झलक रही है । अपने चरित्र की रक्षा करना वह अपना परम धर्म समझती है । उसके रूप की ओर आकृष्ट होकर तथा समाज से डरकर सुधाकर ने उसे पूछा था -' हम लोग और भाई-बहन न रहकर पुरुष-नारी के रूप में ही बदल जायें तो कैसा हो ।' उत्तर में उसने जो कहा था वह दृढ़तापूर्वक सुधाकर के मित्रों को कहती है -' ऐसा नहीं हो सकता । भाई, भाई ही रहेगा बहन, बहन ही । आज तुमने भाई के आसन से गिरकर ऐसी बात कही सो कही, आयन्दा न कहना । नहीं तो मैं विषपान कर प्राण त्याग दूँगी । और दूसरे ही दिन मैंने यह शीशी लाकर रख छोड़ी थी । हम लोगों के बीच में यह एक मध्यस्थ की भाँति स्थापित है । हमारे भविष्य की प्रत्येक साँस के साथ इसका सम्बंध है ।'[2]

प्रस्तुत उद्धरण में उसका उज्जवल चरित्र झलकता है । आत्मप्रवंचना में वह नहीं मानती, न ही वह सुधाकर या समाज को धोखा देना चाहती है । पति का त्याग करने पर भी उसके साथ विश्वासघात करना उसे पसंद नहीं । वह युवती नारी है, उसको भी अपनी देह की भूख के संतोष के लिए पुरुष की आवश्यकता हो सकती है । सुधाकर के साथ रहकर वह अपाहिजों की सेवा करती है, उससे उसका घनिष्ठ सम्बंध है, तथापि अपना संयम वह कभी नहीं खोती । वासना पर उसने विजय प्राप्त कर ली है । इस बात को पुष्ट करने के लिए सुधाकर का अपने मित्रों से कहा गया यह कथन द्रष्टव्य है -' --- फिर बिन्दो तो, मैंने कहा न, बिलकुल शून्य हो गई है । वासना से अब वह कोसों दूर जा पहुँची है । मैं उसकी दृष्टि में, क्षण भर के लिए गिर जाऊँ, तो अनर्थ हो जाय, अनर्थ । आज उसने अपने जिन सपनों को सार्थक कर डालने का संकल्प किया है, वे यदि किसी भाँति भंग हो जायँ, तो मृत्यु को आलिंगन करने में उसे कितनी देर लगेगी ।'[3] सुधाकर के ये शब्द बिन्दो के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं । इन शब्दों से यह भी पता चलता है कि वह कर्तव्यशीला नारी है । मृत्यु का उसे भय नहीं है ।

घनश्याम कहता है कि बिन्दो जैसे व्यक्ति उत्तरदायित्व से भागने की प्रवृत्ति को विद्रोह का लक्षण मान लेते हैं, तब उसे उत्तर देते हुए सुधाकर कहता है -' --- बिन्दो ने

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 237

2- वही, पृ0 240

3- वही, पृ0 241

उत्तरदायित्व से भागना कभी स्वीकार नहीं किया । वह स्वामी का विश्वास चाहती थी, किन्तु जब वह भी उसे नहीं मिला, तो वह अपने को संभाल न सकी । महीनों उसकी रातें जागते , सोचते और निराहार रहते बीती थीं । अंत में बहुत विवश होकर उसने पति को त्याग दिया ।'[1]

एक समय ऐसा भी था, जब वह एक संभ्रांत परिवार की नववधू थी । उसके पति एक ताल्लुकेदार के एकलौते पुत्र थे, खाने-पीने की उसे कमी नहीं थी । संसार की दृष्टि में महलों के भीतर वह एक रानी की भाँति रहती थी, किन्तु फिर भीवह सुखी नहीं थी । अपने पति का स्वस्थ मन वह प्राप्त नहीं कर सकी थी । उसका दु:ख जानने-समझने वाला उसका एक दूर के रिश्ते का भाई था, परन्तु ससुराल वालों ने उसका बहिष्कार किया था । मिलना तो दूर रहा, उसका पत्र तक उसे प्राप्त नहीं हो सकता था । यदि स्थिति यहीं तक रहती, तो भी बिन्दो उस बधशाला में खप सकती थी, तिल-तिल जल सकती थी, जीवन को कीट-पतंग की भाँति मसल डालना भी उसे स्वीकार होता, किन्तु हुआ यह कि उत्पीडन के भावों से जब वह इस भाँति गल रही थी, तब उसके साथ व्यवहार किया गया नाटकीय, उस पर चार्ज लगाया गया कि वह कुलटा है ।'[2] वह सब कुछ सहन करती रहती है, परन्तु चरित्रहीनता का अभियोग उसके लिए असह्य बन जाता है । उसका नारीत्व हुंकार कर उठता है और वह पति को त्याग देने पर विवश हो जाती है । इस प्रकार वह एक मूर्तिमान विद्रोह बन जाती है । तत्पश्चात् वह अपना जीवन, सुधाकर के साथ रहकर, दीन-दु:खियों की निस्वार्थ सेवा के अपदेश आदर्श को लेकर समर्पित कर देती है । और 'वासना के शून्य अंश' तक पहुँच जाती है । सुधाकर के साथ मिलकर वह जो आचार-धर्म अपनाती है, उसे अंततोगत्वा त्रिलोकीनाथ को -'हमारी सभ्यता ने जिसका नाम रखा है - पति'। - उसे मान्यता देनी पड़ती है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संयम, सहनशीलता, सेवाभाव, निर्भयता, कर्तव्यशीलता आदि अनेक गुणों का सुन्दर समन्वय बिन्दो के चरित्र में प्राप्त होता है । ये गुण उसे असाधारण नारी बना देते हैं । लेखक ने बिन्दो का चरित्र-चित्रण दोनों प्रणालियों की सहायतासे किया है और इसमें उसे सफलता मिली है ।

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 242

2- वही, पृ0 243

उर्वशी :

उसका नाम तो चंदा है, पर उसके पति जौहरी जी ने उसका नाम उर्वशी रखा है। वह उनकी द्वितीय विवाह की पत्नी है। उसकी आयु बत्तीस-बाइस वर्ष की है। उसका कण्ठ-स्वर अत्यधिक मधुर है। बुलाने पर बिहारी जब उसके पास जाता है, तो उसके सौंदर्य के विषाय में सोचता है - "नवयौवन की उन्मद उल्लास-लहरी अभी वैसी ही सजग है जैसी चंचल कपोती की अस्थिर ग्रीवा रहा करती है। गोरी-गोरी पतली-पतली अंगुलियाँ हैं, पान की लालिमा में डूबे हुए अधर। आकर्ण विलम्बित नयनारविंद निखिल लोनी अंगलता में फूटे पड़ते हैं। ऐसा कमनीय कलेवर, ऐसी सम्मोहन रूपराशि, तो अब तक देखने में आई न थी।"[1] इससे पता चलता है कि उसका अंग-प्रत्यंग बहुत ही सुन्दर है।

चंदा अतीत की स्मृतियों को टटोलती है, तब बिहारी को भी अपने सुख के दिन याद आ जाते हैं। उसके हृदय में एक हलचल-सी मच जाती है और आँखों में आँसू आ जाते हैं, तब उसे आश्वस्त करती हुई वह कहती है -"दुख क्या केवल तुम्हारे ही हिस्से में पड़ा है, बिहारीबाबू, जो उसे संभाल नहीं सकते ? तुम मेरी ओर क्यों नहीं देखते। मेरे दुख की भी कहीं कोई सीमा है ? - क्या कहीं कोई उसकी थाह तक पहुँच सकता है। लेकिन मैं तो रोती नहीं हूँ; लेकिन 'हँसोड़' नाम से प्रसिद्ध हो रही हूँ।"[2]

जौहरी जी के साथ उसका विवाह कहने भर को ही हुआ था। पति का सुख नारी के लिए क्या वस्तु है, वह आजपर्यन्त नहीं जान सकी है। जौहरी जी ने अपनी प्रथम पत्नी के स्वर्गवासोपरांत तीन विवाह किये हैं। उनमें चन्दा के अतिरिक्त एक घर पर तथा एक, दो वर्ष से, अपनी माँ के यहाँ है। जौहरी जी का शरीर सूखकर काँटा हो गया है। मद्यपान इतनी अधिक मात्रा में करते हैं कि बेहोश हो जाते हैं। कभी-कभी चंदा के मुँह में भी बोतल ठूँसने का उपक्रम करते हैं। यह सब न चाहने पर भी वह सहन करती जाती है। अपनी दोनों सौतों की तुलना में वह कुछ अधिक उदार है। उनकी तरह वह ऐसा नहीं मानती कि "नारी अपने मन की साम्राज्ञी होती है। उसे तो अपने पति का पूरा मनोराज्य चाहिए।"[3] उनका कहना यह असमीचीन नहीं समझती, परन्तु उसका दृष्टिकोण उनसे भिन्न है। वह समझती

1- होटल का कमरा, पृ0 115

2- वही, पृ0 117

3- वही, पृ0 121

'नारी को पति का केवल आत्मावलंब चाहिए । हृदय के एक कोने में छिपी पड़ी रहने भर को भी यदि पति स्थान दे दे या नारी पति से पाले, तो फिर उसको और कुछ न चाहिए ।--- मेरे दु:ख -सुख का जोड़ है - मेरे लिए दोनों एक-से हो गये हैं, उन्होंने परस्पर समझौता कर लिया है ।'[1]

इस उद्धरण में लेखक ने शुद्ध भारतीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है । भारतीय नारी के लिए अपना पति ही सब कुछ होता है । परन्तु यह भी उसे प्राप्त नहीं होता ।आर्थिक दृष्टि से देखा जाय, तो उसे किसी बात की कमी नहीं है, परन्तु फिर भी वह सुखी नहीं है । सुख-दु:ख उसके लिए विशेष महत्त्व नहीं रखते ।इस दृष्टि से देखा जाय, तो उसने स्थित प्रज्ञ - सी स्थिति बना दी है ।

जौहरी जी के अवस्थ होने पर वह रुपया पानी की तरह बहा देती है । बिहारी को तार करके बुला लेती है । रात-रात भर जागकर अपने स्वामी की वह सेवा-शुश्रूषा करती है । उसकी आँखें नेश-जागरण के कारण सूज जाती हैं । यद्यपि वह पति परायणा नारी है, तथापि उसके हृदय में बिहारी के प्रति असीम प्रेम है । नौकरों के होते हुए भी विहारी के आराम से सम्बन्ध रखनेवाले कार्य वह स्वयं करती है । चिंता और घबराहट के उस वातावरण में उसके इस अतिरंजित आतिथ्य और शिष्टाचार की जब वह मत्सना करता है, तो चन्दा के भीतर के अगोचर भाव उसके होठों पर आ जाते हैं । वह कहती है -' जरा सुनूँ तो सही, क्यों यह अनुचित है ? कैसे तुम इसको अतिरंजित कहते हो ? बड़ी हिम्मत हो,तो कह दो -' तुम मेरे साथी नहीं हो । कह दो- मेरा तुम पर कोई अधिकार नहीं।'[2] इसका कुछ भी उत्तर बिहारी नहीं दे सकता ।

नौकरों से काम लेने में वह पूर्ण दक्ष है । नौकर को जो कार्य करना होता है, वह उसे पहले अच्छीतरह समझा देती है । कार्य बिगड़ जाने पर डाँटती भी है, किन्तु संध्या समय छुट्टी के अवसर पर सांत्वना देना भी नहीं चुकती है । दोपहर का बचा खाना उसे देने के लिए वह महाराज से कहती है । इस प्रकार क्रोध और दया, अनुशासन और पुरस्कार उसकी दिनचर्या के मुख्य अंग बन गये हैं । बिहारी ने अनेक बार देखा है कि कोई एक वाक्य जो नौकर से कहा गया है, आदेशात्मक होने के कारण शुष्कता और उग्रता से भरा हुआ है, परन्तु उसके बाद ही

1- होटल का कमरा, पृ0 121

2- वही, पृ0 123

ऐसा प्रसंग आ जाता है कि दूसरा वाक्य जो उससे कहना पड़ा, जिसमें परामर्श और सम्मति की बात है । मुख पर गंभीरता के स्थान पर उत्साह और प्रसन्नता की झलक है । आंखों में एक सहयोग, सहृदयता तथा अभिन्नता का भाव है ।

तीसरे दिन जौहरी जी आँखें खोलते हैं, तब बिहारी के विषय में उनके पूछने पर चंदा उन्हें नि:संकोच, कुछ भी छिपाये बिना, बतला देती है । चंदा का चरित्र समझना दुष्कर कार्य है । बिहारी भी उसके सम्बंध में कोई सम्मति स्थिर नहीं कर पाता है । अपने घर जाने की अनुमति माँगने पर वह गंभीर हो जाती है । परन्तु अंतर्द्वन्द्व के कारण वही उसे शीघ्र जाने के लिए कहती है । बाद में उसी को बिहारी का जाना सबसे अधिक अखरता है । बिहारी को घर से ही वह विदा दे देती है । विदा के पहले एकान्त में उसे मिलती भी नहीं। इतना ही नहीं विदा के समय परम प्रसन्न देख पड़ती है । और इस प्रकार अपने संयम का परिचय देती है । बिहारी उसके विषय में जो कुछ मानता है, उसे वह अपने ऐसे व्यवहार से आमूल नष्ट कर देती है । परंतु उसके आगरा पहुँचने के बाद उसे चंदा का मसूरी से किया गया एक तार मिलता है, जिसमें लिखा गया है -'जौहरी जी एक अभिनेत्री के साथ कश्मीर की सैर को गये हैं । तुम फौरन चले आओ, अगर मुझे जीवित रखना चाहते हो ।'[1]

इस तार से उसके चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । अब तक की उसकी आत्म - प्रवंचना प्रकट हो जाती है और बिहारी के प्रति उसके असीम प्रेम, अटूट श्रद्धा आदि के दर्शन होते हैं । स्वस्थ हो जाने पर पति पर-स्त्री के साथ सैर को चले जाते हैं, यह बात उसके लिए असह्य हो जाती है । वह भी किसी का प्रेम चाहती है, जो वह बिहारी से प्राप्त कर लेती है । चंदा के विषय में, निष्कर्षरूप में, कहा जा सकता है कि वह सहनशील, उदार,कार्यदक्ष, सहृदय, संयमी तथा निखालिस नारी है । अंत में उसके जिस रूप का परिचय हमें मिलता है, इसके लिए विशेषत: उसका पति दोषी है । संपूर्ण कहानी में उसकी पतिपरायणता पाठकों को प्रभावित करती है ।

मैना :

'मैना' कहानी के प्रारंभ में ही मनोहर की पत्नी मैना का परिचय लेखक ने इस प्रकार दिया है -'मैना मनोहर की नवभार्या है । --- वासन्तिक वट-पल्लव-सा मर्मर उसका गति संगीत

1- होटल का कमरा, पृ0 144

है, उनके भोले, लाल और हरित-पीत वर्णों की प्रशान्त झलकों सा उसका वेश -विन्यास'।[1]

अपनी ननद साधना का विवाह अपने पति के मित्र श्यामसुन्दर के साथ सम्पन्न हो, ऐसा वह हृदय से चाहती तथा प्रयत्नशील रहती है, परंतु श्यामू के हृदय में मैना के लिए भ्रम उत्पन्न हो जाता है और वह उसके प्रति आकृष्ट होकर अपना स्वास्थ्य खो बैठता है। दाय हो जाने पर हिल-स्टेशन के अस्पताल में उसे ले जाते हैं। वहाँ मैना के जाने पर श्यामू को सबसे अधिक प्रसन्नता होती है। मैना उसके अश्रु पोंछती है। आँसू उसकी आँखों में भी हैं, परन्तु वह उनको संयम के साथ आँखों में ही निरुद्ध करके रखती है।

वह एक पतिपरायणा नारी है। उसके लिए अपना स्वामी ही सब कुछ है। उसके लिए लेखक कहता है -' वह एक सती साध्वी नारी है। स्वामी ही उसके लिए जगत् है -जीवन। लेकिन इससे क्या ? उसके साथ इस श्यामू का भी तो सम्बन्ध है, जो उत्सर्ग में इतना महान् है।[2] एकाध क्षण के अंतर्द्वन्द्व के पश्चात् वह सब सांसारिक बंधनों का त्याग कर देती है। उसके पाँव और भी निकट पहुँचकर श्यामू के आँसू पोंछ डालती है तथा उसे सांत्वना देते हुए कहती है - 'अरे तुम रोते हो ! मैं आ तो गई तुमको हँसाने के लिए। यों भी तुम मेरे देवर लगते हो। तुमको संकोच किस बात का हो सकता था ? पागल कहीं के। कोई इस तरह लड़ता है ! तुम ईश्वर से लड़ने चले थे। ओः कोई जीवन को इस तरह मसल डालता है। रोना बंद करो, इधर मेरी ओर देखो।'[3] वह श्यामू के जीवन की रक्षा करने के लिए उसके साथ प्रेम का नाटक करती ही जाती है। उसे बचाने के लिए वह अपने जीवन की भी परवा नहीं करती। श्यामू के लिए भी उसे समझना कठिन कार्य है। अतः वह पूछता है -'भाभी, मैं तुमको अभी तक समझ नहीं पाया। क्या सचमुच नारी इतना त्याग कर सकती है ? मैं तो केवल प्राण दे सकता हूँ, किन्तु तुम तो अपनी आत्मा ही नहीं, अपने विश्वासों तक का उत्सर्ग कर देती रही हो। सच बताओ तुम क्या हो , भाभी ?'[4]

श्यामू की सेवा-सुश्रूषा में वह दो महीने तक कभी पूरी नींद सो नहीं सकती है , तथापि दिन-भर हँसती ही रहती है। उसकी निष्ठा तथा नियमित सेवा के कारण ही श्यामू स्वास्थ्य लाभ करता है, किन्तु वह अपना स्वास्थ्य खो बैठती है। उसकी महत्वाकांक्षा-

---

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 171

2- वही, पृ0 181

3- वही, पृ0 182

4- वही, पृ0 184

साधना और श्यामू का विवाह-पूर्ण हो जाने के पश्चात् उसे उसी हिल-स्टेशन के अस्पताल में ले जाते हैं, जहाँ श्यामू को ले गये थे। उसका स्वास्थ्य अत्यधिक गिरने का संवाद पाते ही श्यामू तथा सन्ना उसकी तबियत देखने आते हैं। उसके समझाने पर श्यामू तो लौट जाता है, परन्तु साधना वापस जाने के लिए किसी प्रकार सहमत नहीं होती। श्यामू के विषय में मैना के साधना को पूछने पर कि 'वे कैसे हैं ?' साधना उत्तर देते हुए कहती है -'वैसे ही है, जैसे तुमसे मिले हैं। सदा कहते रहते हैं -'भाभी भी क्या मानवी हैं ? देवी हैं वे। उनके आत्म-त्याग की सीमा नहीं है। मनोभावों की सुकुमारता में तो पुष्पों के दल भी उनके आगे तुच्छ हैं।--- भाभी को देखो। वे मरी भी हैं और मनोहर भाई की भी। तो भी भाभी में कहीं कलुषा छू भी नहीं गया है।'[1]

प्रस्तुत उद्धरण के आधार पर मैना के चरित्र के सम्बंध में बहुत कुछ जाना जा सकता है। उसके मनोभावों की सुकुमारता के सम्बंध में निश्चित रूप से 'मृदूनि कुसुमादपि' की उक्ति सार्थक प्रतीत होती है। वह एक साथ दो पुरुषों को चाहती है, तथापि श्यामू के प्रति उसका प्रेम शुद्ध है। यहीं नारीत्व की परीक्षा में वह सफल होती है।

अपने दाम्पत्य-जीवन की बातें साधना से जानकर वह चाहती है कि उसकी चरण-रज वह अपने भाल पर लगाए। वह कहती है -'मुझे तुम्हारे आशीर्वाद की जरूरत है। मैंने जान-बूझकर यह स्वांग रचा था। मैं मृत्यु की कामना करने लगी थी। मृत्यु मेरे लिए जीवन हो रही है। किन्तु अब मैं सच्चा जीवन चाहती हूँ ; क्योंकि मुझे मरने का अधिकार नहीं है। मैं सोचने लगी थी कि मेरे बिना भी उनका काम चल जायगा। लेकिन अब मैं सोचती हूँ कि-मुझे जीवित रहना पड़ेगा। अपने लिए नहीं ; उनके लिए।'[2]

जिस बात को मैना नाटक समझती है, उसे श्यामू सच मानता रहता है। इसका परिणाम साधना के मुँह से जानने के पश्चात् वह जीने के लिए विवश हो जाती है। मैना के सम्बंध में साधना के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं -'जीवन की प्यास इस हद तक मसल डालने की शक्ति है तुममें, यह मैं आज जान सकी। वासना भी तुम्हारे स्पर्श से कैसी पावन बन गई है। जीवन और मृत्यु को तुमने जैसे मुट्ठी में कर लिया है।'[3] साधना तथा डाक्टर के यथाशक्य सभी प्रयत्न करने पर भी अंत में मैना की मृत्यु हो जाती है।

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 188

2- वही, पृ0 189

3- वही, पृ0 190

'मैना' कहानी में मैना के अतिरिक्त मनोहर, साधना, भावना तथा श्यामू आदि पात्र हैं, परन्तु मैना के चरित्र का प्रभाव पाठकों के मस्तिष्क पर दीर्घकाल पर्यन्त रहता है। श्यामू को वह चाह नहीं सकती थी, तो भी उसे प्रेम का अभिनय करना पड़ता है। इसमें उसकी विवशता ही है। वह केवल अभिनय करती चली गई। यह सोचने की आवश्यकता ही उसने कभी अनुभव नहीं की कि अंतःकरण के विरुद्ध चलते रहने का क्या दुष्परिणाम आ सकता है। परिणामतः वह अपना सब कुछ खो बैठती है। नारी के पास केवल एक हृदय होता है, वह भी उसे देना पड़ा। प्रारंभ में वह अपने भीतर इतनी महती शक्ति का अनुभव कर रही थी कि इस प्रकार का अभिनय उसे एकदम से खिलवाड़ जान पड़ा था, किन्तु अभिनय के साथ-साथ वह उत्तरोत्तर अधिकाधिक संवेदनशील होती जाती है। अन्त में जिन सम्बन्धों को वह मनोविनोद का एक कौतूक समझती रही, उन्हीं के प्रति वह आस्था रखने लगती है।

प्रस्तुत अध्याय में हमने देखा कि वाजपेयी जी ने अपने कथा-साहित्य में पात्रों का चरित्र-चित्रण किस-किस ढंग से किया है। अपने उपन्यासों तथा कहानियों में उन्होंने चरित्र-चित्रण की संभवतः सभी प्रणालियों का प्रयोग किया है। कहानियों के पात्रों के चरित्र-चित्रण में विशेषतः प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रणालियों का अवलम्ब उन्होंने लिया है। कथा-साहित्य के प्रमुख पात्रों के चरित्र-विवेचन से हमें यह प्रतीत होता है कि उनके पुरुष पात्रों की तुलना में उनके नारी पात्र अधिक सशक्त हैं और वे पुरुष पात्रों पर आच्छादित हो जाते हैं। वाजपेयी जी के ये पात्र जिस समाज के हैं, उस समाज का चित्रण अगले अध्याय में किया जायगा। इसके अंतर्गत उनके कथा-साहित्य में चित्रित वातावरण तथा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक एवं तथा राजनीतिक प्रतिबिंबन् किस प्रकार हुआ है, यह देखा जायगा।

1- लोकप्रिय कहानियां, पृ0 190

चतुर्थ अध्याय

वाजपेयी जी के कथा-साहित्य में देशकाल तथा वर्ण्य चित्रित

भारतीय समाज

चतुर्थ अध्याय

" वाजपेयी जी के उपन्यासों में देशकाल और चित्रित भारतीय समाज ।"

वाजपेयी जी के अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं । पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक आदि उपन्यासों की भाँति ही सामाजिक उपन्यासों में भी देशकाल नामक तत्त्व का महत्व रहता है । सामाजिक उपन्यासों में जीवन की यथार्थता और उसके परिवेश का बड़ी सजीवता से चित्रण होता है । वैसे तो पौराणिक,ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा सामाजिक आदि सभी प्रकार के उपन्यासों में वातावरण के चित्रण का विशिष्ट महत्व रहता है ; किन्तु सामाजिक उपन्यासकार के लिए जीवन को अधिक निकट से चित्रित करने के लिए तथा उसके विभिन्न पक्षों को विश्लेषित करने के लिए परिवेश चित्रण एक प्रकार से अनिवार्य ही हो गया है । प्रसिद्ध आलोचक डा० भगीरथ मिश्र की ये पंक्तियाँ भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है ।'सामाजिक उपन्यासों में तो लेखक प्राय: अपने युग की देखी-सुनी और अनुभूत पृष्ठभूमि देता है और पाठक के समसामयिक होने के कारण उसको जांचने और विश्वास करने का अवसर रहता है । आगामी युगों के लिए तो सामाजिक उपन्यासकार सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की सामग्री प्रदान करता है । अत: मेरा तो विश्वास यह है कि यदि उपन्यासकार, अपने समाज का अत्यंत यथार्थ-यहाँ तक कि ऐतिहासिक यथार्थता को ध्यान में रखकर वास्तविक जीवन का चित्रण करता है, तो वह न केवल साहित्य की सृष्टि करता है, वरन् सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास के लिए भी सामग्री तैयार करता है या पृष्ठभूमि बनाता है ।'[1]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सामाजिक उपन्यासों में वातावरण एक साथ दो कार्य प्रतिपादित कर देता है । उससे उपन्यास विश्वसनीय बनता है तथा उपन्यास एक सजीव इतिहास का कार्य भी कर सकता है ।

देशकाल और स्थानीयता :

यहाँ स्थानीयता से हमारा कहने का तात्पर्य है 'लोकल कलर' से । इसमें

1- काव्यशास्त्र, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० 88

लेखक किसी विशेष-एक स्थान के देशकाल-वातावरण तथा व्यावहारिक जीवन का एक सच्चा स्वरूप उपस्थित करता है । स्थानीय रंग के उपयोग से जहाँ एक ओर कथानक की विश्वसनीयता बढ़ती है, वहाँ दूसरी ओर उसके बाहुल्य से कथानक के बोझिल हो जाने की भी संभावना रहती है । अत: आनुपातिक दृष्टि से ही उसका उपयोग करना श्रेयस्कर होता है ।"स्थानीय रंग का महत्व दो कारणों से बढ़ जाता है । इसके उपयोग से उपन्यास में प्रभावात्मकता आ जाती है तथा उसकी स्वाभाविकता में वृद्धि होती है । इन्हीं कुछ कारणों से उपन्यासों में स्थानीय रंग देना आवश्यक समझा जाता है । सभी प्रकार के उपन्यासों-ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि-में स्थानीय रंग समान रूप से महत्व रखता है ।"[1]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है स्थानीय रंग के वर्णन में अनुपात का ध्यान नहीं रखने से रचना बोझिल हो जाती है । इसी तरह देशकाल का वर्णन भी अनुपात से बढ़ जाने पर जी उबाने लगता है और पाठक कथासूत्र को ढूँढने के लिए जल्दी-जल्दी पन्ने पलटने लगता है । देशकाल का वर्णन कथानक को स्पष्टता देने के लिए होता है, उसकी गति में बाधा डालने के लिए नहीं । अत: कुशल उपन्यासकार कथा-प्रवाह के विस्तार या चरित्र-विकास में बाधक होनेवाले वर्णनों को अपनी रचना से सदैव दूर रखता है ।"किसी स्थिति-विशेष के सफल अंकन के अभाव में कभी - कभी भावों की पूर्ण व्यंजना हो नहीं पाती और कोई अभाव-सा खटकता रहता है । सूक्ष्म निरीक्षण के छोटे-छोटे चमत्कार द्वारा ही इतनी शीघ्रता और पूर्णता के साथ वास्तविक जीवन का भ्रम उत्पन्न कराया जा सका है । वातावरण के सजीव सफल तथा मनोरम चित्रण का कहानी के लिए बहुत मूल्य होता है ।"[2]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि संतुलित-मर्यादित तथा उपयोगी देशकाल के चित्रण से एक ओर जहाँ उपन्यास जीवन की यथार्थता का बोध कराता है, वहीं दूसरी ओर उपन्यास का कलात्मक सौन्दर्य भी बढ़ जाता है ।

1- हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास, डा0 प्रतापनारायण टंडन, पृ099

2- हिन्दी उपन्यास, शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ0 453-454

देशकाल अर्थात् वातावरण सृष्टि को हम दो भागों में विभाजित करके इस अध्याय में उसका विवेचन प्रस्तुत करेंगे ।

(1) वस्तुवर्णन एवं प्रकृति वर्णन,

(2) समाज वर्णन ।

1- वस्तु वर्णन एवं प्रकृति वर्णन :

इसके अन्तर्गत भौतिक वर्णन-वाटिका, बाज़ार, नदी, पर्वत, तीर्थ, प्रासाद, महालय, नगर, ग्राम, ग्राम के आसपास के भू-भाग आदि के वर्णनों-का समावेश होता है । प्रकृति वर्णन पर वस्तु वर्णन से पृथक् विचार किया जायगा ।

'भूदान' उपन्यास का द्वितीय अध्याय वस्तुवर्णन का उत्कृष्ट उदाहरण है । इसके अंतर्गत लेखक ने मंगलपुर ग्राम, सरोवर, मंदिर, बाज़ार तथा गाँव के आसपास का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है ।'[1]

वाजपेयी जी के व्यक्तित्व के सम्बंध में विचार करते समय हम उनके प्रकृति-प्रेम के विषय में देख चुके हैं । प्रकृति-प्रेमी साहित्यकार आवश्यकतानुसार अपने साहित्य में प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करता है । यहाँ हम वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त प्रकृति-चित्रण की चर्चा करेंगे ।

प्रकृति या प्राकृतिक का अर्थ है स्वाभाविक । अत: प्रकृति के अंतर्गत वे ही वस्तुएँ आती हैं, जिन्हें सजाने-सँवारने में मानव का हाथ नहीं लगा है, वरन् वे स्वयं ही अपनी छटा से हमें आकृष्ट करती हैं । ईश्वर की 'उस महान' कारीगरी को हम प्रकृति और मनुष्य की कारीगरी को कला कहते हैं । 'मानवेतर जगत के अंतर्गत पशु, पक्षी, सरिता, निर्झर, गिरि, गुहा, वृक्ष, लता, गुल्म आदि सभी आ जाते हैं ।'[2]

1- भूदान, पृ0 19 से 23

2- हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, डा0 किरणकुमारी गुप्ता, पृ0 14

इन सबका अनुभव हम अवलोकन, रसास्वादन, श्रवण, सुवास-ग्रहण और स्पर्श द्वारा कर सकते हैं। मनुष्य की कारीगरी का वर्णन 'वस्तुवर्णन' के अंतर्गत किया जा चुका है। यहाँ ईश्वर की कारीगरी की चर्चा प्रस्तुत है।

वास्तव में वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में प्रकृति-वर्णन कम ही किया है। अधिकांशत: आपने अपने उपन्यासों में प्रकृति-वर्णन पीठिका के रूप में किया है; तथापि एक स्थल पर उन्होंने प्रकृति का प्रयोग उद्दीपन रूप में भी किया है। सजीवता, स्वाभाविकता, नवीनता, ताजगी आदि गुणों के कारण उनके प्रकृति-चित्रण सुन्दर बन पड़े हैं। प्रात:काल का वर्णन उनके उपन्यासों में केवल एक स्थल पर उपलब्ध होता है। यथा-"सुबह के अभी पाँच ही बजे थे। बहुतेरे तारे अस्त हो चुके थे। कुछ ही टिमटिमा रहे थे। कुछ चिड़ियाँ घोसलों से निकलकर चहचहाने लगी थीं।"[1] प्रस्तुत चित्र पीठिका के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। चित्र संक्षिप्त होने के साथ सजीव एवं उपयुक्त भी है, अत: कथा में वह पूर्णरूपेण खप गया है।

उनके 'प्रेमपथ' उपन्यास में प्राप्त संध्या का भी एक चित्र देखना अनुपयुक्त न होगा। "दिन का अवसान हो चुका है। सूर्य भगवान् पश्चिम के अनन्त सागर में डूब चुके हैं। लाल, नील और कृष्ण वर्ण के भीषण काय मेघ पश्चिम की ओर दिखाई दे रहे हैं। उनके ऊपर सुनील आकाश अस्तगामी सूर्य की लोहित किरणों से रंजित हो उठा है।"[2] प्रस्तुत वर्णन भी पीठिका के रूप में ही किया गया है।

प्रकृति के एक तत्त्व मेघ का वर्णन लेखक ने पीठिका एवं उद्दीपन के रूप में किया है। यथा-"काले-काले मेघों के जो अजगर मेरे ऊपर मँडरा रहे हैं - वे लगता है उजाले की खूबसूरत चिड़िया को निगल जायेंगे और मेरे हाथ कुरूप अंधेरे के सिवा कुछ

1- एक स्वर, पृ0 90

2- प्रेमपथ, पृ0 171

नहीं आएगा । बभ्रु -श्वान भौंक रहे हैं । हाथ निरस्त्र हैं । मार्ग में कहीं कोई दृष्टि में नहीं आ रहा है । बिजली की बत्तियाँ बुझ गई हैं । शमादान जलते-जलते जब पवन झकोरे से बुझ जाते हैं, तब थोड़ी देर उनकी धूम्र शिखाएँ कक्ष में शून्य बिखेरती उड़ती ही रहती हैं ।'[1]

प्रस्तुत उद्धरण में प्रकृति का जैसा वर्णन किया गया है, राका की भी स्थिति भी ऐसी ही है । उसकी भी शमा बुझ गई है । धुएँ की रेखाएँ उड़ रही हैं। कौन जानता है, कौन इस शमादान को लौ देने के लिए आएगा । इस वर्णन के द्वारा लेखक ने राका के मन की स्थिति का चित्रण किया है । इस प्रकार पीठिका व उद्दीपन रूप में उपर्युक्त वर्णन प्रयुक्त हुआ है । इसी तरह रात के समय भाभी का राजेन् से पूछना- 'अच्छा बोलो, आज चाँदनी कैसी छिटकी हुई है ।'[2] तथा संयोग से उसी क्षण कोयल का बोल उठना- 'कु ---हू ---उ ।'[3] भी प्रकृति के उद्दीपन रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

दिन-रात के विभिन्न मोड़ों के वर्णनों के साथ-साथ वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न ऋतुओं का भी सजीव एवं स्वाभाविक वर्णन किया है । ये वर्णन मुख्यत: पीठिका-रूप में ही किये गये हैं । शिशिर ऋतु का एक वर्णन द्रष्टव्य है ।

'आज फाल्गुन शुक्ल अष्टमी है । शीत-काल यद्यपि समाप्त होने पर आ गया है, फिर भी कभी-कभी अपना प्रकोप दिखाकर जाड़े से नाक में दम कर देता है । आज प्रात:काल से ही तीव्र वायु चलने के कारण, जाड़ा अधिक था । उस पर भी बादलों के द्वारा ढक जाने से सूर्य भगवान की उष्णता न मिलने के कारण उसका प्रकोप और भी अधिक हो गया है ।'[4] प्रस्तुत वर्णन में फाल्गुन के आरंभ में शीत का वर्णन, सूर्य बादलों

1- सपना बिक गया, पृ0 21

2- चलते-चलते, पृ0 34

3- वही, पृ0 34

4- प्रेमपथ, पृ0 92

में ढक जाने से जाड़े का प्रकोप तथा तीव्र वायु का चलना आदि में स्वाभाविकता दिखाई देती है ।

अब ग्रीष्म ऋतु की एक दुपहर का वर्णन देखिए -"ज्येष्ठ मास की कड़ी दुपहरी है । भूमि तप्त तवा-सी जल रही है । सारा भूमण्डल अग्निमय हो रहा है । वायु के ~~बवण्डर~~ झोंके आ रहे हैं, पर उनमें इतनी ज्वाला भरी हुई है कि घरों के भीतर से मनुष्य का निकलना कठिन हो रहा है । चारों ओर उड़ती हुई धूल दिखाई देती है । मार्ग के मार्ग खाली पड़े हैं ।"[1]

प्रस्तुत उदाहरण में भी ग्रीष्म ऋतु का वर्णन केवल पीठिका के रूप में प्रस्तुत हुआ है । वर्षा के प्रारंभ का एक वर्णन देखना भी अनुपयुक्त न होगा । वह भी पीठिका के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है ।

"वर्षा की पहली रात है । अभी थोड़ी देर पहले खूब खुलकर पानी बरस चुका है । अब केवल फुहार गिर रही है । नन्हीं-नन्हीं झरती हुई बूँदें ऊपर वाले कमरों से और मोती-सी बड़ी-बड़ी बूँदें बिजली के तारों पर दौड़ती हुई देखने में इतनी प्यारी मालूम पड़ रही हैं कि तप्त मन की कल्पना कह उठती है, काश मौसम सदा ऐसा ही सुहावना बना रहता । सड़क की दोनों ओर बहता हुआ पानी, कहीं कल-कल करता और कहीं-कहीं उछलता हुआ छिटककर बहता मानो कह रहा हो कि मैं जीवन-रस हूँ ; नित्य इसी तरह प्रवहमान रहना मेरी प्रकृति है । और झिल्ली के झनकार के साथ उसका स्वर मिलकर तो एक सामूहिक रव बन जाता है ।---तपन से झुलसी हुई धरती ने आज जी भर कर प्यास बुझाने का जो अवसर पाया है, तो उसकी भीगी देह से एक सोंधी-सोंधी सुगन्ध फूट रही है । नीम के सघन वृक्षों पर मोर बोल उठते हैं, तो ऐसा कोलाहल मच जाता है कि जीवन की सारी सुधियाँ जैसे कानों पर ही उतर आना चाहती है ।"[2]

1- प्रेमपथ, पृ0 1

2- राजपथ, पृ0 9-10

प्रस्तुत उद्धरण में वर्षा का वर्णन लम्बा अवश्य हो गया है, किन्तु उपन्यास-कार की अपनी मौलिकता तथा अलंकार के उपयुक्त प्रयोग के कारण वह सरस, सुन्दर व स्वाभाविक बन पड़ा है ।

ये सब तो हुए उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत प्रात:,अपराह्न, संध्या तथा विभिन्न ऋतुओं के शब्द चित्र । इनके अतिरिक्त वाजपेयी जी ने सरिता, बादल, वृक्ष, लता, सरोवर, मोर, कोयल, बतख आदि के कितने ही सजीव वर्णन अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किये हैं । यहाँ उनके 'भूदान' नामक एक उपन्यास में वर्णित मंगलपुर ग्राम के निकटवर्ती सरोवर की शोभा का एक चित्र प्रस्तुत करना समीचीन प्रतीत होता है -

"चारों ओर ऐसे सरोवर थे, जिनका पानी कभी सूखता न था ।--- यदि कभी सरोवर का पानी कम हो जाता, तो उसे बम्बे का पानी देकर पुन: भर दिया जाता था । दो सरोवर तो बिलकुल पक्के थे, जिनके किनारे आठ-दस मन्दिर अब तक बने हुए हैं । इन मंदिरों और सरोवरों के बीच में पक्की सीढ़ियाँ हैं और उसके बाद सरोवर का निर्मल जल । किनारे-किनारे बरगद और नीम के वृक्ष, बांस तथा नरकुल के झाड़ और केलों के दर्जनों सपल्लव स्तम्भ । बस्ती से लगे वृक्षों पर बैठे कभी मोर बोलते हैं, कभी आमों के झुरमुट से कोयल कूकती है । जब वर्षा ऋतु आती, सरोवर तृप्ति से लहरा उठता, तब उनके ऊपर श्वेत बतखें तैरती हुई बड़ी शोभनीय प्रतीत होतीं ।"[1]

प्रस्तुत वर्णन पढ़ने मात्र से सरोवर का चित्र पाठक के मानस में साकार हो उठता है । सरोवर के किनारे पर वृक्ष, उन वृक्षों पर कभी-कभी बोलते मोर और कूकती कोयल तथा वर्षा ऋतु में सरोवर के जल पर तैरती श्वेत बतखों ने सरोवर के सौंदर्य को द्विगुणित कर दिया है । यह प्रकृति-चित्रण पीठिका के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है ।

अभी तक तो हमने प्रकृति के केवल कोमल रूप की चर्चा की, परन्तु वाजपेयी जी ने प्रकृति के कोमल रूप के अतिरिक्त उसके भयंकर रूप का भी वर्णन अपनी रचनाओं में किया है । उनके उपन्यासों में जहाँ एक ओर प्रकृति के सौम्य, सरस एवं रम्य चित्र प्राप्त

1- भूदान, पृ0 20

होते हैं , वहाँ दूसरी ओर विकराल तथा आतंककारी रूप भी प्राप्त होते हैं । प्रथम प्रकार के चित्र यदि हृदय में उत्साह उत्पन्न करते हैं, तो दूसरे प्रकार के वर्णन हृदय में भय और आतंक का संचार करते हैं । पिछले पृष्ठों में हम प्रकृति के रम्य रूप का वर्णन कर चुके हैं, अब प्रकृति के भयंकर पक्ष का भी एक चित्र द्रष्टव्य है -

"उस समय एक तो आंधी बहुत तेज चल रही थी, दूसरे पानी भी बरस रहा था । बादलों के गर्जन और बिजली की चमक से एक महा भयानक विनाशात्मक, अकल्पित संकट की आशंका से उसका रोआं-रोआं काँप रहा था । ---चारों ओर अंधकार । तेज हवा का अराटा, पानी की बौछार और पड़-पड़ शब्द करते छोटे-छोटे ओले ।"[1] रात के समय ऐसा वातावरण भयंकरता में वृद्धि ही करता है । आन्धी का तेज़ चलना, पानी का बरसना, बादलों का गरजना, बिजली का कौंधना आदि एक ओर हृदय में जहाँ भय का संचार करते हैं, वहीं दूसरी ओर ये रेखाएँ पाठक की कल्पना के समक्ष भयंकर तूफ़ान का एक चित्र साकार कर देती हैं ।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्रकृति-वर्णन संक्षिप्त रूप में ही हुआ है । कहीं भी वे प्राकृतिक वर्णन के मोह में इतने अधिक नहीं पड़े हैं कि ऐसे वर्णन के विस्तृत हो जाने से कथा की गति अवरुद्ध हो जाती हो । फलस्वरूप उनके उपन्यासों में कहीं भी प्रकृति-चित्रण बोझिल नहीं है ।

वाजपेयी जी ने बड़ी ही सावधानी से देशकाल सम्बंधी चित्रण अपने उपन्यासों में किया है, तथापि उनके एक उपन्यास में देशकाल सम्बंधी त्रुटि प्राप्त होती है । उनके 'राजपथ' उपन्यास की कथा का परिवेश मुख्यत: कानपुर क्षेत्र ही है । जूही, मैस्टन रोड़, अनवर गंज, सिविल लाइन आदि मोहल्लों का वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित किया गया है, किन्तु जिस सरिता का उल्लेख कानपुर के निकटवर्ती स्थान पर किया गया है, वह कहीं नहीं है । सर्वप्रथम दिलीप को हम नाव पर बैठे हुए ज्वराक्रांत पाते हैं । यहीं उसकी भेंट दादा और लक्ष्मणा से होती है । तट पर आते ही उन्हें एक तांगा दिखाई

1- चलते-चलते, पृ0 8-9

देता है । उसी पर बैठकर वे लोग पहले जूही पहुँचते हैं । तत्पश्चात् अनवरगंज आता है, यह सही है, परन्तु चहल-पहल, सिनेमा आदि का जो चित्रण प्रस्तुत किया गया है, वह जूही में आज भी नहीं है ।'राजपथ' में वातावरण का निर्माण करने के लिए उपन्यासकार ने अनवरगंज मोहल्ले का जो विस्तृत वर्णन किया है, वह असम्बद्ध तथा उबाने वाला प्रतीत होता है ।

अन्त में संक्षिप्त निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी के उपन्यासों में वातावरण-सृष्टि सम्बंधी कुछ दोषों के [illegible] रहते हुए भी वे एक सीमा तक अपनी इस कला में सफल रहे हैं । इन दोषों के लिए तो कहा जा सकता है कि 'एको हि दोषो गुण संनिपाते निमज्जतीन्दो : किरणेष्विवांक : ।'

वाजपेयी जी के उपन्यासों में चित्रित भारतीय समाज :

अपने उपन्यासों में वाजपेयी जी ने तत्कालीन भारत की सामाजिक,आर्थिक, सांस्कृतिक-धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का सफल अंकन किया है । वाजपेयी जी के उपन्यासों का कथा-क्षेत्र केवल भारत भूमि तक सीमित नहीं रहा है, अपितु उनके एक उपन्यास-'छोटे साहब'- में तो वह विदेश तक फैला हुआ है । यहाँ हम उपर्युक्त सभी परिस्थितियों पर क्रमश: अपने विचार प्रस्तुत करेंगे ।

सामाजिक आर्थिक स्थिति :

बीसवीं शती के पूर्व ही से अंग्रेजी राज्य दृढ़ हो चुका था । भारतीय जन-[illegible] जीवन पर दिन-प्रतिदिन पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव प्रबल होता जा रहा था, तथापि मध्यवर्गीय समाज अब भी रूढ़िवादी था । रूढ़ियों को तोड़ने में असमर्थ मध्यवर्ग के लोग अपनी संतानों के विवाह में अपनी सामर्थ्य से बाहर खर्च कर डालते थे ।[1] और उसका बोझ आजीवन खींचते रहते थे । राजा राममोहनराय आदि समाज सुधारकों के प्रयत्नों

1- सपना बिक गया, पृ0 55

के बावजूद भी बाल-विवाह होते ही रहते थे । समाज में दहेज-प्रथा का अनिष्ट यथावत् था । इससे बचने के लिए माँ-बाप अपनी सुकुमार कलिकाओं का विवाह वृद्धों के साथ कर देते थे ; परिणामस्वरूप बाल-विधवा की समस्या खड़ी हो जाती थी । इन विधवाओं को अनेक सामाजिक बंधनों का पालन करना पड़ता था । कभी-कभी उनकी उपेक्षा भी की जाती थी । यह सब असह्य हो जाने पर सब कुछ छोड़कर बाल-विधवाएँ वेश्या बन जाती थीं । जैसा कि अधिकांश हिन्दी उपन्यास-साहित्य में देखा जाता है, ये वेश्याएँ गा-नाचकर ही अपना जीवन निर्वाह करती थी । हीरा वेश्या के माध्यम से वाजपेयी जी ने हमारे समक्ष पतित समाज का चित्र प्रस्तुत किया है । बाबू जी ने उसे इण्टर तक पढ़ाया था । तब तक वयस्क हो जाने पर उसके भाई की दृष्टि उस पर पड़ती है । ऐसी अवस्था में भी एक व्यक्ति जान-बुझकर उससे विवाह कर लेना स्वीकार करता है । हीरा से जब वह व्यक्ति पूरी कहानी सुन लेता है, तब उसके भाई को वह मार डालता है ; क्योंकि उसने उनके यहाँ आना-जाना शुरू कर दिया था और वह हीरा को अपने साथ लिवा ले जाना चाहता था । उस व्यक्ति को हीरा के भाई की हत्या करने के कारण आजीवन कारावास की सजा हो जाती है । तीन बार मुकदमा लड़ने के लिए ही हीरा ने नौकरी की ; परन्तु प्रत्येक जगह दया और औदार्य के नाम पर उससे देहदान की इच्छा ही प्रकट नहीं की गई, वरन् स्पष्ट रूप से कह दिया भी गया कि यदि उसे यह स्वीकार नहीं है, तो उसके लिए उनकी संस्था में कोई जगह नहीं है । उसे पहली बार एक लेबर आफिस में, दूसरी बार एक विद्यालय में और तीसरी बार समाज-कल्याण विभाग में नौकरी मिली, परन्तु सभी जगह एक-सी स्थिति देखकर उसने सोचा कि आज का प्रबुद्ध नामधारी मानव इतना वन्य हो गया है और उसकी सभ्यता इतनी बर्बर, तब बंधे पैसों पर गुलामी करने की आवश्यकता ही क्या ?[1] उसका ऐसा सोचना स्वाभाविक है । फलत: विवशता के कारण वह वेश्या-वृत्ति स्वीकार लेती है ।

इस तरह वाजपेयी जी के उपन्यासों में दहेजप्रथा[2], अनमेल विवाह, [3]बाल-विवाह[4]

1- उनसे न कहना, पृ0 124-125

2- दे पिपासा, पृ0 101, प्रेमपथ, पृ0 109-110, अधिकार का प्रश्न, पृ0 63, कर्मपथ-पृ0 151

3- दे कर्मपथ, पृ0 150, दो बहनें, पृ0 49

4- दे निमंत्रण, पृ0 78, पिपासा, 100, प्रेमपथ, पृ0 111, अधिकार का प्रश्न, पृ0 68

बाल-विधवा,[1] वेश्या-समस्या[2] विधवा-विवाह[3] आदि समस्याओं को उठाया गया है। इन समस्याओं के अतिरिक्त अंतर्जातीय विवाह (अजय कायस्थ है और सुमन ब्राह्मण है, तथापि उपन्यास के अंत में दोनों का विवाह करा दिया जाता है।), अंतर् धर्मीय-विवाह[4] आदि समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

स्वतंत्रता पूर्व लिखे गये उपन्यासों की अपेक्षा वाजपेयी जी के स्वातंत्र्योत्तर लिखे गये उपन्यासों का फलक विस्तृत है।[5] इन उपन्यासों के अधिकांश पात्र शिक्षित मध्यवर्ग के हैं। इन उपन्यासों की कथा भारत के स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् की है, तथापि इनमें राजनीतिक परिस्थितियों के चित्रण का अभाव-सा प्रतीत होता है। ये उपन्यास मुख्यत: उच्च मध्यवर्ग तथा मध्यवर्ग की कथा को लेकर चलते हैं। अत: इन उपन्यासों में इन्हीं वर्गों के चित्रण हमें प्राप्त होते हैं। यदा-कदा निम्न मध्य वर्ग का चित्रण भी वाजपेयी जी के उपन्यासों में उपलब्ध होता है।

उच्च मध्य वर्ग की सामाजिक स्थिति :

बिहारीबाबू तथा त्रिवेणी के परिवार के माध्यम से भारतीय उच्च मध्य-वर्गीय सामाजिक स्थिति की जानकारी हमें प्राप्त होती है। उच्च मध्यवर्ग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है। इस वर्ग का एक अंश पुरातनवादी, अपने नैतिक आदर्शों का कट्टर समर्थक तथा चारित्रिक दृष्टि से दृढ़ और सिद्धान्तवादी है। बिहारीबाबू, मुरारी आदि इसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरा अंश भोगवादी तथा नास्तिक है। इसमें समाविष्ट लोग खाने-पीने, स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध स्थापित करने तथा येनकेन प्रकारेण धन कमाने आदि में विश्वास रखते हैं। त्रिवेणी, राधेबाबू और वसंतराम व्यास आदि ऐसे ही

1- दे. कर्मपथ, पृ0 86, प्रेमपथ, पृ0 107

2- 'पतिता की साधना' नामक उपन्यास में तो इसी का चित्रण सम्पूर्ण उपन्यास में किया गया है। इसके अतिरिक्त दे. निमंत्रण, पृ0 215, टूटा टी सैट, पृ0 147

3- दे. कर्मपथ, पृ0 94

4- दे. कर्मपथ, पृ0 169-170

5- दे. चलते-चलते, गुप्तधन, राजपथ, भूदान, विश्वास का बल, सूनीराह, गोमती-के तट पर, सपना बिक गया, टूटा टी सैट, टूटते बन्धन, विजय श्री आदि।

व्यक्ति हैं । इनके परिवारों की स्थिति इससे भिन्न है । बिहारीबाबू की पुत्री रमा एक फैशनेबुल, कालेज में पढ़ने वाली नवयुवती है । उसके पिता उसकी हरकतों से सदैव सशंकित रहते हैं । त्रिवेणी के घर की स्थिति त्रिवेणी से नितान्त भिन्न है । उसकी पत्नी सती-साध्वी, संयम-नियम से जीवन व्यतीत करने वाली, अपने भगवान में अविचल आस्था रखने वाली सद्गृहिणी है । इस प्रकार हमें 'विश्वास का बल' नामक उपन्यास में सामाजिक के स्थिति के पारिवारिक रूप के इन दो परस्पर विरोधी पक्षों के दर्शन होते हैं ।

बड़े घरों में घरेलू नौकर रखे ही जाते हैं । 'विश्वास का बल' उपन्यास में भी कई घरेलू नौकर हैं । इनमें केवल महंगू बदमाश है । शेष सभी नौकर स्वामिभक्त हैं । त्रिवेणी के नौकर-नौकरानी पूरन और छुटकी परस्पर एक दूसरे को चाहते हैं, तथापि गृहकार्य तथा अपनी गृहस्वामिनी की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते हैं । अपनी मालकिन लक्ष्मी की मानसिक पीड़ा तथा उद्विग्नता उन्हें व्याकुल बना देती है । बिहारीबाबू का नौकर महंगू पहले तो अच्छा व्यक्ति था, परन्तु त्रिवेणी ने उसे बिगाड़ दिया था । माली कालका बिहारीबाबू की निष्ठापूर्वक सेवा करने के पश्चात् वृद्धावस्था में अवकाश ग्रहण कर लेता है । उसे बिहारीबाबू के परिवार से पर्याप्त स्नेह,सम्मान तथा सहायता प्राप्त होती है । इन सभी नौकरों में सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है : राजीव का नौकर उजागर । वह कुछ समय के लिए ही हमारे समक्ष आता है, तथापि हमें बहुत प्रभावित कर जाता है । राजीव के पास जब कुछ भी नहीं रहता और उजागर को वेतन ९ तक देने की उसकी सामर्थ्य नहीं है, तब भी उजागर उसकी यथावत् सेवा करता है और कहता है -"बाबू आप मेरे मालिक हैं । मैंने आपका अन्न खाया है ; इसलिए मेरा आपके साथ वही नाता है, जो आदमी और भगवान का होता है ।"[1] इन शब्दों में उसकी निष्ठा तथा स्वामिभक्ति प्रकट होती है । 'गुप्तधन' का जोधा माली, 'गोमती के तट पर' का वनमालीराम, 'दो बहनें' का दुलारे(रायसाहब का ड्रायवर) आदि सब ऐसे ही अच्छे सेवक और निष्ठावान् नौकर हैं । 'कर्मपथ' में अजय के नौकर

1- विश्वास का बल, पृ0 308

सम्पत की निष्ठा तथा स्वामिभक्ति भी द्रष्टव्य है । निराशा के क्षणों में वह अपने मालिक को ढाढस बंधाता है । मिठाई का कार्य बंद करने की बात उठती है, तब वह कहता है -'आप बेकार में घबड़ाते हैं, बाबूजी । दो-चार दिन देखते हैं, फिर न होगा, तो एक लड़का और रख लिया जायगा ।--- आपको कभी शिकायत का अवसर न मिलेगा ।[1]

वाजपेयी जी के उपन्यासों में निम्न मध्यवर्ग आर्थिक अभाव से ग्रस्त मिलता है । एक सरदार जी साइकिल के आगे अपने दो वर्ष के बच्चे को तथा पीछे श्रीमती को बिठाकर बाजार ले जाते हैं । रास्ते में दुर्घटना हो जाने के कारण उन्हें झगड़ा मोल लेना पड़ता है ।[2] बारम्बार सिटी बस के लिए पैसे खर्च करने की उनकी सामर्थ्य नहीं है । उषा भी इसी वर्ग की, एक साधारण घर की, लड़की है । उसके पिता एक म्युनिसिपल स्कूल में [illegible] अध्यापक थे । उचित मार्गदर्शन के अभाव में उषा इण्टर में अनुत्तीर्ण हो जाती है । शिक्षाक्रम भंग हो जाने पर भी रूप-सज्जा के उसके प्रतिमान पूर्ववत् बने हुए थे । त्रिवेणी की छोटी बहन सरयू के कहने पर कि वह उसे नित्य मिलने आया करे, वह राजी हो जाती है, परन्तु इसके मूल में भी उसकी एक दुर्बलता ही थी, जिसका आधार था - आर्थिक संघर्ष ।[3]

'कर्मपथ' में भी जिन मध्यवर्ग के परिवारों का चित्रण किया गया है, वे आर्थिक संकट-ग्रस्त हैं । प्रस्तुत उपन्यास में वाजपेयी जी ने वर्तमान सामाजिक समस्याओं को समेटते हुए आर्थिक विषमता का मूल्यांकन किया है । इस उपन्यास के प्राय: सभी पात्र किसी न किसी रूप में आर्थिक संकटापन्न स्थिति में दिखाई देते हैं । इससे उनकी सामाजिक स्थिति का भी पता चलता है । मुंशी रामनारायण और श्याममनोहर के

1- कर्मपथ, पृ0 191-192

2- विश्वास का बल, पृ0 163-164

3- वही, पृ0 35

परिवार के माध्यम से हमें इस वर्ग की वर्तमान सामाजिक और आर्थिक स्थिति का भली प्रकार परिचय प्राप्त होता है । दोनों सरकारी कर्मचारी हैं, दोनों को वेतन भी समान मिलता है, तथापि उनकी आर्थिक स्थितियों में अंतर है । रामनारायण की आर्थिक स्थिति श्याम मनोहर की अपेक्षा अधिक अच्छी है । इसका कारण यही है कि रामनारायण का परिवार छोटा है, जबकि उनके परिवार की तुलना में श्याम मनोहर का परिवार बहुत बड़ा है । हड़ताल के कारण श्याममनोहर को इस महीने का वेतन भी नहीं मिला है, परिणामत: उनके परिवार की आर्थिक स्थिति और भी विषम हो जाती है । इस समस्या के विषय में अजय सोचता है -' जब तक समाज का नव-निर्माण नहीं होता , ये समस्याएँ उठेंगी और आगे बढ़ेंगी । न हम इनकी उत्पत्ति रोक सकते हैं, न वृद्धि को ।'[1] घनश्याम इस विषय में अपने ढंग से सोचता है -'परिवार-नियोजन अभियान अगर पहले प्रारंभ हो गया होता और उसके पिता ने तनिक भी सूझ-बूझ से काम लिया होता, तो आज वे गले तक ऋण में न डूबे होते ।'[2] इस तरह दोनों मित्रों के विचारों में आर्थिक स्थिति के साथ-साथ वर्तमान सामाजिक स्थिति का भी संकेत मिलता है । प्रस्तुत उपन्यास का प्रारंभ ही आर्थिक संघर्ष से होता है । अजय और घनश्याम के अतिरिक्त अन्य पात्रों में ठाकुरसाहब, एलिस डिसोजा, पुजारी जी, सोमेश्वर दुबे आदि अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक संघर्ष में रत हैं ।

अध्यापक वर्ग की स्थिति :

वाजपेयी जी के उपन्यासों में हमें अध्यापकों के दो वर्ग प्राप्त होते हैं - एक तो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा दूसरे माध्यमिक और प्राथमिक स्कूलों के अध्यापक ।'विश्वास का बल' का मुरारी,'सूनीराह' का वैशंपायन, तथा 'गुप्तधन' के गुरु जी (आचार्य - गौरीशंकर) आदि कालेज में प्राध्यापक हैं । मुरारी चार सौ रुपया मासिक वेतन पाता है । वह धन-संग्रह की चिन्ता नहीं करता, वरन् राष्ट्र-निर्माण की आकांक्षा से

1- कर्मपथ, पृ0 27

2- वही, पृ0 46

विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण का प्रयत्न करता रहता है । स्कूलों के अध्यापकों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है । त्रिवेणी का पुत्र जीवन इस वर्ग की दीन स्थिति और विवशता पर प्रकाश डालता हुआ अपने पिता से कहता है -

" ----- यहाँ तक कि अध्यापकों से भी यह बात छिपी नहीं कि जो लड़का विद्यालय की पढ़ाई के भरोसे रहता है वह अपनी परीक्षा में कभी उत्तीर्ण नहीं हो सकता ; क्योंकि आज के अध्यापक तो बिलकुल उसी हैसियत के रह गये हैं जैसे मंदिर, मस्जिद, किला या ऐतिहासिक स्थानों पर दर्शकों या यात्रिकों को इधर-उधर घुमा-फिराकर पैसा ऐंठनेवाले गाइड । बाबू, जब मैं समाचार-पत्रों में अपने राष्ट्र-निर्माताओं के व्याख्यानों को पढ़ता हूँ कि विद्यार्थी गलत रास्ते पर जा रहे हैं, तब मुझे उनके इस कोरे उपदेश-कथन पर हँसी आती है । उन्हें अध्यापकों की असली हालत का बिलकुल ध्यान नहीं है । आज का कोई भी अध्यापक भला ट्यूशन किये बिना जी सकता है ? और ट्यूशन पर निर्वाह करने वाला अध्यापक अपने विद्यार्थियों के प्रति ईमानदार न रहे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?"[1]

जीवन के उपर्युक्त वाक्य हमारे अध्यापकों की दीन-हीन स्थिति पर यथार्थ प्रकाश डालते हैं । वास्तव में हमारे इन राष्ट्र-निर्माताओं की स्थिति बहुत ही दीन-हीन तथा विषम है । इनकी ऐसी स्थिति के परिणामस्वरूप हमारे राष्ट्र का नैतिक चरित्र दिन-प्रतिदिन गिरता चला जा रहा है ।

वकीलों की असलियत का भी सुन्दर उद्घाटन वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में किया है । कानून के ये प्रतिनिधि कितने स्वार्थी, झूठे और पतित होते हैं इसका चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -'वकील उस जाति का व्यक्ति है, जो केवल झूठ बोलने की कमाई खाता है । मिथ्या भाषण ही जिसकी जीविका का एक मात्र आधार है । जिसके जीवन का मूल हेतु ही यह है कि मेरा उल्लू सीधा होना चाहिए,

---

1- विश्वास का बल, पृ0 72

मुझे रकम मिलनी ही चाहिए ; दुनिया चुल्हे-भाड़ में जाय । सभ्यता, धर्म, कर्तव्य, स्वर्ग और मुक्ति कहीं कुछ नहीं है । जो कुछ भी है - स्वार्थ है, पैसा है, भोग है ।"[1]

वकील त्रिवेणी अपने मुवक्किलों को समझाता है -" सच बोलने में कोई ब्यूटी नहीं है । ध्यान से देखा जाय, तो असत्य बोलकर अपना मंतव्य सिद्ध कर दिखाने में बुद्धि और विवेक में जो निखार उत्पन्न हो जाता है, वह सच बोलने में कभी संभव नहीं होता । फिर मेरी धारणा है कि ऐसा असत्य बोलने में कोई पाप भी नहीं, जो हमारी जीविका, व्यवसाय सम्बंधी नीति और सुरक्षा में सहायक हो । और भाई, मेरा अपना ख्याल तो यही है कि थोड़ा-बहुत असत्य का सहारा लिए बिना जीवन के अन्याय तत्वों और मूल्यों की रक्षा हम कभी कर नहीं सकते ।"[2]

त्रिवेणी के उपर्युक्त विचार यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए वकीलों का दृष्टिकोण कितना विकृत हो उठा है । त्रिवेणी की पत्नी लक्ष्मी ऐसे पैसे को पाप की कमाई समझती है । उसकी सहानुभूति मुवक्किलों के साथ है । वह अपने पति को समझाती हुई कहती है -"देखो बहुत हो चुका । जो लोग अपना सर्वस्व लगाकर मुकद्दमा लड़ने के लिए आते हैं, जिनके पैसे से हमारी गृहस्थी चलती है, उनको गाली देना या डाँटना तुमको शोभा नहीं देता । ---- अगर उन्होंने अपनी स्त्री का जेवर बेचकर या कोई खेत रेहन रखकर तुमको रुपया दिया हो, तो उस रुपये से हमको क्या कोई सुख मिलेगा।"[3]

इतना ही नहीं, वकील अपने मुवक्किलों से पैसा लेते हैं, तथापि हृदयपूर्वक उनका कार्य नहीं करते । तारीखें बढ़वा देते हैं । उनका मुख्य उद्देश्य अधिकाधिक धन पैदा करना और उस धन से वैभव-अर्जन कर शान-शौकत के साथ रहना है । 'विश्वास का बल' उपन्यास में बिहारीबाबू मुरारी से इसलिए असंतुष्ट हैं कि वह वकील न बनकर

1- विश्वास का बल, पृ0 149

2- वही, पृ0 32

3- वही, पृ0 32

चार सौ रुपये मासिक वेतन पर प्राध्यापक बन गया है । उनकी दृष्टि में सफल व्यक्ति वही होता है , जो अधिक धन पैदा करता है और वकालत धन पैदा करने का सबसे बड़ा साधन है । त्रिवेणी बरेली जाता है, तब बिहारीबाबू उससे यह सोचकर असंतुष्ट हो जाते हैं कि उसे इधर-उधर घूमने-फिरने के लिए इतना अवकाश कैसे मिल पाता है । वे सोचते हैं कि शायद उसकी वकालत चलती नहीं । वे उससे पूछते हैं कि इस वर्ष उसने कितने रुपये बैंक में जमा किये हैं । प्रस्तुत उपन्यास में हम देखते हैं कि वकील स्वयं को रुपया कमाने की मशीन समझते हैं । रुपये के सामने उनकी दृष्टि में किसी भी बात का कोई मूल्य नहीं रह जाता । और ऐसे वकील हमारे समाज के सम्भ्रान्त-सम्मान्य व्यक्ति समझे और माने जाते हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में जमींदारों की आर्थिक स्थिति अच्छी प्रतीत नहीं होती । 'कर्मपथ' उपन्यास के ठाकुरसाहब पंचम महाराज के वंशज हैं । आज उनकी आर्थिक स्थिति पहले जैसी अच्छी नहीं रही है, तथापि वे वर्तमान के सुख को भूलकर अतीत की प्रतिष्ठा सुरक्षित बनाए रखने में निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं । इस सम्बन्ध में वे कहते हैं - हमारे वंश की रीति रही है कि पिता अपनी संतान के लिए उतना अवश्य छोड़ जाता है, जितना उसको विरासत में अपने पिता से प्राप्त होता है । आज अगर मैं उसमें से कुछ खर्च कर दूँ, तो कल कहाँ से पूरा करूँगा ? इसी कारण मैं जमींदारी बाण्ड भी नहीं खर्च करता । बस थोड़ी सी जमीन है । उसी के सहारे गुजर-बसर हो जाती है ।"[1]

प्रस्तुत उपन्यास में निम्न वर्ग का चित्रण अत्यन्त आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है । कालका, दीनानाथ, धन्नी गुरु, फतुहा, सम्पत और सुन्दरिया इस बात को पुष्ट करते हैं । प्रथम तीन अपढ़ लोगों में भी हमें मानवता के दर्शन होते हैं । उनका परस्पर निष्कपट और स्वच्छंद व्यवहार मन को आकृष्ट करता है । उन लोगों में औदार्य एवम् अपनत्व के दर्शन होते हैं । फतुहा के हृदय में ठाकुर साहब के प्रति जो श्रद्धा तथा भक्ति है वह अनुपम है । गाँव की बहू-बेटियों की इज्जत की रक्षा करना

1- कर्मपथ, पृ0 83

वह अपना धर्म समझता है । सुन्दरिया जैसी निम्न वर्गीय नारी भी अपने स्त्रीत्व की रक्षा के प्रति सदैव सतर्क है ।

कवियों की स्थिति व उन पर व्यंग्य :

कवि भी हमारे समाज का एक अंग होता है । वाजपेयी जी के उपन्यासों में ये कवि भीप्राय: दो प्रकार के प्राप्त होते हैं । प्रथम, वे जो मनीषी होते हैं, मा सरस्वती के परम साधक होते हैं तथा युग-युगान्तर तक जो समाज की श्रद्धा के विषय बने रहते हैं । ऐसे कवि वाजपेयी जी के उपन्यासों में नहीं मिलते । द्वितीय, वे कवि, जो कविता करना तो कम जानते हैं, परन्तु उसका दंभ और अभिनय अत्यधिक प्रदर्शित करते हैं । यदि उनका गला अच्छा होता है, तो दो-चार तुकबंदियाँ कर अपने गले की मधुरता से कवि सम्मेलनों के मंच पर समाँ बाँध देते हैं । वाजपेयी जी ने अपने 'विश्वास का बल', 'पिपासा' आदि उपन्यासों में ऐसे ही कवियों का चित्रण किया है । मुरारी ने व्यंग्यात्मक शैली में ऐसे ही कवियों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है । उसके मंतव्यानुसार ये कवि 'मूड' का बोझा ढोया करते हैं । अभी मूड़ नहीं है - यह उनका सब कुछ बन जाता है । वे न समय पर घर आते हैं, न खाते हैं, न ही सोते हैं । इसके अतिरिक्त चरित्र की दृष्टि से भी ये लोग पतित होते हैं । वह कहता है - अगर 'अगर संयोग से मेरे यहाँ दो-तीन दिन भी ठहरकर परिवार में घुल-मिल गये, तो विदा होने के बाद मेरी ही बहन अथवा पत्नी को पत्र रूप में प्रेमगीत भेजना प्रारम्भ कर देंगे ।उसके उत्तर में यदि मेरे यहाँ से उनकी प्रशंसा में कोई दो शब्द लिख देगा, तो अपने मित्रों में बैठकर इस बात का प्रचार करेंगे कि यह लड़की मुझसे प्रेम करती है, मेरे ऊपर मरती है । मेरे यहाँ तो नहीं, पर मेरे एक मित्र के यहाँ से, एक कवि महोदय, फाउण्टनपेन ही उड़ा ले गये ।'[1]

मुरारी के उपर्युक्त वक्तव्य के द्वारा लेखक ने कवियों पर तीव्र व्यंग्य कसा है । मुरारी तो यहाँ तक मानता है कि सामान्य व्यक्ति समाज के लिए जितना उपयोगी

1- विश्वास का बल, पृ0 151-152

होता है, साधारण कवि उतना भी उपयोगी नहीं होता । साधारण मनुष्य का तो हम विश्वास कर सकते हैं, यहाँ तक कि उसका सम्मान भी कर सकते हैं, उसे अपने यहाँ ठहरा सकते हैं ; लेकिन कवि का विश्वास भी नहीं किया जा सकता । 'पिपासा' का कमलनयन भी ऐसा ही कवि है जो कवि-सम्मेलन में केवल आत्मगोपनीयता का परिचय देता है । वह दंभी है । अपने मित्र की पत्नी शकुन्तला से वह प्रेम करने लगता है और उपन्यास के अंत में भाग जाता है ।

समाज में एक ओर जहाँ ऐसे मित्र दिखाई देते हैं, वहाँ दूसरी ओर आदर्श मित्र भी देखे जा सकते हैं । एक ओर समाज, स्वार्थी मित्रों के कारण सड़ गया है और उसमें से दुर्गन्धि आ रही है, तो दूसरी ओर उसका स्वस्थ रूप प्रकट होता है , जो वातावरण को अपने सौरभ से महँका देता है ।'कर्मपथ' के अजय-घनश्याम तथा अजय-सुमन आदर्श मित्र हैं, जो अंत तक निष्ठापूर्वक मैत्री-सम्बन्ध निभाते ही रहते हैं ।

ईसाई समाज पर व्यंग्य :

उषा के साथ कालेज में पढ़ने वाली मिस हनीबाल के माध्यम से वाजपेयी जी ने ईसाई समाज की विचारधारा के उस पक्ष पर प्रकाश डाला है, जो एकांगी है । मिस हनीबाल उषा को समझाती है -'जिन्दगी का कोई दूसरा उद्देश्य नहीं हो सकता । ---- जिन्दगी का मतलब है मौज और बहार । एक मस्ती तो जिन्दगी में होनी ही चाहिए ; क्योंकि प्रकृति मस्ती सबको देती है । अगर वह कभी न भी दे, तो मस्ती हमें अपने अन्दर पैदा करनी चाहिए । ----- हमको मस्ती जिन्दगी से लूट लेनी चाहिए। चाहे जहाँ से मिले और चाहे जैसे मिले ।'[1] मिस हनीबाल के इस उपदेश को सुनकर उषा सोचती है - ' तब यह मिस हनीबाल जो कुछ शब्दों में कह गई है, वकील साहब वही अपने कर्म के द्वारा कहते हैं । दोनों में अन्तर क्या है ?'[2]

उषा का यह चिन्तन ईसाई समाज के एक पक्ष पर प्रकाश डालता है, जो

1- विश्वास का बल, पृ0 210-211

2- वही, ,, ,,

किसी भी प्रकार मौज-मस्ती का जीवन व्यतीत करने का अभिलाषी होता है ।और जिसके लिए चारित्रिक नैतिकता का कोई मूल्य नहीं होता ; किन्तु उसी ईसाई समाज में मिस हैलेन जैसी महिलाएँ भी होती हैं, जिनके लिए उषा सोचती है -'यह अध्यापिका दीदी भी तो क्रिश्चियन समाज की एक रत्न है ।'[1] परन्तु उषा का केवल इतना सोचना पर्याप्त नहीं है । यदि उपन्यासकार ने ईसाई समाज के इस पक्ष पर भी थोड़ा-सा और प्रकाश डाला होता, तो इस समाज का सन्तुलित और सही चित्रण हमें उपलब्ध हो जाता ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में उच्च मध्य वर्ग, निम्न मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग के समाज का यथार्थ चित्रण किया है । उच्च मध्यवर्ग के सभी प्रमुख पात्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं ।'विश्वास का बल' के बिहारीबाबू, त्रिवेणी, वन्दना, राजीव, व्यास, 'दो बहनें' के रायसाहब, 'निमंत्रण' के गोपाल बाबू, प्रो० वैशम्पायन, 'राजपथ' के लाला गिरधारीलाल, दादा ज्योति - स्वरूप, प्रतिमा,'अधिकार का प्रश्न' के काशीबाबू, देवेन्द्र आदि सभी सम्पन्न हैं । इनके बीच में 'विश्वास का बल' में केवल उषा आर्थिक संकट से ग्रस्त है तथा इस उपन्यास के अंत में राजीव की गरीबी अपवाद रूप है । प्रस्तुत उपन्यास में वातावरण सम्पन्नता-प्रधान होने के कारण उषा तथा राजीव के आर्थिक दैन्य की ओर हमारा ध्यान अपेक्षाकृत कम जाता है, तथापि इस बात की ओर तो हमारा ध्यान जाता ही है कि त्रिवेणी जैसे धनी उषा जैसी गरीब लड़कियों की विवशता का अनुचित फायदा उठाने का प्रयत्न करते हैं । गरीबों तथा उनकी निर्धनता का यथार्थ चित्रण 'गोमती के तट पर' में किया गया है । इसमें यह भी बतलाया गया है कि करीमुल्ला और लज्जाराम जैसे स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए छोटे-छोटे बच्चों को किस प्रकार भिक्षुक बनने की शिक्षा देते थे तथा उन्हें अपने कार्य में निपुण बनाते थे । समाज का कोई भी अंग उपन्यासकार से अछूता नहीं रह गया है । यहाँ एक बात विशेष रूप से कहनी पड़ती है कि वाजपेयी जी ने जिस समाज का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है, वह समाज

1- विश्वास का बल, पृ० 212

अपने पूरे और वास्तविक रूप में हमारे समक्ष नहीं आ पाया है । उस समाज का केवल ऊपरी रूप ही हमें देखने को मिलता है । सामाजिक परिस्थितियों के बदलने के साथ-साथ समाज में भी परिवर्तन होना चाहिए, किन्तु वाजपेयी जी के उपन्यासों में समाज बदलता हुआ नहीं दिखाई पड़ता । बीसवीं शती के उत्तरार्ध में भी उनके साहित्य में जो सामाजिक मान्यताएँ प्राप्त होती हैं, वे आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व की हैं, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है । द्वितीय महायुद्ध और भारत के स्वातंत्र्य के पश्चात् हमारे समाज के प्रत्येक वर्ग की मान्यताओं में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं, परन्तु वाजपेयी जी के उपन्यास साहित्य के सम्यक् अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि वाजपेयी जी तथा उनके साहित्य को जैसे यह सब स्पर्श नहीं कर सका है । परिणामत: परिवर्तित मान्यताओं का उल्लेख उनके उपन्यासों में प्राप्त नहीं होता । 'विश्वास का बल' में एक स्थल पर हिन्दी-अंग्रेजी के विवाद पर थोड़ा सा प्रकाश डालते हुए हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा प्रकट की गई है ।[1] उच्च वर्ग अंग्रेजी का भक्त है और हिन्दी को हीन दृष्टि से देखता है ।

'पिपासा', 'निमंत्रण', 'विश्वास का बल' आदि उपन्यासों में चित्रित समाज के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उस चित्रण में हमें विवेचन और विश्लेषण की गहराई प्राप्त नहीं होती । इसका प्रमुख कारण तो यही है कि उपन्यासकार का उद्देश्य मुख्यत: सामाजिक चित्रण नहीं रहा है । वह तो मनोविश्लेषण पद्धति के अनुसार मानव मन की विकृतियों और उनके प्रभावों को अंकित करने में ही व्यस्त रहा है । यौन-अतृप्ति ही उसके मूल प्रतिपाद्य रहे हैं ; अत: अपूर्ण एवं प्रभावहीन सामाजिक चित्रण के लिए उपन्यासकार को दोषी नहीं ठहराया जा सकता ।

सांस्कृतिक -धार्मिक चित्रण :

सांस्कृतिक बिम्ब के विषय में एक आलोचक का कहना है -'सांस्कृतिक चित्र

1- विश्वास का बल, पृ0 142-143

स्वत: ही कृति में प्रतिबिम्बित होने चाहिए । यदि लेखक बहुज्ञ बनने के लिए प्रयासपूर्वक भिन्न-भिन्न बिम्ब प्रस्तुत करेगा, तो कृति में अस्वाभाविकता आ जाएगी । जिस लेखक की निरीक्षण शक्ति जितनी अधिक सशक्त और सूक्ष्म होगी, उसकी कृति में समाज का उतना ही स्पष्ट चित्र उभरेगा ।'[1] इस कसौटी पर देखा जाय, तो वाजपेयी जी की निरीक्षण शक्ति अति सूक्ष्म है । उनके उपन्यासों में सांस्कृतिक चित्रण अनायास ही हुए हैं ।

वाजपेयी जी के उपन्यासों के कथानक का क्षेत्र बरेली-लखनऊ से बम्बई तथा इलाहाबाद से दिल्ली तक के प्रदेश में विस्तृत है, किन्तु प्रधानत: जिस प्रदेश की संस्कृति उपन्यासों में प्रस्तुत हुई है वह है कन्नौजी बोली का क्षेत्र । इसे हम कान्यकुब्ज संस्कृति का प्रदेश कह सकते हैं । वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राय: कानपुर के आर्यनगर, प्रेमनगर, जी० टी० रोड, इटावा बाज़ार, कलक्टरगंज, फूलबाग, मूलगंज आदि मोहल्ले ; इटावा जिले के कस्बे और गांव-औरैया, मथैना, करमपुर, दिबियापुर, भडारीपुर, कंचौसी ; जिला जालौन का कुठौंद ; जिला उन्नाव का बीघापुर तथा अन्य अनेक स्थलों का वर्णन प्राप्त होता है ।[2] वाजपेयी जी ने इन्हीं स्थानों में प्रचलित प्रथाओं और बोलियों का यथास्थान प्रयोग किया है । इस विषय में हम भाषा-शैली से सम्बंधित अध्याय में विस्तारपूर्वक विचार कर चुके हैं । अत: यहाँ भाषा और बोलियों के अतिरिक्त शेष सभी सांस्कृतिक चित्रणों का उल्लेख किया जायगा ।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में विवाह के लिए जन्मकुंडली मिलाने तथा दहेज लेने के का वर्णन तो प्राप्त होता ही है । इसके अतिरिक्त वरिच्छा की प्रथा का भी उनकी रचनाओं में निर्वाह हुआ है ।[3] वरिच्छा के अवसर पर कन्यापक्ष के लोग वर के हाथ में पान और रुपये देकर एक प्रकार से विवाह की पुष्टि करते हैं । विवाह के समय बराती कैसी-कैसी टेढ़ी-मेढ़ी माँगें रखकर कन्यापक्ष को तंग करते हैं, किस तरह

1- साहित्य शिल्पी भगवतीप्रसाद वाजपेयी : साधना और उपलब्धि, प्रधान - सम्पादक, डा० विश्वनाथ गौड़, पृ० 386

2- दे. चंदन और पानी, विश्वास का बल, सपना बिक गया, टूटते बंधन, अधिकार-का प्रश्न ।

3- एक स्वर आँसू का, पृ० 35

मूल्यवान् वस्तुओं का दुरुपयोग करते हैं तथा लक्स साबुन से कपड़े साफ करते हैं - यह सब 'दूखन लागे नैन'[1] में चित्रित हुआ है। विवाह के सायंकृत्यों की समाप्ति पर विदा के पूर्व 'गूंथ छुराई'[2] (ग्रन्थि-मोचन) की प्रथा का वर्णन भी प्राप्त होता है। ग्रंथि छोड़ने के समय वर इच्छित वस्तु माँगता है, परन्तु वाजपेयी जी का सुधारवादी पात्र आशीर्वाद के सिवाय और कुछ नहीं माँगता। वर को कन्या पक्ष के सम्बंधियों की स्त्रियाँ उपहार देती हैं, तब उन्हें प्राय: मायके के स्थान के नाम से बुलाया जाता है। माता जी के कार खरीद लाने के लिए कहने पर कई स्वर एक साथ सुनायी पड़ते हैं -'वाह, क्या तबियत पायी है लखनावाली ने।'[3] विदा के समय कन्या बिलख-बिलखकर रोती है, उसकी डोली चलती है, तब वर का पिता 'मखाने-छुहारे की वर्षा' करता है।[4] विवाह के पश्चात् वधू वर के घर पहुँचती है, तब पारछन[5] होती है। वर-वधू किसी मंदिर में जाकर पिसे चावल के घोल में हाथ डुबाकर दीवार पर थाप लगाते हैं।

विवाहोपरान्त प्राय: वर-पक्षवाले धन-वस्तु कम मिलने की शिकायत करते हैं। लोग बेचारी नववधू की मानसिक स्थिति का तनिक भी विचार नहीं करते और बिना सोचे-समझे आघात करते हुए भाँति-भाँति की मीनमेख निकालते हैं।[6] अपने माता-पिता -भाई का अपमान सुनकर नवोढ़ा के मन पर क्या बीतती होगी, इसका ध्यान नहीं रखा जाता। कभी-कभी तो पुराना हंडा दिये जाने पर क्षोभ व्यक्त किया जाता है[7] तो कभी सास वस्त्रों को देख कहती है -"ऐसे वस्त्र तो हमारे यहाँ कमीन और पजनियों को दिये जाते हैं।[8]

1- दे.दूखन लागे नैन, पृ0 183-186
2- सपना बिक गया, पृ0 141
3- वही, ,,
4- वही, पृ0 142
5- दूखन लागे नैन, पृ0 196
6- वही, ,,
7- एक प्रश्न, पृ0 26
8- वही, पृ0 18

परिवार का अभिभावक वर्ग वधू का प्रथम बार मुख-दर्शन करने पर 'मुँह दिखायी'[1] में गहने आदि भेंट करता है। बहू सास आदि को विशेष ढंग से प्रणाम करती है। इस सम्बन्ध में राका कहती है -'मुझे अच्छी तरह स्मरण था कि ऐसे अवसरों पर नव-वधुएँ चरणस्पर्श करती हुई बाएँ हाथ की अँगुलियाँ तो दायें पैर पर टिकाये रखती हैं, किन्तु अपने दायें हाथ को बायें पैर से इतनी मंद गति से उठाती हैं कि प्रथम चरणस्पर्श में एक मिनट से अधिक ही लग जाता है। मैंने भी ऐसा ही किया ---- तीन बार मुझे चरण-स्पर्श करने थे। इसलिये तीसरी बार अपने दोनों हाथों को धीरे से उठाकर मस्तक से लगाने के अनन्तर मैंने जो अपना सिर उठाया ------।'[2]

सुहागरात के दिन बहुत देर तक गाना-बजाना चलता रहता है, तत्पश्चात् प्राय: भाभियाँ वर को वधू के कमरे में या बहू को वर के कमरे में भेजा करती हैं। भाभियाँ देवर को 'लाला' कहकर सम्बोधित करती हैं और कहती हैं -'आज तुमको वहाँ नहीं, यहाँ सोना है लला, इस कमरे में।'[3] उस समय के कक्ष का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है - 'उस दिन उसका फर्श गाय के गोबर से लीपा गया था। पलंग पर एक रंगीन चादर बिछी हुई थी। तकिये दो थे ----(खिड़की में) मिठाइयों से भरी एक तश्तरी, गरम दूध से भरा कटोरी से ढका एक गिलास तथा बरगद के पत्ते पर गुलाबों के पुष्पों की माला रखी थी। पास ही धूपदानी में खुंसी हुई अगरबत्तियाँ सुलग रही थीं। कमरा सुगंध से महक रहा था।'[4]

वधुएँ अपनी ननद को प्रणाम करती हैं। सास के आने पर वे आसन छोड़कर खड़ी हो जाती हैं[5] सास की उपस्थिति में पति को आता देखकर भी वे खड़ी हो जाती हैं

1- टूटते बंधन, पृ0 27

2- सपना बिक गया, पृ0 102

3- एक प्रश्न, पृ0 24

4- वही, ,,

5- सपना बिक गया, पृ0 101

बहू अपनी ससुराल जाए या मायके, वहाँ पहुँचते ही उसके पैर धोये जाते हैं ।[1] यह कार्य प्राय: नाइन अथवा बहू से पद में छोटी स्त्रियाँ करती हैं । बधू के पुत्र होने पर नवजात शिशु की बुआ छठी के दिन बच्चे की आँखें आंजती है । वधू उसको नेग देती है । राका नेग के रूप में अपनी ननद मौद्दादा को अपनी सोने की रिस्टवाच दे देती है ।[2]

वाजपेयी जी के उपन्यासों में अंत्येष्टि संस्कार की भी एक-दो झलकें देखने को मिल जाती हैं - पिंड़दान, पीपल के पास शव रखना, दाह-संस्कार, गरुड़-पुराण के पाठ की व्यवस्था तथा गीता-स्वस्त्ययन आदि का वर्णन प्राप्त होता है ।[3]

वाजपेयी जी के उच्च-शिक्षा-प्राप्त मेधावी कथा नायक भी आस्थावान् प्रतीत होते हैं । रंजन कार्य आरंभ करने से पूर्व गणेश जी की शुंडका ध्यान करता है, फिर वीणा-पाणि के पास बैठे हुए हंस का ।[4] अरुण टाई-हैट धारण कर गणेश को प्रणाम करता है ।[5] वाजपेयी जी के उपन्यासों में गौण पात्र कामताबाबू(सूनीराह), बिहारी-बाबू(विश्वास का बल), घनश्याम (चंदन और पानी) आदिभी दुर्गा-सप्तशती, हनुमान-चालीसा और मानस का पाठ करते हुए दिखाये गये हैं ।

समाज में जो मान्यताएँ घर कर गई हैं, उसका उल्लेख भी वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त होता है । प्रस्थान के समय जल भरी बाल्टी[6] और दही-मछली का शकुन (नौकरानी केवल शकुन के लिए अपने मालिक के प्रस्थान के समय कहती है -बाबूजी, दही-मछली लेने आना)[7] आदि मान्यताओं का उल्लेख उनके उपन्यासों में प्राप्त होता है ।

1- अधिकार का प्रश्न, पृ0 13

2- सपना बिक गया, पृ0 272

3- विश्वास का बल, पृ0 117-118

4- चंदन और पानी, पृ0 219

5- एक स्वर आँसू का, पृ0 24

6- विश्वास का बल, पृ0 60

7- वही, पृ0 49

उपन्यासकार ने गाँवों की दुव्यवस्था से पीड़ित होकर वहाँ पर होने वाले अत्याचारों का भी कहीं-कहीं चित्रांकन किया है । गाँव के लोग प्राय: अपनी समस्याओं का समाधान लट्ठ से करते हैं, पुलिस कर्मचारी और अधिकारी खाना-पूरी करते हुए केवल रुपया लूटते हैं, गाँव में कुछ कसाई लोग चोरी-छिपे अब भी गोवध करते रहते हैं ----- कहीं-कहीं ये कसाई लोग कांग्रेस के जन-नायकों से मिले रहते हैं ---वे जननायक जननायक अपने दल को प्रबल बनाये रखने के विचार से उनकी सहायता करते रहते हैं ।[1]

कुछ उपन्यासों के नायक ग्राम-सुधार करते हुए दिखाये गये हैं । उनके सुधारवादी दृष्टिकोण में गांधीवादी प्रभाव की स्पष्ट छाप उभरती है ।'चन्दन और पानी' में अपने पुत्र के द्वारा किये गये जघन्य अत्याचार के प्रति भी पिता रुष्ट नहीं होता । इतना ही नहीं, वह गाँव के अन्य पीड़कों के प्रति भी दामाशील रहता है ।'सूनी राह' में शिवचरण और निखिल के चाचा का हृदय-परिवर्तन होता है । प्रेम के क्षेत्र में अवैध प्रेम में लिप्त पात्र भी अंतत: सुधर जाते हैं । गोपालबाबू इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं । उपन्यासों के अंत तक पहुँचते-पहुँचते किसी भी पात्र के हृदय में किसी के प्रति भी घृणा नहीं रहती । रंजन इण्टरव्यू के समय उससे पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देता हुआ साम्यवाद और नैतिकता को परस्पर विलोम शब्द बतलाता है । गांधीवाद के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुए वह कहता है -" मैं नहीं मानता कि भारत सरकार समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए गांधीवाद से दूर और साम्यवाद के निकट होती जा रही है । क्योंकि साम्यवाद का अंतिम अस्त्र है हिंसा, जबकि भारत सरकार का अंतिम अस्त्र अहिंसक संघर्ष है ।"[2]

वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में गरीबों का खून चूसने वाले कसाई डाक्टर,[3] सफेदपोश बेईमान नेता[4], असत्यभाषी वकील[5], अविश्वसनीय तथा चरित्र भ्रष्ट कलाकार

1- सपना बिक गया, पृ0 112-113

2- चंदन और पानी, पृ0 222

3- वही, पृ0 25

4- वही, ,,

5- विश्वास का बल, प0 33

कवि आदि पर आक्षेप किये हैं ।[1] ये सब केवल धन को महत्त्वपूर्ण मानते हैं । कलाकार के नैतिक दायित्व का समर्थन करने वाली वंदना स्वयं ही धन कमाने में जुट जाती है । बिहारीबाबू भी धन को ही जीवन के सुख का मूल मंत्र मानते हैं । समाज में हम देखते हैं कि अधिकांश व्यक्ति असत्य, मक्कारी और अप्रामाणिकता द्वारा धन प्राप्त करने में लगे हुए हैं । यदि नैतिक दृष्टि से विचार किया जाय, तो इसे हीन सांस्कृतिक स्थिति का द्योतक माना जायगा । सांस्कृतिक विकास और वृद्धि में नैतिकता का महत्त्व-पूर्ण स्थान रहता है और नैतिक दृष्टि से हीन समाज को सांस्कृतिक दृष्टि से भी हीन माना जायगा ।

" टूटते बंधन" उपन्यास की मुरली अपनी युवावस्था में भूल कर बैठती है, तथापि उसकी मामी का व्यवहार उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण है । अपने भाई की साली का दृष्टांत देती हुई वे कहती हैं कि वह अपने स्वामी को छोड़कर बम्बई चली गई है । जिस व्यक्ति के साथ वह गई है, वह फिल्म कम्पनी में नृत्य-निर्देशक है । आज भी यदि वह [illegible] आ जाय, तो उस लड़की का स्वागत्-सत्कार मुरली के मामा अवश्य करेंगे । मुरली की मामी आगे कहती है -" मैं कला और संस्कृति [illegible] को बहुत श्रद्धा [illegible] की दृष्टि से देखती हूँ । लेकिन आज हमारे देश में जो सांस्कृतिक समारोह होते हैं, उनकी परतों में कीचड़ ही कीचड़ अधिक रहता है, कमलनाल कहीं देखने को भी नहीं मिलती ।"[2] समाज पर बुरा प्रभाव डालने वाले चलचित्र-उद्योग को भी लेखक ने नहीं छोड़ा है । वह कहता है -"यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि लोग कला और संस्कृति का नाम ले-लेकर आसक्ति और असंयम में पड़कर ही सारी प्रतिभा नष्ट कर डालते हैं । जिस फिल्म-उद्योग को मुख्य रूप से तरुण-समाज का चरित्र-निर्माण करना चाहिए, वह एक ऐसे समाज का निर्माण कर रहा है, जिसे हम एक शब्द में चरित्रहीन कह सकते हैं ।"[3]

1- विश्वास का बल, पृ0 151-152

2- टूटते बंधन, पृ. 119

3- विश्वास का बल, 274

अपने उपन्यासों में वाजपेयी जी ने अपना राष्ट्र-प्रेम भी कहीं-कहीं व्यक्त किया है । अंग्रेजी के प्रति प्रेम रखने वालों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए लेखक ने लिखा है -'रोमनलिपि में 'वेलकम' के अक्षर बने हुए थे, जिससे प्रतीत होता था कि इसके औद्योगिक निर्माताओं की मानसिक गुलामी अब तक नहीं गई ।'[1] चक्की के घुरुर-घुरुर शब्द प्रभाकर के कर्ण-रन्ध्रों में गूंजते हैं, तो वह सोचता है -' यही हमारा असली भारत देश है ।'[2] एक प्रतीक के रूप में चक्की के स्वरों में उसे भारत माता का स्वर प्रतीत होता है । गोपाल बाबू का कथन है -' मैं एक ऐसे राष्ट्र का स्वप्न देखता हूँ जिसमें एक भी आवारा और गुण्डा न हो ।'[3] परन्तु जैसे राष्ट्र का स्वप्न लेखक देखता है, ऐसा राष्ट्र उसे नहीं दिखाई देता । हमारे सनातन नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है । भारतीय संस्कृति को जैसे जंग लग रही है । और जनता का नैतिक अध: पतन हो रहा है । राष्ट्रीय चरित्र के नाम पर केवल शून्यता दृष्टिगोचर होती है । छोटी-छोटी बातों को भी महत्त्व देकर राष्ट्र की नैतिक स्थिति का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने हरीतिमा से कहलवाया है -'------ हमारे नगर में आजकल जो बसें चला करती हैं, उनकी सीटों में रबर की मोटी गद्दियाँ लगी रहती हैं । कभी-कभी लोग छिपकर उनको चाकू से काट लेते हैं । मेल और एक्सप्रेस ही नहीं, सवारी गाड़ियों के डब्बों के अन्दर, बाथरूम के भीतर, वाशबेसिन के ऊपर जो दर्पण लगे रहते हैं, वे प्राय: उखाड़ लिये जाते हैं । कहीं-कहीं तो मैंने यह भी देखा कि डब्बे के सारे पंखे निकाल लिये गये हैं । हमारे घरों के द्वार पर ऊपर जो बत्ती लगी रहती है, उसका बल्ब एक महीने भी नहीं रह पाता । पास -पड़ोस के लोग ही उन्हें साफ कर देते हैं । जो लोग फुटपाथ के पास, जीने के नीचे, स्कूटर में ताली लगाकर ऊपर जाते हैं, दो मिनट के बाद लौटने पर उनको स्कूटर गायब मिलता है ।'----आप तो जानते हैं, कोई वर्ष ऐसा नहीं जाता, जब दस-पाँच छात्र किसी प्रश्नपत्र में अंक बढ़वाने के लिए न आ जाते हों । बीच बाज़ार में दुकान

1- दूखन लागे नैन, पृ0 197

2- वही, पृ0 42

3- सूनी राह, पृ0 11

के सामने खड़ी हुई ~~[illegible]~~ साइकिलें ताला न खोल पाने पर लोग कंधे पर रख कर उठा ले जाते हैं और पास की दुकान में बैठे लोग यह सब देखते रहते हैं ।"[1] यही है हमारे राष्ट्रीय चरित्र का एक कलुषित पहलू- एक चिन्त्य पक्ष जिसको लेखक ने कुशलता-पूर्वक प्रस्तुत किया है ।

विदेशी संस्कृति से प्रभावित साहित्यकार भले ही उस भूमि की अवहेलना करें, जिसके अन्न-जल-वायु से वे पुष्ट होते हैं, पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर वे भले ही कुण्ठा, परम्परा विरोध तथा सेक्स-विक्षिप्तता का वर्णन करके देश की समस्याओं की ओर ध्यान न दें, परन्तु वाजपेयी जी जैसा देशभक्त साहित्यकार अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठाहीन कैसे हो सकता है । उन्होंने कुर्सी से चिपके रहने वाले नेताओं और उनकी छत्रच्छाया में पनपते भ्रष्टाचारों को अपनी आँखों से देखा है और उनकी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है । भ्रष्ट शासन एवं भ्रष्ट समाज के प्रति अपना रोष व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं -" जो लोग समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, बेईमानी, धूर्तता और जुल्म को आँख मूँदकर देखते और सहते जाते हैं, मैं उन्हें कायर और नपुंसक समझता हूँ ।"[2] ---- बात यह है कि समाज में अपनी संस्कृति के प्रति जो अराजकता फैल रही है, धूर्तता, बेईमानी और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, उस पर नियंत्रण हम सभी अनुभव कर रहे हैं ।"[3] ----- जनता की शक्ति आज उस दल के हाथ बिक गई है जो सत्ताधारी है जिसका दृष्टि कोण केवल सत्ता पर आरूढ़ रहना है ।"[4]

अंग्रेजों के शासन-काल में ही निम्न-जातियों में जाति -उन्नयन के आंदोलन प्रारंभ हो चुके थे । ये जातियाँ प्राय: अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य घोषित करने लगी थीं । एक उपन्यास में इसकी झलक इस प्रकार प्राप्त होती है -"----नाई शब्द 'न्यायी' का अपभ्रंश है, वास्तव में हम लोग न्यायी ब्राह्मण हैं और श्री हनुमान जी के वंशज हैं ।"[5]

1- विजय श्री, पृ0 144

2- एकप्रश्न, पृ0 165

3- वही, पृ0 125

4- वही, पृ0 107-108

5- चंदन और पानी, पृ0 158

समाज में देखा जाता है कि पुरानी और नयी पीढ़ियों में सदैव संघर्ष चलता आया है । प्राय: पिता और पुत्र के मध्य सैद्धांतिक मतभेद रहता है, इस विषाय को केन्द्र में रखकर वाजपेयी जी ने 'अधिकार का प्रश्न' उपन्यास की रचना की है । इस प्रश्न को लेखक ने कुछ अंश तक 'एक प्रश्न', 'सूनीराह', 'दूखन लागे नैन' आदि उपन्यासों में प्रस्तुत किया है ।

नगर के प्रतिष्ठित लोगों में प्रेम-विवाह-अंतजर्तीय विवाह होने लगे हैं ; इसका उल्लेख भी वाजपेयी जी के उपन्यासों में मिल जाता है । ब्राह्मण प्रभाकर उर्मिला नामक खत्री युवती से विवाह करता है ।[1]

हमीदा की दृष्टि में हिन्दू समाज प्राचीन- Orthodox - गया-गुज़रा और चिड़ी का गुलाम है । अपनी बेटी रशीदा उसमें घुल-मिलकर रहे, यह भी उसके लिए असह्य है । उसके पूरे परिवार ने धर्म- परिवर्तन करके क्रिश्चियन धर्म अपना लिया था ।[2] ईसाई धर्म के प्रलोभनों से आकृष्ट होकर कितने ही परिवार क्रिश्चियन बन जाते थे । इस धर्म में उनकी सुख-सुविधा का अधिक ध्यान रखा जाता था ।

अपनी जन्मभूमि मंगलपुर ग्राम की अर्ध शती पूर्व की स्मृतियाँ अब धुँधली पड़ गई हैं । काल ने उन पर विस्मृति की चादर-सी डाल दी है, तथापि उस युग के प्रभाव उनके मस्तिष्क पर आज तक स्थिर है । ये प्रभाव धुँधले हो जाने पर भी इतने निश्चित और दृढ़ है कि उनकी छाप अमिट-सी हो गई है । अब तक वे साकार, सजीव और सप्राण बने हुए हैं । ये सब वाजपेयी जी के शब्दों में ही द्रष्टव्य है -" कोई पचास वर्ष की बात है, इन मंदिरों में भगवान की सेवा के लिए एक पुजारी नियुक्त थे । उनकी जीविका के लिए जमीन लगी हुई थी, जिसकी उपज से वे देव-मंदिरों को सजाये रखते ; समय-समय पर दीपोत्सव करते, भगवान का भोग लगाते और दर्शनार्थियों को प्रसाद

1- दूखन लागे नैन, पृ0 255

2- उनसे न कहना, पृ0 30-31

बाँटते । कुछ ऐसे भी मंदिर थे जिनमें कोई पुजारी तो नियुक्त नहीं था, किन्तु सायंकाल उनमें आरती अवश्य होती ; जिसे उन मंदिरों के उत्तराधिकारी कभी स्वयं करते, कभी किसी आत्मीय को भिजवा कर करवा लेते । वर्ष में दो बार वहाँ मेला लगता ।----- विजय दशमी, रामनवमी, शिवरात्रि, रक्षा बंधन आदि पर्वों पर भी विशेष आयोजन होते रहते ।----मंदिरों में सदा कथा और भागवत का पारायण होता रहता । कभी-कभी संध्या से लेकर रात के ग्यारह-बारह बजे तक संगीतोत्सव होते । और दीपावली, कार्तिकी पूर्णिमा के सिलसिले में तो कृष्णालीला भी होती । प्रह्लाद-लीला, ध्रुव-लीला, बाल लीला, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, महाभारत आदि नाटक भी खेले जाते ।'[1]

इलाहाबाद का अपना धार्मिक महत्व अद्यपर्यन्त यथावत् है । लेखक ने वहाँ के कुंभ मेले का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'सन् 1954 का इलाहाबाद का कुंभ-पर्व अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है । कहते हैं कुंभ-पर्व के इतिहास में इलाहाबाद के मेले में न तो इतनी भीड़ ही कभी हुई थी, न इतनी जानहानि ।'[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में आवश्यकतानुसार सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण कुशलतापूर्वक किया है । उनके उपन्यासों का सम्यक् अध्ययन करने पर तत्कालीन सांस्कृतिक-धार्मिक परिस्थिति की पर्याप्त जानकारी हमें प्राप्त होती है ।

राजनीतिक परिस्थिति :

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भारतीय जनता की स्थिति अत्यंत दयनीय थी, तथापि जनता का जोश प्रशंसनीय था । 'निर्मंत्रण' उपन्यास में मज़दूर सभा के एक वीर कार्यकर्ता विश्वनाथ के दिये गये परिचय से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति के सम्बंध में कुछ ज्ञान अवश्य प्राप्त होता है । सन् 35 में वह जेल गया था । इन्कलाब का नारा लगाना भी

1- भूदान, पृ0 21-22

2- वही, पृ0 39

उस समय वर्जित था । इसी लिए इन्कलाब के नारे लगाने के उपलक्ष्य में उसे पच्चीस बेंत की सजा मिली थी, किन्तु उस समय उसने उफ तक नहीं किया था । सत्ताइस दिन की भूख-हड़ताल में भी वही सबसे अंतिम व्यक्ति था जो अंत तक दृढ़ बना रहा था । जेल में बेंत लगने पर उस आदमी की दशा का वर्णन करते हुए शर्मा जी कहते हैं -'जो आदमी जितना अधिक साहसी, सच्चा, निरपराध, कायर और दोषी होता है, बेंत लगने पर उसकी दशा भी तदनुसार उत्तम या शोभनीय हो जाती है । निर्दोष, वीर और एक उद्देश्य के लिए यातना भोगने वाले प्राय: आह तक नहीं करते और विशेष अवस्थाओं में तो उनका वजन तक बढ़ जाता है । किन्तु दोषी, भीरु और दुर्बल आत्मा के व्यक्तियों को पेशाब और पाखाना तक हो जाता है । बेहोश हो जाना तो एक साधारण बात है । शारीरिक यंत्रणा के सिवा आत्मग्लानि की पीड़ा शत-शत बिच्छुओं के दंश से भी अधिक दाहक होती है ।'[1]

द्वितीय महायुद्ध के कारण ही बाज़ार से अन्न तथा जीवन के लिए आवश्यक अन्य सभी चीजें न्यूनाधिक मात्रा में अदृश्य हो रही थी । परिणामत: अनाज का भाव इस कृत्रिम कमी के कारण और भी चढ़ गया था । दीनू की माँ कहती है कि ख गेहूँ का भाव और चढ़ गया है । वह कल लेने गई थी, सवा सात सेर के भाव से मिला है । ---अंग्रेज सरकार से जापान देश ने लड़ाई ठान ली थी । अत: लोगों के मन में यह भय था कि कहीं हमारे देश पर भी वह हमला न करे । वे लोग जहाज से बम बरसाते हैं, जिससे मकान गिरते, आग लगती और आदमी की जान तक खतरे में पड़ जाती है ।[2]

राष्ट्रीय आंदोलनों में अपना योगदान देनेवाले सक्रिय कार्यकर्ताओं की स्थिति अंग्रेजी शासनकाल में अच्छी न थी । शांति से एक जगह बैठना उनको नसीब न होता था । प्राणशंकर को दो-दो चार-चार दिन देहात के दौरे पर रहना पड़ता था । इस गाँव से उस गाँव जाना, सभाएँ करना और व्याख्यान देना ही उसके प्रमुख कार्य थे । जब देखो, तब उसे इधर-उधर दौड़ना पड़ता था । कभी कांग्रेस के सदस्य बनाने के लिए

1- निर्मन्त्रण, पृ0 47

2- वही, पृ0 135

दौड़ना, कभी चंदे के लिए इस दरवाजे से उस दरवाजे हाथ फैलाना, जबकि उस जमाने में घूमने-फिरने के लिए उनके पास ताँगा करने भर को भी पैसे न रहते थे। वह शहर में रहता, तो विदेशी कपड़े की दुकानों में धरना देता, और कभी नमक बनाता। ---- कभी सत्याग्रह सत्याग्रह करते थे। इन लोगों ने जेलों में पीठ पर बेंत भी सहे हैं और अनशन तो उनका अमोघ अस्त्र रहता था। ऐसी राजनीतिक परिस्थिति के कारण ही वे विवाह के बंधन में बंधना नहीं चाहते थे। क्योंकि वे मानते थे कि या तो वे गोली से उड़ा दिये जायेंगे या अपनी सरकार की किसी कुरसी पर बैठेंगे। जेलों में सड़सड़कर मर जाएँगे या फिर किसी दूसरे मुल्क में राजदूत बनकर रहेंगे।[1]

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के पश्चात् लगभग पन्द्रह वर्ष तो बहुत ही सरलता से व्यतीत हुए ; किन्तु सन् 1962 ई0 में, जब पं0 जवाहरलाल नेहरु हमारे प्रधानमन्त्री थे, चीन के साथ भारत का सीमायुद्ध आरंभ हो गया। एक दिन यशवन्त ने दैनिक समाचार-पत्र में पढ़ा कि अभी हाल में चीनियों ने गलबन घाटी में एक भारतीय रक्षा-चौकी को घेर लिया, फिर एक चीनी सैनिक टुकड़ी पूर्वी क्षेत्र में भारतीय सीमा पार कर आगे बढ़ ए आई है।[2] यह पढ़ते ही उसका मत्था गर्म हो जाता है। वह सोचता है कि यदि सीमा पर युद्ध छिड़ गया, तो देश के गौरव की रक्षा में प्राण-पण से योग देना हमारा धर्म है। फिर एक बार वह पढ़ता है -"भारतीय भूमि पर ही भारतीयों के उपस्थित रहने के विषय में चीनियों ने विरोध प्रकट किया ; साथ ही यह धमकी भी दी कि वे न केवल पूरे क्षेत्र में, वरन् सीमा के संपूर्ण क्षेत्र में गश्त लगाएँगे।"[3] उस युद्ध में हमें बहुत कुछ खोना पड़ा। हमारी पराजय का गहरा आघात पं0 नेहरु को लगा और सन् 1964 ई0 में, 27 मई को, देश ने अपना प्रिय नेता खो दिया। उनके स्वर्गवास के पश्चात् प्रधानमंत्री पद का उत्तरदायित्व लालबहादुर शास्त्री जी ने संभाला। पुन: एक बार सन् 1965 ई0 में पाकिस्तान द्वारा हम पर युद्ध थोपा गया। परन्तु एक बार धोखा खाने से अब जनता में जागरूकता आ गई थी। राजनाथ सोचता है कि पाकिस्तान के साथ हमारा

1- चंदन और पानी, पृ0 56-57

2- टूटते बंधन, पृ0 10

3- वही, पृ0 11

जो संघर्ष चला, उसमें अहिंसा की नीति ने कहाँ तक हमारा साथ दिया ? यह तो शास्त्री जी की महानता थी कि उन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त को एक नया अर्थ देकर हमारे राष्ट्र का माल उन्नत करके दिखा दिया ।'[1] परन्तु ताश्कंद-करार के नाम पर उनकी बलि ले गई ।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण बहुत ही कम मात्रा में हुआ है । इसका प्रमुख कारण तो यही है कि उन्होंने मुख्य रूप से सामाजिक उपन्यासों का सृजन किया है । वे अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के चित्रण तथा उनको सुलझाने में ही व्यस्त रहे हैं ; अत: राजनीतिक परिस्थितियों का विशद वर्णन उनके उपन्यासों में प्राप्त नहीं होता ।

अंत में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी के उपन्यास देशकाल तथा समाज से अछूते नहीं रहे हैं । वाजपेयी जी ने समाज में जो कुछ देखा, जाना तथा भोगा , उसका प्रतिबिम्बन् उनके उपन्यासों में हुआ है । उन्होंने समाज के प्राय: सभी वर्गों को स्पर्श किया है । समाज की शकुन-अपशकुन सम्बंधी मान्यताएँ एवं अन्य सामाजिक प्रथाएँ भी उनकी दृष्टि से बच सकी नहीं है । महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख भी वाजपेयी जी ने यथास्थान किया है । तत्कालीन समाज का यथार्थ प्रतिबिम्बन् उनके उपन्यासों में हुआ है ।

1- विजय श्री, पृ0 180

372

"वाजपेयी जी की कहानियों में चित्रित देशकाल और भारतीय समाज ।"

वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों की भाँति ही अपनी कहानियों में भी देशकाल के चित्रण पर आवश्यकतानुसार ध्यान दिया है । यद्यपि उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों में उसके लिए सीमित अवकाश रहता है, तथापि उनकी कहानियों में चित्रित देशकाल और भारतीय समाज में सजीवता की न्यूनता नहीं है । देशकाल के लिए वातावरण शब्द का भी प्रयोग होता है । कहानियों में स्थान-संकोच के कारण अत्यंत संक्षेप में ही घटना तथा पात्रों से सम्बंधित स्थान तथा वातावरण की ओर इंगित कर देने में ही कहानीकार का कौशल समझा जाता है । अपनी कहानियों में देशकाल का निरूपण करते समय वाजपेयी जी ने इस तथ्य का सदैव ध्यान रखा है, यह उनकी कहानियों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है ।

कहानियों में देशकाल अर्थात् वातावरण निर्माण के लिए जो अनिवार्य वस्तु है, वह है 'परिस्थिति योजना' ।" इसका प्रधान उद्देश्य होता है संपूर्ण कथानक के भीतर आई हुई क्रियाओं और परिणामों का तर्क संगत क्रमन्यास । यथार्थता को कल्पना की सीढ़ियों से ऐसा सजाना चाहिए कि किसी घटना अथवा कर्म के पूर्व की समस्त परिस्थितियाँ कड़ी के रूप में संगठित मालूम पड़ें । पाठक को यह विदित होना चाहिए कि अमुक कार्य के पहले उसके अनुकूल कारण किस रूप में उपस्थित थे । परिस्थितियों की सीढ़ी चढ़कर ही कोई परिणाम शिखर पर चमत्कृत हो सकता है ।"[1] इन बातों का वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में ध्यान रखा है । उदाहरण के रूप में हम उनकी कहानी 'दुग्धपान' को ले सकते हैं । किस प्रकार स्वामी के यौवनाभाव में पानवाली के हृदय में मिस्टर बाबु के प्रति अनुराग तथा अपने पति के प्रति विराग उत्पन्न होता है तथा किस प्रकार दुग्धपान से पहले पति के विषपान कर लेने के पश्चात् अपने कृत्य पर उसे पश्चाताप होता है, इसका अत्यंत स्वाभाविक चित्रण कथाकार ने इस कहानी में प्रस्तुत किया है । कथाकार ने पानवाली के पति की मृत्यु तथा पानवाली के बाबु के प्रति के अनुराग की घटना को सजीव, स्वाभाविक एवं यथार्थ बनाने के लिए तदनुरूप कारण

1- कहानी का रचना विधान, डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ० 169

एवं परिस्थितियाँ प्रस्तुत की हैं । इसी प्रकार की परिस्थिति योजना उनकी एक और कहानी 'समर्पण' में भी देखी जा सकती है । उसमें सेठ का हीरा चुराने के लिए गज्जू कैसे प्रयत्न करता है तथा आँखें खुल जाने पर किस प्रकार वह अनुताप करता है तथा पुलिस-स्टेशन जाकर अपना अपराध स्वीकार करता है, इसका बड़ा ही सजीव एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण कहानीकार ने किया है । इसी प्रकार वाजपेयी जी ने 'यमुना','अधिकार पत्र', 'हारजीत','कला की दृष्टि' तथा 'थोड़ी -सी पी ली' आदि कहानियों में गतिविधियों एवं कार्य कलापों का चित्रण अपनी पूर्व की परिस्थितियों के आधार पर ही किया है । इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि वाजपेयी जी की सभी कहानियों में परिस्थिति योजना प्राप्त होती है । उनकी जिन कहानियों में इतिवृत्तात्मकता की न्यूनता है, परिस्थिति-योजना को स्थान प्राप्त नहीं हुआ है । उदाहरण के लिए हम उनकी 'मिठाई वाला', 'नर्तकी','एलबम','रात के दो बजे','घटनाचक्र','हाँ, वही रात' आदि कहानियों को ले सकते हैं ।

कहानियों में वातावरण निर्माण का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व है, पीठिका । इस पीठिका को हम दो भागों में रखकर देख सकते हैं । प्रथम, प्रकृति-सज्जा तथा द्वितीय, देशकाल-चित्रण । यहाँ हम वाजपेयी जी की कहानियों में प्राप्त इन दोनों तत्त्वों पर क्रमशः विचार करेंगे ।

वाजपेयी जी की कहानियों में पीठिका के रूप में प्रयुक्त प्राकृतिक चित्र-विधान के उदाहरण प्राप्त होते हैं । उनकी 'कर्तव्याघात' शीर्षक कहानी में प्रकृति-चित्रण पीठिका के रूप में अत्यंत ही प्रभावशाली ढंग से हुआ है । निर्दोष सिद्ध होने के पश्चात् कर्तव्यानंद को जेल से मुक्त कर दिया जाता है । तब उसके प्रसन्न मन का परिचय आनन्द-विभोर कर देने वाले प्राकृतिक वर्णन के पश्चात् दिया जाता है ।[1] कहानीकार अपनी सुकोमल भाव-तुलिका से प्रकृति के उन्हीं चित्रों को कल्पना के रंग से अनुरंजित करता है जो कि मानव-मात्र को आकर्षित करने की सामग्री अपने पास रखते हैं । कुछ सीमा तक प्रकृति का मानवजीवन से इतना घनिष्ठ सम्बंध है कि उसका सुन्दर रूप मनुष्य को

1- दे.मधुपर्क, पृ0 155

उल्लसित करता है । इस प्रकार की पीठिकाओं से वाजपेयी जी की कहानियों का वातावरण अत्यंत मुखर एवं स्वाभाविक हो उठा है । 'स्पर्धा' कहानी की संवेदना पूर्ण-रूपेण प्रकृति की पीठिका पर अवतरित हुई है । वैसे वाजपेयी जी की कहानियों में प्रकृति बीच-बीच में भावनाओं और मनोभूमियों, घटनाओं और चरित्रों का पृष्ठाधार बनी है । एक मार्मिक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन प्रतीत होता है ।

"एक दिन काले-काले बादल घिर आये । समीर की प्यार-भरी-झड़कियों ने उन्हें इतना झुलाया, इतना हँसाया, गुदगुदाया कि वे बरस पड़े । आश्विन मास के धूप भरे दिन गीला हेमन्त बन गये ।

और इन्हीं दिनों रजनी का वह फूल - सा शिशु टायफाइड फीवर से चलता बना । ----"[1]

कहीं-कहीं प्रकृति का एक हल्का-सा संकेत भी चरित्र का आधार बन जाता है । 'रंगीन भ्रम' कहानी का नायक सुरेश ध्यानमग्न है । उस समय की प्राकृतिक पीठिका अति संक्षेप में दी गई है । भोला प्रात:काल । जरा-जरा सी बदली ।"[2] प्रस्तुत कहानी का प्रारंभ ही सुरेश के भोलेपन से होता है । 'रंगीन भ्रम' के लिए प्रात:कालीन बदली का संकेत बहुत ही उपयुक्त प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त बदली की नैसर्गिक चंचलता सुरेश के चिंतन की अन्यमनस्कता तथा मन की चपलता की परिचायक है । पीठिका रूप के अतिरिक्त वाजपेयी जी ने प्रकृति का स्वतंत्र रूप से भी वर्णन किया है । इस प्रकार का वर्णन कहानी के प्रारंभ , मध्य या अंत में लेखक ने प्रयुक्त किया है । 'वन श्री' कहानी के प्रारंभ में किया गया प्रकृति-वर्णन यहाँ द्रष्टव्य है -

"भगवान् भास्कर की भुवन-मोहनी कनक-किरणावली अस्ताचल में अपना अस्तित्व छिपा रही थी । वासंती का सांध्य-समीरण मंद गति से डोल-डोलकर नवागत पथिकों

1- लोकप्रिय कहानियाँ, रजनी, पृ0 78

2- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 144

का स्वागत् कर रहा था । इधर मधुरालापा कोकिला रसाल की डाल पर बैठ कर वन श्री के साथ अठखेलियाँ कर रही थी, तो उधर मदमाते मधुलिट इतस्तत: अपनी गुँज-माधुरी बिखेर रहे थे ।"[1]

इस अंश का 'वन श्री' कहानी की किसी भी घटना या पात्र के साथ बिलकुल सम्बंध नहीं है । कहानी में आये प्रकृति-वर्णन का घटना या पात्र के साथ सम्बंध हम अनिवार्य भी नहीं मानते, परन्तु ऐसा वर्णन कहानी के सौंदर्य में बाधक न होना चाहिए, जैसा कि प्रस्तुत कहानी के विषय में हुआ है । प्रकृति का यह सचेतन व संवेदनशील रूप कहानी की वास्तविकता को नष्ट कर देता है । वैसे वाजपेयी जी की कहानियों में उपरि कथित दोनों प्रकार के प्रकृति-चित्रण कम ही प्राप्त होते हैं ।

पीठिका निर्माण का दूसरा तत्व है देशकाल-चित्रण । देशकाल-चित्रण से हमारा तात्पर्य स्थानीय चित्र विधान से है ।"कहानी की घटनाएँ, क्रियाएँ इत्यादि किसी स्थान विशेष पर सिद्ध होती हैं । अत: यदि उस स्थान के विस्तृत विवरणों के साथ उनका संयोग पूर्णतया बैठ जाय, तो उसी में एक सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है । विषय के विस्तार के साथ यदि देशकाल का प्रकृत परिचय हो जाय, तो देश-बोध में यथार्थता उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार के देशकाल विशेष की संयोजना से विषय के प्रति बड़ा कुतूहल उत्पन्न हो जाता है और उसमें एक प्रकृतत्व विधायक सजीवता लहरा उठती है । इस प्रकार के स्थानीय विवरणों और साज-सज्जाओं की सजावट में या तो भाषा योग देती है अथवा स्थानीय यथार्थ जीवन की झलक ।"[2] वाजपेयी जी की कहानियों में देशकाल का चित्रण उपन्यासों की भाँति विस्तृत नहीं, अपितु सांकेतिक रूप में प्राप्त होता है । कहीं-कहीं शब्दों के माध्यम से ही उन्होंने अपनी कहानियों में स्थानीय चित्र-विधान को अधिकाधिक उभार कर रखने का सुष्ठु प्रयास किया है । ऐसी कहानियों में प्रादेशिकता पूर्ण रूप से उभड़ आई है । उदाहरण के लिए हम उनकी गाँवों से

1- मधुपर्क, पृ0 166

2- कहानी का रचना विधान, डा0 जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ0 177

सम्बंधित कहानियों को ले सकते हैं । कहीं-कहीं देशकाल का चित्रण वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में केवल परिक्यात्मक ढंग से किया है । उदाहरण के लिए 'रात के दो बजे', 'उस क्षण का सुख' आदि कहानियाँ देखी जा सकती हैं । 'रात के दो बजे' से यहाँ एक उदाहरण उद्धृत किया जाता है -

'सन् 1943 का अक्टूबर मास चल रहा है । सड़कों पर तारों के जो खम्भे गिर पड़े हैं, वे अब फिर उठकर खड़े हो गये हैं । रेलें कम जरूर कर दी गई हैं, किन्तु यातायात अब बंद नहीं है । अलबत्ता कहीं-कहीं पर घंटों लग जाते हैं । क्योंकि सिग्नल देने में दिक्कत पड़ती है । और सिग्नलर को पैदल जाकर उसकी पूर्तिजन्य खानापूरी करनी पड़ती है । गिरफ्तारियों का सिलसिला जारी है और जेलों की बारकें भरी जा रही हैं । जहाँ कहीं रेलवे के तार काटे गये हैं, वहाँ मिलिटरी के सैनिक पहरा दे रहे हैं।'[1]

इसमें परिस्थिति और अवस्था का एक साथ वर्णन करके तत्कालीन देशकाल या वातावरण को सजीव करने का प्रयत्न किया गया है । इस प्रकार की कहानियों में परिपार्श्व और वातावरण का इतना आकर्षण और वेग रहता है कि पाठक उनसे कभी भी दूर नहीं जा सकता ।

वाजपेयी जी की कहानियों में चित्रित समाज :

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है । वाजपेयी जी के कहानी-साहित्य में भी उनके उपन्यासों की भाँति तत्कालीन भारतीय समाज का प्रतिबिम्बन् हुआ है । यहाँ हम उनकी कहानियों में चित्रित सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक-धार्मिक एवं राजनीतिक स्थितियों पर एक क्रमशः विचार करेंगे ।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति :

अपनी कहानियों में भी वाजपेयी जी ने मुख्यरूप से मध्यवर्गीय समाज का चित्रण किया है । मध्यवर्गीय समाज रूढ़िवादी मान्यताओं में अत्यंत निर्मम था, तथापि दूसरे

1- बात एक नाते की, पृ0 94

के रिश्ते से बहन होने वाली लड़की के साथ उस समय विवाह सम्पन्न हो सकता था। फूलवती दूर के नाते अम्बिका की बहन लगती थी, तथापि वह उसके साथ विवाह करता है।[1] ज्ञाति प्रथा उस समय बहुत ही रूढ़ थी। यदि वर पक्ष का कुल उच्च होता था, तो विवाह असंभव हो जाता था। विशेषत: कान्यकुब्ज-समाज इस विषय में बहुत ही कठोर था। अत: राजीव की बहन को चाहने पर भी उसे अपनाने की आज्ञा कर्तव्यानंद नहीं कर सकता था ; क्योंकि राजीव कुल में कर्तव्यानंद से उच्च था।[2] 'रेखाएँ' कहानी में भी रमेश और सरिता का विवाह नहीं हो सकता है ; क्योंकि रमेश कुलीन और बड़ा आदमी है।[3] समाज अपनी सीमाओं का उल्लंघन करना नहीं चाहता। लड़कियों के लिए तो परिस्थिति और भी विकट है। यदि लड़की के किसी सम्बन्धी ने कोई ऐसा कार्य किया है, जो समाज को स्वीकृत नहीं है, तो उसका फल लड़की को भुगतना पड़ता है। धानी के साथ बनवारी के विवाह के सम्बंध में बनवारी की बहन बात छेड़ती है, तब बनवारी का बड़ा भाई कहता है -'ऐसा नहीं हो सकता मणि। तुम जानती हो हम लोगों के सम्बन्ध कितनी छान-बीन के साथ होते हैं। तुमको यह भी पता होना चाहिए कि समाज अपनी मर्यादाओं को लेकर ही स्थिर है।----- गोपालस्वरूप की विधवा बहिन आज भी एक लाला के यहाँ बैठी हुई है, उनका चलन-व्यवहार अपने भाई लोगों से कबका छूटा हुआ है। ऐसी दशा में उनकी लड़की के साथ बनवारी का विवाह कैसे हो सकता है ?'[4] माँ भी गिरधारी की बात का समर्थन करती है। और कहती है -'जिस लड़की की बुआ ने विधवा होने पर मुट से अपना मुँह काला कर लिया, वह लड़की भी कौन जाने कैसी हो।' लड़की की आयु यदि बाइस वर्ष की हो जाय और वह अविवाहित ही रह जाय, तो समाज इस बात को सहन नहीं कर सकता। अपनी उम्र बाइस वर्ष की हो जाने पर जो कटु अनुभूतियाँ कृष्णा को होती हैं, उनका उल्लेख करते हुए वह लिखती है -'22 वर्ष की वय हो जाने के कारण इधर-उधर का संसार मुझे घूरकर देखता ही नहीं रहा है, खा जाने की भी चेष्टा करता रहा, और मैं ? मैं उसकी ओर आँख उठाकर देखने में अपने

1- होटल का कमरा, पृ0 62

2- मधुपर्क, पृ0 153

3- होटल का कमरा, पृ0 19

4- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 127

अपमान का अनुभव करती रही हूँ ।---- मेरी साथवाली बहनें 'ब्रह्मचारिणी' कहकर मेरा मज़ाक बनाया करती हैं ।"[1] नारी की स्थिति अत्यंत दयाजनक है । विवाह के सम्बंध में एक और विचित्र बात देखने को मिलती है । वह है वैमनस्य । किसी के वंश के साथ यदि वर्षों से विरोध चलता आता है, तो भी उस वंश की लड़की या लड़के के साथ विवाह सम्पन्न नहीं हो सकता था । प्रेमांकुर अपने लिए बहुत सारे प्रस्ताव आने पर भी अपने पिता श्री से पूछता है कि इन लोगों के सिवा और भी तो प्रस्ताव आपके पास आए होंगे ।" तब जनार्दन बाबू कहते हैं -" हाँ, आए हैं ; किन्तु वे नगण्य हैं, उनमें से एक नंदगोपाल जी का है, लेकिन यह सम्बंध कैसे हो सकता है ? इस वंश के साथ हमारा विरोध-तीस वर्ष पहले से चला आता है । इन्हीं नंदगोपाल जी के पिता ने शायद एक विधवा से ब्याह किया था, हालाँकि उससे कोई संतान नहीं हुई । पीछे से इसी वंश में हमारे वंश के साथ एक संबन्ध और हुआ । उसी समय से उन लोगों के साथ हमारा विच्छेद हो गया । ऐसी दशा में उसी घर में फिर यह सम्बंध कैसे हो सकता है ?"[2] विधवा की पुत्री समाज के लिए उपेक्षा की पात्र थी । ऐसी घटनाओं में परिवार-विरोधी व्यक्तियों को उपयुक्त अवसर प्राप्त हो जाता था । 'हत्यारा' कहानी की मैना एक विधवा माँ की बेटी थी । पिता का स्वर्गवास होने के आठ माह पश्चात् उसका जन्म हुआ था । गाँव में कुछ दिनों तक इस प्रश्न को लेकर काफ़ी हलचल रही थी । परिवार-विरोधी पुराने पापियों को कीचड़ उछालने का अवसर मिल गया था । ---- विवाह हो जाने के पश्चात् मैना ससुराल भी गई थी ; किन्तु बात खुलने पर, कुछ ही दिनों बाद, घर से निकाल दी गई । रोती-बिलखती जब भाई के घर आई, तब सारी कथा सुनकर बड़े भाई ने भी उसे आश्रय नहीं दिया । मैना गाँव से थोड़ी दूर नदी में डूबने गई ; किन्तु वहाँ अचानक मिल गई एक वेश्या । उसे फुसलाकर अपने साथ ले आई । उस समय मैना की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी ।[3] समाज के लिए वह अस्पृश्य हो जाती है । लेखक ने पिछड़े हुए समाज

1- मधुपर्क, पृ0 135

2- हिलोर, पृ0 55

3- वही, पृ0 141

के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए विपिन के मुँह से कहलवाया है -' हमारे समाज की अंधी दुनियाँ आज पूर्वापर आधारित रहकर विनाश की ओर जा रही है । जीवन के विकास क्रम में आत्मीय उत्कर्ष का उसके आगे कोई मूल्य नहीं रह गया ।'[1] आगे मैना के संदर्भ में विपिन कहता है -'आत्मीय उत्कर्ष का कोई मूल्य नहीं रह गया है, ---- प्रारंभ का डाकू और लुटेरा व्यक्ति आगे चलकर छत्रधारी राजा बनने का अधिकारी हो सकता है ----किन्तु एक नर्तकी, एक अनाश्रिता सुन्दरी, एक वार-नारी सती-साध्वी, पतिप्राणा रमणी नहीं बन सकती । अपने समाज के इस संकुचित दृष्टिकोण से मैं घृणा करता हूँ ।'[2] इसमें विपिन के माध्यम से मैना के प्रति लेखक ने हार्दिक सहानुभूति व्यक्त की है ।'उस काणा का सुख' कहानी की शकुन वैश्या होते हुए भी यही बात कहती है - 'समाज में कसाई को जगह है - हिंसा ही जिसकी वृत्ति है । ----जीवन में दर्जनों ललनाओं से छिप-छिपकर सम्बंध रखनेवाले लम्पट समाज के अगुआ रह सकते हैं । किन्तु उसी समाज के लिए अपना सर्वस्व तक उत्कर्ष करने वाली वार-नारी सदा ही घृणा की अधिकारिणी है ।---- ऐसी कमजोरियों से मैं नफ़रत करती हूँ ।'[3] यह आक्रोश लेखक का है । उसने ऐसे समाज का अंकन किया है जो रूढ़िवादिता के मोह में फँसकर पतन की गिरा में जा रहा है, जो वैधव्य की पवित्रता की रक्षा के नाम पर स्वयं ही वैश्याओं को जन्म दे रहा है ।परन्तु सम्पूर्ण संकुचित एवं समाज संकुचित एवं पिछड़ा हुआ नहीं है, उसमें कुछ लोग प्रगतिशील विचारों के भी मिलते हैं ।

समाज में दहेज प्रथा का प्रचलन यथावत् था । माँ-बाप अधिक दहेज देने की अपनी असमर्थता के कारण अपनी पुत्री के लिए अच्छा वर ढूँढ नहीं सकते थे । परिणामत: वह प्रौढ़ एवं वृद्ध पुरुष के साथ ब्याही जाती थी । और उसे अकाल वैधव्य प्राप्त होता था । पानवाली, गृहस्वामिनी तथा अनु ऐसी ही नारियाँ हैं । उनके पति में यौवन की आंधी शान्त हो गई है । इनमें से पानवाली अपने पति के जीवित होने पर भी भटक जाती

1- हिलोर, पृ0 143

2 वही, पृ0 143

3- वही, पृ0 154-155

है ; परन्तु शेष दो वैधव्य के उपरांत भी अपने नारीत्व की रक्षा करती है । समाज में कुछ शिक्षित युवक विधवा के साथ विवाह करने के लिए तैयार होते हैं । दिलीप अनु से विवाह करना चाहता है ; उसकी माँ उसे अनुमति भी देती है, परन्तु यह समर्थन तर्कसंगत नहीं अपितु केवल दिल भावात्मक है । जिस दिन अनु दिलीप की होने का स्वीकार करती है, उसी दिन उसका स्वर्गवास हो जाता है । अनु के पति के पूर्व पत्नी से दो लड़कियाँ थीं । विमाता होने पर भी अनु दोनों को बहुत चाहती है । इससे विरुद्ध 'जहाँ सभ्यता साँस लेती है' की नर्मदा की विमाता का नर्मदा के प्रति व्यवहार अच्छा नहीं है । नर्मदा के विवाह के लिए आवश्यक दहेज देने के लिए वह अपने पास जेवर होने पर भी, किसी भी प्रकार की सहायता करने के लिए तैयार नहीं है । नर्मदा के पिता किशोरीलाल उसके लिए वर ढूँढकर लाये हैं । 'उमर भी ऐसी कुछ ज्यादा नहीं, यही तीस-बत्तीस की होगी ।' विधुर है । इसी लिए एक शंका उनके मन में उठती है -'यदि नर्मदा को वह पसंद न आया तो?' इस शंका का समाधान उनकी पत्नी स्वयं करती है । वह नर्मदा से केवल एक वर्ष बड़ी है, फिर भी उसकी माँ बनकर घर में आ गई है । उसके अपने जीवन की कचोट इस कुरीति को आगे बढ़ाने में सहायक हो जाती है ।' लड़की की पसंद का खयाल करता कौन है ? मेरा किसने खयाल किया था[1] ? नर्मदा की विमाता के इन प्रश्नों ने अनमेल विवाह से त्रस्त नारी की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है । साथ-साथ इन्हीं प्रश्नों ने एक और अनमेल विवाह की भूमिका तैयार कर दी है ।

अनमेल विवाह स्वयं जितनी भीषण समस्या है, उससे अधिक विकराल समस्याओं को वह जन्म देती है । समाज के नैतिक पतन का प्रारंभ भी यहीं से हो जाता है । पानवाली आठवीं क्लास तक अंग्रेजी पढ़ी है, पिता ने उसे बहुत लाड़ से पढ़ाया है, परन्तु अपनी असमर्थता के कारण विवश होकर उसका विवाह ऐसी जगह कर दिया जाता है जहाँ वैभव की कमी नहीं थी । अठारह वर्षीय उस युवती का पैंतालीस वर्षीय पति उसे तृप्त करने में असमर्थ है । जीवन की यह विषम परिस्थिति नारी के मन में कुण्ठाओं को घनीभूत कर देती है । पति अपनी पत्नी को मिलने से लजाता है और पत्नी का कुण्ठित मन सोचता है -' कदाचित मैं उतनी सुन्दर नहीं हूँ ।' और वह सामाजिक मर्यादा भूल जाती है । नारी केवल विवाह नहीं चाहती, उसे दाम्पत्य-तृप्ति भी चाहिए । जातीय-

---

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 259

अतृप्ति, सामाजिक पतन की नियामिका है । इस बात का उल्लेख अपनी 'शैतान' कहानी में करते हुए वाजपेयी जी ने लिखा है -'विवाह के द्वारा पत्नी का सर्टीफिकेट पा जाने के बाद संस्कृति रक्षा के नाम पर सतीत्व का रंगीन प्रदर्शन एक सामाजिक कुष्ठ से किस प्रकार कम है ? साथ ही वासनात्मक तृप्ति देने में सर्वथा असमर्थ पति के अभाव में भूखी नारी की यह स्थिति कितनी स्वाभाविक किन्तु कितनी दयनीय है ।'[1] प्रस्तुत उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि वाजपेयी जी ने नारी की दयनीयता के प्रति सहानुभूति को जागृत किया है और सामाजिक अन्याय पर पैना व्यंग्य कसा है । समाज में बाल-विवाह का भी प्रचलन था । शिवराम का विवाह बचपन में ही हो गया था । परन्तु कुल से वह लड़की उसके साथ ब्याही गई है, यह जानकारी प्राप्त होते ही शिवराम. की बहू का गौना नहीं लिया जाता । वह तीन वर्ष तो अपनी माँ के यहाँ व्यतीत करती है ।'हृदगति' की फूल की तरह कजली भी आत्महत्या का प्रयास करती है, परन्तु उसमें असफल होने पर वेश्या बनने को विवश हो जाती है ।

इस तरह वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में दहेज प्रथा,[2], अनमेल-विवाह[3], बाल-विवाह[4], विमाता[5], विधवा-विवाह[6] तथा वेश्या-समस्या[7] आदि समस्याओं को उठाया है । ये समस्याएँ केवल समस्या ही बनकर रह गई हैं । प्रयत्न करने पर भी लेखक उसे सुलझा सका नहीं है ।

उपन्यासों की तरह ही वाजपेयी जी की अधिकांश कहानियाँ भी सामाजिक हैं । अपनी कहानियों में उन्होंने प्रधानत: मध्य वर्ग का चित्रण किया है । वाजपेयी जी की

1- स्नेह,बाती और लौ, पृ0 231

2- मधुपर्क, पृ0 37, स्नेह,बाती और लौ, पृ0 253

3- दे पुष्करिणी, पृ0 191, होटल का कमरा, पृ0 93,स्नेह,बाती और लौ, पृ0 113

4- दे हिलोर, पृ0 141

5- दे स्नेह,बाती और लौ, पृ0 254

6- दे होटल का कमरा, पृ0 98

7- दे बैकग्राउण्ड, उस क्षण का सुख, ज्वाला, अंधेरी रात आदि कहानियाँ ।

382

कहानियों में चित्रित समाज में आर्थिक वैषम्य दृष्टिगोचर होता है । प्रकाश जिस प्रेस में कार्य करता है, उस प्रेस के स्वामी की लड़की रेणुका उसके यहाँ आती है और चलते समय मुन्नू को दो रुपये का नोट देना चाहती है, परन्तु रजनी के तिक्त और तप्त हृदय ने यह कहकर उसे वापिस कर दिया कि इसे लेती जाइए, अपने बाबूजी को दे दीजियेगा । साथ ही मेरा नाम लेकर कह दीजियेगा, रजनी कहती थी कि किसी पत्रकार के वेतन की पूर्ति में काम दे जायगा ।"[1] यह कहानी आर्थिक विषमता पर एक कटु व्यंग्य है ।

इसी विषम अर्थ-व्यवस्था ने वर्गों को जन्म दिया है । एक वर्ग वैभव के कारण भौतिक सुखों का अनुभव करता है, तो दूसरा वर्ग क्षुधित है । केदारबाबू के कक्ष में हम देखते हैं -" कुछ अत्यंत सुन्दर तस्वीरें, कुछ मूर्तियाँ - नग्न, संगमरमर की, मानव-सौंदर्य की सजीव प्रतिमाएँ ।"[2] तो कालुराम के क्वार्टर में है -"एक पुरानी चारपाई है, एक लोटा, कुछ खाली बोतलें और कुल्हड़ । रजाई पुरानी है । दरी चिथड़े-चिथड़े हो गई है । एक कोने में फूटे कुल्हड़ों और दोनों का ढेर लगा है । आले में ढिबरी रक्खी है, जिसके ऊपर ढेरों काजल है ।"[3] दोनों में अंतर केवल इतना है कि एक का जीवन केवल क्रीडा-क्षेत्र है और दूसरा श्रमजीवी है । लेखक इन दोनों के सम्बन्ध में लिखता है -" असामयिक श्याम-घनमाला देखकर मित्रों के साथ नये-नये ढंगों और प्रकारों से बोलते, उठते, घूमते और नाना केलि-क्रीडाओं में निमग्न होकर आनन्द लूटते हैं ----- उन्हें पता तक नहीं चल पाता कि इसी जगत्, इसी देश और नगर में एक ऐसा भी समाज रहता है, जिसको उदर-पोषण के लिए नित्य इतना समय और श्रम देना पड़ता है कि वह अनुभव भी नहीं कर पाता, प्यार कैसे किया जाता है ।"[4] श्रमजीवी वर्ग की कथा करुण तो तब बनती है, जब अर्थाभाव के कारण प्रकाश अपने अस्वस्थ बच्चे की दवा नहीं कर सकता और उसकी मृत्यु हो जाती है ।

वाजपेयी जी भारतीय समाज की सभ्यता के अर्थ प्रधान होने के कट्टर विरोधी हैं , तथापि अर्थ की अनिवार्यता उनके पात्रों के द्वारा वे स्वीकार करते हैं । उनका विद्रोही

1- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 33

2- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 40

3- हिलोर, पृ0 83

4- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 28-29

भी अच्छी तरह समझ चुका है कि 'यह जगत् पैसे का है। छल से, बल से, पैसा जोड़कर रखनेवाला ही इस संसार में सबसे अधिक सफल और विजयी पुरुष माना जाता है'[1] उसने सदा ज्ञानार्जन को ही अपने सम्मुख रखा ; किन्तु अर्थाधारित समाज व्यवस्था ने उसे विद्रोही बना दिया।

आर्थिक वैषम्य के कारण समाज में दो- शोषक और शोषित-वर्ग खड़े हो गये हैं। वाजपेयी जी की कहानियों में शोषण के अनेक स्तर चित्रित हुए हैं। उनमें सबसे अधिक उग्र रूप श्रम के शोषण में है। 'रजनी : एक चेतना' का प्रकाश और 'सम्बन्ध' कहानी का नरायण दोनों में प्रथम एक पत्र का संपादक है और दूसरा कामगार, तथापि दोनों का शोषण होता है। प्रकाश सहकारी सम्पादक है। उसे मासिक वेतन पचास रुपये मिलता है। जबकि कुल मिलाकर उसे बारह-बारह घण्टे तक कार्य करना पड़ता है। नरायण रोज श्रम करता है और जो कुछ मिलता है, उसी से उसका गुजारा होता है। वह जानता है कि 'जिन लोगों को रोज ही कुआँ खोदकर, पानी निकालकर प्यास बुझानी पड़ती है, क्या उनकी जिन्दगी भी कोई सुख की जिन्दगी है ?------ हम लोगों से तो पशु अच्छे हैं, जो बीमार पड़ते हैं, तो मालिक उनके इलाज के लिए दौड़ता फिरता है।'[2] अस्वस्थता के कारण एक दिन वह जमींदार के यहाँ काम पर नहीं जा सकता। जमींदार के आदमी को वह सीधा उत्तर तक नहीं देता, किन्तु भीतर ही भीतर उसे भय है। भय रोटी का नहीं, परन्तु आनेवाले बुरे परिणाम का है। 'लट्ठबाजी के कारण घर के घर कंगाल हो जाते हैं - गाँव-भर तबाह हो जाता है।'[3] वह गाँव से पलायन करने लगता है, तो ठाकुर दूसरे सम्बंध से उसका शोषण करते हैं। वे आदेश देते हैं -'लेकिन तुझे आज फौज के लिए भरती होना पड़ेगा। मुझे गाँव से जो आदमी फौज के लिए देने हैं, उनकी तादाद कैसे पूरी होगी।'[4]

आर्थिक वैषम्य का प्रथम प्रहार मनुष्य के स्वाभिमान पर होता है। अर्थ-हीनता मनुष्य को खोखला कर देती है। सामान्य व्यक्ति अर्थजन्य पीड़ा से स्वाभिमान को

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 169

2- वही, पृ0 149

3- वही, पृ0 153

4- वही, पृ0 155

भूलने के लिए विवश हो जाता है । कालूराम जमाने की नाजुकता को समझता है । उसने अपने साथ काम करने वाले अब्दुल कादिर को देखा है । नौकरी छूटे अभी साल भर नहीं हुआ कि सड़क पर पड़ी हुई दाल चाटने लगा ।[1] विपिन जिन लोगों की आर्थिक सहायता के भार से दबा है, उन्हें इतना अधिकार प्राप्त है कि वे जब चाहें , उसे नोंच डालें । 'आर्थिक हीनता ने उसकी आत्मा के मानवी दर्प को शायद इतना निर्जीव बना डाला है कि वह इन लोगों का यह आकस्मिक रोष भी सहन कर ले जायगा ।'[2] इसी अर्थहीनता ने गोविन्द को गुबिन्दी बना दिया है ।

श्रम का शोषण आर्थिक शोषण का एक प्रधान रूप है । वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में इस स्थिति के भी अनेक चित्र अंकित किये हैं । शोषितों के प्रति उन्हें हार्दिक सहानुभूति है और शोषण प्रथा पर उन्होंने पैने व्यंग्य कसे हैं । 'सम्बन्ध' 'रेशम के फंदे' तथा 'विच्छेद' इसी सन्दर्भ में लिखी गई कहानियाँ हैं । 'सम्बन्ध' कहानी के तिरबेनी को यह ज्ञात है कि 'ये लोग बड़े चतुर होते हैं । जब रुपये का काम लेते हैं, तो तीन आने देते हैं । ऐसा न हो, तो हवेलियाँ किस तरह खड़ी हों !'[3]

जमाखोरी और मुनाफाखोरी आज के युग में चरम सीमा पर पहुँच रही हैं । इन सामाजिक अनिष्टों ने अर्थ-व्यवस्था को अस्थिर कर दिया है । परिणामत: अभाव-ग्रस्त जीवन का सारा उल्लास जठराग्नि शांत करने में नष्ट हो जाता है । 'मनुष्य का सारा जीवन, माँस, खून और हड्डियाँ निश्वास, आँसू और राख के रूप में परिणत होता रहता है ।'[4] इतना ही पर्याप्त नहीं, अर्थहीनता ने मनुष्य को पशु बना दिया है । 'बीस बोरे यानी पचास मन बोझ ढोने वाला आगे-आगे भैंसा, पीछे-पीछे ठेले वाला । दोनों ढो रहे हैं । एक पशु है, दूसरा मनुष्य । लेकिन यह मनुष्य कैसा है,

---

1- हिलोर, पृ0 81

2- वही, पृ0 131

3- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 142

4- वही, पृ0 120

जो पशु का काम कर रहा है । क्योंकि मनुष्य नामधारी एक ऐसी जाति हमारे बीच बन गई है, जो मनुष्य से पशु का काम लेना जानती है ।"[1] पीड़ितों के प्रति वाजपेयी जी के हृदय में सहानुभूति है । यह सहानुभूति वाजपेयी जी की कहानियों को प्रगतिशीलता का स्वर प्रदान करती है ।

आर्थिक वैषाम्य मनुष्य के स्वाभिमान को नष्ट कर देता है, इतना ही नहीं, उसे अपराध करने के लिए भी प्रेरित करता है । अर्थाभाव के कारण मनुष्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं कर सकता है, तो चोरी करता है । बेकारी के कारण वीरेश्वर विश्वनाथ की जेब से सौ का एक नोट चुराता है । विश्वनाथ यह जानता है । वह उसे सौ का एक और नोट देता है, तब वीरेश्वर रो-रोकर उसे बतलाता है - "मेरा नैतिक पतन इस सीमा तक हो चुका है कि चोरी अब मेरे लिए अपराध नहीं, पेशा हो गया है ।"[2] अबोध किशोर रामबली चाहता है कि पढ़-लिखकर वह कुछ बने, परन्तु मोतियाबिंद के कारण अंधा बाप बेकार है । रामबली भीख माँगने जाता है, तो सेठ कहता है - अंधा है, तो तुझे पैदा क्यों किया ?' परन्तु 'रामबली ठेले के नीचे दोनों पहियों के बीच में छिपकर झटपट झोले में दो-ढाई सेर चावल लेकर' बेचने जाता है, तो सेठ की शोषक वृत्ति रास्ते में चावल खरीद लेती है । विवशता के कारण रामबली को चोरी करनी पड़ती है । इसमें उसका दोष नहीं है । दोषी तो सारा समाज है । ऐसा ही चोर अल्लारक्खू भी सोचता है ।" झूठ बोलना, दूसरों को धोखा देना और चोरी करना बुरा काम है, अल्लारक्खू यह मानता था ; किन्तु वह यह भी मानता था कि इन कामों के सिवाय दुनिया में और भी ऐसे काम हैं, जो इसी हद तक बुरे हैं, बल्कि इनसे भी ज्यादा बुरे हैं । और लोग उन बुरे कामों को करते हुए भी दुनियाँ की नजरों में भले बने रहते हैं, हालांकि दरअसल वे मुझ या मेरे जैसों से भी ज्यादा नीच और नापाक होते हैं । जब दुनियाँ में ऐसे लोगों के लिए जगह है, तो मेरे लिए क्यों नहीं हो सकती ?"[3]

1- होटल का कमरा, पृ0 36

2- वही, पृ0 15

3- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 90

अर्थ वैषम्य ने नारी का भी शोषण किया है । वाजपेयी जी की कहानियों की नारियाँ आर्थिक विवशता के कारण ही वेश्या बनी हैं । किसी व्यक्ति या समाज ने उसे मरने भी न दिया, तब अपने पैरों पर खड़ा रहने का वेश्यावृत्ति के अतिरिक्त उसे और कोई चारा नहीं दिखाई दिया । 'हृदगति' की फूल तथा 'जब सत्य ने काट खाया' की सरोज इसके सजीव उदाहरण हैं । आर्थिक विषमता हमारी संस्कृति को किस प्रकार खा रही है, इसका मार्मिक चित्र 'राजपथ' कहानी में उपलब्ध होता है -

'------हारमोनियम लेकर दो बच्चे गाने निकले हैं । एक अठारह साल का होगा । दूसरी एक छोकरी है । वह अभी ग्यारह की होगी । लड़के ने टीप लगाई- 'मैना तोरे नैना बेदरदी बड़े ।' और छोकरी ने बीच में ही उसे कटी पतंग की तरह दौड़कर, उछलकर, झपट्टा मारकर, हस्तगत कर लिया कि 'सैंया तोरे नैना बेदरदी बड़े'[1] यह हमारी नयी पौध का नव-निर्माण हो रहा है ।

निम्न मध्य वर्ग की सुनील की स्थिति और भी दयनीय है । उसके बुरे आचरणों के कारण पति ने उसका त्याग किया है । अपने परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण विवश होकर बदलू इक्केवान से वह पैसे लेती रहती है और बदले में अपनी देह बेचती रहती है । अपने पति के साथ नुमायश देखने जाने के लिए उसके पास कोई नयी साड़ी नहीं है ; किन्तु दूसरे ही दिन' पता नहीं कहाँ से क्या हुआ कि सुनील के लिए एक बढ़िया साड़ी भी आ गई ।' सुनील के विज्ञापन करने के कुछ दिन पश्चात् पता चलता है कि' उस बार दो मास का मकान भाड़ा जो एक साथ अदा कर दिया था, उसके बीच में सुनील और वह रात थी । और अभी उस दिन वह जो साड़ी आयी थी उसके आने में भी सुनील को ऐसा ही कुछ करना पड़ा था ।'[2] उसके पिता का मासिक वेतन डेढ़ सौ रुपये हैं ; लेकिन परिवार का खर्च भी तो है । सुनील की शादी में जो

1- होटल का कमरा, पृ0 35-36

2- बात एक नाते की, पृ0 17

एक हज़ार रुपये क़र्ज उन्होंने लिये थे, उस में बीस रुपये प्रतिमाह जाते हैं। भले आदमियों का-सा रहन-सहन रखना ही पड़ता है। तीस रुपये मकान भाड़े में चले जाते हैं। दोनों लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने में भी उन्होंने कुछ उठा नहीं रखा है। डेढ़ सौ रुपये तो अब उन्हें मिलते हैं, पहले और भी कम मिलते थे। ऐसी दशा में रुपये वे क्या बचा ही नहीं सकते थे।[1] ऐसी स्थिति में सुनील के लिए और कोई उपाय ही न था। अपने स्वामी के प्रति उसे सच्चा रहना था, परन्तु आर्थिक हीनतापूर्ण जीवन के दुष्परिणामों के साथ स्वामी के प्रति अपने नारीत्व के आत्मसमर्पण का समन्वय वह कैसे करती ? न वह अपने माता-पिता और बहन की दुर्दशा देख सकती थी, न स्वामी के प्रति विश्वासघात करना उसे स्वीकार था।'[2] आर्थिक विषमता से जहाँ एक ओर निम्न वर्ग तथा निम्न-मध्य वर्ग की ऐसी स्थिति थी, वहाँ दूसरी ओर अभिजात वर्ग, जिसके पास पैसा, साधन, पद, मर्यादा सब कुछ है, की बात बिलकुल भिन्न है। उसे किसी प्रकार का बंधन नहीं, किसी का अंकुश और नियन्त्रण भी नहीं है। पैसा तो लाइसेंस है जिसकी सुखों के प्रति आकृष्ट होना किसी अभिजात नारी के लिए सहज है। स्वातंत्र्योत्तर भारत का एक चित्र लेखक ने अंकित किया है। दिलीप पार्लियामेण्ट में सेक्रेटरी है। भारत के अभावग्रस्त वर्ग का चित्र चाहे जैसा हो, पर उसे तो लगता है कि वह उस नदी में तैर रहा है, जिसकी धारा पानी की नहीं, दूध की है।[3] 'उर्वशी' कहानी के जौहरी जी तथा 'एक प्रतीक्षा' के देवकीनंदनबाबू इसी वर्ग के हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी ने जिस समाज को देखा है, उसे उसी रूप में चित्रित किया है। सामाजिक कुप्रथाओं को उन्होंने केवल स्पर्श किया है ; किन्तु समाधान प्रस्तुत नहीं किया। अपनी कहानियों में प्रधान रूप से उन्होंने निम्न वर्ग या शोषित वर्ग तथा निम्न मध्य वर्ग को विस्तृत रूप से चित्रित किया है। अर्थाभाव के कारण इन दोनों वर्गों का शोषण हो रहा है। कभी-कभी आर्थिक संकट

1- बात एक नाते की, पृ0 12

2- वही, पृ0 17

3- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 136

के कारण निम्न मध्य वर्ग की नारियों को अपना स्त्रीत्व तक बेचना पड़ता है । अर्थहीनता ने ही भिखारी, चोर, वेश्या आदि को जन्म दिया है।वाजपेयी जी की कहानियों में चित्रित भारतीय समाज के निम्न एवं निम्न मध्य वर्ग की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है । उच्च मध्य वर्ग सभी दृष्टि से सम्पन्न है, परन्तु इस वर्ग के लोगों को चरित्र जैसी बातों में आस्था नहीं है । इन सभी बातों का प्रतिबिम्बन् वाजपेयी जी की ह कहानियों में हुआ है ।

सांस्कृतिक -धार्मिक स्थिति :

वाजपेयी जी को भारतीय संस्कृति में आस्था है और अपनी कहानियों में भी भारतीय परम्परा के गौरव को उन्होंने स्वीकार किया है । पाश्चात्य संस्कृति के वे विरोधी हैं, इतना ही नहीं, अपनी कहानियों में भी पश्चिमीकरण की दूषित प्रवृतियों पर यत्र-तत्र उन्होंने टिप्पणी भी की है । भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति के बीच अन्तर बतलाते हुए वाजपेयी जी ने लिखा है -'सार्वजनिक स्थलों पर, खुले आम युवक-युवतियों का पारस्परिक चुंबन-परिरंभण वहाँ की संस्कृति है । कौमार्य वहाँ या तो कोष की वस्तु है या कल्पना की ।----- यहाँ की सभ्यता का आधार आध्यात्मिक है । भोग यहाँ जीवन का अंग न होकर मरण का अंग माना जाता है ।---- पिता-पुत्री और भाई-बहन भी यदि तरुण हैं, तो उनका एकांत-वास यहाँ नीति -विरुद्ध है । किसी स्त्री का पर-पुरुष से और पुरुष का पर-स्त्री से अत्यधिक सौहार्द, आचार-निष्ठा की दृष्टि से, यहाँ अनुचित माना जाता है ।'[1] भारतीय विवाह-पद्धति को वे सामाजिक सुदृढता का आधार मानते हैं और कहते हैं -'पाश्चात्य ये जगत् चाहे कितनी ही उन्नति क्यों न कर ले, पर वह हमारे देश के चरित्र की उस पवित्रता तक कभी नहीं पहुँच सकता जहाँ सामाजिक बंधनों के अनुसार चलते हुए हम प्राय: पहुँच ही जाते हैं ।'[2] वाजपेयी जी का दृष्टिकोण मर्यादावादी है ; अत: उच्छृंखलता उन्हें सह्य नहीं ।

1- हिलोर, पृ0 160

2- मधुपर्क, पृ0 61

आधुनिक सभ्यता में उच्छृंखलता बढ़ी है और वाजपेयी जी इसके विरोधी हैं। देवकीनन्दनबाबू एक उच्च पद पर थे। उन्होंने अपनी पत्नी मनोरमा को 'एक प्रतीक्षा' की स्थिति में रख दिया है। उनके उच्चाधिकार के कारण उनके लिए पत्नी का स्त्रीत्व खो जाता है, इस बात को लेखक ने बहुत ही सूक्ष्मता से पकड़ा है। ऐसे लोगों के लिए पत्नी केवल प्रतीक्षा के लिए है, सहने के लिए है।

वाजपेयी जी ने अर्द्ध शती से भी अधिक लम्बे अपने लेखनकाल में बदलते समाज को देखा है। सामाजिक बंधनों की आत्मा को उन्होंने मरते देखा है। सामाजिक मर्यादाओं का ह्रास हो रहा है। 'पुनर्मिलन' कहानी में फूल अपने पति से स्पष्ट कहती है -'इस मामले में कोई सगा नहीं होता। मैं भी तो दूर के नाते तुम्हारी बहन लगती थी। फिर मेरे घर दिन भर में दस चक्कर क्यों लगाते थे?'[1] वस्तुतः मध्य वर्ग में उभरती नयी व्यक्तिवादी चेतना ने भाई-बहन जैसे सम्बन्धों को भी शिथिल कर दिया है।

~~वाजपेयी जी~~

भारत में ॐ धर्म की परिभाषा बहुत ही व्यापक अर्थ में की गई है। यहाँ धर्म जीवन के समूचे क्षेत्र को स्पर्श करता है। संस्कृत में कहा गया है - 'धर्म इति धार्यते'। कभी-कभी धर्म, कर्तव्य का पर्याय बनकर जीवन में एवं साहित्य में प्रयुक्त हुआ है। इस दृष्टि से देखा जाय, तो धर्म का उद्देश्य वाजपेयी जी की कहानियों में केवल धार्मिक मान्यताओं, आस्थाओं एवं परम्पराओं तक ही सीमित नहीं रहा है। उनकी प्रथम कहानी 'यमुना' के अध्ययन के पश्चात् ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि उनकी अन्य कहानियों के पात्र भी भारतीय चरित्र की धर्मानुप्राणिता के धरातल पर अवतरित होंगे क्योंकि प्रस्तुत कहानी में खिचड़ी पुन्न करने जैसी बातें उभरी थीं, परन्तु यह वैशिष्ट्य इस कहानी तक ही सीमित रहा। यह विशेषता उनके समस्त कहानी साहित्य का संबन्ध नहीं बन सकी। वाजपेयी जी की कुछ कहानियों में ईश्वर तथा प्रकृति, भाग्य एवं नियति का उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है, परन्तु यह तो मध्य वर्ग की सामाजिक जड़ता को मुखर करने के लिए

1- होटल का कमरा, पृ0 62

है । यह ईश्वर व्यक्ति के सारे विद्रोह का शमन कर देता है । कर्मभोग और पुनर्जन्म-व्यवस्था इस आस्था के अंग बन जाते हैं । 'आत्मघात' कहानी में दुर्दशा-ग्रस्त एक भिखारिन बुढ़िया को देखकर दिवाकर के भीतर आग की भट्ठी दहक उठती है । वह भगवान को कोसता है -" आह ! इतना दुख ! एक निराश्रिता वृद्धा तक को तुम इतना दुःख देते हो, और कहलाते हो दयाधाम ! तुम्हारी सृष्टि में ऐसे-ऐसे नर-पिशाच बसते हैं कि अस्थियों के ऐसे ढाँचे तक को आघात पहुँचाए बिना नहीं चूकते ! और तुम कहलाते हो जगदीश ! निरंकुश ! यही तुम्हारा न्याय है !! तुम सोते हो या पीनक झप में हो- अपने मनोराज्य में । अफीमची कहीं के ! इस प्रकार के दीन-दुखियों को तुम उठा ही क्यों नहीं लेते जालिम ।

परीक्षा ।

तो, तुम मानवता की परीक्षा लेते हो - न्याय के काँटे पर तौलकर अपराधी से उसका कर्मभोग लेते हो । तुम न्यायपति रूप में शिव हो, क्योंकि तुम्हें दण्ड भी देना होता है - दूध का दूध और पानी का पानी पृथक्-पृथक् करके दिखलाना होता है ।

दिवाकर के भीतर दहकती हुई भट्ठी प्रशांत पड़ गई है ।"[1] इस धार्मिकता एवं ईश्वरीय विधान के प्रति आस्था ने ही भारतीय समाज को संघर्ष से विमुख कर दिया है । 'उर्वशी' कहानी के जौहरी जी का विद्रोही व्यक्तित्व इस नियतिवादिता को नहीं, प्रत्युत नियतिवादी व्यक्ति को कोसता है । वे कहते हैं -' मनुष्य के सारे प्रयत्न, साहस और हौसलों को ये लोग पहले एक जगह गिरवी रख देते हैं, उसके बाद मुँह खोलते हैं ।'[2] जौहरी जी ने विद्रोह अवश्य किया है ; किन्तु उनका विद्रोह नियति-वादी समाज एवम् ईश्वरीय नियतिवादी मान्यता के विरुद्ध है । नियति ने उनकी एक पत्नी छीन ली, तो उन्होंने फिर वैसी ही तीन रखीं । यह स्थिति भले ही समाज के लिए भयस्कर न हो, पर उसमें विद्रोह का स्वर तो अवश्य है । ईश्वरीय रचना और सामाजिक व्यवस्था के नाम पर जो लोग सहन करते और घुल-घुलकर मरते हैं, उनकी अपेक्षा इस तरह का विद्रोह करना अधिक साहस का काम है । बिहारीबाबू कहते हैं -' मैं इस

1- हिलोर, पृ0 178-179

2- होटल का कमरा, पृ0 135

कार्य को निन्द्य मानकर भी उसके साहस की प्रशंसा करूँगा ।'[1] इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक-धार्मिक स्थितियों का चित्रण वाजपेयी जी की कहानियों में उपलब्ध नहीं होता ।

राजनीतिक स्थिति :

हम आगे लिख चुके हैं कि वाजपेयी जी ने प्रमुख रूप से सामाजिक रचनाओं का सृजन किया है ; अत: उनके कथा-साहित्य में राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं होता । उनके कथा-साहित्य के विषय में एक आलोचक ने लिखा है -'राजनीतिक दाँव-पेच और आर्थिक झंझटों से उनका कथा-साहित्य कोसों दूर है ।'[2] परन्तु इस कथन को आंशिक रूप से सत्य माना जा सकता है । वाजपेयी जी को राजनीति आकृष्ट नहीं करती, यह ठीक है । राजनीति उनके कथा-साहित्य का प्रतिपाद्य विषय नहीं है, यह भी ठीक है, तथापि राजनीति का संकेत उनकी कृतियों में अवश्य प्राप्त होता है । स्वातंत्र्य प्राप्ति से पूर्व लगभग ढाई दशाब्दी का उनका रचनाकाल स्वातंत्र्य संग्राम का युग था । वाजपेयी जी महात्मा गांधी जी से प्रभावित थे । उन दिनों कानपुर वाजपेयी जी का कर्मक्षेत्र था । वहाँ के क्रांतिकारियों के प्रति भी उनके मन में श्रद्धा थी । महात्मा जी की प्रेरणा से या क्रांतिकारी दल के सम्पर्क से युवकों ने देश-सेवा का व्रत ले लिया था । जान्हवी एक ऐसे युवक पर आसक्त है, जो कहता है - मिलन और विवाह ! नाम मत लो । इस जीवन में वह अब संभव नहीं है । यह युद्ध तो इस जीवन भर का ठहरा ।'[3] यह स्थिति केवल नारी पात्रों तक सीमित नहीं है । 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब' का दिवाकर मिस चौधरी को अपने लिए अप्राप्य मानकर जीवन में विवाह की संभावनाओं की इतिश्री समझ लेता है ।और पागल हो जाता है । मिस चौधरी क्रांतिकारी रमणी है । उसे बारह वर्ष की नज़रबन्दी की सज़ा पहले हो चुकी है । उसके बाद वह फिर अपराध करती है - भयंकर अपराध । इस तरह की 'यदि' 'एक आह' तथा 'उपहार' आदि ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें ऐसी परिस्थिति में उत्पन्न

1- होटल का कमरा, पृ0 120

2- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी (कथाकार वाजपेयी जी, श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ का लेख) पृ0 101

3- मधुपर्क, पृ0 128

नारी-मन के संशय तथा कुण्ठाओं को लेखक ने अभिव्यक्ति दी है ।

'अविवाहिता' कहानी में स्थिति सर्वथा भिन्न है । वहाँ कुण्ठा नहीं, अपितु सहचरत्व है । "असहयोग-आंदोलन प्रबल वेग के साथ देश भर में फैला हुआ है । महात्मागांधी ने भी घोषणा कर दी -'राष्ट्रव्रत के व्रती ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करें ।"[1] गांधी जी की इस घोषणा से प्रेरणा लेकर विनोदबिहारी के साथ-साथ शरदकुमारी ने भी अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की । दोनों एक पथ के पथिक हो गये । विनोद-बिहारी आंदोलन को संगठित करने निकल पड़ा, तो शरदकुमारी 'वीणा' की संपादिका बनकर अपनी पत्रिका द्वारा स्वतंत्र विचारों को अभिव्यक्त करने लगी ।

"राजनीतिक परिवेश के प्रति वाजपेयी जी की चेतना वास्तव में एक विचारक की चेतना है, इतिहासज्ञ की नहीं । इसीलिए उनकी कहानियों में राजनीतिक घटनाओं का विवरण बहुत कम उपलब्ध होता है ।"[2] यह नितांत तथ्यपूर्ण है । वस्तुत: वाजपेयी जी राजनीतिक मंच के कथाकार हैं भी नहीं । अपने साहित्य-सृजन के समय यदि कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना घट जाती है, तो प्रासंगिक या गौण रूप में वे उस घटना का उल्लेख अपनी कृति में कुशलतापूर्वक कर देते हैं । स्वातंत्र्य से पूर्व जब पं० जवाहरलाल नेहरू ने स्वाधीनता की घोषणा की थी, वह दिवस इतिहास का अभूतपूर्व दिन था । इस सम्बन्ध में सुरेन्द्र शकुन से कहता है -"तुम्हें पता होना चाहिए कि आज हमारा स्वाधीनता दिवस है । सिविल लाइन में हमारे जलूस को पुलिस ने आगे बढ़ने नहीं दिया, बीच में ही तितर-बितर कर दिया । सैकड़ों आदमी गिरफ्तार कर लिये गये हैं और कितने ही गिरफ्तार होनेवाले हैं । मैं किसी तरह छिपकर आ पाया हूँ ।---- मुझे अपने गिरफ्तार होने से पहले गिरफ्तार व्यक्तियों के निराश्रित सम्बंधियों के खाने-पीने का-कुछ दिनों का - प्रबंध तो कर ही जाना है । इस समय यही प्रश्न मेरे जीवन-मरण को हल कर सकता है ।"[3] प्रस्तुत उद्धरण से प्रतीत होता है कि 'उस क्षण का सुख'

1- मधुपर्क, पृ० 77

2- कहानीकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी, डा० गोविन्दलाल छाबडा और डा० लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ० 89

3- बात एक रात की, पृ० 130

कहानी का सुरेन्द्र भी स्वाधीनता दिवस के लिए अप्रतिम उत्सर्ग करता है, किन्तु लेखक की रुचि इसके अंकन में उतनी नहीं, जितनी राजनीति की वैचारिक पृष्ठभूमि को आकलित करने में है। सुरेन्द्र को यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि आज की राजनीति भी अथविलम्बित है। वह मानता है कि यह ठीक है कि चुनाव में मुख्य बल जनता का है, ---- तो भी कोरी बातों से चुनाव नहीं लड़ा जा सकता। बल-प्रदर्शन की भी आवश्यकत होती है। और उसके लिए चाहिए रुपया।"[1]

राजनीति में कहीं भी सच्चाई के दर्शन नहीं होते। आज की राजनीति में तो केवल गंदगी दृष्टिगोचर होती है, जो वक्तव्यों के रूप में जनता के समक्ष प्रकट होती है। आज का नेता केवल भाषण देना जानता है। योजनाएँ साकार हो या न हो, उसे चिन्ता नहीं। सच पूछा जाय, तो वह चाहता भी नहीं है कि योजनाएँ मूर्त हों। ऐसे राजनेताओं के विषय में लेखक कहता है -'देश के सुख-दुख के ठेकेदार जब मोटरों अथवा वायुयानों पर चलते हैं, तब उनके मस्तिष्क में योजनाओं की सफलता के स्थान पर वक्तव्य- केवल वक्तव्य की कल्पनाएँ रहती हैं।'----[2] इस उद्धरण से पता चलता है कि भारतीय राजनीति कितनी निर्बल और पतित है।

हमारी राजनीति के इस पतन के अनेक कारण हैं। उनमें सबसे प्रमुख कारण तो यह है कि भारत के स्वातंत्र्य युद्ध में केवल बुद्धिजीवी मध्य वर्ग ने ही सक्रिय हिस्सा लिया था। अधिकार प्राप्त होते ही उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। गांधी जी कांग्रेस को बचाना चाहते थे। उच्च वर्ग अपने स्वार्थों के कारण इस संघर्ष का विरोध कर रहा था और निम्न वर्ग आर्थिक दृष्टि से हीन होने के कारण अभावग्रस्त था। स्वतंत्रता प्राप्ति में श्रमिक वर्ग का अधिक योगदान हो, तब राजनीति स्वच्छ रह सकती है और तभी स्वातंत्र्य भी स्थायी रहता है, परन्तु इस वर्ग का स्वाभिमान तो आर्थिक चिन्ता के कारण नष्ट हो चुका था। खेतों में पैदावार हो या न हो, इस बात से राजनीति

1- बात एक नाते की, पृ0 134

2- होटल का कमरा, पृ0 36

का कोई सम्बन्ध नहीं है । उसे तो लगान-निर्धारण से ही मतलब है । 'सहानुभूति ने कहा' शीर्षक कहानी में विषण्ण-मना रंजन इस स्थिति के सम्बन्ध में सोचता है - "यही हमारा देश है, यही हमारा स्वरूप, यही हमारी शिक्षा और यही हमारा अधिकार । एक विश्व है और उसकी सभ्यता, उसका संघर्ष और उसकी उठने-गिरने वाली राजनीति । और हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई जिस वर्ग से उठनी चाहिए, उसकी यह स्थिति है ।"[1]

राजनीतिक गंदगी का दूसरा प्रमुख कारण है, मानवमन की अवहेलना । वहाँ केवल अवसरवाद तथा अधिकार का प्रयोग है । मन को पहचानने का समय किसी को नहीं है । सन् 1962 ई० में चीन ने हमारे देश पर आक्रमण किया । 'वंचना : एक सत्य' कहानी के मोहनबाबू भी चीन को आक्रामक मानते थे, फिर भी साम्यवादी होने के कारण वे फाँस लिये गये । किसी ने उनका हृदय टटोलने की चेष्टा नहीं की । मानवता के सच्चे पुजारी को यह सब सहना ही पड़ता है ।[2] राजनीति में केवल शब्द उछाले जाते हैं । कोई भी हृदय नहीं देखता । ऐसे राजनीतिक दाँव-पेच के कारण ही जनता भ्रम में पड़ जाती है । अतः राजनीति का कोई विश्वास नहीं । 'सिंहनाद' कहानी के मानसिंह के विषय में लेखक ने लिखा है - 'कहते हैं एक समय था, जब मानसिंह प्रादेशिक धारा-सभा के मनोनीत सदस्य थे । एक ऐसा भी युग था, जब सभा-मण्डप में मंच पर विराजमान, ध्वनि-प्रसारक यंत्र से निस्सृत होती उनकी गुरु-गंभीर वाणी का प्रभाव सहस्रों के जन-समूह में एक बिजली की लहर बिखेर देता था । एक अटूट सिद्धांतवादी की भाँति वे सर्वस्व उत्सर्ग कर देने वाले व्यक्ति थे और दक्षिण पंथियों में तो उग्रतम नेता माने जाते थे । पर फिर कालान्तर में एक ऐसा युग भी आया, जब वे अगले - निर्वाचन में सफल न हो सके ।"[3] कारण हम आगे बतला चुके हैं । चुनाव में बल-प्रदर्शन के लिए सिद्धान्त नहीं, पैसा अनिवार्य है । दक्षिणी पंथियों ने इसी के सहारे जनता के विवेक को नष्ट कर दिया था ।

1- कबाड़ी का ताजमहल, पृ० 72-73

2- वही, पृ० 17

3- होटल का कमरा, पृ० 47

प्रारंभ से ही भारत की राजनीति शांति की चाहक रही है । गांधी जी भी यही चाहते थे । पं० नेहरू भी इसीलिये शांति-दूत बन गये थे, किन्तु सन् 1962 ई० के चीनी आक्रमण ने हमारी सारी शांति-धारणाओं को भू-लुण्ठित कर दिया । शांति के चाहक भारत को युद्ध का महत्त्व तभी समझ में आया । हमारे देश ने भी अब प्रतिशोध की अनिवार्यता को स्वीकार किया । उस समय मानसिंह ने कहा था -' मित्रता के व्रत, वचन और आश्वासन जिस विश्वासघातक ने आज व्यर्थ कर डाले हैं, उसका बदला लेना हमारा धर्म है, कर्तव्य है, हमारी प्राण-संचारिणी साँस-साँस का अनिवार्य स्वर है ।'[1] चीन ने यदि 'छीना-झपटी की अराष्ट्रीय परम्परा' का निर्माण करना अपना ध्येय बना लिया है, तो उसके विनाश के लिए मानसिंह युद्ध का पक्षपाती है । भारत को युद्ध में आस्था नहीं है, परन्तु राष्ट्र की स्वातंत्र्य रक्षा तथा जीवन की रक्षा के लिए युद्ध को स्वीकार करना ही कर्तव्य है । अहिंसा को नया ही अर्थ देकर सन् 1965 ई० में स्व० शास्त्री जी ने तथा सन् 1972 ई० में इंदिराजी ने भारतीय राजनीति का परिचय संसार को दिया था ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अपने कहानी-साहित्य में वाजपेयी जी ने स्वातंत्र्यपूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थिति का सफलतापूर्वक चित्रण किया है । हम पहले ही लिख चुके हैं कि वाजपेयी जी मूलत: सामाजिक कथाकार हैं ; अत: यह कदापि संभव नहीं है कि पाँच दशाब्दियों की उनकी रचनाकाल की दीर्घ समयावधि की सभी राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख उनकी कहानियों में प्राप्त हों, तथापि जिन महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं ने उन्हें प्रभावित किया है उनका चित्रण या संकेत अपनी कृतियों में उन्होंने अवश्य दिया है । जिन राजनीतिक घटनाओं एवं सामाजिक प्रथाओं तथा सांस्कृतिक-धार्मिक स्थिति का प्रतिबिम्बन् वाजपेयी जी के कथा- साहित्य में हुआ है, उनकी सहायता से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों का पाठक को अवश्य बोध होता है । प्रस्तुत अध्याय में वाजपेयी जी के

1- होटल का कमरा, पृ० 48

कथा-साहित्य में देशकाल तथा चित्रित ~~समाज~~ भारतीय समाज का अनुशीलन करने के पश्चात् अगले अध्याय में वाजपेयी जी के कथा-साहित्य में प्रयुक्त संवादों का अध्ययन किया जायगा ।

पंचम् अध्याय

वाजपेयी जी के कथा-साहित्य में संवाद

पंचम् अध्याय

" वाजपेयी जी के उपन्यासों में संवाद "

कथोपकथन उपन्यास का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । यदि कथा में से इस तत्त्व को निकाल दिया जाय, तो कथा में जो सबसे बड़ा दोष आयेगा, वह होगा कथा के पात्रों का अव्यक्त हो जाना । परिणामस्वरूप कथा की कलात्मकता, प्रभ - विष्णुता एवं संवेदनशीलता नष्टप्राय: हो जायेगी । अत: हम कह सकते हैं कि कथा-साहित्य में अन्य तत्त्वों की अपेक्षा इस तत्त्व का महत्त्व कहीं अधिक है । कथानक विन्यास के सौन्दर्य का उद्‌घाटन तर्क-वितर्क और प्रतिपादन से किया जाता है अथवा चरित्रांकन में किसी मनोवैज्ञानिक पार्श्वभूमि में किस प्रकार की वृत्ति का आभोग सिद्ध होता है, यह कल्पनाजन्य अनुभूति से समझने की चेष्टा करने पर जाना जा सकता है ; किन्तु कथोपकथन अपने प्रकृतत्व औचित्य एवं व्यावहारिक रचना से ही अपने सौन्दर्य एवम् आकर्षण को समझा देते हैं । इसमें तर्क-वितर्क, चिन्तन-मनन की उतनी अपेक्षा नहीं रखी जाती । यदि देशकाल और संस्कृति विशेष का कोई प्राणी किसी से भी किसी प्रकार की बातचीत करता है, तो बातचीत की प्रांजलता और विदग्धता, शब्द और वाक्य के प्रयोग, भाषा और पदावली से हमें प्रत्यक्ष मालूम होता है कि व्यक्ति किस कोटि, वर्ग, देश और काल का है । संवाद से अन्य सभी तत्त्वों का सीधा सम्बन्ध होता है"।[1] इससे कथानक में कथोपकथन का क्या महत्त्व है, यह स्पष्ट हो जाता है ।संवाद के लिए कथोपकथन शब्द का भी प्रयोग किया जाता है । प्रो० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' ने कथोपकथन के उद्देश्य बतलाते हुए लिखा है -'घटनाओं को प्रगतिशील बनाना तथा पात्रों के विशेष शील-स्वभाव पर पूरा-पूरा प्रकाश डालना ही कथोपकथन का मुख्य उद्देश्य होता है ।'[2] इससे वस्तुविधान तथा शील-निरूपण की प्रणाली में सुगमता, सरसता तथा मनोरंजकता की अभिवृद्धि होती है । ऊपर दिये गये दो उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्य भी

1- कहानी का रचनाविधान, डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ० 121

2- प्रेमचंद की उपन्यास कला, प्रो० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' पृ० 71

कुछ उद्देश्यों से कथोपकथन का प्रयोग कथानक में होता है । मुख्य रूप से संवादों का प्रयोग कथानक में सामान्यत: निम्न उद्देश्यों से किया जाता है -

1- कथानक को गति प्रदान करना,
2- पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करना,
3- कथाकार के उद्देश्य को स्पष्ट करना,
4- कथोपकथन के व्याज से पूर्व संकेत देना तथा
5- कथोपकथन के माध्यम से वातावरण-सृष्टि करना आदि ।

वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में चतुर्थ उद्देश्य के अतिरिक्त शेष सभी उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु संवादों को प्रयुक्त किया है । यहाँ हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि उपरि कथित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वाजपेयी जी ने कथोपकथनों का प्रयोग किस प्रकार अपने उपन्यासों में किया है, उनका क्या महत्त्व तथा उपादेयता है एवम् उनकी रक्षा किस सीमा तक वे कर सके हैं ।

1- वाजपेयी जी के उपन्यासों में कथानक को गति प्रदान करने वाले संवाद :

उपन्यास में संवादों के समावेश से एक ओर जहाँ कथासूत्र क्षिप्रगति से आगे उठता है, वहीं दूसरी ओर नवीन कथासूत्रों का निर्माण भी होता है । नवीन कथासूत्र की सृष्टि तब होती है, जब दो पात्रों के विचारों में अंतर के कारण संघर्ष का उद्भव होता है । इस संघर्ष तथा नवीन कथासूत्र के उद्गम का स्पष्टीकरण संवादों द्वारा ही संभव हो सकता है । कथा गतिशील रहे, केवल यही आवश्यक नहीं है, वरन् कथा के क्षिप्र गति से आगे बढ़ने के साथ सजीवता, चित्रमयता तथा कलात्मकता की भी सृष्टि करने में वह समर्थ होनी चाहिए । यह कार्य भी कथोपकथन द्वारा ही संभव हो सकता है, किन्तु इस बात का विस्मरण कभी नहीं होना चाहिए कि इस तत्व का क्षिप्र एवं सुगठित प्रयोग एक ओर जहाँ कथामार्ग को उत्कर्षोन्मुख करता है, वहाँ दूसरी ओर स्वच्छंद, अनियंत्रित, अनावश्यक तथा कथा की गति को अवरुद्ध करने वाले अरोचक संवादों का प्रयोग

कथा को बोझिल एवम् अकलात्मक बना देता है । अत: यह नितान्त आवश्यक है कि संवादों का कथासूत्र से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो, अन्यथा कथानक विशृंखल हो जायगा । वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों के कथोपकथनों में इस बात का विशेष ध्यान रखा है । उनके कथोपकथन जहाँ एक ओर कथानक को गति प्रदान करते हैं, वहाँदूसरी ओर अनियंत्रित एवम् अरुचिकर भी नहीं हुए हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में कई स्थानों पर कथोपकथन के द्वारा ही कथा को दूसरी दिशा में मोड़ दिया है । कथा के ये मोड़ स्वाभाविक कथोपकथन के कारण अस्वाभाविक भी नहीं होने पाये हैं । अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत कर देना समीचीन प्रतीत होता है ।

देवकी, मज़दूर और सुकुलजी के बीच हो रहे वार्तालाप को देखिए । केदारबाबू की भतीजी देवकी अपनी अधिकृत भूमि में खुदाई होती देखकर उत्तेजित होकर खोदने वाले मजदूरों को लक्ष्य करके पूछती है -

`` यह क्या हो रहा है ? ऐं !---- अरे मैं तुम्हीं से पूछ रही हूँ !`

जो मज़दूर खुदाई कर रहे थे, उनमें से एक बोला-`देख तो रही हो कि नींव की खुदाई शुरू है । मकान बनेगा यहाँ ।`

देवकी बोली -`बंद करो खुदाई । मकान-वकान यहाँ कुछ नहीं बनेगा । खबरदार जो अब एक भी फावड़ा चलाया ।`

इतने में एक मज़दूर ने उत्तर दिया -`सुकुल महराज से कहो, उन्हीं के हुकुम से हम खोद रहे हैं ।`

तब देवकी बोली -`सुकुल महराज से बाद में कहूँगी, पहले तुमसे कहती हूँ । अगर अब तुम्हारा फावड़ा उठा तो फिर किसी की लाठी भी उठेगी, समझे ।`

तब वह मज़दूर फावड़ा अलग रखकर कुछ जोर से बोल उठा, `अरे सुकुल महराज ! ओ सुकुल महराज !!`

इतने में भीतर से सुनाई दिया -`क्या है ?`

मज़दूर ने उत्तर दिया- 'सुकुल महराज , यह झगड़ेवाला काम हम से न होगा । हम यहाँ काम करने आये हैं, फौजदारी कराने नहीं ।'

सुकुल जी तत्काल वहाँ आकर बोल उठे -'कौन माई का लाल है फौजदारी करने वाला ? मैं उसकी शक्ल तो देखूँ जरा ।'

देवकी बोली-' तो सुकुल जीजा, यहाँ जबरदस्ती मकान बनाने का इरादा है क्या ? तुमको मालूम नहीं, यह जमीन दादा की है ।'

सुकुल जी ने अपना सारा दर्प एक ही वाक्य में भरते हुए जबाव दिया -'अरी जा, बड़ी दादावाली बनी है । हम देख लेंगे दादा-वादा सबको ।'

तब देवकी उभरते हुए क्रोध को पीती हुई बोली -'सुकुल जीजा, यह बात बहुत बुरी है । समझ लो इसका नतीजा क्या होगा ।'[1]

इसमें आगे भी सुकुल मुँह पर ही देवकी को खरी-खोटी सुनाता रहता है । वह हाईकोर्ट में जाने के लिए भी तैयार है। इस तरह संवाद बढ़ता ही जाता है और साथ-साथ कथा भी एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर होती जाती है । प्रस्तुत कथोपकथन के प्रारंभ से तो ऐसा आभास होने लगता है कि अब दोनों में संघर्ष होने वाला ही है ; परन्तु संघर्ष चरमसीमा पर पहुँचकर अकस्मात् मुड़ जाता है । अचानक कामता पंडित आ जाते हैं । उनकी लोकप्रियता मजदूरों को सुकुल का कार्य छोड़ जाने में सहायक सिद्ध होती है । आगे चलकर सरकार के कायदे का केदारबाबू पालन करना चाहते हैं ; परन्तु शंकर तथा देवकी दादा से असहमत हैं । नौकर फौजदारी करने पर तत्पर हैं ; किन्तु दादा अंत में जमीन 'उजियारे' तथा 'अंधियारे' को दे देते हैं । इस तरह कथोपकथन में अनेक मोड़ आते रहते हैं । और कथा अंत की ओर अग्रसर होती रहती है । इसी प्रकार के कितने ही उदाहरण वाजपेयी जी के उपन्यासों में पग प्राप्त होते हैं ।'कर्मपथ','गोमती के तट पर','विश्वास का बल','निमंत्रण','चलते-चलते', आदि प्रमुख उपन्यासों में कथा को गतिशील बनाये रखने के लिए उपन्यासकार ने कथोपकथनों का ही अवलम्ब लिया है ।

1- भूदान, पृ0 39-40

उपन्यास में जहाँ कहीं भी कथा अवरुद्ध होने लगी है अथवा उसका प्रवाह मंद होने लगा है, वहाँ लेखक ने सरस कथोपकथनों की सृष्टि करके कथा को पुन: प्रवाहमय एवं रोचक बना दिया है ।

कथा की गति प्रदान करने के लिए वाजपेयी जी ने 'कथोद्घातक' कथोपकथनों का भी प्रयोग किया है । पहले जो प्रसंग चल रहे हैं, उन्हीं के कुछ शब्दों को दुहराते हुए जब कोई पात्र सहसा सम्मुख आ जाता है, तब 'कथोद्घातक' होता है । इस प्रकार के कथोपकथन विशेष चमत्कारयुक्त होने के साथ-साथ कथाप्रवाह में त्वरा उत्पन्न करने वाले होते हैं । ऐसे कितने ही उदाहरण वाजपेयी जी के उपन्यासों में पाये जाते हैं । यहाँ उनके 'उनसे न कहना' उपन्यास से एक उदाहरण दिया जा रहा है । गोविन्द विजय को खोजने के लिए घर से निकल जाता है, तब विजय घर पर आ जाता है । फिर वह भी गोविन्द को खोजने निकल पड़ता है । अंत में विजय एक नर्तकी के यहाँ नशे में धुत, बिलकुल अचेतावस्था में पाया जाता है । यह देखकर गोविन्द को हार्दिक पीड़ा होती है । यथोचित स्वागत-सत्कारोपरांत हीरा गोविन्द से पूछती है -

'आप तो इनको मेरे यहाँ से लेने आये होंगे ?'

गोविन्द ने उत्तर दिया, 'जी, आया तो लेने के लिए ही हूँ और साथ ले भी जाऊँगा ।'

कुण्डल हिलाती हुई हीरा हँस पड़ी । बोली-'और अगर मैं न ले जाने दूँ तो ?'

' आपको अधिकार है । मैं तो समझा-समझाकर हार गया । हो सकता है आप जीत जाएँ ।'

'हार आपको अच्छी लगती है ?'

'हार भी भला किसी को अच्छी लगती है ।'

'और अगर किसी को अच्छी लगती हो ?'

'आपको लगती है ?'

'मैंने कभी सोचा नहीं । आपने तो सोचा होगा ?'

'तभी तो यहाँ आना पड़ा ।'

'कोई नई बात नहीं है । हार के बाद ही लोग यहाँ आते हैं ।'[1]

प्रस्तुत उदाहरण में बहुत ही नाटकीय ढंग से 'कथोद्घातक' द्वारा कथा को गतिशील बनाया गया है । वाजपेयी जी ने कथा को गतिशील तथा प्रभावशाली बनाने के लिए अपने उपन्यासों में इस प्रकार के कथोपकथनों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है ।[2]

(2) कथोपकथन द्वारा पात्रों के चरित्र का विश्लेषण :

कथानक को गति प्रदान करने के साथ कथोपकथन का दूसरा प्रधान कार्य पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना तथा उसे स्पष्ट करना है । कथानक पात्रों के चरित्र तथा व्यक्तित्व पर ही अवलम्बित होता है । अत: संवादों का सीधा सम्बन्ध पात्रों से ही है । संवाद के अभाव में न तो पात्रों के व्यक्तित्व की रेखा उभर सकेगी, न ही उनके चरित्र का विश्लेषण सम्भव हो सकेगा । अपने किसी पात्र के चरित्र के सम्बंध में लेखक भले ही सब कुछ कह डालें, परंतु जब तक पात्र स्वयं कुछ नहीं कहेगा, तब तक पाठक संतुष्ट नहीं होंगे, न ही नैकट्य की उन्हें अनुभूति होगी । पाठक के मन में यह कौतूहल सदा बना रहता है कि अमुक पात्र के विषाय में उपन्यास के अन्य पात्रों की क्या राय है, उसके शत्रु तथा मित्र उसके विषाय में क्या सोचते हैं, उस पात्र के स्वयं के अपने विषाय में क्या विचार हैं या किसी समस्या अथवा घटना विशेष पर किस प्रकार अंतर्द्वन्द्व विभिन्न पात्रों के हृदय में होता है ।[3] इन सभी बातों की जानकारी उपन्यासकार पाठकों को केवल संवादों द्वारा दे सकता है । वाजपेयी जी ने भी अपने उपन्यासों में पात्रों के चरित्र को उभारने तथा निखारने के लिए कथोपकथनों की ही सहायता ली है ।

1- उनसे न कहना, पृ0 124

2- दे. विश्वास का बल, पृ0 307, उनसे न कहना, 124, भूदान, 209

3- चरित्र-चित्रणवाले अध्याय में इस विषाय में विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है ।

उनके सम्वाद एवम् स्वगतोक्तियाँ पात्रों के हृदय को पूर्णरूपेण खोलकर सामने रख देते हैं । इसी के परिणामस्वरूप पात्रों के चरित्र का विश्लेषण होने के साथ-साथ कथानक भी आगे बढ़ता रहता है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

"रमा कहती थी -' वन्दना का कोई चरित्र नहीं है। उसके बच्चा होने वाला है, जबकि वह स्वामी से पृथक् रहती है । तुम्हारा उससे मिलना-जुलना ठीक नहीं ।

राजीव का कहना था -' वह पतिव्रता है । उसके पति ने उसे छोड़ भी दिया है, तो इसका कारण उसका चरित्र नहीं, प्रकृति है । उसके स्वामी ने अलबत्ता एक अभिनेत्री से ब्याह कर लिया है । जो भी हो, जब तक वह मेरा विश्वास नहीं तोड़ती, तब तक मेरा मिलना-जुलना कैसे छूट सकता है । फिर हमारा सक्रिय सम्बन्ध हो, तो उसकी रागिणी से है , न कि व्यक्तिगत जीवन से ।'[1]

इस उदाहरण से तीनों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । रमा के कथन से यह जाना जा सकता है कि वह शंकाशील नारी है । वंदना की वय बहुत कम होने के कारण तथा देखने में वह रमा से कहीं अधिक सुन्दर होने के कारण उसके प्रति रमा के मन में ईर्ष्याभाव जागना स्वाभाविक है । उसके कथन से यह भी जाना जा सकता है कि वन्दना चरित्रहीन है । परन्तु इसके विरुद्ध राजीव अपने कथन के द्वारा अपने आदर्श रूप तथा औदार्य का परिचय देता है । किसी के व्यक्तिगत जीवन में वह हस्तक्षेप करना नहीं चाहता । न ही वह इस बात को उचित समझता है ।

चंद्रकान्त-वंदना सम्वाद[2], बेला-यशवन्त संवाद[3], बुंदी-व्रजनाथ संवाद[4],

---

1- विश्वास का बल, पृ0 232

2- वही, पृ0 263

3- टूटते बंधन, पृ0 72-73

4- निमंत्रण, पृ0 167

मालती-रेणु संवाद[1], अजय-घनश्याम संवाद[2], अजय-सुमन संवाद[3] आदि इसी प्रकार के चरित्र -प्रकाशक संवाद हैं । वस्तुत: इसी प्रकार के कथोपकथनों के माध्यम से वाजपेयी जी ने पात्रों के चरित्र को उभारा है ।

(3) कथोपकथन द्वारा अपने उद्देश्य को स्पष्ट करना :

अपने उपन्यासों में कहीं स्थलों पर कृतिकार कथोपकथनों की सहायता से अपने उद्देश्य को स्पष्ट एवम् प्रकट करता है । अपने विचारों को वह स्वतंत्ररूपेण अपनी रचनाओं में ठूँस नहीं सकता ; अत: उसे पात्रों के संवादों का ही अवलम्ब ग्रहण करना पड़ता है । अपनी रचना के किसी भी पात्र पर अपने व्यक्तित्व को आरोपित करके उसके माध्यम से वह अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है । यद्यपि कुछ विद्वानों ने पात्रों के माध्यम से लेखक का इस प्रकार अपने सिद्धान्तों, विचारों तथा ज्ञान-भण्डारादि को प्रकट करने को अधिकार का दुरुपयोग माना है, तथापि कथा तथा चरित्र के साथ अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए अधिकार का सदुपयोग एक सीमा तक किया जाय, तो हमारी दृष्टि से यह दुरुपयोग नहीं है । वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में अपने उद्देश्य को यथा स्पष्ट करने के लिए सम्वादों का यथावश्यक प्रयोग किया है। उपन्यासों में कुछ स्थलों पर सम्वाद अपेक्षाकृत अधिक लम्बे हो गये हैं ; अत: उनमें दुरुहता आ गई है, परन्तु जहाँ विद्वता-प्रदर्शन के मोह में वाजपेयी जी नहीं पड़े हैं, वहाँ उनके सम्वाद स्वाभाविक बन पड़े हैं तथा अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई है । इस दृष्टि से देखा जाय, तो 'कर्मपथ','रात और प्रभात','गोमती के तट पर', 'विश्वास का बल','वासना से परे','टूटते बन्धन','राजपथ','अधिकार का प्रश्न' आदि उपन्यासों के कथोपकथनों को लिया जा सकता है । यहाँ एक उदाहरण 'गोमती के तट पर' नामक उपन्यास से दे रहे हैं । राकेश काल-कोठरी से छूटकर विज्ञान के साथ थाने

1- निमंत्रण, पृ0 127-128

2- कर्मपथ, पृ0 40

3- वही, पृ0 103

में जा पहुँचता है । वहाँ बदमाश करीमउल्ला पर जब सड़ासड़ बेंत पड़ते हैं, तो वह तिलमिला उठता है । और कहता है कि करीमउल्ला के लिए अब इतनी सज़ा पर्याप्त है, किन्तु विज्ञान से रहा नहीं जाता । वह आवेश के साथ कहता है -

'देखिए, इंस्पेक्टर साहब ! आप इनकी बातों पर बिलकुल ध्यान न दीजिए । जो मैं कहता हूँ उसे सुन लीजिए कृपा करके, मानवता के नाम पर । इन कायर और डरपोक, नपुंसक और भीरु लोगों ने ही हमारे देश का सत्यानाश किया है । चाहे वे जनसेवक हों चाहे जननायक ; किसी भी दल या वर्ग के क्यों न हों ! स्पष्ट है कि जो अपराधी हैं हिंसक हैं, हत्यारे और बदमाश हैं, उनको तो प्रत्येक दशा में कठिन से कठिन दण्ड मिलना ही चाहिए । वास्तव में मुझे बड़ा खेद हो रहा है राकेश, कि तुम ऐसे व्यक्ति के साथ भी शील-सौजन्य का व्यवहार करना चाहते हो, जिसने अभी तुम्हारे प्राण संकट में डाल दिये थे । मुझको तुम्हारी यह भावुकता बड़ी सस्ती और हलकी जान पड़ी । मैं तुमसे कभी इसकी आशा नहीं करता था ।'

उत्तर में बिलकुल शान्त रहकर राकेश ने किंचित् मुस्कराते हुए शान्त मन से कह दिया, ' पहले आप यह कैनिंग बन्द करा दीजिए । उसके बाद मैं इस बात का जवाब दूँगा -'हिंसा के बदले में प्रतिहिंसा' हमारे राष्ट्रपिता बापू की नीति कभी नहीं रही । उन्होंने उसके साथ भी दया, प्रेम, स्नेह और ममता का ही व्यवहार किया, जिसने उनकी हत्या का विचार स्थिर करके आगे कदम रखा था । उनका कहना था कि हिंसा से हम हिंसा को कभी नहीं जीत सकते । एक मात्र अहिंसा से ही हिंसा को जीत सकते हैं । आप इस अपराधी पर अभियोग चलाइए और उसे जैसा चाहें वैसा दण्ड दिलवाइए, लेकिन यह मारना-पीटना तो है पशुता ही । इसके द्वारा हृदय-परिवर्तन हम कभी नहीं कर सकते । क्या विचार है आपका ?'[1]

प्रस्तुत उदाहरण में उपन्यासकार ने अपने अहिंसा के संदेश को तथा मानवतापूर्ण व्यवहार एवं भावना को राकेश के माध्यम से प्रस्तुत किया है । यह कथोपकथन स्वाभाविक

1- गोमती के तट पर, पृ0 308-309

जान पड़ता है ; क्योंकि इसमें कथाकार ने अपने तीनों उद्देश्यों की -कथानक को गति प्रदान करना, चरित्र को उभारना तथा उद्देश्य को स्पष्ट करना - एक साथ अनुस्यूत किया है । राकेश की स्नेहसिक्त फटकार में अहिंसा तथा प्रेम का संदेश है । इस कथोपकथन से यह भी जाना जा सकता है कि राकेश कानून को हाथ में लेना नहीं चाहता । अपराधी के साथ मानवताहीन व्यवहार मनुष्य को शोभा नहीं देता । प्रेम, अहिंसा, दया आदि राकेश के ए चारित्रिक गुण उपर्युक्त कथोपकथन से स्वयं ही स्पष्ट हो जाते हैं ।

(4) वातावरण सृष्टि :

कथोपकथन का एक उद्देश्य वातावरण सृष्टि एवं देशकाल का बोध कराना भी है । किसी भी संस्कृति या समाज को प्रत्यक्ष करने के लिए कथाकार के पास कथोपकथन एक अच्छा माध्यम है । वह दो पात्रों के कथोपकथन की सहायता से तत्कालीन संस्कृति अथवा समाज को साकार कर सकता है । यहाँ जो उदाहरण हम दे रहे हैं, उसमें बम्बई के चल चित्र-जगत के वातावरण की सृष्टि की गई है ।

चल चित्र-उद्योग में कटु अनुभव होने पर चन्द्रबिन्दु फूँक-फूँक कर कदम रखने लगता है । उसके दो गीतों की रिकार्डिंग हो जाती है । उन गीतों के लेखक थे एक साहित्यकार और कवि नलिनीरंजन उपाध्यायजी एक दिन उन्होंने एक आप-बीती सुनाते हुए बतलाया था - उनका एक गीत जब डायरेक्टर मल्लिक ने स्वीकार कर लिया, तब उन उपाध्यायजी ने एक महत्वाकांक्षा के साथ सोचा था -' मेरा यह गीत जनता बहुत पसंद करेगी,' किन्तु दूसरे ही दिन मल्लिक साहब ने उस गीत में, किसी से लिखाकर, एक स्टैन्ज़ा और जोड़ दिया । उपाध्याय जी भले आदमी थे । उन्होंने परिणाम सोचे बिना कहीं कह दिया -'जैसी आपकी इच्छा ।'

कुछ दिनों के बाद जब उसकी रिकार्डिंग हो गई, तब मल्लिक साहब बोले- "वैसे तो इस पिक्चर के सारे गीत आप ही लिखेंगे ; लेकिन इस गीत में आपको मेरा नाम भी जोड़ना पड़ेगा ।"

उसका इतना कहना था कि उपाध्याय जी स्तब्ध हो उठे ; कुछ क्षण रुककर और बोले -"मुझे यह बात स्वीकार नहीं है ; क्योंकि उसमें अपना एक स्टेन्ज़ा जोड़ने से पूर्व अपने इस गुप्त अभिप्राय का स्पष्टीकरण आपने नहीं किया था ।"

पाइप सुलगाते हुए मल्लिक साहब बोले -" इस 'तब' और 'अब' में कोई फर्क नहीं पड़ता ।"

उपाध्याय जी की आत्मा भीतर ही भीतर सुलग रही थी । फिर भी उन्होंने शिष्टता से उत्तर दिया -" पिक्चर के सारे गीतों के लेखन का अनुबन्ध मुझसे, मेरे नाम से हुआ है । गीतकार की हैसियत से इस पिक्चर के निर्माण में आपका कोई हाथ न है, न रहेगा । ऐसी दशा में कायदे से, किसी भी गीत के लेखक के स्थान पर, आपका नाम जा ही नहीं सकता ।"

उनका इतना कहना था कि मल्लिक साहब को ताव आ गया । धुँआ उगलते हुए उनके मुँह से निकल गया -" अच्छी बात है । मैं अब आपको देख लूँगा । मैं आपको दिखा दूँगा कि पिक्चर में गीत तब आपका जायगा, लेकिन वह दर्शकों की जबान पर चढ़ेगा नहीं । उसके चित्रांकन में गीत की सारी प्राणमयता मैं नष्ट करके ही मानूँगा । आपने मुझे समझा क्या है ?"

उपाध्याय जी ने बतलाया - पिक्चर तब सारे देश के सिनेमा घरों में प्रदर्शित हुई थी । वह कई सप्ताह चली भी थी, लेकिन मल्लिक साहब ने उसके चित्रांकन में उसे सचमुच निर्जीव बना दिया था ।

उपाध्याय जी ने जब अपने साथ होनेवाले इस दुर्व्यवहार की सारी कथा विस्तारपूर्वक उसे सुनाई, तो अंत में उन्होंने इतना और जोड़ दिया था -" मनुष्य के असली स्वरुप का ज्ञान, सच पूछिए तो, मुझे इस फिल्म-उद्योग में ही हुआ ।"[1]

1- टूटा टी सैट, पृ0 154-155

प्रस्तुत उदाहरण में उपाध्याय जी तथा मल्लिक साहब के बीच जो बातचीत हुई है, इससे चल-चित्रोद्योग का वातावरण पूर्णरूपेण उभर आया है । वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में वातावरण निर्माण के लिए इस प्रकार के कितने ही सम्वादों की सृष्टि की है । अपने 'विश्वास का बल' नामक उपन्यास में भी वाजपेयी जी ने सिने-जगत के वातावरण पर प्रकाश डाला है । किस प्रकार गीतकारों से चित्र-निर्माता गीत लिखवाकर पैसा देते समय मुकर जाते हैं, कलाकारों को निर्माता आदि के तलवे सहलाने पड़ते हैं, तब जाकर उन्हें सफलता प्राप्त होती है, यह कथोपकथन के माध्यम से उपन्यास-कार ने बतलाया है ।

वाजपेयी जी के कथोपकथन की विशेषताएँ :

पीछे हम यह देख चुके हैं कि अपने उपन्यासों में वाजपेयी जी ने सम्वादों की रचना किन उद्देश्यों को लेकर की है । कथोपकथनों में उपरि कथित उद्देश्यों का होना ही अलम् नहीं है, वरन् संवादों की सफलता के लिए कुछ अन्य गुणों का होना भी अत्यावश्यक है । उद्देश्यपूर्ण कथोपकथन की सफलता भी उसकी सार्थकता, अनुकूलता, सरसता, रोचकता, सम्बद्धता, स्वाभाविकता, वैदग्ध्यपूर्णता तथा संक्षिप्तता के अभाव में संभव नहीं है । इन गुणों के बिना उद्देश्य पूर्ण कथोपकथन में भी शैथिल्य, अस्वाभाविकता तथा नीरसता आ जाती है । वाजपेयी जी के कथोपकथनों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उद्देश्यपूर्ण होने के साथ-साथ वे उपर्युक्त गुणों से भी युक्त हैं । अब हम उनके सम्वादों में प्राप्त उपर्युक्त गुणों का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे ।

सार्थकता एवम् अनुकूलता :

वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्रयुक्त अधिकांश संवादों में सार्थकता तथा अनुकूलता प्राप्त होती है । कथानक में निरर्थक कथोपकथनों को स्थान देने से अन्य समस्त

1- दे. 'विश्वास का बल', पृ0 167

गुणों से युक्त होने पर भी निश्चितरूप से वे कथानक को भाराक्रांत कर देंगे । घटना, अवसर तथा वातावरण के उपयुक्त कथोपकथन को ही सार्थक माना जाता है । इस बात का वाजपेयी जी ने अपने कथोपकथनों में सदैव ध्यान रखा है । उनके उपन्यासों के कथोपकथन सार्थक होने के साथ-साथ विषयानुकूल भी होते हैं । इसके अतिरिक्त, जैसा कि हम पीछे लिख चुके हैं, उनके सम्वादों में कथानक को गति प्रदान करने के साथ-साथ चारित्रिक विश्लेषण का गुण भी समाविष्ट रहता है ।

सम्बद्धता :

सम्बद्धता से हमारा अभिप्राय उस गुण से है जिसके अंतर्गत उपन्यासकार जिन संवादों को नियोजित करे, वह कथानक या पात्रों से किसी न किसी प्रकार सम्बद्धित अवश्य हो । कथोपकथन प्रासंगिक होने पर भी असम्बद्ध नहीं होने चाहिए । उनके स्वतंत्र होने से शृंखलता नहीं रह पाती है । कभी-कभी कुछ उपन्यासकार एक रोचकता उत्पन्न करने के लिए कुछ ऐसे संवादों की योजना कर देते हैं जिनका पूर्वापर से कोई सम्बंध नहीं होता । ये संवाद उपन्यास के सबसे कमजोर अंश माने जाते हैं ।

वाजपेयी जी के अधिकांश कथोपकथन आदि से अंत तक कथानक में ही अनुस्यूत रहे हैं । अपने कथा-साहित्य में उन्होंने ऐसे ही कथोपकथनों का उपयोग किया है जो कथा में जिज्ञासा उत्पन्न करने में अधिक समर्थ हो सके हैं । किसी भी कारण से संवादों की शृंखला टूट जाने से कथन, निश्चितरूप से, विशृंखल हो जाता है । अतः यह नितान्त आवश्यक है कि संवाद कथानक या पात्रों से किसी न किसी प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित हो । स्वतंत्र रूप से विकसित होने वाले संवाद कितने ही कलात्मक तथा सुन्दर क्यों न हो, परन्तु कथानक पर वे बोझरूप ही बने रहेंगे । यद्यपि इन बातों का ध्यान वाजपेयी जी ने अपने अधिकांश कथोपकथनों में रखा है, तथापि संवादों के माध्यम से जहाँ वे अपने सिद्धान्तों, विचारों तथा विद्वता का प्रदर्शन करने का मोह नहीं छोड़ सके हैं, वहाँ उनके कथोपकथनों की कलात्मक सुषमा को तो गहरा धक्का पहुँचा ही है, साथ-साथ ऐसे संवादों ने कथानक को भी विशृंखल कर दिया है । 'पिपासा', 'निमंत्रण', 'विश्वास का बल', 'गोमती के तट पर' आदि उपन्यासों में सामाजिक तथा राजनीतिक

सिद्धान्त संवादों के माध्यम से कथानक पर बलात् लादे गये हैं, फलत: स्थान-स्थान पर कथानक स्पष्टत: विशृंखल ज्ञात होता है । कुछ स्थलों पर भाषण के समान लम्बे कथोपकथन भी वाजपेयी जी के उपन्यासों में उपलब्ध होते हैं । उदाहरण के रूप में 'निमंत्रण' में रेणु - गिरधारी संवाद[1], कमलनयन-यमुना संवाद[2], सत्य-ज्ञान संवाद[3], आदि को हम ले सकते हैं । 'पिपासा' में भारतीय विषम समाज के सम्बन्ध में अपने सिद्धान्तों को लेखक ने यमुना-कमलनयन संवादों के माध्यम से प्रतिपादित किया है ।[4] इसी प्रकार के कथोपकथनों के कितने ही उदाहरण वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त होते हैं । ऐसे दीर्घ तथा प्रचारात्मक संवादों से जहाँ एक ओर कथा में व्यवधान तथा विशृंखलता आई है, वहाँ दूसरी ओर ऐसे संवाद अस्वाभाविक तथा नीरस होने से भी नहीं बच सके हैं । इनके अतिरिक्त शेष सभी उपन्यासों के संवाद उपन्यास की गति में बाधक न होकर साधक ही रहे हैं ।

वाजपेयी जी के कथोपकथनों में नाटकीयता :

वाजपेयी जी के कथोपकथन रोचक तथा प्रवाहपूर्ण होने के साथ - साथ नाटकीय[5] तत्त्व से भी पूर्ण होते हैं । यदि कथोपकथन के द्वारा पात्र की आंशिक चेष्टाओं और मुद्राओं की भी सफल अभिव्यक्ति करने में कथाकार समर्थ रहा है , तो निश्चित रूप

1- दे. निमंत्रण, पृ0 112-से 114

2- दे. पिपासा, पृ0 62 से 65

3- दे गुप्तधन, पृ0 183 से 187

4- दे. पिपासा, पृ0 ~~1830~~ 64 से 65

5- उपन्यास के कथोपकथनों की नाटकीयता नाटक से भिन्न होगी कारण नाटक में कथोपकथन के साथ उसके अभिनयात्मक तत्त्व उसमें दिये रहते हैं, जो अभिनेता की भाव-भंगिमा और उसके व्यापारों में अपनी अभिव्यक्ति पाते रहते हैं; किन्तु उपन्यास एवं कहानी तो विशुद्ध रूप से पठन-पाठन की वस्तु है । अत: पात्रों की मुद्राओं, स्थितियों की व्यंजना और इसके साथ ही साथ कार्य व्यापारों की विवेचना करते रहना आधुनिक कथा-साहित्य की परम विशेषता है ।

से वह कथोपकथन नाटकीय कहा जा सकता है । इस नाटकीयता के लिए कथाकार को अपने उपन्यासों में एकाधिक शैलियों एवं विधाओं का अवलम्ब लेना पड़ता है ।

वाजपेयी जी के संवादों को पढ़ने मात्र से ही अमूर्त घटना साकार होकर हमारे मानस रूपी नेत्रों के समक्ष घटित होती हुई स्पष्ट ज्ञात होने लगती है । यही उनके नाटकीय संवादों की सबसे बड़ी सफलता है । इस दृष्टि से मन्मथ और चेतना के बीच हुई वार्ता उल्लेखनीय है । मन्मथ के द्वारा सत्य को वंदन कहा जाना चेतना को पसन्द नहीं आता ; अत: उस की इस टिप्पणी के संदर्भ में चेतना जो कुछ कहती है, यह सुनकर मन्मथ एक बार तो स्तम्भित हो उठता है ।

"चेतना ने लक्ष्य किया जैसे मन्मथ की मुखश्री बात की बात में तिरोहित हो गई हो ।

मन्मथ ने उसी क्षण जेब में से सिगरेट का पैकेट निकाला । इतनीमीनान के साथ उसने एक सिगरेट निकालकर उसे सुलगाया । दो कश ले लिये । फिर कुछ गंभीर और तीखे स्वर के साथ उसने कह दिया,'दुनियाँ में ऐसे गधों की कमी नहीं है, जो रात-दिन लायब्रेरी की पीठ पर इसी लिए लादे फिरते हैं कि लोग उन्हें विद्वान समझें । बी० ए० तक की शिक्षा भी कोई शिक्षा है ?'

मन्मथ का दायाँ हाथ गाड़ी के पिछले भाग की रीढ़ पर कुछ इस ढंग से रखा हुआ था कि वह चेतना के वाम स्कंध से छू-छू जाता था । इसलिए ----- इससे क्या ?" चेतना अपने सिर को उठाकर जरा सम्हालती हुई बोली -' मनुष्यता का मूल्यांकन डिग्री, वैभव और रूप मात्र से करना क्या हमें शोभा देता है ? क्या मुझे कहना पड़ेगा कि यह उस परम्परा का पोषण है जिसने हमारे देश की होनहार शक्तियों को असहाय और निर्जीव रहने के लिए विवश किया है, जिसने हमारी उत्थान-मूलक प्रवृत्तियों की जड़ें काटी हैं और जहाँ तक मनुष्य के विकास का प्रश्न है, जो बहुत गन्दा और एक दम से सड़ा हुआ दृष्टिकोण है ।"

"तुम्हारा अभिप्राय शायद यह है" मन्मथ कुछ उत्साह के साथ टाई सम्हालता और कोचवान को लक्ष्य करता हुआ बोला -" सुनते हो मियाँ, सिविल लाइन्स चलना होगा ।" फिर तुरन्त चेतना की ओर मुँह फेरकर बोला -" माफ करना । हाँ, आपका मतलब मैं यह समझ रहा हूँ कि मनुष्यता का मूल्यांकन शायद इस कसौटी पर होना चा0 चि0 चाहिए कि कोई आदमी बैठेगा कितना रहता है, गन्दगी में वह खप कितना सकता है और शिक्षित होने पर भी, युग के अनुसार सभ्यता और शिष्टाचार में पीछे कितना है !"

निर्वेद के साथ चेतना हँस पड़ी । बोली-"खूब ! सत्य को आपने पहचाना और समझा खूब है !"[1]

उक्त संवाद की प्रमुख विशेषता है उसकी नाटकीयता।ऐसा ही एक और उदाहरण 'कपट निद्रा' में भी देख ा जा सकता है ।[2]

इसी प्रकार वाजपेयी जी के कतिपय संवादों में नाटकीयता का गुण प्राप्त होता है । वाजपेयी जी ने जहाँ दो से अधिक व्यक्तियों के पारस्परिक संवाद दिये हैं, वहाँ भी उनके संवाद पूर्ण नाटकीय और स्वाभाविक हैं । इस दृष्टि से 'जीवन-कल्याण-पथ विचार-सभा' के सदस्यों के संवाद उल्लेखनीय हैं ।[3] इसमें वार्तालाप के द्वारा ही विभिन्न वक्ताओं की चारित्रिक विशेषताएँ उभारी गई हैं । प्रत्येक पात्र के विचारों को प्रस्तुत करने की प्रणाली , मुख पर आने वाली विभिन्न भाव-भंगिमाओं, नेत्रों की संचालन क्रिया आदि को ही पढ़कर पाठक वक्ता का एक काल्पनिक चित्र बनाने में सफल हो जाता है । चन्द्रा-रमेश संवाद[4], स्वर्णलता-सुधीर संवाद[5],प्रभाकर-यशोदा संवाद[6]

1- गुप्तधन, पृ0 73-74

2- दे.कपटनिद्रा, पृ0 148-149

3- दे.एक प्रश्न, पृ0 134 से 136

4- प्रेमपथ, पृ0 45

5- मनुष्य और देवता, पृ0 118

6- दूखन लागे नैन, पृ0 48

सोहनबाबू-देवकीबाबू संवाद[1] आदि संवाद इसी प्रकार के हैं । उनमें उपन्यासकार ने अपनी ओर से पात्रों की विभिन्न भाव-भंगिमाओं और मुद्राओं का संकेत देकर संवादों को और भी नाटकीय बना दिया है ।

नाटकीय संवादों के अतिरिक्त वाजपेयी जी ने अपने प्रारंभिक उपन्यासों में नाटक की तरह के संवादों का भी प्रयोग किया है । नाटक की भाँति के संवादों से हमारा अभिप्राय है जिनमें पात्रों की भाव-भंगिमा एवं मुखमुद्रा को उसके कथन के पूर्व ही कोष्ठक में छोड़ दिया जाता है । यथा -

"उसने कहा -" मैं अब सुख से मरूँगी । देखो अम्माँ, मैं तो अब जाती हूँ ; पर मैं अपनी जगह पर नहीं, इन्हें (रजनी की ओर इशारा करके) इनकी ही जगह पर छोड़ जाती हूँ ।"[2]

वह आँखें खोलकर अस्पष्ट स्वर में कहने लगी -"तुम यम हो और (एलिस को देखकर) तुम यमराज की नर्तिका ।"[3]

विजय (हाथ उठाकर)- यह क्या कहती हो ! इतनी क्यों घबड़ा उठती हो?[4]

"खैर, अगर कोई बेरंग खत-वत (कहते-कहते उसने आँख दबाकर एक संकेत-सा कर दिया) आ जाय किसी का, तो उसे लौटाना नहीं ।"[5]

जानकी फाटक से बाहर की ओर आकर बोली -" आओ बेटा, चले आओ । (फिर उसके साथ मन्दा को देखकर) बीबी रानी भी आई हैं ।"[6]

1- एक स्वर आँसू का, पृ0 7,8,9

2- अनाथ पत्नी, पृ0 169

3- मुस्कान, पृ0 5

4- वही, पृ0 66

5- राजपथ, पृ0 291

6- दो बहनें, पृ0 43

मुझे ख्याल ही भूल रहा था । कमरे में ---- ताक पर (खोजती हुई) ----- यह मिली ।"[1] इसके अतिरिक्त इसी उपन्यास में ऐसे और भी प्रयोग देखे जा सकते हैं । ऐसे प्रयोग[2] उपन्यासकार की भावाभिव्यक्ति की शक्ति की अक्षमता प्रकट करते हैं । श्री० वाजपेयी जी के प्रौढ़ उपन्यासों में भी ऐसे प्रयोग प्राप्त होते हैं ; अत: उन उपन्यासों के संवादों को हम सर्वथा निर्दोष नहीं कह सकते । उदाहरण के लिए उनका 'चलते-चलते'[3] उपन्यास देखा जा सकता है ।

स्वाभाविकता, सरसता तथा रमणीयता :

कथोपकथनों का समावेश आवश्यकतानुसार और स्वाभाविक रूप में होने पर ही उपन्यास के सौंदर्य को बढ़ाया जा सकता है । कथोपकथन की स्वाभाविकता का गहरा सम्बन्ध पात्रों और घटनाओं तथा कथासूत्र की स्वाभाविकता के साथ सम्बद्ध है । कथोपकथन तभी स्वाभाविक बन सकेंगे जब कि वे यथार्थ जीवन से अलग और हटे हुए प्रतीत न हों । उपन्यास के अध्ययन से यह प्रतीत होना चाहिए कि हम यथार्थ जीवन की घटनाओं के अंतर्गत होनेवाला अपने मित्रों का वार्तालाप सुन रहे हैं । इस अनुभव में तनिक भी गड़बड़ पैदा होते ही सारी स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है । इस सम्बन्ध में इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि घटनास्थल पर केवल आवश्यक पात्रों को ही उपस्थित दिखाया जाय और उनसे केवल वही वाक्य या वाक्यांश कहलाये जायें, जिनके कहने से या तो घटनाओं का रहस्योद्घाटन होता हो या किसी पात्र के चरित्र पर प्रकाश पड़ता हो अथवा कथासूत्र आगे बढ़ता हो । कहीं-कहीं व्यर्थ की बहस या लम्बी-लम्बी स्पीचें दी जाती हैं, जो अनुचित हैं । 'निमंत्रण' में गिरवारी के लम्बे-लम्बे कथन[4] उपन्यास की स्वाभाविकता और सरसता के शत्रु सिद्ध हो गये हैं । इससे उपन्यास की शक्ति और प्रभाव में कुछ कमी आ गई है ।

1- निमंत्रण, पृ० 136

2- दे० वही, पृ० 186, 205, 215

3- दे० चलते-चलते, पृ० 108

4- दे० निमंत्रण, पृ० 112 से 115

कुछ लोग स्वाभाविकता का अर्थ यह लेते हैं कि यथार्थ जीवन में हम जैसी भाषा और शैली० शब्दावली प्रयुक्त करते हैं, साहित्य में उसे ज्यों का त्यों उतारकर रख देना चाहिए ; यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो स्वाभाविकता की रक्षा नहीं हो सकती ; किन्तु ऐसा सोचना निरा भ्रम है । कोई पात्र गालियाँ बोलता है, तो साहित्य में स्वाभाविकता के नाम पर हम उन गालियों को प्रयुक्त नहीं कर सकते । यदि ऐसा किया जायगा, तब तो इसे यथार्थवाद की अपेक्षा अति यथार्थवाद कहना ही अधिक समीचीन होगा ।

वाजपेयी जी उपन्यासों के संवादों की प्रमुख विशेषता है उनकी स्वाभाविकता, सरसता एवं रमणीयता । हमारा अभिप्राय इतना ही है कि उनके संवाद पात्रानुकूल तथा परिस्थिति विशेष में सहज तथा संगत प्रतीत होते हैं । संवाद स्वाभाविक तभी हो सकता है जबकि वह कृति में बलात् प्रयुक्त न किया गया हो । कृत्रिमता के कारण वह कृत्रि के लिए बोझरूप बन जाता है, परिणामस्वरूप उसमें प्रभाव शून्यता के साथ-साथ नीरसता भी आ जाती है । पात्र के उपयुक्त तथा भावानुकूल संवाद ही स्वाभाविक हो सकते हैं । ऐसे संवाद पात्रों के विविध भावों, प्रवृत्तियों तथा मनोवेगों की अभिव्यक्ति तो करते ही हैं, साथ-साथ उनकी वैयक्तिकता की रक्षा भी करते हैं ।

इस दृष्टि से वाजपेयी जी के संवादों को परखा जाय, तो वे स्वाभाविक तथा पात्रानुकूल प्रतीत होते हैं । अध्ययन की सुविधा के लिए वाजपेयी जी के स्वाभाविक कथोपकथनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । यथा -

1- पात्रानुकूल संवाद तथा

2- भावानुकूल संवाद ।

इन दोनों प्रकार के कथोपकथनों के लिए सरसता और ब रमणीयता अतीव आवश्यक है ।

1-पात्रानुकूल संवाद :

संवाद पात्रों तथा घटनाओं के अनुकूल होने चाहिए । संवादों को लिखते समय

उपन्यासकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे पात्रों की सामाजिक, बौद्धिक तथा सांस्कृतिक परम्पराओं और मान्यताओं के अनुकूल हों। अपनी चरित्रगत विशेषताओं के कारण वाजपेयी जी का प्रत्येक पात्र अन्य पात्रों से पृथक् ज्ञात होता है। उसकी भाषा, शब्दों तथा वाक्यावली के चयन तथा संवादों में भी उसके स्वयं के व्यक्तित्व की छाप स्पष्टत: उभर आती है। किस अवसर पर, कौन से पात्र को, कैसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए इस बात का वाजपेयी जी को अच्छा ज्ञान है। फलत: विदेशी या विशिष्ट भाषा-भाषी पात्रों के संवादों को खड़ी बोली में लिखते समय उन्होंने उसमें स्वाभाविकता लाने के लिए उन पात्रों की स्वाभाविक भाषा के कुछ शब्दों, प्रचलित वाक्यों आदि का प्रयोग किया है। इससे स्वाभाविकता तो आ ही गई है, साथ-साथ वातावरण में स्थानीय स्पर्श देने में भी उन्हें सफलता प्राप्त हुई है।

वाजपेयी जी के पात्रों का क्षेत्र सीमित नहीं है। विभिन्न प्रान्तों तथा संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र उनके उपन्यासों में पाये जाते हैं। उनके मराठी भाषी पात्रों के मुँह से मराठी तथा बंगाली पात्रों के मुँह से बंगला-मिश्रित हिन्दी निकली है। इस सम्बंध में अगले अध्याय में विस्तृत चर्चा की जायगी। वाजपेयी जी के मुसलमान पात्र अपने संवादों में अरबी-फारसी से युक्त भाषा का प्रयोग करते हैं। ग्रामीण पात्रों के मुख से ग्रामीण बोली नि:सृत होती है तो बच्चों के मुँह से लेखक ने तोतली भाषा को प्रयुक्त किया है। यहाँ हम उनके उपन्यासों से कुछ उदाहरण देकर यह देखने का प्रयास करेंगे कि पात्रानुकूल संवादों में उन्हें किस सीमा तक साफल्य प्राप्त हुआ है।

वाजपेयी जी ने अपने पात्रानुकूल संवादों में पात्रों के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक स्तर का भी सदैव ध्यान रखा है। इसी के कारण उनके अशिक्षित तथा अल्प शिक्षित पात्रों के कथोपकथनों में तद्भव तथा देशज शब्दों का बाहुल्य रहा है। यहाँ 'कर्मपथ' से लिया गया लोकभाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

[illegible]

घर से निकलने के पश्चात् अजय दो-तीन अपरिचित व्यक्तियों के बीच में आ

जाता है । उनके साथ अलाव के पास बैठकर वह भी हाथ सेंकने लगता है, तब एक व्यक्ति ने उसे पूछा- "भले घरके लड़के मालूम पड़ते हो ; रात को पैदल कैसे चल दिये ?"

दूसरा आदमी बोला -" हमारा गमछा ले लो, घन्नीगुरू, इसी पर शकरकन्दी छील लो ।"

तीसरे न कह दिया -" मगर गुरू, बिना नमक-मिर्चा के कैसे काम चलेगा ?"

अजय को ध्यान हो आया - घनश्याम के साथ बैठकर मूँगफली का एक ही पुड़िया तो उसने खाई थी । उसने जेब से दूसरी पुड़िया निकालकर उसी गमछे पर रख ली, जिसमें शकरकन्दी पड़ी थी ।

फिर उसने धीरे से कह दिया -" समय बड़ा बलवान् होता है दादा । कर्म का भोग वह करवा हीलेता है । आदमी चाहे जितने भले घर का हो ।"

कथन के साथ जब एक दीर्घ निश्वास फूट पड़ा, तो घन्नीगुरू बोले- "हाँ, बाबू, करम का भोग शरीर से नहीं छूट पाता । हमारी घर वाली जब मरी थी, तब उसके बच्चा हुआ था । फिर जाने क्या हो गया कि उसे सन्निपात आ गया । तीसरे ही दिन वह चल बसी । बड़ा खूबसूरत बच्चा हुआ था बाबू ।"

घन्नीगुरू इसके बाद कुछ कह न सके । उनका कंठ भर आया । आँखों में भरे आँसू पोंछते हुए बोले- "जब से मरी, तबसे जिन्दगी का सारा सुख चला गया ।"

दूसरे आदमी ने कहा- "सुख-दुख तो सबके साथ लगा रहता है । अभी महीना भर भी नहीं हुआ, मेरी अम्मा लकवा से इतनी बीमार पड़ गईं कि दवा-दारू में तीन दिन में पैंसठावन रुपये लग गये । मगर उन्होंने आँख नहीं खोली, तो नहीं खोली ।"

घन्नीगुरू बोले -"लेव खाओ बाबू, ये सभी बातें तो लगी ही रहती हैं । लो कालका, जरा मूँगफली भी चखकर देखो, बाबू ले आये हैं । इनका परसाद तो लेना ही पड़ेगा ।

तीसरा आदमी बोला-" हमारे लड़कवा कल सायद आ जायँ ।"

कालका बोले -" लिखा था, नौकरी लग गई है । बस पर टिकट माँगने का काम मिला है । - मगर ऊपर की आमदनी में दो-चार रुपये फाड देते हैं । जब भाग्य का दरवाज़ा खुलता है, तब लक्ष्मी आते देर नहीं लगती । अच्छा भाई, जब फूटकर एक पैसा भी अपने पास न निकले, तो कोई क्या करे ?"

+ + +

सब तन्मय होकर शक्करकन्द खाने में जुट गये । उनके लिए छप्पनों व्यंजन सिमिट-कर उन भुनी हुई शक्करकन्दी में समा गये थे ।

एकाएक कालका बोला -"कहो गुरू, ठीक है न ?"-----

धन्नीगुरू ने गरम-गरम शक्करकन्द के टुकड़ों को ठण्डा करने के लिए मुँह से फूँका और कह दिया -" ठीक तो है । मगर यह तो बताओ कि क्या ठीक है ?"

दीनानाथ फट बोल उठा -" जब मालूम नहीं था तो पहले क्यों कह दिया कि ठीक है ।"

धन्नीगुरु ने कहा- "अरे तो कौन -सा परलय हो गया । पहले न पूछा, तो न सही, बाद में ही पूछ लिया ।"

कालका ने जरा तुनककर कहा-" देखो गुरू, यह बात गलत है । जब कभी तुमसे कोई सलाह करो, तुम सही राय कभी नहीं देते ।"

धन्नीगुरु बोले -" झूठ न बोलो । थोड़ा भगवान को डरा करो । मैं कब सही सलाह नहीं देता ? तुमने पूछा ठीक है और हमने भी कह दिया ठीक है । कोई जुरुम किया हो, तो थाने में रपट लिखा दो ।"[1]

प्रस्तुत कथोपकथन पात्रानुकूल तथा स्वाभाविक है । प्रत्येक पात्र के कथन को स्पष्ट करने के लिए उसकी शब्दोच्चारण पद्धति तथा वाक्यों के उतार-चढ़ाव में स्थान-स्थान पर पड़नेवाले स्वराघातों को लेखक ने कुशलतापूर्वक उभारा है । अजय के अतिरिक्त

1- कर्मपथ, पृ0 50-51-55

अन्य सभी पात्र अशिक्षित हैं, अत: उनके द्वारा उच्चारित शब्द भी अपना वास्तविक रूप त्याग चुके हैं । करम(कर्म), लेव(लौ), परसाद(प्रसाद),लड़कऊ(लड़का), सायद(शायद), परलय(प्रलय), (जुरुम)(जुर्म), (रपट)(रिपोर्ट) आदि शब्द ऐसे ही हैं । प्रस्तुत कथोपकथन का शब्दचयन पात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल ही है । लोकभाषा के उदाहरणों के लिए 'कर्मपथ' के अतिरिक्त 'भूदान'[1] भी देखा जा सकता है ।

अपने उपन्यासों में आये मुसलमान पात्रों के कथोपकथनों को स्वाभाविक बनाने के लिए लेखक ने उनके द्वारा ठेठ-अरबी-फारसी शब्दों को व्यवहृत किया है । हिन्दू पात्र भी मुसलमान पात्रों के साथ बातचीत करते हैं, तब वे भी संस्कृत तत्सम शब्दों के स्थान पर बहुधा अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग करते हैं । प्रथम वक्तव्य की पुष्टि के लिए बफ़ाती तथा गनी के बीच का कथोपकथन उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है । दोनों पात्र मुस्लिम होने के कारण उनके संवादों को स्वाभाविक बनाने के लिए कृतिकार ने अरबी-फारसी के शब्दों का यथोचित प्रयोग किया है । यथा -

'राजपथ' में अपने साथियों के साथ बफ़ाती डाकाजनी के लिए जाता है, किन्तु उसे यह भी मालूम नहीं है कि जिसके प्रति वह अदम्य श्रद्धा रखता है, उसी व्यक्ति की हत्या करने वह जाता है ।"इस प्रकार यदि बफ़ाती को धोखा हो गया, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । पर अब बफ़ाती की स्थिति दयनीय कितनी हो गई थी । एक तो मुकदमा लड़ने के लिए इतने अधिक रुपये की आवश्यकता थी, जिसका प्रबन्ध जमानत पर छूटे बिना हो सकना सर्वथा असंभव था । और जब प्रत्यक्ष रूप से उसने दिलीप की हत्या में भाग लिया, तब उसकी ज़मानत कौन करता ।

उसके दोस्तों में दूसरे जो लोग फँसे थे, उनसे पचीस-पचीस हज़ार रुपये की नगद ज़मानतें माँगी गई थीं । अत: जेल में भेंट करने पर जब गनी ने ज़मानत की चर्चा की, तो बफ़ाती हँसने लगा । बोला-"मजाक करने आये हो ।"

गनी ने जबाब दिया-"मजाक नहीं बफ़ाती, मैं कोशिश में लगा हूँ। खुदा ने चाहा, तो मैं उन्हें छुड़ाकर मानूँगा ।"

बफ़ाती खुदा का नाम जब किसी के मुँह से सुनता , तो उसका दिल पानी

1- भूदान, पृ0 123 से 293

हो जाना । जी भरकर रो लेने की तबियत हो उठती । वह बोला -"खुदा क्या चाहता है, इसको तुम्हारे या हमारे या हमारे- जैसे लोग समझेंगे । खुदा यह कभी नहीं चाह सकता कि मैं जमानत पर छोड़ा जाऊँ । और सच्ची बात तो यह है कि मैं खुद भी नहीं चाहता । मैं दुनियाँ को अपनी यह मनहूस शक्ल नहीं दिखलाना चाहता गनी । तुम्हें पता नहीं, मैंने खुदकशी करने की भी कोशिश की थी ।"

"मुझे पता है बफ़ाती । मुझे सब पता है ।"

"दिलीप भैया का भी कुछ पता है तुमको ? मैंने तो सुना है, वे खुद भी लापता है ।"

"वे एक बला से छूटे, तो दूसरी में फँस गये । रकम थी चन्दे की और थी अटैची -केस में । लारी पर जाते हुए कहीं वह अटैची-केस ही बदल गया । उसका पता अब चल पाया है । सुनते हैं, आज के अखबार में दीदी ने छपवा दिया है कि रकम मय अटैची-केस के उनके पास जमा हो गई है ।"

"चलो, यह बड़ा अच्छा हुआ।" कहते-कहते बफ़ाती एक ठंडी साँस लेकर बोला - " बहुत सी बातें हैं गनी- और टाइम भी खतम होने पर है । खैर अगर कोई बेरंग खत-वत (कहते-कहते उसने आँख दबाकर एक संकेत-सा कर दिया) आ जाय किसी का, तो उसे लौटाना नहीं । अच्छा, मिलते रहना ।"

"खुदा हाफिज़ ।"[1]

इन कथोपकथनों में अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों को प्रयुक्त करके उपन्यास-कार ने उन्हें अत्यंत स्वाभाविक बना दिया है । ऐसे संवाद वाजपेयी जी के उपन्यासों में अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होते । मुसलमान और हिन्दू पात्रों के मध्य जो वार्तालाप हुआ है उसमें मुसलमान पात्र तो अरबी-फारसी शब्दों से मिश्रित भाषा का प्रयोग करते ही हैं, साथ ही हिन्दू पात्र भी अपनी स्वाभाविक भाषा को त्याग कर अरबी-

---

1- राजपथ, पृ0 291-292

फारसी शब्दों से युक्त भाषा का प्रयोग करते हैं । इस कथन की पुष्टि के लिए यशवंत-शमशाद संवाद[1], जांनिसार अख्तर साहब-दुष्यंत संवाद[2] आदि उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

भावानुकूल संवाद :

वाजपेयी जी ने अपने कथोपकथनों को अधिकाधिक सहज तथा सरस बनाने के लिए उन्हें पात्रानुकूल रखने के साथ-साथ भावनानुकूल भी बनाया है । यदि एक ही पात्र विभिन्न अवस्थाओं में पड़कर भी एक ही प्रकार का व्यवहार करता रहे तथा एक ही प्रकार का भाव व्यक्त करता रहे, तो संवाद पात्रानुकूल होने पर भी निश्चित रूप से अस्वाभाविक हो जायेंगे । पात्रों के संवादों में परिवर्तन, वाह्य तथा आंतरिक परिस्थिति एवं मनोभावों के अनुसार, होता रहता है । कथाकार वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में संवाद लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा है । पात्र के भावानुरूप उसकी वाणी में उतार-चढ़ाव, कथनों में रुक्षता अथवा कोमलता, सरसता या तीव्रता लाने का प्रयास लेखक द्वारा किया गया है । विभिन्न भावों के कथोपकथनों में भी वैभिन्न पाया जाता है । यहाँ हम विभिन्न भावानुरूप संवादों के कुछ उद्धरण देकर अपनी बात को अधिक स्पष्ट कर सकेंगे -

1- प्रेम भावावेग,

2- क्रोधादिक परिस्थितियों में उद्भूत भावावेग,

3- शोक की परिस्थिति में उद्भूत भावावेग ।

प्रेम भावावेग :

वाजपेयी जी के अधिकांश उपन्यास शृंगारिक संदर्भ लिए हुए हैं । उन्होंने

1- टूटते बंधन, पृ0 134, 137, 155 से 157

2- सपना बिक गया, पृ0 222-223

जहाँ प्रेमी-प्रेमिका के प्रेमपूर्ण उद्‌गारों को कथोपकथनों के द्वारा प्रकट किया है, वहाँ संवाद सरस, कोमल, गतिशील तथा मार्मिक पाये जाते हैं । 'प्रेमपथ', 'अनाथपत्नी', 'मुसकान' (त्यागमयी), 'पतिता की साधना', 'पिपासा', 'दो बहनें', 'निमंत्रण' आदि उनके प्रारंभिक उपन्यासों में संवाद सीधे, सरल, निष्कपट ; किन्तु कहीं-कहीं वासनाजन्य भावनाओं से पूर्ण हैं । इसके विरुद्ध उनके प्रौढ़ उपन्यासों - जैसे - चलते चलते', 'गुप्तधन', 'पतवार', 'भूदान', 'विश्वास का बल', 'सूनी राह', 'गोमती के तट पर', 'सपना बिक गया', 'टूटा टी सैट' आदि में प्रणय-प्रसंगों के संवाद चुटीले, गढ़े हुए, प्रवाहपूर्ण तथा मार्मिक हैं । इनमें भी 'चलते-चलते', 'विश्वास का बल', आदि में वासनाजन्य भावना से युक्त कथोपकथन प्राप्त होते हैं ।

'टूटते बन्धन' में कई प्रेम प्रसंगों की सृष्टि की गई है । मुरली-यशवन्त के संवादों में प्रेम का प्रस्फुटन तथा प्रेमिका की दमित इच्छाओं का चित्रण किया गया है । उनके प्रेम के संवादों में वासना का पुट है ; किन्तु मालिन व भौजी और यशवन्त के प्रणय संवादों में वासना का पुट कहीं भी नहीं आने पाया है ।

'भूदान' के प्रणय-प्रसंगों में सबसे अधिक मर्मस्पर्शी प्रणय-प्रसंग मीरा तथा शंकर का है । दोनों का प्रेम निष्कपट तथा वासनाहीन है । शंकर तथा मीरा परस्पर एक दूसरे को चाहते हैं । दोनों का प्रेम नि:स्वार्थ है । विवशता के कारण शंकर मायाबाबू के घर से चला जाता है । तत्पश्चात् दिन-प्रतिदिन मीरा का स्वास्थ्य गिरता जाता है । मायाबाबू उसे नैनीताल ले जाते हैं । यह संयोग ही है कि उन दिनों शंकर जोशी जी को नैनीताल में मिलने जाता है । तब अचानक बाज़ार में मायाबाबू मिल जाते हैं । वे उसे अपने साथ ले जाते हैं वहाँ मीरा से उसकी भेंट होती है । मरणासन्न मीरा तथा शंकर का वार्तालाप देखिए -

'मुँह ऊपर उठाकर मीरा बोली -'आओ, आओ लाला ।'

हाथ जोड़कर नमस्ते करता हुआ शंकर अन्दर आकर जब कुर्सी पर बैठ गया, तब मीरा ने कह दिया -"मैंने तो समझा था कि अब तुमसे क्या भेंट होगी, पर सौभाग्य से तुम आज उनको मिल ही गये ।"-----"

-----" हाँ, भाभी, सचमुच मेरे भाग्य से ही भैया आज अचानक मिल गये ।"--- मैंने रेणु से सुना तो था कि तुम कुछ अस्वस्थ हो । पर उसका कारण मैंने उस समय कुछ दूसरा समझ लिया था ।" शंकर यह बात कह तो गया, पर फिर यह सोचकर रह गया -"अरे मूर्ख ! अब भी तुझे उसी कारण की पुष्टि करनी चाहिए थी !"

हँसने का उपक्रम करती हुई मीरा बोली -"पहले अम्मा का भी ऐसा ही विचार था ।"

कथन के बाद फिर मीरा थोड़ी गंभीर हो उठी और तब उसके मुँह से निकल गया -"कुछ हो, अब क्या हो सकता है ! दो महीने-हद चार महीने !" और उसके बाद वह तकियों पर सिर रखकर लेट गई । बोली -" क्षमा कर देना मुझको लाला । अब ज्यादा देर तक बैठ नहीं पाती ।"

शंकर ने धैर्य तथा आश्वासन के स्वरों में उत्तर दिया -"यह सही है कि मनुष्य की सारी आकांक्षाएँ पूर्ण नहीं होतीं, पर यह भी उतना ही सही है कि कुछ आकांक्षाएँ मनुष्य प्राय: ऐसी भी मन ही मन सँजो लेता है, जिनकी पूर्ति में उसके अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ का हाथ लग ही नहीं पाता । न समाज की आँख उसे सहन और स्वीकार कर सकती है । न कालान्तर में मनुष्य स्वयं उसके लिए लालायित जैसा अपना मुँह बनाकर गौरव का अनुभव कर पाता है ! सबसे बड़ी विवश-विपत्ति यह है कि मनुष्य दूसरों को नहीं, स्वयं अपने आपको समझने में भी भूल कर बैठता है !"

"समझ रही हूँ, तुम क्या कह रहे हो ! आज ही नहीं, उस दिन भी समझ गई थी, जब तुम खाने-पीने की साधारण बातों में भी प्राय: मेरा पक्ष ले-लेकर उनसे लड़ाई मोल ले लिया करते थे !" कहकर मीरा क्षण भर को रुककर एक निश्वास-सा

लेकर बोल उठी -"लेकिन अब तो नाव किनारे की ओर चल पड़ी है लाला !"

फिर उसने पलक मूँद लिये और शंकर भी स्तब्ध हो उठा ।

एक क्षण ---- दो क्षण । उसके अनन्तर प्रतिमा जैसी स्थिर तद्वत् लेटी-लेटी मीरा के मृगलोचनों से मोती फूट पड़े । तभी शंकर बोल उठा -"बुरी बात है भाभी । विधाता की इस पावन रचना के नाम पर मनुष्य का यह निर्बाध क्रंदन उसके ज्ञान और विवेक का द्योतक है नहीं, दुराग्रह और बालहठ की वह प्रगल्भ लीला है, जिसे हम केवल साधना और त्याग से ही जीत सकते हैं ।"

"आ : ! यह मैं क्या सुन रही हूँ ! कहते चलो लाला, कहते चलो । लो, मैं फिर आँख मूँद लेती हूँ । अब रुकते क्यों हो ? रुकने का कोई काम नहीं है ---- पर हाँ, यह भी ठीक है । तुमको तो रुकना ही है । जाना तो केवल मुझे है । जाना तो मुझको ही है अकेले । कोई किसी के साथ नहीं आता न कोई किसी के साथ जाता है ।" कहती-कहती मीरा एकाएक चुप हो गई । थोड़ी देर को उसकी आँखों के पलक मूँद रहे । फिर एकाएक जो खुले, तो दायाँ हाथ उठाती हुई वह बोल उठी- "यह जीवन तो अब चला लाला ।"

शंकर सुनकर अत्यंत समाहित हो उठा ।

तब मीरा बोल उठी- "इस जीवन की अभिलाषा अगले जीवन में पूरी होगी कि नहीं, मैं नहीं जानती । पर शायद तुम जानते होगे । क्यों ?"

यह तुम क्या कहने लगीं भाभी ! भगवान् चाहेगा तो इसी जीवन में तुम्हारी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी ।" शंकर ने कुछ सान्त्वना के भाव से जो कह दिया, तो मीरा एकाएक सिहर उठी । एक -दो बार उसने पलक मूँद-मूँदकर इधर-उधर कुछ देखा, फिर बोली-" यह मिथ्या आश्वासन है - खैर, जाने दो । मैं कुछ बहक गई थी । तुम मुझे क्षमा कर देना, लाला ।" फिर क्षणभर को रुक गई । फिर उसने अपने पलक मूँद लिये । फिर सिर पर उसका दायाँ हाथ जा पड़ा ।

शंकर ने एक नि:श्वास को उभरने से रोककर कह दिया -" भाभी, मैं तो इस योग्य नहीं कि तुमको आश्वासन जैसी कोई हार्दिक निष्ठा दे सकूँ। लेकिन इतना मैं जानता हूँ कि वे जो अंतर्यामी है, तुमको अवश्य ऐसा धैर्य देंगे ; क्योंकि कुछ हो, तुम्हारी यह आत्माहुति इस कृत्रिम जगत् के लिए भले ही अपराध हो ; पर जिसने हमें उत्पन्न करके यहाँ भेजा है उस परम पिता की पावन दृष्टि में तुम्हारा यह उत्सर्ग आश्वासन का ही सही, उस गौरव का भी अधिकारी होगा जो मानवात्मा का प्रकृत और चिरंतन सत्य ही नहीं, अक्षय वर्म भी है।"

मीरा ने फिर पलक खोल दिये। ढुलकते अश्रु मोती फिर रूमाल से पोंछ लिये। फिर किंचित् सावधान होकर वह बोली -" अच्छा लो, मेरे यह कंगन ले लो। जब कभी मेरी देवरानी घर के आंगन में अपना पहला पग रखे, तो उस समय इसे भौजी के द्वारा भेंट करवा देना। फिर जब अवसर मिले तब तुम एकान्त में उसे इतना भर समझा देना कि मेरी एक भाभी थी, वह इसे तुमको भेंट दे गई है और कह गई है - "रात को सोने से पहले मेरे लाला को कुनकुना गाढ़ा मीठा दूध पिलाना कभी न भूलना। और सन्ध्या समय के खाने में आध पाव नुक्ती ! आ : आ : , ले लो लाला- अरे मेरा यह कंगन ------ अब तो मुझसे ले लो !"

शंकर को सदा इस बात का गर्व बना रहता था कि मुझसे कभी भूल हो नहीं सकती। आँसू को वह मन की दुर्बलता मात्र मानता था, पर इस समय वह भी अपने आँसू रोक न सका।

मीरा तब कुछ जोर लगाकर उठी और कंगन उसने शंकर की जेबल में डाल दिये।[1]

प्रस्तुत संवाद में द्विप्रता है। दोनों का प्रत्येक शब्द उनके हार्दिक भावों को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता रखता है। मीरा की निष्कपटता, उसकी प्रणयिनी सुलभ

1- भूदान, पृ0 333 से 337

व्याकुलता और साथ ही त्याग तथा कर्तव्य की महती भावना उपर्युक्त वार्तालाप में स्पष्टत: उभरी हुई है ।

'वासना से परे' उपन्यास में शत्रु के मेदिये राजीवलोचन पंत के हृदय में भी वाजपेयी जी ने प्रेम का भाव जगाया है । वह कपट का पुतला होकर भी अपनी प्रेयसी वायलेट के समक्ष दीन-हीन, विवश है । अपनी प्रेयसी के साथ वार्तालाप करते समय वह भावुक हो जाता है । वह अपनी प्रिया को अपनी बाहुओं में समेट लेना चाहता है ; किन्तु दूसरी ओर वायलेट के प्रेम में छिछलापन तथा कृत्रिमता है । केवल पैसे के लिए वह अपना सब कुछ लूटा देने के लिए तैयार है, तथापि कपटी प्रेमी के साथ वह कपटतापूर्ण व्यवहार करती है । उसके साथ धूर्तता की चाल चलती है और शंका होने पर पंत को पकड़वा देती है ।

क्रोधादिक परिस्थितियों में उद्भूत भावावेग :

क्रोधावेश में किये गये कथोपकथन वाजपेयी जी के उपन्यासों में अपेक्षाकृत कम हैं । जहाँ उन्होंने ऐसे संवादों की सृष्टि की है, वहाँ उनके संवादों में क्षिप्रता के साथ-साथ ओज एवं उत्तेजना भी आ गई है । फलत: संवाद तद्नुरूप भावों को व्यक्त करने में पूर्ण सफल हुए हैं । क्रोधावेश के संवाद वाजपेयी जी के उपन्यासों में दो प्रकार के देखे जा सकते हैं । प्रथम प्रकार में एक पात्र क्रोधावेश में और दूसरा शान्त स्वर में वार्तालाप करता है । द्वितीय प्रकार के संवाद में दोनों ही पात्र क्रोधावेश में वार्तालाप करते हैं । वाजपेयी जी के संवादों में प्रथम प्रकार के संवादों का आधिक्य प्राप्त होता है । मुंशी रामनारायण-अजय संवाद[1], राकेश-कला संवाद[2], ज्ञानप्रकाश-लता संवाद[3], आदि को प्रथम प्रकार के अंतर्गत रखा जा सकता है । इन संवादों की प्रमुख विशेषता यही

1- कर्मपथ, पृ0 28,29,30

2- गोमती के तट पर, पृ0 242

3- दो बहनें, पृ0 183 -184

है कि एक पात्र क्रोधावेग में उन्मत्त-सा हो जाता है, तो दूसरा पात्र उत्तेजित हुए बिना जो उत्तर देता है, उसमें धैर्य ही प्रकट होता है । अपने पिता जी को क्रोधावेग में बोलते देखकर अजय उनके प्रश्नों के बहुत ही संयम से उत्तर देता है, तथापि पिता जी द्वारा वह घर से बाहर निकाल दिया जाता है । कला के साथ राकेश गुस्सा होकर बात करता है, परन्तु कला सोच-समझकर धैर्यपूर्वक जो उत्तर देती है, उससे राकेश का आगे बात करने का साहस नहीं होता । इसी प्रकार क्रोधित होकर प्रारंभ में तो ज्ञानप्रकाश लता के साथ बात करता है, परन्तु अपने प्रति उसके आत्म-समर्पण को देखकर वह द्रवित हो जाता है तथा अवसन्न रह जाता है । इससे विपरीत देवकी-गोकुल सुकुल संवाद[1], काशीबाबू-कुन्दनबाबू संवाद[2], मन्दा-नयी अम्मा संवाद[3] आदि में प्रथम पक्ष के असह्य क्रोध को देखकर दूसरा पक्ष भी उत्तेजित हो जाता है । वाजपेयी जी के क्रोधावेग के संवादों में वे ही संवाद अधिक सजीव प्रतीत होते हैं, जिनमें उभय पक्ष के कथनों में उग्रता एवं तीव्रता है ।

अपने उपन्यासों के कथोपकथनों में जहाँ वाजपेयी जी ने क्रोधावेश के संवादों में ओज का पुट दिया है, वे कथोपकथन और भी सजीव हो उठे हैं । उदाहरण के लिए अयोध्याप्रसाद-सुमन-अजय संवाद को लेना अनुपयुक्त न होगा ।

"भीतर आते ही बिना किसी भूमिका के अयोध्याप्रसाद बोले - "मैं तुमको वापस लिवा ले चलने के लिए आया हूँ । इसलिए अब तुम तुरन्त चल दो ।"

सृष्टि इतनी अद्भुत है कि पदे-पदे आश्चर्य से भेंट होती रहती है ; किन्तु वास्तव में प्रकृति के लिए आश्चर्य का कोई अस्तित्व नहीं है । सुमन ऐसा कुछ न जानती थी।

उसको बड़ा आश्चर्य हुआ । वह बोली -"परन्तु मैंने तो आपको यहाँ रहने के लिए बुलाया है ।"

अजय चुपचाप इस वार्ता को सुन रहा था । उसने पिता -पुत्री के मध्य बोलना उचित नहीं समझा ।

1- मूदान, पृ0 41-41

2- अधिकार का प्रश्न, पृ0 28

3- दो बहनें, पृ0 95

अयोध्याप्रसाद बोले -"तुम्हारा विचार था कि मैं आत्म-सम्मान को बेचकर उस व्यक्ति के टुकड़ों पर पड़ा रहूँगा, जो मेरे मुख पर कलंक की कालिमा पोतकर तुम्हें भगा ले आया है।"

अजय को प्रतीत हुआ कि उसकी समस्त चेतना विलुप्त हो गई है। वह जड़ हो गया। -"हाँ, कभी हमें ऐसा भ्रम हो जाता है, कि सत्य का उज्जवल पक्ष भी काला और अमृत कालकूट जान पड़ता है।"

सुमन ने प्रतिवाद करते हुए कहा-" पर सत्य इसके विपरीत है पिता जी। भगा ले जाना सामान्य अर्थ में कलुषित ही माना जाता है। इसलिए मैं कहना चाहूँगी कि ऐसा कुछ समझ लेना अन्याय होगा। क्योंकि वास्तव में ये मुझे नहीं ले आये, वस्तुत: मैं उनको ले आई हूँ।"

तभी अजय एक पग आगे बढ़कर उनके मध्य में खड़ा हो गया और बोला, "कोई किसी को भगाकर नहीं लाया। परिस्थिति स्वयं ही इसके लिए जिम्मेदार है। पहले आपबीती कथा सुन लीजिए, उसके बाद जो कुछ कहना हो, सहर्ष कहिए।"

अयोध्याप्रसाद बोले -"मुझे बहकाने की चेष्टा न करो। मैं सुमन नहीं हूँ, जो तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाऊँगा।"

अजय बोला-"तर्क के स्थान पर अपशब्दों से काम लेने से कोई लाभ न होगा। उससे आपका ही मान घटेगा। ठाकुर साहब ने मुझे सुमन की जिम्मेदारी सौंपी थी और उसका निर्वाह मैंने अपनी शक्ति भर किया है।"

अयोध्याप्रसाद बोले - बस-बस, रहने दो। मैं सुमन को वापस ले जाऊँगा। मैं जानता हूँ, इसीलिए तुमने यह व्यभिचार का अड्डा खोल रखा है।"

कुछ आविष्ट -सी होकर सुमन बोली- "तब मैं नहीं जाऊँगी।"

अयोध्याप्रसाद उच्च स्वर में चीत्कार करते हुए बोले -"जायगी कैसे नहीं ? मैं ----- मेरे साथ तुझे चलना ही पड़ेगा।"

गंभीर वाणी में अजय बोला -"सुमन अगर जाना नहीं चाहती, तो वह नहीं जायगी ।"[1]

प्रस्तुत उदाहरण में अयोध्याप्रसाद के संवादों को और भी तीव्र तथा प्रवाह-युक्त बनाने के लिए वाजपेयी जी ने ओज का पुट दिया है । इस संवाद की सर्व प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सबल पक्ष वाणी के संयम से काम लेता है, परन्तु निर्बल पक्ष असंयमित तथा असंतुलित होकर सब कुछ कह डालने को प्रस्तुत है । इसी प्रकार मन्दा-रायपत्नी के संवाद में ओज का ही प्राधान्य है । इसमें उभयपक्ष उत्तेजित है -

"झलूलीभर आम उसी के लिए दद्दा ने भेजे हैं यह जानकर फूली-फूली मन्दा झट से भीतर, अम्मा के पास जाकर बोली -" अम्मा दद्दा ने मेरे लिए आम भेजे हैं । मुझे बुलाया भी है । मैं उनसे मिलने जाऊँगी ।"

रायपत्नी बच्चे को गोद में लिये खिला रही थीं । कटोरी को देकर बोली - "हाँ बड़ा भला है न तेरा दद्दा । बड़ी दद्दा वाली बनी है । कितने दिन से आने के लिए कह रही हूँ, लेकिन उसके मिजाज ही नहीं ढूँढे मिलते ।"

"हूँ" कहती हुई कुछ उदास होकर मन्दा बोली -"तुम झूठ मूठ ऐसी बात सोचती हो । दद्दा मुझे बहुत चाहते हैं । उन्होंने मेरे लिए आम भेजे हैं ।"

मैं इन सब बातों को खूब समझती हूँ ।"रायपत्नी ने कहा, "बिना किसी खास मतलब के वह ऐसा अपनत्व कभी दिखला नहीं सकता । लेकिन तुझे इन बातों से क्या ?"

"नहीं, मैं तो जाऊँगी ।"कहती मचलती हुई मन्दा, फर्श पर पैर पटक-पटक कर अपना विरोध प्रकट करने लगी ।

तब भौंहें तरेरकर, अपरूप भंगिमा से, जोर से डाँटती हुई, रायपत्नी बोलीं - "जिद करेगी, तो मार खायेगी, कहे देती हूँ ।----शाम को शायद वह यहीं आयगा । तभी खूब मिल-भेंट लेना । दुलारे उसे लेने आ जायगा ।"

1- कर्मपथ, पृ0 220-222

"शाम को मैं उन्हें लिवाने चली जाऊँगी । जरा देर की तो बात है ।" मन्दा ने अंतिम बार जोर लगाते हुए कहा ।

रायपत्नी बोलीं -" मैं अभी दिवाकर को बुलाती हूँ । उसने कान पकड़कर जो खींचना शुरू किया, तो तेरी सारी जिद्द हवा हो जायगी ।"

किन्तु दिवाकर नाम लेते ही मन्दा आवेश में आ गई । बोली - वे मेरे बीच में पड़ने वाले होते कौन हैं ? आवें तो ; देखती हूँ, कैसे मेरा कान छू पाते हैं ! हमारे ही मत्थे पर रहेंगे और हमारे ही कान खींचेंगे ! मैं अभी बाबू जी से जाकर कहती हूँ कि अम्मा दिवाकर से मुझे पिटाने का जाल रच रही हैं ।"

राज्ञपत्नी ने तुरन्त झपटकर मन्दाकिनी की कनपटी में एक चांटा मारते हुए कहा -" जा बाबू जी के पास, मेरा यह चांटा भी लेती जा । कलमुँही की जबान में लगाम ही नहीं रह गई है । दिवाकर तेरा शत्रु है ? दिवाकर, दिवाकर, जब देखो तब दिवाकर ही तेरी आँख का तिनका बना रहता है । तुझसे उमर में कितना बड़ा है । उसे मम्मा नहीं कहते बनता । एक दफे समझाया, दो दफे समझाया, अपनी ही जिद्द-अपनी ही बात । आता है शाम को ज्ञानू । उसी के साथ जाके रह । देखती हूँ, क्या खाके रखता है । चार आम क्या भेज दिये, दुनिया की सल्तनत दे डाली । मेरे यहाँ आमों की कोई कमी रहती है, जो उसके भेजे आम तेरे लिए अमृत फल हो गये । आज उन्हीं आमों पर तुझे रहना होगा । खाना खाने की कतई जरूरत नहीं है ! आये दिवाकर मैं उससे साफ कह दूँगी कि भैया अब इस घर में तेरा रहना ठीक नहीं । अपने होस्टल में ही जाके रह । इन लोगों से तेरा यहाँ रहना देखा नहीं जाता । चार टके भी जो तू कभी मुफ्त से ले लेगा, तो ये लोग यही समझेंगे कि मेरा खजाना लुटा दिया ।"[1]

प्रस्तुत संवाद में क्रोध के साथ ओज का पुट दिया गया है । मंदा का अपने सौतेले भाई के प्रति स्नेह तथा मामा की उपेक्षा रायपत्नी के हृदय में अग्नि सुलगा देते हैं । फलत: वह अपने भाई दिवाकर को होस्टल में तथा मंदा को ज्ञानू के यहाँ रहने के लिए कहती है ।

1- दो बहनें, पृ0 31-32-33

पति-पत्नी के बीच प्रेमावेग के अतिरिक्त क्रोधावेग के संवाद भी वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त होते हैं । इन संवादों की विशेषता यह है कि एक पात्र से उनका प्रारंभ होता है और दूसरा पात्र स्नेह-मिश्रित उत्तर देता जाता है ; किन्तु शीघ्र ही व्यंग्य-बाणों से आहत होकर दोनों के कथनों में तीक्ष्णता, आवेग तथा उत्तेजना आ जाती है । अंततोगत्वा पत्नी अपने अंतिम अस्त्र अश्रुओं का प्रयोग करती है और विवश होकर पति संधि कर लेता है । मायाबाबू-मीरा संवाद[1], केशव-व्यंजना संवाद[2] आदि ठीक इसी प्रकार के हैं । इन कथोपकथनों में उग्रता के साथ-साथ स्नेह, तीव्रता के साथ अपनत्व तथा कटुता के साथ-साथ आत्मीयता एक साथ उभरी हुई दीख पड़ती है ।

शोक की परिस्थिति में उद्भूत भावावेग :

वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्रेम की असफलता के संवाद अधिक मिलते हैं । जिनका परिणाम आह, घुटन, अश्रु, रुदन आदि होता है । संवाद अत्यंत प्रभावशाली तथा पाठकों को प्रभावित करने वाले होते हैं । उपन्यासकार ने करुण, हृदयस्पर्शी तथा दुखपूर्ण स्थलों को सुस्पष्ट करने के लिए ऐसे सम्वादों का अवलम्ब लिया है । इस प्रकार संवादों को और अधिक मार्मिक बनाने के लिए उन्होंने रुदन, विलाप, दैव या भाग्य को कोसना, वैवर्ण्य आदि आंगिक क्रियाओं को नाटकीय ढंग से संजोया है । फलत: ऐसे संवाद अधिक प्रभविष्णु तथा सभावपूर्ण हो गये हैं । बिहारीबाबू की मृत्यु के पश्चात् मुरारी तथा उसकी माँ के बीच का वार्तालाप[3], फूफाजी-कुन्दनबाबू -उपेन्द्र-पूर्णिमा-मंजू-मौसाजी संवाद[4], मल्लाहिन की मृत्यु के उपरान्त गीतादेवी-कमलाकांत संवाद[5], कामताबाबू के मृत्यु के अनन्तर मालती-किशोरी संवाद[6], अनुचरजी की मृत्यु के पश्चात्

1- [illegible] भूदान, पृ0 137-138

2- [illegible] राजपथ, पृ0 269-271

3- विश्वास का बल, पृ0 118-119

4- अधिकार का प्रश्न, पृ0 115-116

5- दूखन लागे नैन, पृ0 252

6- सूनी राह, पृ0 170

माँ-सुधीर संवाद[1] आदि इसी प्रकार के वातालाप हैं । इनमें उपन्यासकार ने करुणारस के विभिन्न संचारी भावों-चिन्ता, ग्लानि, विषाद, स्मृति, निर्वेद, आदि- का संनियोजन किया है ।

संवाद पात्रानुकूल तथा भावानुकूल होते हुए भी तब तक सरस तथा रमणीय न होगा जब तक उसमें रोचकता न आ जाय । 'संवादों में रोचकता लाने के लिए तीन तत्त्वों -प्रत्युत्पन्न मतित्व, सौजन्य (Etiquette) और संगति का उसमें होना अनिवार्य माना गया है ।'[2] वाजपेयी जी के संवादों में यह विशेषता भी दृष्टिगोचर होती है ।

वाजपेयी जी के अधिकांश पात्र हाजिर जवाबी है । अपने उपन्यासों के संवादों में उन्होंने शब्दों तथा वाक्यों द्वारा यह चमत्कार उत्पन्न करने का सफलतापूर्वक प्रयत्न किया है । ऐसे स्थलों पर उन्होंने उत्तर-प्रत्युत्तर करने वाले किसी एक पात्र को अपनी प्रतिभा प्रदान कर दी है । प्रत्युत्तर देते समय वह पात्र अपने विपक्षी को निरुत्तर करने के लिए उसी के द्वारा प्रयुक्त शब्द या वाक्य को कुछ ऐसा नवीन मोड़ दे देता है कि श्रोता को विवश होकर मूक हो जाना पड़ता है । बुंदी-ब्रजनाथ संवाद[3], गोविन्द-हीरा संवाद[4], यशवन्त-शमशाद संवाद[5] आदि में प्रत्युत्पन्न मति का गुण सर्वत्र देखा जा सकता है । अंतिम वातालाप को हम यहाँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत करना उपयुक्त समझते हैं । उसमें एक है पढ़ा-लिखा युवक यशवंत और दूसरी है जिसने घाट-घाट का पानी पिया है वह मुँहफट एवं हाजिर जवाबी वेश्या शमशाद । वह यशवंत को पान देना चाहती है -

'यशवन्त कुछ कहना ही चाहता था कि इतने में बरकतबियाँ तश्तरी में पान लेकर आ पहुँचे ।

1- मनुष्य और देवता, पृ0 78

2- साकेत : एक अध्ययन, डा0 नगेन्द्र, पृ0 136

3- निर्मंत्रण, पृ0 167

4- उनसे न कहना, पृ0 124

5- टूटते बन्धन, पृ0 154, 155, 156

शमशाद ने तश्तरी उसके हाथ से लेकर यशवंत के सामने कर दी ।

Oशव यशवन्त कुछ चौंकता हुआ- सा बोला -"पान" ।

"जी, पान ।" शमशाद ने तुरन्त कह दिया । वह आज उसमें एक परिवर्तन पा रही थी ।

"पर आपको शायद मालूम नहीं, मैं पान सिर्फ एक ही हाथ का खाता हूँ ।"

यशवन्त ने यह बात यों ही कह डाली थी, यद्यपि उसमें यथार्थता न थी ।

"खूब !" शमशाद मुस्कराती हुई बोली -"फिर भी नोश फरमाइए ! मैं भी एक ही हाथ से दे रही हूँ ।"

इधर-उधर देखकर यशवंत ने तश्तरी से पान लेते हुए परिहास के प्रकार में कह दिया -"डर लगता है कि कोई कहीं देख तो नहीं रहा है ।"

"देखने से भी कुछ नहीं बिगड़ता कुंवर साहब । एक तो दिल मजबूत होना चाहिए, दूसरे बात पचा लेने का मादा ।"

"कहती तो ठीक ही हैं आप ?" मुँह में पान रखते हुए यशवंत ने जवाब दिया ।

"कहती तो मैं हमेशा ठीक हूँ कुंवरसाहब, मगर लोग हैं कि फिर भी मुझे गलत समझ लेते हैं ।"[1]

प्रत्युत्पन्नमति के साथ-साथ कथानक के साथ कथोपकथन का संगत होना भी अनिवार्य है । यदि एक पात्र के उत्तर को सुनकर विपक्षी निरुत्तर होने पर भी असंतुष्ट रहता है, तो उन संवादों को सफल नहीं कहा जा सकता । पीछे हम पात्रानुकूल तथा भावानुकूल संवादों का विश्लेषण करते समय संगति के गुण पर विचार कर चुके हैं ।

1- टूटते बन्धन, पृ0 153-154

उपर्युक्त दोनों गुणों के साथ-साथ वाजपेयी जी ने अपने अधिकांश उपन्यासों के कथोपकथनों में शिष्टाचार एवं सौजन्य का भी ध्यान रखा है । वातावरण-निर्माण के लिए उन्होंने जिन संवादों की रचना की है, उनमें इन गुणों की विशेष प्रचुरता है ।

संक्षिप्तता एवम् पैनापन :

उपन्यास में यद्यपि उस प्रकार की प्रभावान्विति उत्पन्न नहीं की जा सकती, जिस प्रकार की कहानी में उत्पन्न हो सकती है ; किन्तु इसका अभिप्राय यह भी नहीं है कि उपन्यास में कोई प्रभावान्विति होती ही नहीं । उपन्यास की प्रभावात्मकता की रक्षा संक्षिप्त और सजीव संवादों पर बहुत कुछ निर्भर करती है । अति दीर्घ संवादों से ऊब पैदा होती है और अस्वाभाविकता तथा विरसता का जन्म होता है । लघु कथोपकथनों से हमें परिस्थिति का जितना सहज और उपयुक्त ज्ञान होता है, लम्बे-लम्बे संवादों से नहीं होता ।

कुछ उपन्यास दार्शनिक, सामाजिक या सांस्कृतिक दृष्टिकोण को उपस्थित करने के लिए लम्बे-लम्बे संवादों से युक्त किये जाते हैं । इन संवादों को प्रस्तुत करते समय उपन्यासकार की ओर से पाठकों की रुचि-अरुचि का कोई ध्यान नहीं रखा जाता । वह मनोविज्ञानयुक्त विश्लेषण करने वाला उपन्यासकार, जिनके लिए वह रचना करता है उन, पाठकों को तथा उनके मनोविज्ञान को भूला बैठता है । परिणामत: उपन्यास नीरस बन जाता है ।

संक्षिप्त, पैने तथा गतिशील संवादों से कृति का सौंदर्य निखर आता है । वस्तुत: एक ओर जहाँ लघु, वैदग्ध्यपूर्ण, तीखे, तीव्र तथा संक्षिप्त संवादों से कथा की कलात्मक महत्ता बढ़ती है, वहीं दूसरी ओर दीर्घ, विश्लेषणात्मक और विवेचनात्मक संवादों से कथा अवरुद्ध हो जाती है । फलत: वे अरुचिकर तथा अस्वाभाविक प्रतीत होने लगते हैं । वाजपेयी जी के उपन्यासों में दोनों ही प्रकार के संवाद उपलब्ध होते हैं ।

उनके दीर्घ संवाद कहीं-कहीं अवश्य नीरस हो गये हैं ; किन्तु लघु संवाद पैनापन लिए हुए सरस है । नाटकीय, पात्रानुकूल एवं भावानुकूल सभी प्रकार के संवादों में जहाँ संक्षिप्तता का गुण है, वहाँ वे अधिक सजीव और हृदयस्पर्शी बन पाये हैं । उन छोटे-छोटे संवादों में कहीं-कहीं तो लेखक ने गागर में सागर भर दिया है । ऐसे संवादों में पात्र बोलते कम हैं, किन्तु ध्वनित अधिक व्यक्त करते हैं । इन संवादों में वाजपेयी जी ने प्रत्युत्पन्नमति तथा संगति का विशेष रूप से ध्यान रखा है । उदाहरण के लिए अजय-सुमन के वार्तालाप को देखना उपयुक्त प्रतीत होता है -

"सुमन बोली-'यहीं न बैठ लो थोड़ी देर ?'
अजय बोला-'ग्राहकों को कौन देखेगा ?'
कथन के साथ ही फिर वह बाहर जाने लगा ।
सुमन राह रोकती हुई बोली -'सम्पत तो है ।'

अजय बोला -'नौकरों के भरोसे दुकान एकदम छोड़ देना ठीक नहीं ।'
सुमन बोली -'मुझे किसके भरोसे छोड़ दिया है ?'
अजय आश्चर्य भरे स्वर में बोला - छोड़ दिया है, कहती क्या है ?'[1]

प्रस्तुत संवाद में वाक्य छोटे-छोटे एवं संक्षिप्त हैं । किन्तु पैने एवम् अधिक अर्थ ध्वनित करने वाले हैं । संवाद चुस्त, गढ़ा हुआ, शब्द सधे हुए एवं चुटीले हैं । उत्तर-प्रत्युत्तर में हाजिरजवाबी होने के कारण प्रस्तुत कथोपकथन में गति आ गई है । इस प्रकार के संवादों की भी वाजपेयी जी के उपन्यासों में न्यूनता नहीं है । कमलेश-लीला संवाद[2], काशीबाबू-सुरेन्द्र संवाद[3], प्रियम्बदा-अरुण संवाद[4], मालती-रेणु संवाद[5] आदि संवाद इसी प्रकार के हैं ।

1- कर्मपथ, पृ0 159
2- एक प्रश्न, पृ0 113-114
3- अधिकार का प्रश्न, पृ0 114
4- टूटा टी सेट, पृ0 9
5- निमंत्रण, पृ0 127

उपर्युक्त विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाजपेयी जी के संवाद सरस, स्वाभाविक तथा रोचक हैं । उनके उपन्यासों में अधिकांशत: ऐसे ही संवाद उपलब्ध होते हैं, जो कथा-प्रवाह में अवरोधक नहीं होते । ऐसे संवाद कथानक के अविभाज्य अंग बनकर आये हैं ; परिणामस्वरूप कथा में प्रारंभ से अंत तक प्रवाह रहा है । परन्तु जिन संवादों के माध्यम से कृतिकार ने अपने सिद्धांतों सिद्धान्तों तथा विद्वता का प्रदर्शन करना चाहा है, वे संवाद कथा के लिए बोझिल बन गये हैं । ऐसे संवादों ने कथानक को विशृंखल कर दिया है । ऐसे कथोपकथन न कथा को गति देते हैं न चरित्र को ही उभारते हैं । उपन्यास में संवादों का ऐसा प्रयोग उपयुक्त प्रतीत नहीं होता ।

वाजपेयी जी के कथोपकथनों की दूसरी प्रमुख विशेषता पात्रों के अनुभवों की सूक्ष्म पकड़ है । उनके संवादों के पठन से ही पाठक के कल्पना-चक्षुओं के समक्ष अमूर्त घटना प्रत्यक्ष घटित हुई ज्ञात होने लगती है । संवादों को अधिक स्वाभाविक तथा नाटकीय बनाने के लिए वाजपेयी जी ने अपनी ओर से पात्रों की विविध भाव-भंगिमाओं एवं मुद्राओं का भी संकेत किया है । ऐसे स्थलों पर पात्र कम बोलते हैं, परन्तु अपने हावभावों द्वारा ध्वनित अधिक करते हैं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी ने अपने संवादों को अधिक स्वाभाविक , सरस तथा सुन्दर बनाने के लिए पात्रानुकूल तथा भावानुकूल कथोपकथनों की रचना की है । अपने संवादों में पात्रों की वैयक्तिकता की रक्षा करने में भी लेखक पूर्ण सफल रहा है । उनका प्रत्येक पात्र अपनी चरित्रगत विशेषताओं के कारण अन्य पात्रों से पृथक् प्रतीत होता है । उनके उपन्यासों की अल्हड़ युवतियों की ठिठोली में छेड़-छाड़ चुलबुलाहट तथा मान-मनौवल आ विराजते हैं ।[1] विभिन्न आवेशीय संवादों में सजीवता तथा स्वाभाविकता तो आ ही गई है, उसके साथ ही साथ पात्रों के मनोभावों की झलक भी मिल गई है जो उसके चरित्र को स्पष्ट करने में सहायक होती है । ऐसे संवादों में जहाँ एक ओर तीव्रता, क्षिप्रता तथा वेग है वहाँ दूसरी ओर उत्तेजना तथा आतंक है ।

वाजपेयी जी के पात्रों के संवादों में हाजिरजवाबी का पूट पुष्कल परिमाण में मिलता है जो संवादों को सरस बनाये रखने में सहायक सिद्ध हुआ है । इससे संवाद पैने

1- दे.स्वप्नों की गोद, पृ0 188

तथा गतिशील बन पड़े हैं । पात्रों के उत्तर-प्रत्युत्तरों में एक प्रवाह है । आदि से अंत तक उनका प्रत्येक शब्द सुगठित तथा चुस्त है । उनके संक्षिप्त संवाद सधे हुए, सरस तथा त्वरा से पूर्ण हैं । ऐसे कथोपकथनों में पात्र भले ही कम बोलते हों ; किन्तु हाव-भावों द्वारा ध्वनित अधिक कर जाते हैं । चल-चित्र उद्योग में रहकर संवाद-लेखन का जो विशेष ज्ञान वाजपेयी जी ने प्राप्त किया, उसका सुन्दर उपयोग उन्होंने अपने 'चलते-चलते', 'विश्वास का बल', 'टूटा टी सैट' आदि उपन्यासों में कुशलतापूर्वक किया है । वाजपेयी जी के उपन्यासों के संवादों के सम्बंध में विचार कर लेने के पश्चात् अब हम उनकी ६ कहानियों के संवादों का भी अनुशीलन करना समीचीन समझते हैं ।

वाजपेयी जी की कहानियों में संवाद

संवाद कहानी का एक आवश्यक तत्त्व है । कहानी में संवाद अथवा कथोपकथन का महत्त्व उसी सीमा तक स्वीकार्य है, जहाँ तक वह कहानी की परिसीमा का उल्लंघन न करे । संवाद कहानी में जीवन का संचार करते हैं । प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि जैसे मूक मनुष्य के सम्पर्क में रहकर सामान्यत: मनुष्य ऊब जाता है, वैसी ऊब की अनुभूति पाठक को तब होती है, जब उसका पाला मूक पात्रों की कहानी से पड़ता है । हमारे कहने का अभिप्राय तो केवल इतना ही है कि कहानी में कथोपकथनों की महत्ता निर्विवाद है - कथोपकथन जहाँ कहानी के जीवन का लक्षण है, वहाँ उसके जीवन का भी चिन्ह है ।"[1] अत: कहा जा सकता है कि कथोपकथन कहानी में प्राण का संचार करते हैं । एवम् उसे मूक से वाचाल बनाते हैं । जीवन की सहज नाटकीयता का जो अभाव कथा-साहित्य में रहता है, उस अभाव की पूर्ति अधिकांशत: संवादों द्वारा ही की जाती है । इनसे कहानी का आनन्द दुगुना हो जाता है । और पाठक कहानीपन तथा नाटकीयता के आनन्द का द्रुत अनुभव करने लगता है । इसके अतिरिक्त संवाद उस बात को भी विशेष कलात्मक सौष्ठव से कह देते हैं, जो इतिवृत्तात्मक शैली में असंभव अथवा कुरुचिपूर्ण हो जाया करती है । कहानी की घटना तथा पात्रों के वैचित्र्य के उद्‌घाटक भी संवाद हैं तथा कहानी की गति के नियामक भी संवाद बन सकते हैं । जिस कहानी में कथोपकथन अनेक साधनों का दायित्व संभाल लेते हैं, उस कहानी में नाटकीयता अधिक आ जाती है ।

कहानी में संवाद-योजना की निजी अपेक्षाएँ हैं । कहानी का कलेवर उपन्यास की अपेक्षा संक्षिप्त होता है । इस संक्षिप्तता के अनुकूल लाघव संवादों का विशेष गुण है । ये संवाद पात्रानुकूल तथा स्वाभाविक भी होने चाहिए, अन्यथा कहानी के यथार्थांकन में

1- कहानी दर्शन, मालचंद्र गोस्वामी 'प्रखर' पृ0 295

दोष आ जाने की संभावना रहती है । कथोपकथन से पात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की झलक इस प्रकार मिलनी चाहिए जैसे -'काँच के पतले प्याले में से उसमें रखा पेय' ।[1] कहानी में पात्रों का वार्तालाप यदि सरल हो और शिष्टता की सीमा का उल्लंघन न करता हो, तो वह श्रेयस्कर है । पात्रानुकूलता यदा-कदा शिष्टता भंग कर सकती है, परन्तु उत्कृष्ट कलाकार सांकेतिकता से अपना काम निकाल लेता है । वातावरण को उभारने के लिए संवादों में स्थानीयता के रंगों का प्रयोग उन्हें आकर्षक एवं सुप्रयोजन बना देता है ।

कहानी के संवाद गुणधर्म में किंचित् मात्र उपन्यास के संवादों से भिन्न होते हैं ।[2] कथा-साहित्य के अंतर्गत उपन्यास में इसका स्वच्छंद, अनियंत्रित और अपरिचित विहार मिलता है, परन्तु कहानी में इसका लघुप्रसारी, वैदग्ध्यपूर्ण, आकर्षक और चमत्कारी प्रयोग ही इष्ट होता है । पृष्ठभूमि के लिए कहानी के संवादों की शास्त्रीयता का विमर्श कर लेने के उपरान्त अब हम वाजपेयी जी की कहानियों में प्राप्त संवादों का अनुशीलन करेंगे ।

वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा है कि उनके कथोपकथन क्षिप्र तथा गतिशील हों, तथापि कहानी में जहाँ उन्होंने दार्शनिक विचारों को संवादों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, वहाँ शैथिल्य अवश्य आ गया है ।[3] कुछ कहानियों का तो आरंभ ही उन्होंने संवादों से किया है । उदाहरण के लिए उनकी 'राजपथ','त्याग','अन्याय', 'दो सम्पादक','नलिनी' आदि कहानियों को लिया जा सकता है । ऐसे प्रारंभ से पाठकों का ध्यान स्वाभाविक रूप से कहानी की कथावस्तु की ओर केन्द्रित हो जाता है ।

वाजपेयी जी की 'सिंहनाद' ऐसी कहानी है जिसमें संवादों का सर्वथा अभाव है । इसके अतिरिक्त 'होटल का कमरा' कहानी में नाममात्र के संवाद हैं । वैसे उनकी

1- कहानी दर्शन: भालचन्द्र गोस्वामी 'प्रखर', पृ0 296

2- कहानी का रचना विधान, डा0 जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ0 122

3- दे मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, (सूखी लकड़ी) पृ0 30

अधिकांश कहानियों में संवादों की बहुलता प्राप्त होती है ।

उपन्यासों की भाँति ही उनकी कहानियों में भी कथानक को गति प्रदान करने वाले, पात्रों के चरित्र को उभारने वाले, कथाकार के उद्देश्य को स्पष्ट करने वाले , वातावरण-सृष्टि करने वाले संक्षिप्त, सार्थक, स्वाभाविक एवं शृंखलाबद्ध कथोपकथन प्राप्त होते हैं । वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों की तरह कहानियों में भी विभिन्न प्रकार के कथोपकथनों को प्रयुक्त किया है । यहाँ उनकी कहानियों में प्राप्त विभिन्न प्रकार के संवादों पर विचार करेंगे ।

(अ) कथोपकथन को गति प्रदान करने वाले सम्वाद :

कथानक को गति प्रदान करने के लिए कहानी में भी कथोपकथनों का प्रयोग किया जाता है । इसके लिए यह अतीव आवश्यक है कि कथोपकथन का कथासूत्र से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो, वरन् कथानक की शृंखला नष्ट हो जायगी । वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में इस बात का सदैव ध्यान रखा है कि कथोपकथन अनावश्यक न हों । अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए उनकी 'चोर' कहानी से एक उदाहरण प्रस्तुत कर देना उपयुक्त होगा -

"शबनम ने सिगरेट-केस दियासलाई की डिब्बी के साथ उसके सामने पेश [illegible] कर दिया ।

दो कश लेकर अल्लारक्खू बोला -'तुमने यह पेशा क्यों इख्तियार किया ?'

शबनम मुस्कराई । बोली -' आप लोगों के लिए ।'

अल्लारक्खू गंभीर हो गया । बोला -'तो तुमको यह पेशा छोड़ना पड़ेगा ।'

'क्या आप इसी लिए यहाँ तशरीफ लाये हैं ?'

'आया तो इसलिये नहीं था, लेकिन आने पर ऐसा इरादा बना लिया है ।'

'लेकिन यह इरादा नया नहीं जान पड़ता ।'

'गलती कर रही हो । अभी तुम मुझे पहचानती नहीं हो । एक तुम्हीं नहीं, मुझे दरअसल कोई नहीं पहचान सका । यहाँ तक कि मैं खुद भी अपने आपको बहुत कम पहचानता था ।'

'आप करते क्या हैं ?'

'मैं चोरी करता हूँ ।'

'सच बतलाइए ।'

'कुरान-कसम, मैं झूठ नहीं बोल रहा ।'

'आपने यह पेशा क्यों इख्तियार किया ?'

'आप लोगों के लिए ।'

अल्लारक्खू चट से कह तो गया, पर उसे अपने इस उत्तर पर खुद ही हंसी आ गई ।

'आपको यह पेशा छोड़ना ही पड़ेगा ।'

'क्या आप इसीलिए यहाँ तशरीफ रखती हैं ?'

'कैसे कहूँ ?' कहकर शबनम विचार में पड़ गई । चली थी वह उसको अपने उत्तर से मात देने, लेकिन उससे मात वह खुद खा बैठी ।'[1]

यह एक ओर वार्तालाप की कला का उत्कृष्ट उदाहरण है , तो दूसरी ओर कथा को गति प्रदान करता है । प्रस्तुत कथोपकथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी पुनः एक बार करवट बदलनेवाली है । इस प्रकार के अनेक उदाहरण वाजपेयी जी की कहानियों में प्राप्त होते हैं ।

(ब) चरित्र-प्रकाशक सम्वाद :

अपने उपन्यासों की भाँति ही कहानियों में भी संवादों द्वारा वाजपेयी जी

1- पुष्करिणी, पृ0 88-89

ने पात्रों के चरित्र का विश्लेषण किया है । कथोपकथनों का सीधा सम्बन्ध पात्रों से ही है । संवादों के अभाव में पात्रों के व्यक्तित्व की रेखाएँ उभरना या चरित्र का विश्लेषण कुछ भी संभव नहीं है । अत: कथाकार अपने पात्रों के मनोभावों तथा कार्यों की सूचना सम्वादों द्वारा ही देता है । वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में इस प्रकार के संवादों का [illegible] आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है । उन्होंने इस प्रकार के संवादों का प्रयोग करते समय इस बात का भी ध्यान रखा है कि पात्र की बातचीत करने की पद्धति द्वारा भी उसके व्यक्तित्व का प्रस्फुटन हो सके । एक ही पात्र भिन्न-भिन्न स्थितियों में पड़ने के कारण अथवा विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक भूमिकाओं पर स्थापित रहने के कारण तदनुरूप रंगढंग से ही अपने विचार एवं भाव प्रकट करता है । परिस्थिति तथा आंतरिक भावों के अनुरूप उसकी वाणी के उतार-चढ़ाव में परिवर्तन आ सकता है ।'------ लेकिन इन सम्पूर्ण परिवर्तनों में परिवर्तनशीलता रहते हुए भी उसकी सम्वादात्मक पद्धति एक विशेष प्रकार की बनी ही रह कर उसके व्यक्तित्व को उभाड़े रहे, ऐसे क्रम का निर्वाह करना चाहिए ।'[1] वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में चरित्र-प्रकाशक संवादों में इस बात का सदैव ध्यान रखा है । उदाहरण के लिए उनकी 'यमुना' कहानी की 'यमुना' तथा उसकी बहू के कथोपकथनों को लिया जा सकता है । यमुना दो विभिन्न परिस्थितियों में दो प्रकार से बोलती है ; किन्तु दोनों भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न पद्धति के सम्वाद करते हुए भी वह अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखती है । प्रथम सम्वाद[2] में उसका क्रोध तथा अधिकार की भावना व्यंजित होती है, तो दूसरे में[3] उसकी आंतरिक वेदना प्रकट होती है । इसी प्रकार के चरित्र- प्रकाशक संवाद उनकी कितनी ही कहानियों में प्राप्त होते हैं । 'दुख' 'ट्रेन पर', 'चार साथी' 'कबाड़ी' 'स्पर्द्धा', 'सम्बन्ध', 'अन्याय', 'दो सम्पादक', 'उद्धार', 'अपना' 'पुनर्मिलन', 'मिलन: एक बलिदान' आदि कहानियों में क्रमश: राधाकुमुद और सुनन्दा[4], घसीटेसिंह और शीतलदीन[5]

1- कहानी का रचना विधान, डा0 जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ0 126

2- दे मधुपर्क, पृ0 188

3- वही, पृ0 192

4- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 135

5- वही, पृ0 165

लेखक तथा कबाडी [1], त्रिवेणी, बनवारी और निखिल[2], नरायन तथा नम्बरदार [3], मोहन और भाभी [4], शर्मा जी एवं सक्सेना जी [5], दूसरा, तीसरा तथा पहला आदमी[6], अपर्णा और उसका पति [7], माता पंडित तथा अम्बिकाकी माँ [8], महाराज एवं दुर्गावती[9], आदि के सम्वाद इसी प्रकार के हैं।

इसके अतिरिक्त वाजपेयी जी की कहानियों में लगभग सभी प्रकार के कथोपकथन प्राप्त होते हैं। विशेषत: लेखक ने अपनी कहानियों में मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग को ही स्पर्श एवम् चित्रित किया है। अत: मध्य एवं निम्न वर्ग से सम्बंधित कहानियों के संवाद एक वर्ग विशेष से सम्बंधित ज्ञात होते हैं। 'सूखी लकड़ी' ,'सम्बंध' तथा 'थोडी-सी पी ली' आदि कहानियों के संवादों को वर्गित कहा जा सकता है। इसमें उनके दैनिक जीवन, आदतों, रहन-सहन आदि का दिग्दर्शन कराया गया है। शुद्ध बौद्धिक संवादों का प्रयोग वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में अधिक मात्रा में नहीं किया है, तथापि 'वीर' 'वनश्री' आदि कहानियों के कुछ संवाद बौद्धिक है। ऐसा होने पर भी इनमें नीरसता नहीं आने पायी है।

अपनी कुछ कहानियों में वाजपेयी जी ने काव्यात्मक एवं भावात्मक संवादों को भी प्रयुक्त किया है। उदाहरण के लिए हम उनकी 'नैतिकता का दण्ड' [10], 'एक अलबम' [11]

1- खाली बोतल, पृ0 170
2- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 130
3- वही, पृ0 151
4- मधुपर्क, पृ0 22
5- वही, पृ0 110
6- वही, पृ0 159
7- होटल का कमरा, पृ0 27
8- वही, पृ0 63
9- वही, पृ0 75
10- बात एक नाते की, पृ0 21
11- वही, पृ0 50

'बरात में'[1], 'विच्छेद'[2] आदि कहानियों के संवादों को ले सकते हैं ; किन्तु इस प्रकार के संवाद उनकी कहानियों में न्यून मात्रा में हैं । वस्तुत: उन्होंने वातावरण को सजीव करने के उद्देश्य से ही काव्यात्मक या अलंकृत संवादों का प्रयोग किया है, व्यर्थ नहीं ।

वाजपेयी जी की कहानियों के कथोपकथन रोचक, संक्षिप्त एवं गढ़े हुए हैं । संक्षिप्तता संवाद का मूलापेक्षित गुण है । दैनिक जीवन का वातालाप इसी की अपेक्षा करता है । कला का उद्देश्य जीवन का केवल अंधानुकरण नहीं है । वह तो उसका मानसिक छायांकन करती है । प्रतिदिन का वातालाप कला की दृष्टि से स्पृहणीय है । सांकेतिकता अथवा सूक्ष्मता उसमें सौंदर्य का उन्मेष करती है । 'उपहार' कहानी से उद्धृत निम्नलिखित उदाहरण में कथा के उस अंश की भंगिमापूर्ण व्यंजना है, जो वर्णनात्मक शैली में निश्चित रूप से कुरुचिपूर्ण हो जाती । विमला की स्मृति में राधे से संवाद उभर रहे हैं, जिन्होंने उसे आत्मप्रवंचना के लिए बाध्य कर दिया है । यथा -

"तुम्हारी यह आदत अच्छी नहीं है, मैया !"

"कौन -सी ?"

"पूछते हो, कौन सी !"

"लो, जब मालूम नहीं है, तब क्या पूछना भी गुनाह है ?"

"हाँ, है गुनाह ! मैं तुमसे मैया जो कहती हूँ ।"[3]

यहाँ अंतिम उपकथन में सारी कहानी का प्रतिपाद्य समाविष्ट है । वह कहानी की मर्मस्पर्शी व्यंजना कर लेता है । कहानी के मर्म की, मूलानुभूति की ऐसी ही व्यंजना 'सूखी लकड़ी' कहानी के अंत में है -

---

1- बात एक नाते की, पृ0 163

2- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 121

3- होटल का कमरा, पृ0 84

"क्या हा था ? -"थोड़ी-सी होगी, अपने लिए रख छोड़ी थी !"

-ठीक तो है । लकड़ी सब चिर गई है । केवल एक कुन्दा शेष है । के--व--ल!

ये कथोपकथन मूल संवेदना को एक हल्के से स्पर्श से उभार देते हैं । एक कहानी का अंत संवादों से करना एक खतरनाक शैली मानी जाती है ; किन्तु वाजपेयी जी की सफलता यहाँ अभूतपूर्व है । उनके संवादों के सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अधिकतर वे कथा के अंग बनकर ही आये हैं , बोझ बनकर नहीं । जैसा कि हम अन्यत्र लिख चुके हैं वाजपेयी जी ने अपनी कुछ कहानियों का प्रारंभ ही कथोपकथनों द्वारा किया है । अपने उपन्यासों के सम्वादों की भाँति ही उन्होंने अपनी कहानियों के संवादों में इस बात का ध्यान रखा है कि वे वक्ता के विचार एवं बुद्धि के अनुसार लम्बे या संक्षिप्त हों, तथापि उनकी कुछ प्रारम्भिक कहानियों के संवाद शिथिल एवं अस्वाभाविक भी हैं । जैसे 'सत्य की जय','अन्याय', 'अधिकार पत्र''त्याग' आदि ।

संक्षिप्तता के पश्चात् स्वाभाविकता और व्यावहारिकता-कथोपकथन का दूसरा महत्वपूर्ण गुण है । पात्रों की मन: स्थिति के अनुकूल उनके वातालाप को आयोजित करना एकांतिक समस्या नहीं है, बल्कि उसके साथ अन्य जटिलताएँ भी सम्बद्ध हैं । कहानी के पात्र यथार्थ की जिस भूमि पर रूपायित हैं, जिस सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्तर विशेष की वे देन हैं, तदनुकूल भाषा संवादों की एक अनिवार्यता है । साथ ही व्यावहारिक जीवन में वातालाप कभी एकनिष्ट नहीं रह सकता, न रहता है । उसमें भाव - परिवर्तन (Digression) अवश्य रहता है । कृति होने के नाते कहानी इस भाव - परिवर्तन-बात बदलने में चमत्कार- की भी अपेक्षा करती है । वाजपेयी जी की संवाद-योजना में व्यावहारिकता का गुण अधिक शिल्पगत कुशलता के साथ उतरा है ।'उर्वशी' कहानी से यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

"स्टोव पर चढ़े हुए हलुए को सुनहली पीतल की चमची से टारा-फेरी करते हुए चंदा कहने लगी -"आपने मुझे तो पहचाना न होगा ।"

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 34

'मैंने कहा-'मैंने आपको कहीं देखा तो जरूर है, पर ---- ?'

वन्दा बोली -'अच्छा ; पहले याद कर लो ---- ।'

'ओहो, अच्छी याद आई । बस-बस वहीं तुमको देखा था, वहीं । परन्तु उस समय तो -----'

'कहाँ कहते जाओ, उस समय क्या हुआ ?' कहते हुए उसकी दन्तमुक्ताएँ झलक पड़ीं । भीतर का कलहास बाहर निकल कर खेलने लगा ।

मैंने कहा -' उस समय तो मैं छोटा-सा था । आज इतने दिनों बाद आपने पहचान कर मुझे झकझोर डाला।'

'हाँ, बहुत छोटे-से थे, बहुत ही छोटे- दूध के दाँत भी न गिरे होंगे ?क्यों ?'

'तो भी कम से कम पाँच-सात वर्ष तो हो ही गये होंगे ।'

'और वह गुलाबजल से भरी पिचकारी सबकी-सब, खाली करके शराबोर करने वाले भी शायद आप न थे ; कोई और रहा होगा ! क्यों ?'

मेरे मन में एक प्रश्न उभर रहा था - क्या यह विश्व इतना मधुर है ?

वह बोली -'अब तो ठण्डा हो गया होगा, खा लो जरा-सा । नुकसान न करेगा ।'[1]

यहाँ भाषा पात्रों के तथा उनकी विशिष्ट मन:स्थिति के अनुकूल है । अंतिम कथन में 'ठण्डा' शब्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु उसमें स्मृतिजन्य आवेग की ध्वनि है ; मूल संवेदना का इंगित है । इससे प्रतीत होता है कि जैसे वाजपेयी जी कथोपकथनों को वस्तु-विकास का एक अन्यतम साधन मानते हैं । उनके संवाद प्राय: कथानक को उद्घाटित करने का माध्यम बन कर आये हैं ।

1- होटल का कमरा, पृ0 115-116

चरित्र-चित्रण के साधन के रूप में कथोपकथन का अपना विशिष्ट महत्त्व है । कहानी के पात्रों की सजीवता और सप्राणता का आधार यही है । लेखक द्वारा किये जानेवाले पात्र के वर्णन या चित्रण से तो वह मूक बना रहता है । मनुष्य सोचकर भी जिस समस्या का समाधान नहीं कर पाता, उसका हल वह गुनगुनाकर या स्वगतोक्ति के द्वारा कर लेता है । यही महत्त्व कहानी में वार्तालाप का है । इसीलिए दैनिक जीवन में केवल आत्मचिन्तन की अपेक्षा विचार-विमर्श अधिक विश्वसनीय है ।

कथोपकथनों के माध्यम से चरित्र-चित्रण की दो पद्धतियाँ हो जाती हैं । एक शिथिल, दूसरी गत्यात्मक । वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में दोनों पद्धतियों का सुष्ठु प्रयोग किया है । प्रथम प्रकार के वार्तालाप तो प्राय: सभी कहानियों में प्राप्त होते हैं । उनके लिए विशेष शिल्प-चातुर्य की भी अपेक्षा नहीं होती । 'दो सम्पादक', 'पेन्सिल स्केच', 'कबाड़ी का ताजमहल', 'रंगीन भ्रम', 'लाइसेंस की सुखी' आदि कहानियों में शिथिल चरित्रांकन करने वाली क्षमता सहज विद्यमान है । जो संवाद सहज नहीं हैं, जटिल हैं, विशिष्ट शिल्प-कौशल की अपेक्षा करते हैं, वह संवादों में चरित्र की गत्यात्मकता को उभारते हैं । ऐसे स्थल वाजपेयी जी की कहानियों में अपेक्षाकृत कम हैं ; किन्तु जहाँ वे हैं, वहाँ वाजपेयी जी की तूलिका ने रेखाओं को बहुत सूक्ष्मता से आगे बढ़ाया है । 'जब सत्य ने काट खाया' कहानी से एक उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है ।

'काल का बनिया है । माँ पति को छोड़ दूसरे के साथ भाग गई थी । जाति से बहिष्कृत होने के कारण विवाह उसका हो नहीं सका । हट्टा-कट्टा तबियतदार आदमी है । रंग साँवला, मुँह पर चेचक के दाग । सिर पर बालों का गुलदस्ता । नाक लम्बी और मूँछें घनी ।

इस सरोजिनी को आया जान प्रसन्नता से पुलकित हो उठा है ।

सरो चुपचाप खड़ी न रह सकी । बोली -जुवार है तुम्हारे यहाँ ?'

'सब चीज़ है तुम्हारे लिए । न भी होगी, तो आ जायगी । इधर निकल आओ । खड़ी क्यों हो ?'

'यहीं ठीक है । बातें नहीं जुआर चाहिए ।'

' तो यह कहो कि नाराज़ हो ।'

'आप जुआर देंगे या लौट जाऊँ ?'

+ + +

'दामों की क्या बात है सरोजिनी । मिल ही जाएँगे । न भी मिलेंगे, तो परवा नहीं । लेकिन तुम्हारा तो दर्शन भी दुर्लभ रहता है ।'

'बड़े दुष्ट हो तुम । बने हुए ।'

+ + +

'तुम्हारी गाली भी मुझको प्यारी लगती है , सरो ।'

' मैं जुआर नहीलूँगी आज । मैं भूखों मर जाऊँगी ।'

'लो फिर नाराज़ हो गईं ।'

'मुझसे ऐसी बातें मत किया करो ।'[1]

सवा-डेढ़ पृष्ठों के इस वार्तालाप में सरोजिनी की वृत्ति दर्शनीय है । 'कालका' के सम्वादों में उसकी धीरोद्धता बनी रहती है ; किन्तु सरोजिनी के सम्वाद उसकी मन: स्थिति की गत्यात्मकता को अंकित करते चलते हैं । दोनों के बीच वार्तालाप के जो तीन गद्य-खण्ड चुनकर यहाँ दिये गये हैं , उनमें सरोजिनी का मन निरन्तर झुकता चला गया है । प्रारंभ का उसका आक्रोश अंत में जैसे विवशता में बदल जाता है । वह असहाय हो जाती है और उस परिणति पर पहुँच जाती है जो असहायता की हो सकती है---- सरोजिनी कमरे के अंदर जाती है । लक्खी के लिए कोट बन गया है । जूता आ गया है ।'[2]

वाजपेयी जी ने प्रतीकात्मक कहानियाँ भी लिखी है । ऐसी कहानियों के संवाद

1- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 77-78

2- वही, पृ0 78

अपने ढंग के निराले हैं । उदाहरण के लिए उनकी 'सूखी लकड़ी', 'खाली बोतल' आदि कहानियों के कथोपकथनों को लियाजा सकता है । इनमें जो चुभन है, वह आज की 'प्रयोग-वादी' कही जानेवाली कहानियों में भी नहीं दिखाई देती ।

वाजपेयी जी के संवादों की एक और विशेषता उल्लेखनीय है । उन्होंने अपनी कहानियों के सम्वादों के साथ-साथ प्रसंगानुकूल पात्रों की मुद्राओं और भाव - भंगिमाओं का भी यथातथ्य चित्रण किया है । यदा-कदा कथाकार ने पात्रों की मुद्राओं और भाव-भंगिमाओं के साथ-साथ कार्य व्यापारों एवं घटनाओं का उल्लेख भी पात्रों के कथोपकथनों के साथ-साथ किया है । ऐसे संवाद उनकी प्रौढ़ एवम् कलात्मक कहानियों में प्राप्त होते हैं । उदाहरण के लिए हम 'ज्वाला' कहानी के रतन और जगदीश के वार्तालाप को ले सकते हैं ।[1]

उनकी प्रौढ़ कहानियों के सम्वादों की एक विशेषता और है । उनकी कहानी के एक कथोपकथन से दूसरा कथोपकथन अनायास ही निकल आता है । ऐसे कथोपकथनों में प्रथम कथोपकथन का अंतिम वाक्य दूसरे कथोपकथन की पृष्ठ भूमि का कार्य करता है । 'मिलन: एक बलिदान' कहानी से एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

'यह महाराज का बड़प्पन है ।'

'बड़प्पन न कहकर आप इसे संकटकालीन धर्म क्यों न कहें ?'[2]

वाजपेयी जी की कुछ प्रारंभिक कहानियों के संवादों में नाटकीयता अधिक आ गई है । उन्होंने नाटक की भाँति कहानियों में भी, (उन्होंने नलिनी की ओर संकेत कर दिया)[3], (सिगरेट की तरफ देखकर)[4], लज्जा से गड़कर[5], सोचकर[6], (स्वर बदलकर

1- दे स्नेह, बाती और लौ, पृ0 168

2- होटल का कमरा, पृ0 70

3- पुष्करिणी, पृ0 166

4- वही, पृ0 153

5- वही, पृ0 150

6- वही, पृ0 128

बंग भाषा मिश्रित शब्दों में)[1], रन्नो की ओर देखकर)[2], (बेला दिखाकर)[3], (फिर शिवराम की ओर देखकर)[4], (पास बैठे हुए व्यक्ति की ओर संकेत करके)[5], (उसके पैर छूकर)[6], आदि निर्देशनों का प्रयोग किया है, जिससे इन कहानियों कथा के कलात्मक महत्त्व में न्यूनता आ गई है । इसका कारण यही है कि कहानी पठन-पाठन की वस्तु है, अभिनय की नहीं ।

वस्तुत: वाजपेयी जी की कहानियों में कथोपकथन की सभी शैलियाँ प्राप्त होती हैं । कहीं उन्होंने छोटे-छोटे और पैने संवादों का प्रयोग किया है, तो कहीं भारी-भरकम विचार एवं कार्य व्यापारों के संकेतों में पूर्ण संवादों का आश्रय लिया है, तो कहीं विनोद-व्यंग्य से पूर्ण सरल एवं स्वाभाविक संवाद प्रयुक्त किये हैं । [7]

संवाद कहानी की शैली का एक अंग है ; किन्तु संवाद-योजना की कौन-कौन सी शैलियाँ है ? - यह प्रश्न प्रारंभ में विचित्र-सा लगता है, वास्तव में ऐसा है नहीं । पात्रों का वार्तालाप कथोपकथन की प्रधान शैली होता है, परन्तु एकमात्र शैली नहीं । वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में इस पद्धति के अतिरिक्त तीन अन्य पद्धतियों का भी प्रयोग विशेष रूप से किया है । इन पद्धतियों को ऐकांतिक, अंतरंग भूर्त तथा स्मरण पद्धति अथवा पूर्व दीप्ति (Flash back) पद्धति कहा जा सकता है ।

1- उतार-चढ़ाव, पृ0 198

2- वही, पृ0 89

3- मधुपर्क, पृ0 188

4- खाली बोतल, पृ0 108

5- वही, पृ0 171

6- उतार-चढ़ाव, पृ0 88

7- दे. मधुपर्क, (कहानी-संग्रह) में संकलित कहानी 'अन्याय' , पृ0 22-23

(1) ऐकांतिक पद्धति :

इस पद्धति में दो पात्रों के संवादों को चिन्हित नहीं किया जाता । यह पद्धति ~~प्रम्मली~~ जैसे टेलीफोन पर बात करते हुए व्यक्ति के संलाप का चित्रण है । जहाँ अन्य पात्र या पात्रों के कथन का प्रासंगिक महत्त्व न हो अथवा उनमें अस्पष्टता हो या वे अंकनोचित न हों, वहाँ यह पद्धति अति सजीव रहती है । इस पद्धति एक उदाहरण 'मिठाई वाला' कहानी से द्रष्टव्य है -

'यह बड़ी अच्छी मुरली है, तुम यही ले लो बाबू, राजाबाबू तुम्हारे लायक तो बस यह है ।---- हाँ, भैया, तुमको वही देंगे । ये लो ।----- पैसे नहीं है ? अच्छा, अम्मा से पैसे ले आओ । मैं अभी बैठा हूँ । तुम ले आए पैसे ?---- अच्छा, ये लो, तुम्हारे लिए मैंने पहले ही से निकाल रक्खी है ।----- तुमको पैसे नहीं मिले । तुमने अम्मा से ठीक तरह से माँगे न होंगे । धोती पकड़कर, पैर से लिपटकर अम्मा से पैसे माँगे जाते हैं, बाबू। हाँ, फिर जाओ । अबकी बार मिल जायँगे ।-----दुअन्नी है ? तो क्या हुआ , ये छै पैसे वापस लो । ठीक हो गया न हिसाब ?---- मिल गये पैसे । देखो, मैंने कैसी तरकीब बताई । अच्छा, अब तो किसी को नहीं लेना है ? अच्छा , तुम भी यह लो । तो अब मैं चलता हूँ ।'[1]

प्रस्तुत उदाहरण में बच्चों के प्रश्नों की झड़ी के बीच मुरली वाले के एक पक्षीय वार्तालाप में संगति का निर्वाह अतीव कौशल से हुआ है । एक बच्चे का चित्र तो विशेष रूप से अंकित हो जाता है । उसे पैसे नहीं नहीं मिले हैं । अत: वह निर्निमेष देख रहा है । मुरली वाले के पास वह जाता है और खाली हाथ लौटता है । शायद पुन: रोता है । फिर एक बार प्रयत्न करता है । इस बार उसे सफलता मिलती है । उसकी आर्द्र आँखों में मुस्कान छा जाती है । यह संगति तथा सटीकता ऐसे संवादों की विशिष्टता होती है ।

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 116-117

(2) अंतरंगमूर्त पद्धति :

इस पद्धति में पात्र दो नहीं होते, प्रत्युत एक ही पात्र की परस्पर संघर्षरत दो वृत्तियाँ मूर्त हो जाती हैं। मनोविश्लेषणात्मक कहानियों पर निर्जीवता, संवादहीनता आदि का जो अभियोग लगाया जाता है उसके परिहार का इससे श्रेष्ठ साधन और कोई नहीं हो सकता। अंतर्द्वन्द्व की मन: स्थिति में दोनों वृत्तियों का वाचालीकरण कहानी के सौंदर्य में चार चाँद लगा देता है। साथ ही अंत: विश्लेषणजन्य दुरूहता का स्थान सरसता ले लेती है। वाजपेयी जी की वैयक्तिक विश्लेषण की कहानियों में सरसता का एक आधार यह भी है। राधे लकड़ी वाली के पीछे-पीछे चल रहा है। इसी अनुसरण का मानसिक धरातल पर जो दृश्य है वह यहाँ 'सूखी लकड़ी' कहानी से दिया जा रहा है -

' तो यह राधे कौन है ?'

'है राधे तुम्हारा सिर ! पाजी कहीं के।'

'वह गई ? वह। हाँ, चली गई।

राधे भी बल दिया।

'तो राधे, इस विराम का क्या अर्थ है ?'

'विराम का अर्थ ! हाँ, है क्यों नहीं ! वह सूखी लकड़ी।'

'विराम का जो अर्थ है, वही इस मंद गति का भी है, राधे ! गति भी मंदता को प्राप्त होकर यहाँ विराम बन गई है।'

'यह परिहास नहीं है। व्यंग्य भी नहीं है। यह तो दाह है-दाह !'

"दाह है ! - किसका ?'

"पूछते हो किसका ! दुष्ट कहीं के ! मेरे सामने बनने आए हो !----'[1]

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 139

(3) स्मरण पद्धति :

इसके लिए 'पूर्व दीप्ति' शब्द भी प्रयुक्त किया जाता है । स्वगत कथन शैली की अंत: विश्लेषणात्मक कहानियों का सौंदर्य इस पद्धति से निखर उठता है । बोझिल कहानी में इससे सहज ही सरसता का उन्मेष हो जाता है ; क्योंकि इसके अन्तर्गत कथोपकथन केवल संवाद के रूप में ही नहीं आते, अपितु स्मृति-चिन्तन से रंगकर आते हैं और अतीत वर्तमान बन जाता है । वाजपेयी जी को इस पद्धति के सिद्धहस्त कलाकार कहा जा सकता है । चरित्र-चित्रण की पृथुल और पुष्कल रेखाएँ खींचने में यह पद्धति बहुत सफल रही है । 'शबनम' कहानी से एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन प्रतीत होता है -

"मैंने कहा- तुम्हारा हाथ बड़ा ठण्डा है शबनम !

"उसने मुस्कराते हुए कहा- तो इसमें तअज्जुब की कौन सी बात है ?

"मैं उसके इस उत्तर को पाकर सचमुच पराजय का अनुभव करने लगा । परन्तु फिर भी कुछ कहे बिना मुझसे रहा न गया ।

"मैंने कहा- हाँ, तअज्जुब की बात तो इसमें नहीं ; पर---- ।"[1]

अन्त में यह कहा जा सकता है कि अपनी कहानियों में संवाद-सौंदर्य का निर्वाह करने में वाजपेयी जी को एक सीमा तक सफलता अवश्य प्राप्त हुई है । उन्होंने अपनी कहानियों में अधिकतर ऐसे ही संवाद प्रयुक्त किये हैं, जो क्रियोत्तेजक , गतिशील तथा भावोद्बोधन कराने वाले हैं । उनके उपन्यासों के संवाद कहीं-कहीं दीर्घ हो जाने के कारण दुरूह हो गये हैं, किन्तु ऐसी दुरूहता वाजपेयी जी की कहानियों के संवादों में नहीं आने पायी है । वाजपेयी जी की संवाद-कला सामान्यत: निखरी तथा सुलझी हुई दिखाई देती है । उनके उपन्यासों के संवाद उपन्यासों की गरिमा बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं । वाजपेयी जी के कथा-साहित्य के संवादों का अनुशीलन करने के पश्चात् अब अगले अध्याय में उनके कथा-साहित्य की भाषा-शैली के सम्बंध में विचार किया जायगा ।

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 56

षष्ठ अध्याय

वाजपेयी जी के कथा -साहित्य की भाषा -शैली

है । इसी के द्वारा कोई भी साहित्यकार अपनी कृति पर अपने व्यक्तित्व की छाप डालता है । बफन ने इसलिए तो कहा है -" Style is the man himself. " अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए अपनी रचना में लेखक शैली की ही सहायता लेता है । वह अपने ही ढंग, अनुभव, विचार, कल्पना, संस्कार तथा शिक्षानुसार अपनी रचना में किसी भी वस्तु का चित्रण करता है । इन सबके कारण उसकी भाषा, तर्कशीलता तथा अभिव्यक्ति में जो मौलिकता, अपनत्व तथा नवीनता रहती है, वही उसकी शैली है । निर्जीपन एवं नाविन्य के अतिरिक्त शैली में प्रांजलता, रोचकता, सजीवता, स्वाभाविकता तथा प्रवाहपूर्णता आदि गुण भी अपेक्षित हैं । वाक्य गठे हुए, सरल, रोचक एवं शृंखलाबद्ध होने चाहिए । उनमें ध्वनि होना अनिवार्य है, परन्तु यह तभी संभव होगा जब शब्द संतुलित, चुस्त, भावानुकूल तथा आवश्यक होंगे ।

पात्र एवं वातावरण के अनुकूल शब्दों का प्रयोग करने से शैली अधिक स्वाभाविक एवं सरस बन जाती है । उपन्यास की शैली संकेतात्मक न होकर विवृतात्मक होती है, क्योंकि उसे पूर्ण वातावरण और उसमें रस और भावों की सृष्टि करनी होती है । अत: पात्र की शिक्षा, संस्कृति और मानसिक धरातल के अनुरूप ही उसकी भाषा होनी चाहिए। इसके लिए पांडित्य पूर्ण, व्यंग्ययुक्त भाषा से लेकर ठेठ प्रादेशिक और ग्राम्य भाषा तक का प्रयोग यथावश्यक रूप में कियाजाता है ।"[1] हिन्दी भाषा के कई रूप-साहित्यिक हिन्दी, बोलचाल की सरल मुहावरेदार हिन्दी, प्रचुर अरबी-फारसी शब्दों से युक्त उर्दू आदि- प्रचलित हैं । साहित्यकार पात्रानुकूल भाषा-निर्माण के लिए हिन्दी के लगभग सभी प्रचलित -अप्रचलित भाषारूपों का व्यवहार अपनी रचनाओं में करता है ।

वाजपेयी जी की भाषा :

वाजपेयी जी के उपन्यासों की भाषा सामान्यत: खड़ी बोली है, तथापि भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए यथावसर विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों तथा उनके

1- काव्यशास्त्र, डा0 भगीरथ मिश्र, पृ0 95-96,

शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है । वाजपेयी जी पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग अपने उपन्यासों में करते हैं, अत: उनके उपन्यासों में भाषा वैविध्य आना स्वाभाविक है । उनके उपन्यासों की भाषा सीधी, सादी, सरस तथा सरल है । वाजपेयी जी की भाषा पात्रानुकूल तथा देशकाल के अनुरूप होने के कारण विचारों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति में पूर्ण सफल रही है । इस अध्याय में अब भाषा के अंतर्गत वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त शब्द-भण्डार, मुहावरों-कहावतों, लोकोक्तियों-सूक्तियों आदि पर विस्तृत रूप से विचार किया जायगा । यहाँ हम सर्वप्रथम उनके उपन्यासों में प्रयुक्त शब्द-भण्डार पर प्रकाश डालेंगे ।

संस्कृत के शब्द :

वाजपेयी जी ने संस्कृत एवं तत्सम शब्दों का प्रयोग अपने सभी उपन्यासों में किया है । उनके उपन्यासों में प्रयुक्त संस्कृतगर्भित भाषा के लिए 'पिपासा', 'निमंत्रण', 'चलते-चलते', 'यथार्थ से आगे', 'विश्वास का बल', 'सूनी राह', 'गोमती के तट पर', 'टूटा टी सैट', 'टूटते बन्धन', 'राजपथ', 'अधिकार का प्रश्न' आदि उपन्यास देखे जा सकते हैं । संस्कृतनिष्ठ शब्दों से प्रयुक्त एक उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है ।

"त्रिवेणी उस समय लक्ष्मी के अग्नि-संस्कार को मानो प्रत्यक्ष देख रही थी । एक चलती-फिरती नारी संसार के मोह-पाश से मुक्त हो, जीवन के सारे आलोड़न-उत्पीड़न से छुट्टी ले, मुझसे सदा के लिए पृथक् हो गई है । साबुन-इत्रों से सुरभित, मेरे प्रति अनुराग-भरे रागरंग से प्रतीक्षित, हास-परिहासोन्मीलित उसके शरीर का अणु-अणु भस्म हो रहा है । जलता हुआ रक्त सी-सी शब्द करता है । चटखती हुई अस्थियाँ चट्ट-चट्ट बोलती हैं । अग्निशिखायें धू-धू करती हुई गगन-मण्डल में आत्मसात् हो रही हैं ।"[1]

1- विश्वास का बल, पृ0 243

अरबी-फारसी के शब्द :

वाजपेयी जी ने अपने कथा-साहित्य में अरबी-फारसी-उर्दू के शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है । वे पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में करते हैं । उनके मुसलमान पात्र तथा वेश्याएँ आदि अरबी-फारसी -उर्दू शब्दों से युक्त भाषा में वार्तालाप करती हैं । इतना ही नहीं, उनके हिन्दू पात्र भी जब मुसलमान पात्रों से बात करते हैं, तो उनकी बातचीत में अनायास अरबी-फारसी के शब्द आ जाते हैं ।यशवन्त शमशाद वार्तालाप[1], करीमुल्ला-संयोगबाबू वार्तालाप[2], को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है । इनके अतिरिक्त उर्दू शब्दों से युक्त कुछ उदाहरण देखिए -

"----- आला दर्जे के तालीम-याफ्ता और अमीर-उमरा ही होते हैं ।"[3]

"----- जो हुस्न और शबाब के ज़ोर से रक्स और तरन्नुम के जादू से उन्हें पागल कर डालती, उनके बच्चों की किस्मत से मज़ाक करती, माताओं,बहनों और पत्नियों के अरमानों का खून करती हुई ज़रा भी नहीं हिचकतीं ।-----"[4]

"---- जनाब को अपने इस कलाम पर शर्म आनी चाहिए ।"[5]

"---- कौमियत के दर्द को महसूस करने का काम किसी एक आदमी का हो नहीं सकता ।"[6]

"बदनामी और नेकनामी तो नुकता परदाज़की महज़ एक नज़र-ए-इनायत का नाम है ।"[7]

1- दे टूटते बन्धन, पृ0 154-157
2- दे टूटा टी सैट, पृ0 147
3- टूटते बंधन, पृ0 154-155
4- वही, पृ0 155
5- वही, पृ0 155
6- वही, पृ0 157
7- सपना बिक गया, पृ0 214

'यह रोशनआरा की इल्तजा है ।'[1]

'---- वह लड़का अब अपने फ़र्ज, इन्साफ़ और ज़ुल्म के सही-ग़लत क़दम को समझने लगा था ।'[2]

'------ मैं दुनियाँ को अपनी यह मनहूस शक्ल नहीं दिखलाना चाहता, गनी।'[3]

इन उद्धरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे किसीभी उर्दू कहानी या उपन्यास के कुछ वाक्य उद्धृत कर दिये गये हैं । ~~इसपर~~ यहाँ एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है । वाजपेयी जी के उपन्यासों में जहाँ मुसलमान पात्रों की भाषा का प्राधान्य आ जाता है, वहाँ उर्दू न जाननेवाले पाठकों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है और वे कथा के प्रवाह में ~~एक~~ एक प्रकार से अनपेक्षित अवरोध का अनुभव करते हैं । ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें प्रथम दो में ऐसी ही अनुभूति होती है । इनके अतिरिक्त वाजपेयी जी के प्राय: सभी उपन्यासों में न्यूनाधिक मात्रा में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया गया है । कुछ शब्द द्रष्टव्य है ।

'पैदावरी', 'मरतबा', 'ज़माना', 'वक्त', 'मेहनत', 'बरकत', 'मियाँ-बीबी', 'शुक्र', 'नसीब'[4], 'रोज़मरा', 'इन्तज़ाम', 'इल्म', 'मुहैया', 'अज़हद'[5], 'तहेदिल', 'रूह अफजाई', 'पुरजोश', 'तकरीर'[6] आदि । इनमें कुछ शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी में ऐसे घुल-मिल गये हैं कि अन्य भाषा के नहीं लगते ।

अंग्रेजी शब्द :

वाजपेयी जी के उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों का भी उपयुक्त प्रयोग प्राप्त

1- सपना बिक गया, पृ0 214

2- राजपथ, पृ0 117

3- वही, पृ0 291

4- पिपासा, पृ0 36

5- निमंत्रण, पृ0 168-169

6- वही, पृ0 73

होता है । इस भाषा के शब्दों का प्रयोग उन्होंने शिक्षित -अशिक्षित पात्रों के द्वारा तो किया ही है, साथ-साथ उन्होंने स्वयं कुछ कहने के लिए भी अंग्रेजी शब्दों को प्रयुक्त किया है । उदाहरण के लिए यहाँ कुछ शब्द देखिए :-

'फोन', 'क्लास', 'ह्वाट डू यू मीन', 'अबसेंट', 'दि ग्रेट', 'स्पेशली', 'फर्स्ट डिवीजन'[1], 'यू बिलीव इन वेंडलिज्म', 'आई थिंक', 'हाकी-स्टिक्स', 'ट्रेन', 'टिकट', 'इंटर क्लास', 'सीट'[2] 'आफिसेस', 'मैरिज', 'प्यूरिटन', 'पालिश', 'मिलिटरी हास्पीटल'[3] 'प्लेटफार्म', 'लर्न मैनर्स', 'थैंक यू', 'अंकिल', 'सी-आफ'[4] आदि कितने ही अंग्रेजी शब्दों व वाक्यों का उपयोग उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है । इससे भाषा का शुद्ध साहित्यिक रूप विकृत हो जाता है । विदेशी भाषाओं के शब्दों के बाहुल्य से वाजपेयी जी की भाषा कहीं स्थलों पर कृत्रिम प्रतीत होती है । जहाँ अरबी, फारसी, उर्दू, या अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भाषा को स्वाभाविक एवं पात्रानुकूल बनाने के लिए किया गया है, वहाँ तक तो उसका समर्थन किया जा सकता है, परन्तु जहाँ वाजपेयी जी ने स्थिति, घटना अथवा कथा-प्रगति की विवेचना करने के लिए अरबी, फारसी या अंग्रेजी के अनावश्यक शब्दों को बलात् भाषा पर आरोपित किया है, वहाँ उनकी भाषा कृत्रिम एवं अस्वाभाविक हो गई है। यथा -

'---- जो व्यक्ति निर्माण का कोई प्रयोग नहीं कर सकता, वह यदि अपने जीवन में सफल नहीं होता, तो उसके दैन्य और फ्रस्ट्रेशन के लिए समाज कहाँ तक उत्तरदायी है ? इस स्थल पर मैं यह भूल नहीं रहा हूँ कि आज की हमारी सामाजिक स्थिति भी ऐसी है कि आदमी प्राय: फ्रस्ट्रेशन का शिकार रहता है ।'[5]

1- दूखन लागे नैन, पृ0 57-58

2- चलते-चलते, पृ0 246-247

3- वासना से परे, पृ0 96-97

4- भूदान, पृ0 78-79

5- चलते-चलते, पृ0 241

प्रस्तुत उद्धरण में अंग्रेजी भाषा के शब्द 'फ्रस्ट्रेशन' के प्रयोग के बिना भी लेखक का काम चल सकता था ; परन्तु वाजपेयी जी ने विदेशी भाषा के शब्द का इसमें अनुचित ग्रहण किया है ; अत: भाषा में कृत्रिमता आ गई है । जब उन्हें लगता है कि अंग्रेजी के स्वतंत्र या संयुक्त शब्दों का हिन्दी में रूपांतर करना ही चाहिए, तब वे 'कालबेल' का पुकार-घण्टी, 'ब्ल्यू हैवन' का 'नील स्वर्ग'[1] 'रिस्ट वाच' का 'कलाई घड़ी'[2] 'गुडनाइट' का 'मधुर यामिनी'[3], 'बाथरूम' का 'स्नानागार'[4], 'पेपर-वर्क' का 'कागज़ी-कार्य'[5] 'स्टाम्प' के लिए 'भोजपत्र'[6], 'नोमीनेशन फार्म' का 'मनोनयन पत्र'[7], जैसे रूपान्तर करने के प्रति सतर्क हो उठते हैं । परन्तु जब उन्हें इस बात का ध्यान नहीं रहता कि उन्होंने अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी रूपान्तर किया है, तब अंग्रेजी शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करने लगते हैं । उस समय उन्हें उन अंग्रेजी शब्दों के सीधे, सरल, प्रचलित हिन्दी रूपान्तर तक याद नहीं आते । यथा - 'लट्ठा' की जगह 'लांगक्लाथ' तथा 'तौलिया' के स्थान पर 'टावेल' शब्द का प्रयोग करना । इनके अतिरिक्त क्राकरी, नियोन ट्यूब लाइट, इन्टरव्यू, रीडर, टेबुल, रेडियो आदि अंग्रेजी शब्दों का उन्होंने खुलकर प्रयोग किया है । कहीं-कहीं तो असावधानी के कारण 'मैट कापी' तथा बीडी-बण्डल[8] जैसे एंग्लो-इण्डियन शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है । ऐसे स्थलों पर भी उनकी भाषा कृत्रिम प्रतीत होती है ।

प्रान्तीय शब्द :

वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों की भाषा को पात्रानुकूल तथा स्वाभाविक बनाने के लिए विभिन्न बोलियों एवं अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किया है । भाव को अधिक निखारने तथा वातावरण उत्पन्न करने के लिए ही ऐसे

1- विश्वास का बल, पृ0 2

2- वही, पृ0 10

3- वही, पृ0 6

4- वही, पृ0 281

5- विश्वास का बल, पृ0 219

6- अधिकार का प्रश्न, पृ0 41

7- निरन्तर, पृ0 128

8- ~~चलते-चलते, पृ0 218~~ निर्वाण पृ० 78

शब्द आपने प्रयुक्त किये हैं । भाषाओं की दृष्टि से प्रमुखत: गुजराती, मराठी तथा बंगला को लिया जा सकता है । इन प्रान्तीय भाषाओं का प्रयोग बहुत ही सीमित रूप में प्राप्त होता है । यथा -

गुजराती :

इस भाषा का केवल एक वाक्य उनकी रचनाओं में उपलब्ध होता है । वह भी भाषा की दृष्टि से शुद्ध प्रयोग सदृश नहीं है ।" श्रीमती मोदी ने मुसकराते हुए अपनी मातृभाषा में पूछा -' केम छे राजेन् ?' [1] इस वाक्य में 'छे' के स्थान पर 'छो' होना चाहिए ।

बंगला :

"आपनार कृपा कटाक्षे खूब भालो आछि ।"[2]

"कत क्षन थेके आमि तोमा के देखते छिलाम । तुमि चाड़ कुक्कट । भट्टाचार एई उपहार निए जा ।"[3]

मराठी :

'आइ चहा' 'आइ अन्ना,' 'आज होइल हलवा' 'रेड्यो बन्द फाला ।'[4]

इन प्रान्तीय भाषाओं के अतिरिक्त उनके 'भूदान', 'टूटते बन्धन', 'राजपथ', 'एक प्रश्न', 'कपट निद्रा', 'सपना बिक गया' आदि उपन्यासों में वाजपेयी जी ने ग्रामीण बोलियों का प्रयोग किया है । यह प्रयोग पात्रानुकूल होने के कारण स्वाभाविक बन पड़ा है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

"हुजूर, गाली गिरधरे मैया पहले दिहिन और लाठिऊ पहले हरदेव भगते उठाइनौ"[5]

1- चलते-चलते पृ0 218
2- वही, पृ0 218
3- वही, पृ0 245
4- टूटा टी सैट, पृ0 73-74
5- सपना बिक गई, पृ0 110

'अरे वही नाटक, जौन बहूजी खेलत रहैं । पहिले तो साहब के साथ बैठ के दारू पिहिन, फिर जब बाबू जी आयगे, तब बेहोश हुई गईं ।'[1]

'आपई के टुकड़ा खाय कें जियत हैं हम लोग । पै आज तो घर तेई जीम के चले हैं ।'[2]

'हमका न्यौता नाहीं दिह्यौ । जिनका दिह्यौ हैं, उनहीं का लै जाव ।'[3]

' तो फिर आजई से लेबो सुरू कर देव ।'[4]

उनके उपन्यासों में प्रयुक्त भाषाओं के अध्ययन के पश्चात् कहा जा सकता है कि उन्होंने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है । इसीलिए उनके हिन्दू और मुसलमान पात्रों की भाषा में अंतर पाया जाता है । बंगाली पात्र जब हिन्दी बोलते हैं तो उनकी भाषा दूसरे ही ढंग की हो जाती है । डा0 मुकर्जी, दादा ज्योतिस्वरूप से कहते हैं - तो आप अहसा माफिक थोरा-सा सहारा देकर इनको अंदर लिटाने का मोदद कीजिए न ?'[5] यह भाषा स्वाभाविक लगती है । इसी प्रकार बच्चों के मुंह से लेखक ने तोतली भाषा का प्रयोग (बुलवाया) किया है । यथा - झोनी ने अमाले आती ती झूल उथाल दाली है, अम्मां अम्मां, तायें उथाल दाली है ?'[6] तोतली भाषा के अन्य उदाहरण 'निमंत्रण'[7] 'सपना बिक गया'[8] 'टूटते बन्धन'[9] आदि उपन्यासों में प्राप्त होते हैं । सारांश यह है कि उनके उपन्यासों में जितने प्रकार के पात्र रहते हैं, उतने ही प्रकार के भाषा-स्वरूप भी पाये जाते हैं ।

भाव और शैली का समन्वय इनकी रचनाओं में सर्वत्र पाया जाता है । भावों के उत्कर्ष से उनकी भाषा-शैली उत्फुल्ल हो उठती है और भाषा-शैली की सजीवता

1- एक प्रश्न, पृ0 95
2- राजपथ, पृ0 14
3- भूदान, पृ0 174
4- टूटते बन्धन, पृ0 9
5- राजपथ, पृ0 261
6- उनसे न कहना, पृ0 156
7- दे. निमंत्रण, पृ0 42-43
8- दे. सपना बिक गया, पृ0 236
9- दे. टूटते बंधन, पृ0 50

उनके व्यक्त किये हुए भावों को अत्यन्त सशक्त बना देती है । जहाँ कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति का अवसर आता है वहाँ इनकी भाषा स्वयं कोमल, करुण, स्निग्ध, एवं मधुर बन जाती है । जहाँ जहाँ विचारों की उग्रता प्रकट करने की आवश्यकता आ पड़ती है, वहाँ उनकी भाषा जैसे आग उगलती है ।

वाजपेयी जी के उपन्यासों का सम्यक् अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि उनका शब्द-भण्डार विस्तृत है । उनकी शब्द-निधि पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने अपने उपन्यासों में कई भाषाओं का प्रयोग किया है । अपनी रचनाओं में आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओं का प्रयोग करने के पीछे उनका लक्ष्य अपनी बात को समझाने तथा भावों को स्पष्ट करने का रहा है । अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है ।

मुहावरों, कहावतों, उक्तियों व सूक्तियों के प्रयोग :

लेखक द्वारा प्रयुक्त भाषा-विभाषा एवं बोलियों के शब्द-भण्डार को ही देखकर उसे भाषा का धनी नहीं कहा जा सकता । इस प्रकार की मान्यता देने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि उन शब्दों का प्रयोग उपयुक्त ढंग से किया गया है या नहीं । वाजपेयी जी के उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके 'चलते-चलते' 'विश्वास का बल', 'गोमती के तट पर', 'राजपथ', 'भूदान', 'अधिकार का प्रश्न', आदि उपन्यासों की वाक्य-रचना सुगठित, सुशृंखलित एवं अभिप्रेत अर्थ को द्योतित करने वाली है । इन उपन्यासों में बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले मुहावरों तथा कहावतों का सौन्दर्य निखरा हुआ है । इन कृतियों में चलती हुई सरल, सरस तथा स्वाभाविक भाषा और दैनिक जीवन में बोले जाने वाले मुहावरों, कहावतों, उक्तियों आदि का मणि-कांचन संयोग प्राप्त होता है । वाजपेयी जी के उपन्यासों में बिखरे हुए इस प्रकार के कुछ मुहावरे तथा कहावतें हमारी बात को स्पष्ट करने के लिए यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं । ठाकुर ने शमशाद की माँ के लिए सब कुछ किया, किन्तु उनके बच्चे असहाय हो गये । उनकी दशा का वर्णन करते हुए यशवन्त कहता है -

'आज उन्हीं के बच्चे दर-दर मारे-मारे फिर रहे हैं ।'[1]

'हर रोजमर्रा के खर्चे का हर का इन्तज़ाम जो आपके बुज़ुर्ग लोग कर गये हैं, उसी के भरोसे आप ख़याली लुत्फ उड़ाते रहते हैं ।'[2]

'ज़मीन-जायदाद के बटवारे के लिए इंसाफ और सच्चाई को ताक में रखकर पैसे के बल पर ही, अदालतों से आप भाई-भतीजों और हिस्सेदारों का हक़ नहीं मारते ?'[3]

'तिल का ताड़ बना दिया तुमने, खूब ।'[4]

'बचपन में वर्षा ऋतु को छोड़कर बाकी हर मौसम में गंगा जी को पार करना तो मेरे लिए बाएँ हाथ का खेल था ।'[5]

'उसी तभी मैं ओवलटीन लेने के बहाने थोड़ी देर के लिए वहाँ से चम्पत हो गया ।'[6]

उपर्युक्त उदाहरणों में वाजपेयी जी ने भावों और क्रिया को अधिक स्पष्ट करने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया है । इसी प्रकार क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायता प्रदान करने वाले कुछ अन्य मुहावरे भी द्रष्टव्य हैं ।

'----- कुछ ऐसा उपाय करो कि साप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे ।'[7]
'---- कहीं ऐसा न हो कि ताली भी न बज पाये और चिड़िया उड़ जाय।'[8]

1- टूटते बंधन, पृ0 156
2- निमंत्रण, पृ0 168
3- वही, पृ0 170
4- स्वप्नों की गोद, पृ0 203
5- चलते-चलते, पृ0 364
6- वही, पृ0 365
7- कर्मपथ, पृ0 91
8- वही, पृ0 93

इनके अतिरिक्त कितने ही नये मुहावरों के प्रयोग भी उनके उपन्यासों में दृष्टिगोचर होते हैं । जैसे - खरगोश का -सा आश्चर्य,' 'बिल्ली की मुस्कान'[1] आदि । इन उदाहरणों से वाजपेयी जी की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, प्रयोग-नैपुण्य एवं भाषा पर उनका अधिकार स्पष्ट हो जाता है । अपनी रचनाओं की भाषा को स्वाभाविक बनाने के लिए उपन्यासकार ने कहावतों का प्रयोग भी किया है । कुछ उदाहरण यहाँ देना असमीचीन न होगा ।

'हाथ कंगन को आरसी क्या ?'[2]

'छप्पन चूहे खाय बिलैदो चली हज्ज हो ।'[3]

'अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग ।'[4]

'करैला और नीम चढ़ा ।'[5]

उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द जी की भाँति वाजपेयी जी भी अपने उपन्यासों में स्थान-स्थान पर सूक्तियाँ देते चलते हैं । उनकी ये सूक्तियाँ अनुभूतिमूलक प्रतीत होती हैं । इनमें जीवन की अनुभूति का सार होने के कारण वे हृदयस्पर्शी होती हैं । कुछ सूक्तियाँ द्रष्टव्य हैं ।

'पवित्र व्यक्ति के लिए सभी व्यक्ति पवित्र और अपवित्र के लिए अपवित्र प्रतीत होते हैं ।'[6]

1- विश्वास का बल, पृ0 16

2- कर्मपथ, पृ0 205

3- टूटा टी सैट, पृ0 15

4- निमंत्रण, पृ0 197

5- वही, पृ0 138

6- कर्मपथ, पृ0 157

'प्रत्येक विमोह अज्ञान से होता है । और अज्ञान की ऐसी स्थिति नहीं, जो भ्रम से मुक्त हो । वह अयथार्थ ज्ञान भी हो सकता है ।'[1]

'संसार आसंका के आधार पर नहीं, विश्वास के बल पर चलता है ।'[2]

'ज्वार के साथ भाटा भी आता है । उतार-चढ़ाव का दूसरा नाम जीवन है ।'[3]

'स्वार्थ सिद्धि के पश्चात् सभी आँख फेर लेते हैं । हमारा अहं विजेता होकर विजित के सम्मुख दीनता प्रकट करने तथा विजित गिड़गिड़ाकर खुशामद करने हेठी स्वीकार करने की स्वीकृति नहीं देता ।'[4]

ये उक्तियाँ पात्र के मनोभावों पर दी गई उपन्यासकार की टिप्पणियाँ ज्ञात होती हैं । जीवन के तथ्यों का उद्घाटन भी वाजपेयी जी ने अपनी रचनाओं में सूक्तियों का आश्रय लेकर किया है।यथा -

'जो संकल्प चरितार्थ नहीं होते, वे सभी मिलकर सम्पूर्ण व्यक्तित्व को खोखला कर डालते हैं । फल यह होता है कि सारा आत्मबल ही नष्ट हो जाता है ।'[5]

'दूसरों की परवा किये बिना, उनके सुख-दु:ख पर ध्यान दिये बिना जो लोग संसार का अधिक सुख स्वयं ही लूट लेना चाहते हैं, भगवान की इस अनोखी सृष्टि में सबसे अधिक दुख के भागी वही होते हैं ।'[6]

वाजपेयी जी की उक्तियों में अर्थान्तन्यास अलंकार के उदाहरण सरलतापूर्वक

1- कर्मपथ, पृ0 45

2- वही, पृ0 38

3- वही, पृ0 189

4- अधूरा स्वर्ग, पृ0 137

5- अधिकार का प्रश्न, पृ0 3

6- वही, पृ0 114

देखे जा सकते हैं । कथा कहते समय जब कभी पात्र के अंतर का उद्‌घाटन करने का प्रसंग लेखक को प्राप्त हुआ है, उसने यह कार्य किया है । सुन्दर मुहावरों तथा अनुभूतिमूलक अमर उक्तियों के बाहुल्य ने वाजपेयी जी की भाषा-शैली को जो वैभव, सौंदर्य एवं गौरव प्रदान कर रखा है, वह उनके द्वारा सृजन किये गये साहित्य के अमरत्व का सबसे बड़ा संरक्षक है । यदि उनके द्वारा प्रयुक्त मुहावरों तथा अनमोल सुक्तियों को एकत्र किया जाय, तो उनका एक स्वतंत्र साहित्य तैयार हो सकता है ।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी का भाषा-ज्ञान व्यापक है तथा शब्द-भंडार विस्तृत है । इतना सब होने पर भी उनकी भाषा में व्याकरण से सम्बंधित अनेक त्रुटियाँ हैं । अब उन पर भी एक दृष्टि डाल देना समीचीन प्रतीत होता है ।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त भाषा-सम्बंधी न्यूनताएँ :

वाजपेयी जी के उपन्यासों की भाषा में उनकी असावधानी के कारण, यत्र-तत्र अनेक दोष आ गये हैं । इनमें प्रधानत: लिंग दोष तथा कुछ स्थानों पर वाक्य दोष देखने को मिलते हैं । यहाँ हम उनके उपन्यासों में प्राप्त उपर्युक्त दोषों पर विचार करेंगे ।

लिंग दोष :

वाजपेयी जी के वाक्यों में लिंग विपर्यय प्राय: देखा जाता है । कुछ उदाहरण यहाँ पर उनके उपन्यासों से दे रहे हैं ।

'-----किन्तु हमारे समक्ष वह उसी रूप में आती है जैसे जुगनू पेड़-पौधों और झाड़ियों में छिपी रहती है और कभी-कभी चमक उठती है ।'[1]

1- निमंत्रण, पृ0 43

'फिर उस तमसाच्छन्न मूक अमानिशा में एक जुगनू चमक उठी ।'[1]

'उस वक्त मेरा जेब खाली न होगा ।'[2]

'मुझे उसकी चाकू पसंद नहीं आती ।'[3]

'मैं उसकी चाकू तो नहीं लेती ।'[4]

औचित्य दोष :

वाजपेयी जी के उपन्यासों में यद्यपि इस प्रकार के दोष का आधिक्य प्राप्त नहीं होता, तथापि जो त्रुटियाँ उनकी कृतियों में रह गई हैं, उन्हें दुर्लक्ष्य भी नहीं किया जा सकता । अपने उपन्यासों में उन्होंने कई स्थानों पर शब्द-औचित्य पर ध्यान नहीं दिया है । उनकी असावधानी के फलस्वरूप ऐसे दोष आ गए हैं, अत: उन स्थलों की भाषा का कलात्मक सौन्दर्य नष्ट हो गया है । एक उदाहरण यहाँ देते हैं ।

'अंत में कुन्ता बाँ करके चिल्ला उठी ।'[5]

'गाय का चिल्लाना' सर्वथा अनुचित प्रयोग जान पड़ता है ।

वाक्य दोष :

वाजपेयी जी के उपन्यासों में वाक्य दोष अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है । फलत: कहीं-कहीं उनके वाक्यों में शैथिल्य, तो कहीं पर अस्पष्टता आ गई है । अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए यहाँ हम कुछ वाक्य उनके उपन्यासों से उद्धृत कर रहे हैं ।[000]

1- टूटा टी सैट, पृ0 126

2- विश्वास का बल, पृ0 287

3-4 टूटा टी सैट, पृ0 154

5- भूदान, पृ0 190

'तुमने भी फोटोग्राफ अच्छे से अच्छा आये ।'[1]

यह वाक्य अस्पष्ट है । इसमें 'तुमने ' के स्थान पर 'तुमसे ' होना चाहिए ।

'मैंने दो साल में दस हज़ार अदा कर पाया है ।'[2]

इस वाक्य में 'मैंने ' के स्थान पर 'मैं ' और 'है ' के स्थान पर 'हूँ' होना चाहिए ।

'तुम मनमौजी आदमी ठहरा ।'[3]

इस वाक्य का क्रियापद 'ठहरे ' होना चाहिए ।

'उसे लगा कि उसके पिता अब तक मेरे घर वापस न लौटने के प्रश्न को लेकर चिन्तित हो उठे होंगे ।'[4]

इस वाक्य में सर्वनाम का गलत प्रयोग किया गया है ।'मेरे ' के स्थान पर 'उसके ' प्रयोग समीचीन प्रतीत होता है ।

'मुझे पैशा-डाक्टरी बहुत पसंद है ।'[5]

इसमें डाक्टरी-पेशा होना चाहिए ।

'फिर वो उठकर खड़ा हो गया ।'[6]

'इसमें 'वो ' नहीं, वरन् 'वह ' होना चाहिए ।

'मैंने कहा भी -'किसी दिन खाने पर बुला लो, मैं भी तो देखूँ कि नयन कैसे थे उसके ।'[7]

इस वाक्य के क्रियापद में काल सम्बंधी त्रुटि है । इसमें 'थे ' के स्थान पर 'है ' होना चाहिए ।

1- एक स्वर आंसू का, पृ0 21

2- निमंत्रण, पृ0 147

3- चंदन और पानी, पृ0 160

4- कर्मपथ, पृ0 41-42

5- वही, पृ0 15

6- वही, पृ0 47

7- वही, पृ0 267

इन समस्त दोषों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि भाषा सँवारने में वाजपेयी जी ने किंचिन्मात्र भी सावधानी से काम लिया होता, तो उनके लिए उपरिलिखित दोषों का निराकरण असंभव न होता। वस्तुत: इन दोषों का कारण वाजपेयी जी का अज्ञान नहीं, अपितु उनकी असावधानी है। साहित्यिक उपन्यासों में परिष्कृत भाषा का अपना महत्त्व होता है। भाषा का थोड़ा-सा अपरिष्कृत रूप भी रचना के भाषा-सौंदर्य को नष्ट कर देता है, अत: उसकी उपेक्षा करना उचित प्रतीत नहीं होता।

वाजपेयी जी की शैली सरल, रोचक, प्रवाहपूर्ण, चुस्त तथा स्वाभाविक है। उसमें तीनों गुण-ओज, माधुर्य एवम् प्रसाद-देखने को मिलते हैं। यद्यपि क्लिष्टता, दुर्बोधता तथा अस्पष्टता से उन्होंने बचने का प्रयत्न किया है, तथापि कुछ उपन्यासों में, जहाँ उन्होंने अपनी बात विद्वतापूर्ण ढंग से कहना चाहा है, तत्सम्बंधी दोष आ ही गये हैं। ऐसे कुछ स्थलों को छोड़ दिया जाय, तो उनके भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति का ढंग, पदरचना, वाक्यगठन, शब्द शक्तियों का उचित प्रयोग आदि सशक्त एवं प्राजंल रहा है। उपन्यास में शैली के अंतर्गत वस्तुक्थन, कथा कहने की विधि, उसका संगठन, पात्र संयोजना, कथोपकथन तथा वातावरण निर्माण करने की विधि आदि का समावेश होता है।

उपन्यासों में सर्वत्र एक ही शैली प्रयुक्त नहीं की जा सकती। आवश्यकतानुसार लेखक अपनी शैली को बदल लेता है और उसका प्रयोग करता है। उपन्यास अनेक शैलियों में लिखे जाते हैं। सामान्यत: उपन्यास लिखने की पाँच शैलियाँ प्रचलित हैं। (1) वर्णनात्मक (2) आत्मकथात्मक(3) पत्रात्मक(4) डायरी एवम्(5) मिश्रित शैली। वाजपेयी जी के समस्त उपन्यास वर्णनात्मक एवं आत्मकथात्मक शैली में ही लिखे गये हैं। 'चलते-चलते', 'विजय श्री' (आज और अभी) तथा 'सपना बिकगया' नामक उपन्यासों में वाजपेयी जी ने आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है। शेष सभी उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखे गये हैं। इन दो प्रकार की शैलियों में

लिखे गये उपन्यासों में अन्य शैलियाँ भी प्रयुक्त हुई हैं । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम उनके उपन्यासों में प्रयुक्त शैली को तीन रूपों में देख सकते हैं :-

1- शैली का वाह्यरूप :

इसके अंतर्गत उसकी पदयोजना, प्रयोग-कौशल, अलंकारों एवं शब्द-शक्तियों आदि के प्रयोगों को लिया जा सकता है । तदुपरान्त इसमें अलंकृत, सरस, गुम्फित, उक्तिप्रधान आदि शैलियों को रख सकते हैं ।

2- शैली का आंतरिक रूप :

इसके अंतर्गत विभिन्न रस भावों की अभिव्यंजना, विचारों की अभिव्यक्ति एवं अन्य आंतरिक गुणों को लिया जा सकता है ।इसमें भावात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, उपदेशात्मक शैली, पात्रानुरूप शैली, रसानुरूप तथा अवसरानुरूप शैली आदि विविध रूपों को लिया जा सकता है ।

3- शैली का मिश्रित रूप :

इसके अंतर्गत उपर्युक्त दोनों प्रकार की शैलियों का सामंजस्य प्राप्त होता है । इसमें नाटकीय शैली के साथ-साथ वर्णनों एवं रेखाचित्रों को भी लिया जा सकता है ।

वाजपेयी जी के उपन्यास लेखन की शैलियों में क्रमिक विकास :

वाजपेयी जी के प्रारंभिक उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली की ही प्राप्त होती है । उपन्यासों में लेखक एक सर्वज्ञ की भाँति आता है और पाठकों को संबोधित कर प्रत्येक पात्र की भावनाओं का अभिव्यक्ति कर उससे उसका परिचय प्राप्त करता हुआ चलता जाता है । वह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष वस्तुओं एवं भावों का चित्रण करने के साथ-साथ कथा भी कहता जाता है । कथा की गुत्थियों को सुलझाने के हेतु वाजपेयी जी ने

इस शैली के साथ-साथ संवादात्मक या नाटकीय शैली का भी अवलम्ब लिया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में अपनी बात को स्पष्ट करने और कथा को गति प्रदान करने के लिए पत्रों, आत्मविश्लेषणों, मानसिक अंतर्द्वन्द्वों आदि सभी का आश्रय लिया है ; फलत: उनकी शैली मिश्रित शैली के अधिक निकट पहुँच गई है । पाठक से नैकट्य स्थापित करने के हेतु वाजपेयी जी ने तीन उपन्यासों की रचना आत्मकथात्मक शैली में की है ।

यहाँ हम वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त शैली के वाह्य, आंतरिक एवं मिश्रित तीनों ही रूपों पर क्रमश: विचार करेंगे । साथ ही साथ यह भी देखा जायगा कि उपन्यासकार जिस बात को सोचता है, कहना चाहता है, क्या अपनी उस बात को ज्यों की त्यों शैली के माध्यम से, प्रभावशाली ढंग से, प्रकट कर सका है या नहीं ।

1- शैली का वाह्यरूप :

उपन्यासकार अपनी शैली को अलंकारों, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं उक्तियों से सँवारकर प्रस्तुत करता है । अलंकारों का प्रयोग वह अपने भावों की सबल अभिव्यक्ति के लिए करता है । शैली के वाह्यरूप में हम निम्न शैली रूपों को रख सकते हैं ।

(अ) काव्यात्मक अथवा सरस शैली :

भावात्मक स्थलों पर साहित्यकार भावुक हो उठता है । ऐसी अवस्था में उसकी शैली लक्षणा और व्यंजना का आश्रय लेकर आगे बढ़ती है । इस प्रकार की शैली में उक्तियों एवं मुहावरों की प्रधानता होती है । भाव, अनुभाव तथा मार्मिकता को एक साथ उपन्यासकार कभी-कभी ऐसे स्थलों पर अनुस्यूत करता है । अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए यहाँ कुछ उदाहरण देना उपयुक्त होगा । 'विश्वास का बल' में मुरारी के राजीव से पूछने पर कि वह बम्बई में कहाँ रहता है, राजीव कहता है -

"जहाँ रत्नाकर की चमकती हुई लहरें नित्य हमारे बाल-मानस को दुलराया करती हैं, भगवान् अंशुमाली की पावन किरणमालिका जिसके ऊपर खिलखिलाती

हुई अहर्निश हमारे तन-मन -प्राण को स्पन्दनशील बनाये रखती हैं । रत्नाकर के स्वर, ध्वनि-संवाद, हास-परिहास, आक्रोश-रोष-चीत्कार जहाँ मुझे सदा सुनाई और दिखाई पड़ते हैं ।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण गद्य-काव्य का एक सुन्दर उदाहरण है ; किन्तु परिस्थिति की अनुपयुक्तता ने उसे प्रभावहीन बना दिया है । इसमें 'दुलराया करती हैं' का अर्थ लक्षणा से ही स्पष्ट होता है । एक और उदाहरण भी यहाँ द्रष्टव्य है ।

"आकाश मूक है, वायु भी मूक है । चेतना के पलक मूक हैं । मनुष्य का क्लान्त मन भी मूक है । लेकिन गति मूक नहीं है। उपचेतना के पंख खुले हैं । मनुष्य का अंतर्मुख खुला हुआ है । कल्पनाएँ कल्लोल कर रही हैं । मनुष्य की आकांक्षा अब बन्दिनी नहीं रह गई । समाज के बंधन टूट गये हैं । नीति का आतंक छिन्न-भिन्न हो गया है । मनुष्य ने त्राण पाया है ।"[2]

इसमें 'उपचेतना के पंख खुले हैं' 'कल्पनाएँ कल्लोल कर रही हैं' आदि का अर्थ अभिधा से नहीं, अपितु लक्षणा से ही स्पष्ट होता है । इसी उद्धरण में कविता का-सा आनन्द प्राप्त होता है । जहाँ-जहाँ वाजपेयी जी की भाषा ने कवित्वपूर्ण शैली का आश्रय ग्रहण किया है, वहाँ-वहाँ उसकी कोमलता, मार्मिकता और गम्भीरता हमारे गद्य-साहित्य की शोभा बन गई है । इस प्रकार की शैली में हम उनकी मुहावरों एवम् लोकोक्तियों से जड़ी हुई शैली को भी रख सकते हैं । वाजपेयी जी की भाषा का विश्लेषण करते समय पीछे यह देख चुके हैं कि उन्होंने अपनी शैली को काव्यात्मक बनाने के लिए किस प्रकार खुलकर मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया है ।

(ब) अलंकृत शैली :

भाषा को निखारने के लिए वाजपेयी जी ने स्थान-स्थान पर अलंकारों का

1- विश्वास का बल, पृ0 173

2- निमन्त्रण, पृ0 128

का भी आश्रय लिया है । इससे भाषा के निखरने के साथ - साथ वातावरण में भी सजीवता आ गई है । ऐसे स्थलों पर उनकी शैली सरस, सुन्दर व प्रवाहपूर्ण रही है । अलंकारों से अलंकृत तथा कल्पनापूर्ण होने के कारण उनकी इस प्रकार की शैली कविता के अधिक निकट पहुँच गई है । यथा -

" जीवन भी एक सरिता है । उसके कगार कितने ऊँचे - नीचे होते हैं और उसमें मिलने वाले भावना शिशु रूपी नाले कितने चंचल और गर्वीले ! --- आशा-वल्लरी छाया की भाँति मेरे पीछे लगी ही रहती है ।"[1]

इसमें लेखक ने जीवन, भावना, आशा आदि को अलंकृत शैली में मूर्तिमान किया है । इसी प्रकार नारी के रूप -सौंदर्य-वर्णन के लिए भी लेखक ने अलंकारों का अवलम्ब लिया है । 'मिस मोदी' का शृंगार यहाँ देखना असमीचीन नहीं होगा ।

"जार्जेट की साड़ी है और बिकन का ब्लाउज । काली जाली से बँधा हुआ केश-गुच्छा सिर पर सघन-घन-घटा की भाँति छाया हुआ है ।"[2] इसमें लेखक ने उपमा अलंकार का आश्रय लिया है ।

मुरली के रूप की तुलना अपनी पत्नी बेला से करते हुए यशवन्त जो कुछ सोचता है, उसे लेखक ने उत्प्रेक्षा एवं अलंकार का अवलम्ब लेकर स्पष्ट किया है । यथा -

" ---- मुख-छवि तो उतनी सुन्दर नहीं, जितनी बेला की । गोल मुख होने के कारण उतनी मोहक भी नहीं प्रतीत होती, यह भी सही है ; किन्तु बातें करते समय उत्फुल्ल बहुत रहती है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसके यौवन-सरोवर में कमल के फूल सदा खिले रहते हों ।"[3]

1- मुस्कान, पृ0 54-55

2- चलते-चलते, पृ0 146

3- टूटते बन्धन, पृ0 46-47

उपर्युक्त उदाहरणों में भावों, चित्रों एवं नारी-सौंदर्य को उपन्यासकार ने अलंकारों द्वारा बड़ी सुघड़ता एवं कौशल के साथ स्पष्ट किया है । वाजपेयी जी ने पात्र के रूप तथा भंगिमाओं की छाप पाठक के मानस पर अधिकाधिक मात्रा में उभारने के लिए उपमा, व उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का यथावश्यक प्रयोग किया है । अलंकारों के प्रयोग के कारण उनकी शैली अलंकृत तो हुई ही है, साथ-साथ प्रवाहपूर्ण तथा प्रभावशाली भी । अलंकारों के प्रयोग के कारण वाजपेयी जी कहीं भी वर्णन-संतुलन नहीं खो बैठे हैं । अलंकार प्रयुक्त होने के कारण न तो कोई भी स्थल उपन्यास में बोझिल हुआ है, न ही कथा की गति पर उसका बुरा प्रभाव पड़ा है । फलत: उपन्यासों के सौन्दर्य की रक्षा हो सकी है ।

शैली के वाह्य सौन्दर्य को निखारने के लिए वाजपेयी जी ने अपनी रचनाओं में उक्तियों का भी अतीव कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है । आगे उनकी भाषा पर विचार करते समय हम उनकी उक्तियों-सूक्तियों आदि पर विचार करेंगे ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी ने अपनी शैली के वाह्य सौन्दर्य को अधिक निखारा है । जैसा कि हम पीछे बतला चुके हैं जहाँ कथा-प्रवाह को स्पष्ट करने के लिए चरित्र एवं व्यक्तित्व को उभारने के हेतु तथा भावों को निखारने के लिए लेखक ने अलंकारों का प्रयोग किया है, उन स्थलों की शैली अलंकृत होने के साथ-साथ स्वाभाविक , सरस, रोचक, प्रवाहपूर्ण एवं प्रांजल रही है ।

(2) शैली का आंतरिक रूप :

शैली के इस रूप में लेखक का हृदय-पक्ष प्रधान रहता है । ऐसे स्थलों की भाषा प्रवाहयुक्त एवं सरल होती है । इसके अन्तर्गत हम पात्रों के मानसिक द्वन्द्वों तथा उनके हृदयगत भावों को साकार करने वाले स्थलों को रख सकते हैं । भावात्मक, विश्लेषणात्मक, चिन्तनात्मक, उपदेशात्मक, भाषणात्मक शैली आदि विविध शैली रूपों का

समावेश इसमें किया जाता है । इस शैली का अवसर से घनिष्ठ सम्बंध रहता है ; क्योंकि सुखद तथा दुखद दोनों ही प्रसंगों से हमारा हृदय प्रभावित होता है । अत: शैली भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती । यही कारण है कि वाजपेयी जी की शैली विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार की होती है ।

(क) भावात्मक शैली :

मानसिक अंतर्द्वन्द्वों के शब्दचित्र :

वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में क्रियाशील मानव के तो सजीव चित्र दिये ही हैं, साथ ही उनके विचारशील मानव के चित्र भी पूर्ण एवं सजीव हैं । अपनी भावात्मक शैली की सहायता से वाजपेयी जी विचाररत मनुष्य का प्रत्यक्ष चित्र खींचने में सफल रहे हैं । फलत: उनके उपन्यासों में मानसिक अंतर्द्वन्द्वों के शब्दचित्र बड़े ही सजीव एवं मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं । ऐसे स्थलों पर उनकी शैली कोमल, सजीव, चित्रात्मक तथा स्पष्ट है । मस्तिष्क के प्रत्येक द्वन्द्व एवं प्रत्येक भाव को लेखक ने आकर्षक ढंग से तथा सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है । वाजपेयी जी के उपन्यासों में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं । रेणु के मानसिक द्वन्द्व का एक उदाहरण द्रष्टव्य है । अपने पति गिरधारी के प्रति रेणु के शुष्क व्यवहार के बाद गिरधारी के पूछे पूछने पर कि क्या वह उससे ऊब गई है ? जीवन में उसे कुछ आकर्षण नहीं रहा है ? उसे संतोष-सुख देने के लिए वह क्या करे ? तब वह मन ही मन सोचने लगती है -

"क्यों मैंने इनको छोड़ दिया, क्यों मैंने इनका जी दुखाया ? ऐसा आदर्श पति जिसने पाया हो, वह नारी भी अपने को दुखी समझे, मानवता का वह सरासर अपमान है। वह उससे क्षमा माँगना चाहती है, किन्तु आगे सोचती है -

'--- क्यों मैं ऐसा कहूँ ? - क्यों मैं उनसे माफी माँगूँ ? क्या यह सच नहीं है कि मेरे हृदय के भीतर एक भट्टी सुलग रही है ? क्या इसमें कोई सन्देह है कि मैंने इनके पीछे अपनी समस्त महत्वाकांक्षाओं को मिट्टी में मिला दिया है ? कुछ न कुछ तो

मैं हो एक ही सकती थी । मैं कविता नहीं लिख सकती थी ? कहानी-लेखिका क्या होना मेरे लिए कौन मुश्किल था । आज जो यश मालती पा रही है, क्या मैं उसकी अधिकारिणी नहीं हो सकती थी ? वय में वह मुझसे सिर्फ दो वर्ष छोटी है, किन्तु मेरे और उसके बीच खाई कितनी गहरी है । ---मेरा निर्माण -क्या ये - ऐसे उत्तम ढंग से नहीं कर सकते थे कि घर की इस चारदीवारी के बाहर भी मैं आ-जा सकती ? इन्हीं दीवालों के भीतर निरंतर बंद रखकर इन्होंने मुझे क्या दिया ? और अब जब मैं लगभग मरण की ओर जा रही हूँ, ये पूछते हैं - मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ?'[1]

प्रस्तुत उद्धरण में रेणु की आंतरिक ग्लानि, अपने पति के प्रति किये गये व्यवहार पर उस द्वारा किया गया अनुताप, उसकी हार्दिक खीझ आदि सब कुछ केवल एक चित्र में साकार है । रेणु के हार्दिक उद्‌गारों को पढ़कर सहृदय पाठकों के हृदय में उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है ; क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि गिरधारी आदर्शपति नहीं है । न तो उसे पत्नी की चिन्ता है, न बच्चे की । विवाहित होने पर भी वह मालती के प्रति आकृष्ट है ।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण भी देखना समीचीन होगा । पति के द्वारा अजय के पिटे जाने और घर से बाहर निकाल दिए जाने पर अजय की विमाता सावित्री के मन में जो अंतर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है उसे लेखक ने शब्दबद्ध करके इस प्रकार प्रस्तुत किया है - रह-रहकर उसके मन में विचार उठ रहा था -

'----- उसने अपने पति का हाथ क्यों नहीं पकड़ लिया ---- वह पति का रौद्र रूप देखकर डर क्यों गई ? अगर वह उनका हाथ पकड़ ही लेती, तो क्या वे अजय को इस बुरी तरह से मार सकते थे ? फिर जब वे अजय को घसीट कर बाहर फेंक रहे थे, उस समय तो वह उन्हें रोक सकती थी - उसने ऐसा क्यों नहीं किया ? ----'[2]

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में उपन्यासकार ने बड़ी ही सरल शैली में पात्रों के

1- निमंत्रण, पृ0 80-81

2- ~~वही, पृ0 80-81~~ कर्मपथ, पृ. 44

मानसिक द्वन्द्वों के चित्र साकार कर दिये हैं । पात्रों की आंतरिक व्यथा, उनका मानसिक पश्चाताप, भय के कारण उनकी विवशता आदि उनके चरित्र को उभारने में पूर्णतः सफल रहा है ।

ऊपर दिये गये उद्धरणों में हमने विभिन्न अवसरों पर, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पड़े हुए मनुष्य की आंतरिक हलचलों को कुशलतापूर्वक उभरा हुआ देखा है । वाजपेयी जी को मानव के अंतःकरण की सूक्ष्म वृत्तियों का पर्याप्त ज्ञान है । वे यह जानते हैं कि विभिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न मनुष्य के मन में कैसी-कैसी बातें जन्म लेती हैं, तभी मानव की आभ्यंतरिक वृत्तियों के सूक्ष्म निरूपण में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुआ है ; किन्तु जहाँ लेखक अपनी विद्वता प्रदर्शित करने का लोभ संवरण नहीं कर सका है, वहाँ उसकी शैली कृत्रिम हो गई है ।

सुख-दुःख में पड़े मनुष्य की विभिन्न आंतरिक वृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण भी वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त होता है । जहाँ उन्होंने किसी सुखद प्रसंग का चित्रण किया है, वहाँ उनकी शैली कोमल, आकर्षक तथा हृदय में उत्साह और सात्विक भाव उत्पन्न करने वाली हो गई है । उनके उपन्यासों में प्राप्त प्रणयवर्णन, प्रिय सान्निध्य, विवाह आदि प्रसंगों के वर्णनों को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है ।

दुःखद प्रसंग की शैली इससे भिन्न है । वह हृदय की दुःखात्मक वृत्तियों को प्रकट करती है । वाजपेयी जी के उपन्यासों में ऐसे कितने ही स्थल पाये जाते हैं । 'विश्वास का बल' में बिहारीबाबू,[1] 'कर्मपथ' में मुंशी रामनारायण[2] तथा 'गुप्तधन ' के अन्त में गुरुदेव आचार्य गौरीशंकर की मृत्यु[3] ऐसे ही मार्मिक स्थल हैं । इस प्रकार की शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह हृदय में दुःख की अनुभूति कराकर उत्साहहीन वातावरण सृजन करने में पूर्ण सफल रही है ।

1- विश्वास का बल, पृ0 107

2- कर्मपथ, पृ0 181

3- गुप्तधन, पृ0 211

सुखद एवम् दुखद प्रसंगों[1] के वातावरण एवं परिस्थितियों के निर्माण के लिए लेखक ने प्रलाप, आवेश तथा भाषण शैली आदि का प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है ।

(ख) प्रलाप शैली :

वाजपेयी जी के उपन्यासों में कुछ भावात्मक स्थल भी दिखाई देते हैं । ऐसे स्थलों पर जहाँ उन्होंने प्रार्थना तथा उपालंभ का भी बड़ी सतर्कता से प्रयोग किया है, वहाँ प्रलाप शैली के उदाहरण देखे जा सकते हैं । इस प्रकार के स्थलों पर उनकी शैली हृदय में कचोट उत्पन्न करने वाली, आवेश एवं ओज से पूर्ण है । एक उदाहरण 'पिपासा' नामक उपन्यास से उद्धृत है ।

शकुन्तला को उसका पति नरेन्द्र बहुत ही चाहता है तथापि वह कमलनयन की ओर आकृष्ट होती है । सुन्दर पति के होते हुए भी वह पर - पुरुष को चाहती है, फलत: पति की आकांक्षाओं को पूर्ण करने में वह असमर्थ है । इस बात का वह हृदय से पश्चाताप करती है । इसी अनुताप के आवेश में अस्वस्थ होने पर वह कहती है -" तुम मुझे इतना अधिक क्यों चाहते हो कि एक भी आशंका को अपने मन के भीतर ठहरने देना नहीं चाहते ? फिर यह भी एक विचित्र बात है कि सब कुछ जानते हुए भी तुम मुझे अस्वीकार नहीं करते । तुम कैसे पुरुष हो कि अपने धन को अपने आगे से खिसकता हुआ देखकर भी प्रतिस्पर्धा की उग्र कुत्सा से अपने आपको अक्षुण्ण ही रखना चाहते हो ? तुम मुझसे घृणा की चरम कर्कशता से क्यों नहीं पेश आते ? ऐसे निष्कपट, ऐसे दुर्लभ्य, ऐसे पत्नी-परायण तुम क्यों हो मेरे स्वामी ?"[2]

1- द आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य, डा० शुकदार कपूर, पृ० 481
डा० शुभकार कपूर ने दुखद प्रसंग के लिए 'कुअवसर' शब्द का प्रयोग किया है और अपनी बात की पुष्टि के लिए चम्पा की राजकुमारी तथा सोम की विदा के प्रसंग का उदाहरण देते हैं, किन्तु यह समीचीन प्रतीत नहीं होता । विदा के अवसर को , भले ही वह दुखद हो, कुअवसर नहीं कहा जा सकता ।

2- पिपासा, पृ० 121

उपर्युक्त उद्धरण में शकुन्तला के प्रलाप में उसके हृदय की व्याकुलता एवं वेदना को शब्दबद्ध करने में लेखक सफल रहा है । मर्मस्पर्शी, कोमल तथा आकर्षक शैली के द्वारा उसने चित्र को जीवन्त बना दिया है ।

(ग) आवेश शैली :

अपने उपन्यासों में जहाँ वाजपेयी जी किसी पात्र के आंतरिक रोष को व्यक्त करना चाहता है, वहाँ उन्होंने इस शैली का अवलम्ब लिया है । ऐसे समय हृदय के भावों को वे एक साथ नहीं उँडेल देते, वरन् पात्र के विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से रखने के लिए वक्तृत्व के साथ-साथ आवेश का भी उन्होंने योग दिया है । इसके परिणामस्वरूप उनकी शैली मर्मस्पर्शी तथा आवेशपूर्ण हो गई है। 'विश्वास का बल' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है ।

त्रिवेणी को व्यस्तता के कारण आफिस से घर आने में देर हो जाती है । तब अपने साले की पत्नी तथा जीवन की अनुपस्थिति में रमा के साथ सिनेमा जाना वह उचित नहीं समझता । परन्तु रमा सिनेमा के कार्यक्रम में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहती । इस बात पर त्रिवेणी को क्रोध आ जाता है और वह कहता है - "'नहीं हो सकता' जैसी बात का तुम्हारा यह गर्व मिथ्या है, रमा । मैं उस अहम् से घृणा करता हूँ, जो जीवन को हीन बनाता है । कान खोलकर सुन लो - मुरारी की दुलहिन और जीवन की अनुपस्थिति में तुम्हारा मेरे साथ सिनेमा देखने का हठ करना मुझे स्वीकार न होगा और मुझे इस बात का भय नहीं है कि तुम इस बात का बुरा मानोगी । क्योंकि जिस विराट जगत् में सूर्य दूर से छ हथेली के चार इंच के व्यास में छिप जाता है, वहाँ अपने को बड़ा समझ लेना मूर्खता ही नहीं, असभ्यता भी है ।"[1]

उपर्युक्त उदाहरण में त्रिवेणी के आंतरिक रोष को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का लेखक ने प्रयास किया है । त्रिवेणी के हृदय में अपनी साली

1- विश्वास का बल, पृ0 258

रमा के लिए स्थान था ; किन्तु लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् विवेक का उदय होने पर उसके मुख से निसृत ये आवेशपूर्ण उद्‌गार स्वाभाविक प्रतीत होते हैं ।

(घ) भाषण एवं सम्बोधन शैली :

इस शैली का निर्माण आवेश एवं प्रार्थना शैली के समन्वय से होता है । इस प्रकार की शैली में ओज एवं प्रसाद दोनों ही गुण रहते हैं । 'सपना बिक गया' नामक उपन्यास से एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन प्रतीत होता है ।

जांनिसार साहब आरोग्य-भवन का उद्‌घाटन करने के बाद मंच पर आकर भाषण देते हुए कहते हैं -"हम सभी लोग, जो मुल्क को आज़ाद देखने का एक सपना लेकर पैदा हुए थे, अब अपने कंधों और सिरों पर एक बड़ी जिम्मेदारी का बोझ ढोते हुए चल रहे हैं । कभी-कभी वह बोझ इतना भारी हो जाता है कि हम उसे सम्हाल नहीं पाते । हालांकि हम मन ही मन डरते रहते हैं कि वे लोग क्या कहेंगे, जो हमसे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखने लगे हैं। कभी-कभी वह बोझ हमारे सिर से अपने आप गिर भी पड़ता है । जब हमारी गर्दन उसे सम्हाल नहीं पाती, तो ज़ाहिर है कि वह डगमगा उठती है ।

"अब आप अगर सोचें कि हमारा यह सेवक नालायक है, तो मैं कहूँगा कि आपने जो जबान पायी है, उसे पूरा हक यानी अधिकार है कि वह जो चाहे करे । मगर इतना मैं जरूर कहूँगा कि आज की जमहूरियत आई मीन डेमाक्रसी यानी प्रजातंत्र के इस जमाने में कोई भी सेवक अपने पहले वाले मानी में गुलाम नहीं रह गया, बल्कि आप का सहायक और साथी बन गया है । उसे आपकी सहायता और सहयोग की जरूरत है । माना कि आपको दिक्कतें हैं, यह भी माना कि आये दिन कुछ मसले ऐसे भी आपके सामने आते रहते हैं, जिन्हें हम जल्दी हल नहीं कर पाते । पर कुदरत के इस नियम को आप क्यों भूल जाते हैं कि हर रात के बाद दिन जरूर आता है, हर तकलीफ के बाद सुख जरूर मिलता है ।

'--- हाँ, तो मैं कहने जा रहा था कि इस नादिर मौके पर जितना बड़ा काम आप शुरू करने जा रहे हैं, उसकी अहमियत देखते हुए, आप सबको कुछ कुरबानी तो करनी ही पड़ेगी । मुमकिन है, चंदा देने में आपको थोड़ी -बहुत तकलीफ भी हो ; पर यही सोचकर आप पूरे उत्साह और खुशी के साथ दान करें कि यह आप अपना काम है, अपने बच्चों के पनपने, उनके तन्दुरुस्त और मजबूत रहने और उद्योग-धंधों की शिक्षा पाकर अपने पैरों खड़े होकर समाज और देश का माथा ऊँचा करने का काम है । और अगर आपने इसको अपना काम समझा, तो मुझे पूरी आशा है कि आप एक दिन अपने मकसद में कामयाब होकर रहेंगे । जयहिन्द ।'[1]

प्रस्तुत उद्धरण में आवेशपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया है । इसमें ओज एवं प्रसाद दोनों ही गुण विद्यमान हैं । जहाँ दान करने की बात आई है, वहाँ प्रार्थना शैली भी इसी के अंतर्गत आ गई है । इस शैली के अन्य उदाहरण 'निमंत्रण'[2], 'भूदान'[3] आदि उपन्यासों में देखे जा सकते हैं । 'निमंत्रण' का भाषण अधिक लम्बा होने से उपन्यास में शैथिल्य आ गया है ।

वाजपेयी जी के कथा-साहित्य में व्यंग्य का अभाव-सा है । वे रोमांटिक कल्पनाओं के आदर्शवादी कलाकार हैं । अत: उनकी रोमांटिक कल्पना अपने कोमल एवं मधुर कलेवर में व्यंग्य की तीक्ष्णता और हास्य की मार्मिकता नहीं समेट पाती । उनकी इसी न्यूनता की ओर संकेत करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है -

'वाजपेयी जी की शैली व्यंग्यात्मक नहीं है ; यद्यपि जीवन के व्यंग्य को काफ़ी बेरहमी के साथ चित्रित करते हैं । उनका चित्रण क्रमपूर्ण व तटस्थता लिए हुए नहीं है और अक्सर यह शंका उत्पन्न करता है कि रचनाकार की व्यक्तिगत सहानुभूति भी अस्तव्यस्त जीवन की अस्तव्यस्त प्रवृत्तियों के प्रति है ।'[4]

1- सपना बिक गया, पृ0 322-23-24

2- निमंत्रण, पृ0 113-14-15

3- भूदान, पृ0 387-88

4- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी, 'वाजपेयी जी की कहानियाँ' शीर्षक से लिखे गये -आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लेख से । पृ0 20

व्यंग्य की यह त्रुटि उनकी भाषा-शैली को अधिक प्रभावशाली बनाने में अवरोधक सिद्ध हुई है। उनके उपन्यासों में इस शैली के बहुत कम उदाहरण प्राप्त होते हैं। एक उदाहरण उनकी व्यंग्यात्मक शैली का द्रष्टव्य है।

सुमन का पत्र प्राप्त होते ही, उसे भगाने में ठाकुर ने सहायता की है। यह ज्ञात होते ही, उसके पिता क्रोधित होकर ठाकुर के यहाँ जाते हैं और व्यंग्यपूर्ण शैली में कहते हैं -

"ठाकुर साहब आपने जो कृपा मेरे ऊपर की है उसका आभार प्रकट करके, आपको धन्यवाद देने के लिए, मैं अकिंचन अपने साथियों सहित उपस्थित हुआ हूँ।--- लीजिए, पढ़ लीजिए। जरा उच्च स्वर में पढ़ने की कृपा करें जिससे आपके साथ ये लोग भी समझ लें कि आप कितने कृपालु हैं। ---आपको कष्ट होगा। मैं ही पढ़कर सुनाये देता हूँ।"[1] प्रस्तुत उद्धरण में व्यंग्य ही व्यंग्य भरा पड़ा है। वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त व्यंग्यात्मक शैली का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस शैली का एक और उदाहरण 'चलते-चलते'[2] में भी उपलब्ध होता है। -

शैली के आंतरिक रूप के विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिस प्रकार भाव-परिवर्तन के साथ-साथ भाव के प्रकाशन में परिवर्तन आ जाता है उसी प्रकार वाजपेयी जी की शैली का आंतरिक रूप भी भावों के अनुरूप ही परिवर्तित होता रहा है। हमारे मन में विभिन्न भाव जागते हैं, तब उन भावों को व्यक्त करने वाली शब्दावली अनायास निःसृत होने लगती है, उसी तरह वाजपेयी जी के पात्र के हृदय में जब कोई भाव आता है, तब उसे प्रकट करने के लिए वह अनुकूल शब्दावली स्वतः साथ लिये आता है। इसी के फलस्वरूप उनके प्रत्येक भाव का रेखाचित्र बड़ा ही सजीव प्रतीत होता है।

1- कर्मपथ, पृ0 206

2- दे. चलते-चलते, पृ0 423

(3) शैली का मिश्रित रूप :

शैली के इस रूप के अंतर्गत वाह्य दृश्यों एवं रेखाचित्रों को रखा जा सकता है । वाह्य दृश्यों तथा विविध वस्तुओं के वर्णन के अंतर्गत उन सभी दृश्यों और वस्तुओं का परिगणन कर सकते हैं, जो हमारी चक्षुरिन्द्रिय के विषय हों । यहाँ हम सुविधा की दृष्टि से वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्राप्त वाह्य दृश्यों एवं विविध वस्तुओं के वर्णनों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं ।

(1) रूप चित्रण की शैली :

इसके अंतर्गत मनुष्य की चेष्टा, आकृति, रूप, क्रिया आदि के विभिन्न वर्णनों को ले सकते हैं । उपन्यासकार द्वारा वर्णित विभिन्न पात्रों के रेखाचित्र, उनके सौंदर्य-वर्णन आदि को इसमें रखा जा सकता है । वाजपेयी जी के रूप चित्रण बड़े ही सजीव एवं आकर्षक हैं । ऐसे स्थलों की भाषा-शैली सुगठित एवं चुस्त है । प्रत्येक शब्द नाप-तौलकर तराश करके ऐसे रखा हुआ होता है कि चित्र स्वयं साकार हो उठता है ।

रेखाचित्र एवं सौंदर्य वर्णन :

अपने उपन्यासों के पात्रों के रेखाचित्रों को साकार करने में वाजपेयी जी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । ऐसे चित्रों में पात्र का व्यक्तित्व तथा प्रत्येक अंग सुस्पष्ट एवं उभरा हुआ होता है । दादा ज्योतिस्वरूप का वर्णन यहाँ द्रष्टव्य है -

"दूसरा व्यक्ति लाला जी का दूर का रिश्तेदार होता था । उसके सिर पर एक पुरानी काली टोपी थी । अवस्था में वह लाला जी से बड़ा था । उसके दायें हाथ में सोने की एक अंगुठी थी, जिसमें पुखराज का नग जड़ा हुआ था । उसका कुछ ढ़ीला-ढाला टसर का कोट बंद गले का था, जिसमें संकोच जैसी मूक सिकुड़नें पड़ी हुई हुई थीं ।उसके आगे के दाँत गिर गये थे और सिर के ऊपर का चंदोवा मैदान की तरह

साफ हो चुका था । उसकी मूछें ही नहीं, सिर और भौहों के बाल भी सफेद हो गये थे । लेकिन उसका ललाट बड़ा प्रशस्त था और बोलते वाण एक ऐसे व्यक्तित्व की झलक उत्पन्न करता था, जो टूट सकता है, पर लच नहीं सकता ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में दादा का चित्र लेखक ने ज्यों का त्यों खींच दिया है । सिर के ये श्वेत बाल से उनकी आयु तथा अनुभव का अनुमान लगाया जा सकता है । उनके प्रशस्त ललाट से वे ज्ञानी थे, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है । इस छोटे से रेखाचित्र में उपन्यासकार ने सब कुछ कह दिया है । इसी प्रकार वाजपेयी जी के एक उपन्यास में प्राप्त एक नारी का भी चित्र देखने योग्य है । यथा -

'इस ललना के निकट जो वृद्धा बैठी है, उसके सिर के बाल पककर भागलपुरी रेशम का परिचय देते हैं । उसके बाएँ हाथ में सोने की अंगूठी दिखलाई पड़ रही है और दाये में तुलसी की माला । उसकी दृष्टि तो कभी-कभी इधर-उधर घूम भी जाती है, पर उसके होंठ गतिशील मनकों का साथ बराबर निभाते जा रहे हैं । उसके भाल पर चन्दन लगा है । और उसकी नाक की कील कुछ ढीली पड़ गई है । उसकी आँखें गड्ढों में धँस गई हैं, पर उसके चश्मे की कमानी सुनहली है । उसके नकली दाँत बतलाते हैं कि अभी उसे अधिक दिन जीने की पूरी आशा है ।"[2]

इस रेखा-चित्र में उपन्यासकार ने वृद्धा के व्यक्तित्व को साकार किया है । तुलसी की माला तथा गतिशील मनकों का साथ बराबर निभाते जाते होठों से उसकी धर्मप्राणता प्रकट होती है । वह अधिक दिन जीने के लिए आशान्वित है, यह भी लेखक ने नकली दाँतों के द्वारा बतलाकर उसके आंतरिक गुणों को इस चित्र में उभारा है ।

1- राजपथ, पृ0 12

2- धरती की साँस, पृ0 3

वाजपेयी जी के रेखाचित्र सजीव एवं पूर्ण होते हैं । उनमें चुस्ती एवं स्वाभाविकता भी होती है ; किन्तु कहीं-कहीं उनके पात्रों के रेखाचित्र इतने विस्तृत हो गये हैं कि उनकी सजीवता जाती रही है । स्थूल विवरणों के नीचे उनका व्यक्तित्व दब-सा गया है । 'राजपथ' में ऐसे रेखाचित्रों का बाहुल्य है ।

वाजपेयी जी ने एक साथ कई पात्रों के रेखाचित्र भी चित्रित किये हैं । ऐसे चित्र संक्षिप्त तथा चुस्त पाये गये हैं । पात्र के प्रत्येक अंग को लेखक ने सुघड़ता के साथ उभारा है । अतएव, उनके पात्रों का वाह्य रूप चित्र तो पूर्ण है ही, आंतरिक भावों के आलेखन और अंकन में भी लेखक को सफलता मिली है ।

(2) दृश्य चित्रण की शैली :

रूप चित्रण के अतिरिक्त इस वर्ग में इसी प्रकार के वाह्य दृश्य चित्रणों को रखा जा सकता है । इसके अंतर्गत महालय, मंदिर, नदी, वाटिका आदि के वर्णनों का समावेश होता है । वाजपेयी जी के उपन्यासों में दृश्य चित्रण भी अतीव सजीव तथा प्राणवान् है । जिस दृश्य का भी उन्होंने वर्णन किया करना चाहा है, उसका वर्णन बड़ी सफलता के साथ किया है । ऐसे स्थलों पर उनकी शैली विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक एवं कुछ मात्रा में काव्यात्मक हो गई है । पवित्र एवं रमणीय क्षेत्रों की रमणीयता का वर्णन करते समय लेखक ने तदनुरूप प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कोमल शब्दों से पूर्ण शैली का प्रयोग किया है । एक मकान के कक्ष का चित्र उन्होंने अपनी वर्णन शैली के द्वारा जिस सजीवता से हमारे समक्ष उपस्थित किया है, यह देखना असमीचीन नहीं होगा ।

"कमरा साढ़े पाँच और साढ़े सात फीट का होगा । दीवारें फीके आसमानी रंग से पुती हुई । दो द्वार हैं जिनके कपाट टूटदार हैं । द्वारों के बीच में छः फुट चौड़ा एक खम्भा है, जिसमें एक आला है । उसमें राष्ट्रपिता बापू की कांस्यमूर्ति, जिसमें वे हाथ में लाठी लिये हुए चलते दिखाये गये हैं । दायीं ओर एक बड़ा कैलेण्डर टंगा हुआ है, जिसमें प्रधानमंत्री नेहरू कुछ सोचने की मुद्रा में अपने ही मानस में खोये हुए बैठे

हैं । उत्तर और पूर्व के कोनों में लम्बी तिपाइयाँ, जिनमें हंसों की कलात्मक मूर्तियाँ सुशोभित हैं । इन्हीं तिपाइयों पर आगे धूपदानी है जिनमें खुली हुई अगरबत्तियाँ सौरभ बिखेर रही हैं । दक्षिणी दीवार के से लगा एक बड़ा तख्त पड़ा है, जिस पर गद्दा और खादी की सफेद चादर और मसनद है, वगलकार तकिये यत्र-तत्र पड़े हैं ।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण में कमरा, फर्नीचर, दीवार, आसमानी, खम्भा, कैलेण्डर, तिपाई, तख्त, मसनद आदि शब्द-प्रयोग से वस्तुस्थिति के विषय में स्पष्ट पता चल जाता है । इसमें कमरे का चित्र इतना उभरा हुआ है कि किंचित् प्रयत्न मात्र से अपनी कल्पना द्वारा उसको प्रत्यक्ष देख सकते हैं । इस कोटि के चित्रण वाजपेयी जी के प्राय: सभी उपन्यासों में प्राप्त होते हैं ।

प्रकृति के चित्रण में भी उसी से सम्बंधित शब्दावली का प्रयोग लेखक ने किया है । रेखा चित्र और प्रकृति चित्रण की भाषा में अंतर केवल इतना है कि प्राकृतिक चित्रण की भाषा काव्यात्मक हो गई है । वाजपेयी जी के उपन्यासों में से प्राकृतिक चित्रण का एक उदाहरण हम यहाँ दे रहे हैं -

'अमावस की रजनी जितनी श्याम सघन थी, उतनी ही शान्त-मूक । राजपथ के किनारे-किनारे श्वेत नीले प्रकाश के बल्ब, उच्च प्रासादों और वीथियों से, सागर की हिलोरों पर हौले-हौले हिलते-हिलते, रमा के संकल्प से कुछ अभिसन्धि -सी कर रहे थे । मैरीन ड्राइव के तट पर रत्नाकर का ज्वार सदा की भाँति उच्छल कौतुक-प्रदर्शन में लीन था ।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण में लेखक का यह प्रयत्न रहा है कि इसमें शुद्ध साहित्यिक शब्दों का ही प्रयोग किया जाय । यद्यपि अमावस्या के स्थान पर अमावस शब्द का प्रयोग

1- चन्दन और पानी, पृ0 47-48

2- विश्वास का बल, पृ0 222

इसमें किया गया है, तथापि वह अधिक कर्णप्रिय लगता है । इसके अतिरिक्त वाजपेयी जी के उपन्यासों में गाँव, नगर, कूप, बाज़ार, नदी, वृक्ष, सरोवर आदि के सजीव वर्णन प्राप्त होते हैं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी ने आवश्यकतानुसार अपने उपन्यासों में विविध शैलियों का प्रयोग किया है । उनकी शैली उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को प्रकट करने के लिए समर्थ है । उनकी शैली सरस, प्रांजल, रोचक, स्वाभाविक, सजीव तथा प्रवाहपूर्ण है । भाषा पर वाजपेयी जी का पूर्ण प्रभुत्व है, ऐसा कहा जाय, तो यह अत्युक्ति न होगी । वे लगभग 50 साल से निरन्तर लिख रहे हैं, तथापि प्रारंभ के तथा आज के उपन्यासों की भाषा में विशेष अंतर नहीं आने पाया है । सन् 40 ई० के पश्चात् लिखे गये उनके उपन्यासों में वाक्यों का गठन सुशृंखलित है, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है । वाजपेयी जी की भाषा प्रांजल, स्वाभाविक, मौलिक, परिमार्जित, पात्रानुकूल होती है । कहावतों- मुहावरों, लोकोक्तियों तथा सूक्तियों का प्रयोग उनके उपन्यासों की भाषा को अधिक सशक्त बनाता है । उनकी भाषा विशेषत: प्रसाद गुणमयी है । वाजपेयी जी ने अपनी भाषा में व्यंजना शक्ति का उपयोग सीमित मात्रा में किया है । वाजपेयी जी के उपन्यासों की भाषा-शैली के संबंध में विचार करने के पश्चात् अगले पृष्ठों में उनकी कहानियों की भाषा-शैली के सम्बंध में भी हम अपने विचार विस्तृत रूप से प्रस्तुत करेंगे ।

वाजपेयी जी की कहानियों में भाषा-शैली

साहित्य की किसी भी विधा में भाषा-शैली अनिवार्य तत्त्व है । भाषा और शैली दोनों अभिन्न तत्त्व हैं । भाषा-शैली के सम्बन्ध में प्रस्तुत अध्याय के आरंभ में ही विस्तारपूर्वक हम विचार कर चुके हैं, अत: उसके विषय में यहाँ पुन: कुछ भी कहना केवल पिष्टपेषण सिद्ध होगा ।

वाजपेयी जी का कहानी-क्षेत्र, काल की दृष्टि से, सन् 1922 ई० में 'श्री शारदा' में प्रकाशित उनकी प्रथम कहानी 'यमुना' से लेकर सन् 1968 ई० के ----- 'सारिका' में प्रकाशित 'सीढ़ियाँ' कहानी तक व्याप्त है । इतनी दीर्घ कालावधि में किसी भी कहानीकार की भाषा में परिवर्तन आना स्वाभाविक है, किन्तु वाजपेयी जी की भाषा में विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता । हमारी दृष्टि से इसके प्रमुख दो कारण हो सकते हैं - प्रथम, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, भाषा व्यक्ति की सांस्कारिक सम्पन्नता है । वाजपेयी जी के संस्कार बदलते विश्व के साथ परिवर्तित नहीं हो सके । द्वितीय, वाजपेयी जी का कलाकार कहानी-लेखन के प्रारंभ से ही भाषा के सम्बंध में सजग था, अत: शिल्प-विधि की दृष्टि से उसमें अधिक परिवर्तन संभव नहीं था ।संस्कार के सम्बंध में विचार किया जाय, तो वाजपेयी जी ने स्वयं ही स्वीकार किया है -"आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व जिस समय मैंने उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था, उस समय मेरी स्थिति एक रस-लोलुप व्यक्ति की -सी थी । नित्य चलते-फिरते जीवन में मैं केवल क्रीड़ा - कौतुक देखता था । भावना का सौंदर्य और रूप का आकर्षण मात्र मेरे अध्ययन का विषय था ।"[1] वाजपेयी जी के लेखनकाल के आरंभ के दिनों के सन्दर्भ में यह कहा गया है । वह युग छायावादी संस्कारों का था । प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय में हम देख चुके हैं कि साहित्य-क्षेत्र में वाजपेयी जी का प्रवेश एक कवि के रूप में हुआ था । नारी-सौन्दर्य उनके लिए वायवी कल्पना की मधुर अभिव्यंजना थी । उनके लिए नारी सदैव 'अनंगलता' रही है ।'झाँकी' का प्रेमांकुर सोचा करता है - 'उर्मिला ! वह मयूर कल-कण्ठिनी - वह अनंगलता -सी शोभन-उर्मिला !"[2] नारी का यह रूप

1- 'साहित्य-सन्देश, उपन्यास विशेषांक, अक्टूबर-नवम्बर-'40, पृ० 180
2- कनाड़ी का ताजमहल, पृ० 170

वाजपेयी जी के हृदय से नहीं जा सका । उनका कबाड़ी भी यही सोचता है - "एक अनंगलतिका के साथ मेरा परिचय है, यही कौन कम सौभाग्य की बात है ।"[1] ऐसा सौंदर्य उनके मानस-पुत्रों को हमेशा 'स्वप्नाविष्ट' कर देता है । "बस यही-भला समझो या बुरा- मेरे इस जीवन का असंयम है । जो चीज़ मधुर है- सुन्दर है, कोमल है, प्रिय किंवा प्राणोन्मादिनी है, उसकी ओर से तटस्थ या अन्यमनस्क मुझसे रहा नहीं जाता ।"[2] यही संस्कार उन्हें बारम्बार 'उत्तरंग' कर देता है । 'अनंगलतिका', 'स्वप्नाविष्ट', 'उत्तरंग'-यह क्रम वाजपेयी जी के संस्कार में, उनकी कहानियों में और उनसे भी अधिक उनकी कहानियों की भाषा में है । वस्तुत: यह वाजपेयी जी का छायावाद युगीन संस्कार है, जो उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गया है ।

ऐसा ही एक और संस्कार संमृदुता का है । यह संस्कार भी प्रकृति की दृष्टि से छायावादी है । वाजपेयी जी की जीवन के विषाय में विचार करते समय हम देख चुके हैं कि संघर्षपूर्ण जीवन भी उन्हें कटु नहीं बना सका है । "जिन प्रतिकूल परिस्थितियों में उन्होंने साहित्य-सेवा की है, उन परिस्थितियों में साधारणत: लोग टूट जाते हैं । वाजपेयी जी का जीवन कष्टों में बीता है । फिर भी उनका हृदय मानव-प्रेम से भरा है । यह बड़ी बात है कि कष्टों में जीवन-यापन करने वाले जन बहुधा कटु हो जाते हैं । भगवतीप्रसाद जी इस नियम के अपवाद हैं ।"[3] बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का उपर्युक्त कथन उपयुक्त ही है । युग की दृष्टि से विचार किया जाय, तो यह संस्कार उन्हें गांधी जी की ओर से प्राप्त हुए थे । वाणी की विनम्रता अन्यायी को पश्चाताप करने के लिए प्रेरित करती है । इस सत्य के प्रति उनकी आस्था 'यमुना' में उभरकर आती है । यमुना रोते हुए प्रायश्चित करती है -"मेरी यह अभिलाख रह गई कि मैंने तुमसे इतनी बातें कहीं, तू मुझे एक बात तो कह लेती, एक का भी जबाब दे तो दे लेती ।"[4] वाजपेयी जी की कहानियों की भाषा की मृदुता एक विशेषाता है । विषामतम

1- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 170

2- होटल का कमरा, 'उर्वशी' कहानी, पृ0 109

3- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ0 च

4- मधुपर्क, पृ0 192

परिस्थितियों में भी वाजपेयी जी के पात्र कटु नहीं होते । उनकी वाणी में आक्रोश और आवेग का होना संभव है, पर उसमें कटुता नहीं होगी । शालीनता उनकी वाणी में सर्वत्र विद्यमान रहती है । उसमें निर्भीकता अवश्य होगी, किन्तु कटुत्व नहीं होगा । 'जहाँ सभ्यता साँस लेती है' कहानी में अपनी पुत्री का आवारापन' पसंद न करने वाले पिता के क्रोध तथा उनकी नवभाषा की अनिष्ट कल्पनाओं का उनकी पुत्री नर्मदा निर्भीकतापूर्वक उत्तर देती है -"गई थी वहाँ, जहाँ सभ्यता साँस लेती है।" फिर बैग से सिविल मैरेज का एक कागज निकाल कर वह बोली -'यह लीजिए प्रमाणपत्र ।"[1] नर्मदा के इस उत्तर में जो व्यंग्य है, वह कहानी की संवेदना के परिप्रेक्ष्य में ही बोध्य है, जहाँ पिता तथा विमाता के सम्बंधों की विद्रूपता और समाज का पंक बिखरा हुआ है । इसी भाँति 'बाती और लौ' कहानी में सुधाकर अपने पर लगाये गये निराधार आक्षेप सुनकर क्रोधावेश में बोतल फोड़ देता है, तब ललित को आशंका हो जाती है, 'इसके बाद अब शायद नम्बर मारपीट का आ रहा है क्यों ?' किन्तु बाहर से शांत सुधाकर कहता है - 'जी नहीं, मैं इतना गिर नहीं सकता । तुमने मेरे चरित्र पर हमला किया था । उसी का यह एक छोटे टुकड़े की शक्ल का उत्तर था ।---"[2]

यह शालीनता वाजपेयी जी की कहानी की भाषा को संस्कार से प्राप्त हुई है । इसका एकाध अपवाद मिल सकता है । 'जब सत्य ने काट खाया' कहानी से एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

"ले चने चबा ले, चने चबा ले ।" अपरूप होकर, टेढ़ा मुँह करके लक्खी बोला -" हम नहीं चबायेंगे चने । ---नहीं । कभी फीस नहीं, कभी खड़िया - मिट्टी नहीं - धोती फटी है, कोट बनवा न सकी । जूता पहनने को तरस रहा हूँ । आज कहती है - रोटी भी नहीं है । माँ बनती है । तू मर क्यों नहीं जाती । हम भीख माँग लेंगे ।"[3]

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 261

2- वही, पृ0 254

3- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 76-77

स्वाभाविकता के निर्वाह में लक्खी के मुँह से लेखक ने कटु बात तो कह दी, किन्तु वाजपेयी जी का चिंतक सोचने लगता है - 'मनुष्य शैतान बन गया है । विद्रोह को लज्जा ने पकड़ लिया है । उसने उससे ऐसी कड़ी बात कह दी ।'[1] और शीघ्र 'लक्खी दौड़कर माँ की गोद में सिर छिपाकर रो पड़ता है - अम्मा, अम्मा ।'[2] किसी कहानी में कहीं क्षणिक कटुता आ गई है, तो इस तरह पश्चाताप से शीघ्र उसका भावुकता - कोमलता में पर्यवसान हो गया है ।

वाजपेयी जी की कला-सजगता के कारण ही उनकी भाषा में प्राय: परिवर्तन नहीं दिखाई देता । एक ही क्रिया होने पर भी यदि परिस्थिति तथा पात्रों में अंतर हो , तो वाजपेयी जी की भाषा में भी अंतर प्राप्त होता है । अपनी बात की पुष्टि के लिए हम यहाँ एक ही क्रिया के दो भिन्न दृश्य प्रस्तुत कर रहे हैं ।

(1) 'मोहन ने निकट आकर माँ का हाथ देखा । नाड़ी मंद गति से चल रही थी । और क्रमश: उसकी गति-विधि मंद होती जा रही थी - शरीर में ज्वर न था । थोड़ी-सी हरारत शेष थी । हाथ-पैर ठण्डे हो चले थे । मोहन ने माँ की स्थिति को देखकर कहा- 'हालत अच्छी नहीं है । कुशासन देना चाहिए ।'[3]

(2) 'टिकुली का हाथ जैसे चहक गया हो । एक प्रकार का अमांगलिक विस्मय, विद्युद्धारा की भाँति, उसकी देह-भर में फैल गया । नाड़ी का ज्ञान तो उसे था नहीं, तो भी यह निश्चय उसे हो ही गया कि ज्वर ऐसा मामूली नहीं है ।'[4]

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न संवेदना है । प्रथम में माँ-बेटे का चिरंतन और द्वितीय में नारी-पुरुष का पवित्र सम्बंध है । प्रथम में धैर्य तथा स्थैर्य एवं द्वितीय में आशंका तथा आवेग है । ये सभी संवेदना-सूत्र प्रथम उदाहरण के भाषागत शैथिल्य तथा द्वितीय उदाहरण के भाषा-प्रवाह में सहज ही व्यक्त हो

1-2- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 76-77

2- मधुपर्क, पृ0 193

3- हिलोर, पृ0 16

जाते हैं । प्रथम उद्धरण की भाषा-शब्द योजना, उनकी ध्वनि-अनुभव की प्रौढ़ता को व्यंजित करती है, तो द्वितीय में मन के आवेग को भाषा चित्रमयता प्रदान करती है ।

पहले भी अनेक स्थलों पर हम यह उल्लेख कर चुके हैं कि वाजपेयी जी का साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश एक कवि के रूप में हुआ था । जहाँ तक वाजपेयी जी की कहानियों की भाषा में काव्यात्मकता का प्रश्न है, उनकी कहानियों में ऐसे अनेक स्थल प्राप्त होते हैं, जो किसी गद्य-काव्य से कम नहीं है । उनकी अंतिम चरण की कहानियों में अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता के कारण आरंभिक कहानियों की अपेक्षा उनमें कुछ अंतर अवश्य आ गया है । काव्यमय भाषा का यहाँ एक अंश 'उपहार' कहानी से दिया जा रहा है ।

" और मेरे गार्हस्थ्य-जीवन का यह कैसा सफल स्वरूप है ।

किन्तु जो प्रकाश रजनी के अंतर से फूटा हुआ है वह अंधकार क्यों है ?

कौन कहता है कि वह अंधकार है ? क्या अब भी किसी में इतना साहस है कि वह उसे अंधकार कह सके ?

किन्तु यह बात तो तुमने अपने आपको देखकर कह डाली है ; क्योंकि तुम एक प्रकार के अकल्पित स्वप्न हो ।

किन्तु यह तो एक कविता हुई । और इस विमला के भीतर जो नारी है, वह तो वैसी उस प्रकार की निरी कविता नहीं है । उसका एक शरीर है, एक हृत्पिंड । -----

---- न, यह बधाई मेरे लिए नहीं है, नहीं है ।

\+ \+ \+

झर झर झर ।

ये आँसुओं के बूँद हैं कि सुधाण्वि के मोती ?

\+ \+ \+

झर झर झर ।

ये अमृत के बूँद क्रमागत रूप से क्यों आ रहे हैं ? यों झरने से बूँद तो निरन्तर आ सकते हैं ; किन्तु इस प्रकार के अमृत-बूँदों को वह कहाँ से लायेगा ? और उनके निस्राव के साथ यह नि:स्वन कैसा है । ये रुदन की सिसकियाँ हैं कि निर्झर की उत्ताल ऊर्मिमालाओं का अजस्र मुखरित महोल्लास ।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण में भाषा की काव्यमयता 'झर झर झर' की आनुप्रासिक ध्वनि में मुखर हो गई है । 'ये आँसुओं के बूँद हैं कि सुधाण्वि के मोती ?' की आलंकारिकता वर्णन के सौष्ठव तथा भाषा की चमत्कारिक शक्ति को द्विगुणित कर देती है ।

संवेदना का सम्प्रेषण - समन्वित तथा प्रभविष्णु -कहानी की अपेक्षा है । बिम्बात्मकता एवं मुहावरे उसके दो उपादान हैं । बिम्ब किसी वस्तु, स्थिति या भाव का मूर्तन करता है, जबकि मुहावरा 'भंगिमापूर्ण अर्थ-प्रकाशन का ढंग' है ।[2] इन दोनों का सुन्दर समन्वय वाजपेयी जी की भाषा में प्राप्त होता है । अपनी कहानियों में वाजपेयी जी ने दोनों का आकलन चमत्कारपूर्ण ढंग से किया है । उनकी कहानियों में कहानीपन सदैव विद्यमान रहा है और भाषा की सजीवता तथा सशक्तता को चेतना ने दबने नहीं दिया । 'शैतान' कहानी समाज के एक दोष की कहानी है । उसकी पीठिका में प्रकृति का मूर्त चित्र है -

"हाँ तो, उस दिन बादल अलबत्ता आसमान पर छाये रहे, लेकिन पानी इतना ही बरसा कि एक अच्छा-खासा चिड़काव जलती जमीन पर हो गया, और अन्दर से भाप-सी निकलने लगी । पानी हवा बंद रहने से एक तो यों ही उमस कम थी, दूसरे अब उस पर नुकता लग गया ।"[3]

प्रस्तुत प्रकृति-वर्णन में स्थूल स्थिति का अंकन किया गया है । वाजपेयी जी की लेखनी सूक्ष्म मन: स्थिति के बिम्ब का निर्माण करने में कभी तृप्त नहीं होती । मन के

1- होटल का कमरा, पृ0 85- से 87

2- 'भाषा-सुधा', सितम्बर, 1966 , पृ0 67

3- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 226

आस्थाजन्य प्रश्न तथा उसके उत्तर का सम्प्रेषाण लेखक ने जिस पटुता से किया है, वह अविस्मरणीय है । उसमें कविता तो है ही, किन्तु कहानी उससे अधिक है । इसके अतिरिक्त उसमें साधारणीकरण तथा सम्प्रेषाण भी है । 'अँधेरी रात' कहानी से यहाँ एक उदाहरण दिया जा रहा है ।

'किन्तु इस अमृत के भीतर समाविष्ट - परिप्लुत-जो कलुष है, विष है, कदर्य है ; वह ?'

'कहाँ है, कहाँ है ?'

वह चारों ओर देखकर जैसे कोने-कोने से पूछने लगा । पूछने लगा कि बोल री छत की कड़ी, कजली ने अपने को कब धोखा दिया ?

उसे प्रतीत हुआ कि वे चिल्ला-चिल्लाकर कह रही हैं कि यहाँ वह नित्य आत्मवंचना करती है ।

उसने मन-ही-मन पूछा-'कह दे री ताक की घड़ी कि कब तू टूट गई ? - और कैसे ?'

उसे प्रतीत हुआ कि उस घड़ी की प्रत्येक सूई उसके बदन से चुभ-चुभकर बतला रही है कि घड़ी-घड़ी की बात मैं जानती हूँ । ----

---- तब घृणा-ही-घृणा उसके चारों ओर फैल गई ।'[1]

प्रस्तुत उद्धरण गद्य-गीत से कम नहीं है । इतनी सम्प्रेषणीयता इसमें है । इसके अतिरिक्त कहानीपन, कहानी की मूल संवेदना तथा भावगत स्थिति का आशुचित्रांकन भी इसमें है ।

सम्प्रेषणीयता का एक अन्य सफल माध्यम है मुहावरों का प्रयोग । सामान्य शब्द-योजना से जो बात व्यक्त नहीं हो सकती, वह मुहावरों के उपयुक्त प्रयोग से व्यंजित हो जाती है । जहाँ तक स्वाभाविकता और पात्रानुकूलता का सम्बंध है, वाजपेयी जी अपनी भाषा में आवश्यकतानुसार अंग्रेजी का प्रयोग भी कर लेते हैं । 'जहाँ सभ्यता साँस लेती है' कहानी में टाफी के टुकड़े भेंट किये जाने पर नर्मदा ने कारण पूछा, तो -

---

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 143-44

"युवक ने अंग्रेजी में उत्तर दिया -'सिम्प्ली टू प्रजेंट यू सम स्वीट ड्राप्स ।'

नर्मदा पहले मुस्करायी, फिर गंभीर हो बोली-'पर अगर वे टुकड़े कड़ुवे निकले ------- ।'

'तो मेरे मुँह पर काजल पोत देना । चुल्लू भर पानी डूब मरने के लिए मिल जायगा ।"[1]

इसमें स्वाभाविकता का निर्वाह दर्शनीय है । वार्तालाप के आरंभ में अपनी प्रियतमा को प्रभावित करने की लालसा और फिर आहत दर्प की मुहावरायुक्त फुत्कार। वाजपेयी जी की कहानियों में मुहावरों का समीचीन प्रयोग हुआ है । वाजपेयी जी की कहानियों में प्रयुक्त कुछ अन्य मुहावरे भी द्रष्टव्य हैं -

"मेरा कहना था कि श्यामबाबू के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगीं ।"[2]

"एक दिन ये बबुआ बड़ा होगा, दुलहिन घर में आयेगी । तुम्हारा कलेजा बांसों उछलेगा ।"[3]

"रंजना हक्की-बक्की रह गई ।"[4]

"मैं पूछता हूँ कि क्या तेरी बुद्धि पर पत्थर पड़ गया है, जो तू अपना भला-बुरा तक नहीं सोच सकती ?"[5]

"फिर जब मेरी जबान खुलेगी, तब उन्हें आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा ।"[6]

"फूल रोना और मुँह लटकाना तो जानती ही न थी ।"[7]

"----- आप तो चिकोरी का जबाब बकोटे से देते हैं ।"[8]

1- स्नेह,बाती और लौ, पृ0 256

2- बात एक नाते की, पृ0 60

3- उतार-चढ़ाव, पृ0 60

4- होटल का कमरा, पृ0 12

5- खाली बोतल, पृ0 33

6- स्नेह,बाती और लौ, पृ0 268

7- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 36

8- वही, पृ0 40

कहानी में मुहावरों के प्रयोग के सम्बंध में एक बात देखी जा सकती है कि आज की कहानी में मुहावरों का प्रयोग प्रेमचंद की कहानियों जैसा मुहावरेदार नहीं है । 'कहानी जैसे-जैसे लोकजीवन से भटककर व्यक्ति मन के संत्रास और कुण्ठाओं की ओर आई है, वैसे-वैसे मुहावरे का प्रयोग अल्प होता गया है । पात्रों का शैक्षणिक स्तर बढ़ने से मुहावरे जीवन से उठते जा रहे हैं ।'[1] यह बात सही है कि शिक्षित व्यक्ति मुहावरे-लोकोक्तियों आदि से दूर जा रहा है, किन्तु उसके वार्तालाप में सूक्तियाँ लोकोक्तियों का स्थान ग्रहण कर सकती है । वाजपेयी जी की कहानियों में कहीं- कहीं इस प्रकार के अतीव आकर्षक प्रयोग प्राप्त होते हैं । यथा -

"उँहु ! उसकी मैं चिन्ता नहीं करती । भगवान् तथागत ने एक बार एक प्रवचन में कहा था -' किसी भी विपत्ति का प्रभाव अधिक से अधिक तीन दिन तक रहता है ।'"[2]

प्रस्तुत उद्धरण में भी पहले दिये गये मुहावरेदार दृष्टांत की भाँति वक्रता, भंगिमा तथा आकर्षण है । पात्रानुकूलता का गुण भी इसमें है । ऐसे प्रयोग कहानी की भाषा का नया आयाम होने के कारण प्रशंसनीय है ।

व्यंजना वाजपेयी जी की कहानियों की भाषा का महत्वपूर्ण गुण है । जो बातें वे स्पष्ट कर नहीं सकते, उन्हें व्यंजित कर देते हैं । 'जहाँ सभ्यता साँस लेती है' से यहाँ एक उदाहरण दिया जा रहा है ।

एक जवान लड़की अपने बिस्तर में लिहाफ में मुँह छिपाने की कोशिश करती हुई पड़ी है, साथ के कमरे में उसके पिता तथा अपने से ही एक वर्ष बड़ी विमाता के स्वरों की फुसफुसाहट आ रही हो ; लड़की के न चाहने पर भी उनकी बातें सुनाई देती हों - इससे विषाम परिस्थिति और क्या हो सकती है । वाजपेयी जी व्यंजित भी करते हैं और संभाल भी लेते हैं -

"इतने में फिर फुसफुसाहट के स्वर आये -' नहीं, नहीं, अब नहीं ! फिर---

---

1- कहानी दर्शन, मालचंद्र गोस्वामी, 'प्रखर' पृ0 213

2- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 261

फिर एक सन्नाटा खिंच गया । कहीं कुछ नहीं । --- फिर बिल्ली के कूदने का-सा स्वर । फिर पैरों में पड़े लच्छों के बजने की आवाज़ ।'[1]

'इन्द्रजाल' कहानी से एक अन्य दृश्य अर्ध-अनुभूत भाव के सम्प्रेषण का दिया जा रहा है । अनु को घर जाती देखकर दिलीप माँ से कहता है -'माँ, अनु घर जा रही है ।'---अनु ने 'एक बार दिलीप की ओर देखा, एक बार चाची को । फिर नीचे की ओर मुँह करके चाची के पास आकर खड़ी हो गयी ।' इस अर्धानुभूति को व्यंजित करने के लिए चाची ने उसकी ठुड्डी उठाकर वाम कपोल पर प्यार की एक हल्की-सी चपत जमाकर जो शब्द - 'ठगिनी कहीं की' [2] - उनसे अधिक सशक्त शब्द-माध्यम उपलब्ध नहीं हो सकता था । यह सशक्तता वाजपेयी जी की भाषा की विशिष्टता है ।

अपने उपन्यासों की तरह वाजपेयी जी की प्राय: सभी कहानियों में तत्सम शब्दों का प्रयोग विपुलता से मिलता है । संस्कृत प्रचुर शब्दों से युक्त एक उदाहरण 'वन श्री' कहानी से यहाँ दिया जा रहा है -

'भगवान् भास्कर की भुवन-मोहिनी कनक किरणावली अस्ताचल में अपना अस्तित्व छिपा रही थी । वासंती का सांध्य-समीरण मंदगति से डोल-डोलकर नवागत पथिकों का स्वागत् कर रहा था । इधर मधुरालापा कोकिल रसाल की डाल पर बैठ कर वन श्री के साथ अठखेलियाँ कर रही थी, तो उधर मदमाते मधुलिट इतस्तत: अपनी गूँज माधुरी बिखेर रहे थे ।'[3]

वाजपेयी जी की कहानियों की भाषा की एक विशेषता है उसकी पात्रानुकूलता । उनके मुसलमान पात्र उर्दू भाषा का प्रयोग करते हैं, जो स्वाभाविक प्रतीत होता है । कुछ उदाहरण यहाँ देना हमें समीचीन प्रतीत होता है ।

'----कसमिया कहता हूँ, मैं बुत-परस्त हूँ । हर एक दिलवर बुत-परस्त है ।'[4]

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 261

2- होटल का कमरा, पृ0 91

3- मधुपर्क, पृ0 166

4- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 86

" कैसे बतलाऊँ कि किस तरह मेरे ज़िस्म का ज़र्रा-ज़र्रा उनके कदमों पर हरदम निसार रहता है ?"[1]

"अचानक बीवी की तबियत नासाज़ हो गई । आप कल फिर तशरीफ लायें, बड़ी इनायत होगी ।"[2]

पारसी प्राय: अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं ; अत: वाजपेयी जी ने भी अपनी 'नियम-नियम कायदा-कायदा' कहानी के पारसी सज्जन के मुँह से अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करवाया है ।[3] इसी प्रकार उनकी कहानियों के बालक पात्र तोतली भाषा बोलते हैं । उदाहरण के लिए 'मिठाई वाला'[4], 'अधिकारपत्र'[5] आदि कहानियाँ देखी जा सकती हैं । 'सूखी लकड़ी' कहानी का राधे दार्शनिक स्वभाव का व्यक्ति है ; अत: उसकी कथनों की भाषा भी दार्शनिक बौझिलताओं से पूर्ण पायी जाती है । यथा -

'तो राधे, इस विराम का अर्थ क्या है ?'

'विराम का अर्थ ! हाँ, है क्यों नहीं ! - वह सूखी लकड़ी ।'

'विराम का जो अर्थ है, वही इस मन्दता का भी है , राधे । गति भी मंदता को प्राप्त होकर यहाँ विराम बन गई है ।"[6]

इसी प्रकार उनकी 'एकाकी', 'महापुरुष' तथा 'विच्छेद' आदि कहानियाँ भी दार्शनिक स्वभाव के पात्रों के कथनों की भाषा के कारण बौझिल बन गई है । इसके कारण पाठक ऊब जाते हैं । पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग से भाषा स्वाभाविक बन पड़ी है ; किन्तु कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें लेखक ने भाषा का प्रयोग करते

1- पुष्करिणी, पृ0 21

2- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 33

3- दे.स्नेह बाती और लौ, पृ0 54

4- वही, पृ0 3-4

5- दे.मधुपर्क, पृ0 50-51

6- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 30

समय पात्र का ध्यान नहीं रखा है, इसके परिणामस्वरूप भाषा में अस्वाभाविकता आ गई है। 'आत्मरस' कहानी की हीरन की आयु लगभग बारह वर्ष की है, तथापि जिस भाषा का प्रयोग उसने केशव तथा सतीश के साथ के वार्तालाप में किया है,[1] वह अस्वाभाविक प्रतीत होता है। भाषा के अनुपयुक्त प्रयोग से वह कृत्रिम हो जाती है। 'ज्वाला' कहानी में मधुमान के बाद गोकुल एक ओर जहाँ अनाप-शनाप बकता रहता है, वहाँ दूसरी ओर उससे काव्यमय भाषा बुलवाकर लेखक ने भाषा की स्वाभाविकता को नष्ट कर दिया है। शराब पीने के बाद क्रोधित गोकुल नरगिस के गाल पर सोडा वाटर की बोतल दे मारता है और वह बेहोश हो जाती है, तब गोकुल कहता है -

"नाराज हो गई हो! ------ स्वर्ग और नरक तुम्हारे इस द्वार पर पहरा देते हैं। जब कामना के पंख खुल जाते हैं और मनुष्य अपने आपको सदा के लिए मुक्त और निर्बन्ध देखता है, तब इस संसार और सभ्यता के घनावरण की छाया में तुम्हीं, मेरी उर्वशी, अपने लोल लास्य की उन्मद [illegible] लहरों से, जीवन की सारी हीनता, अभावों की सारी निर्ममता, कलुष और उसका कुटिल अट्टहास, कालिमा और उसका समस्त फुत्कार हर लेती हो। ---"[2]

प्रस्तुत उद्धरण की भाषा पात्र तथा परिस्थिति के अनुकूल नहीं है, अत: इसमें कृत्रिमता आ गई है।

वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों की भाषा में कर्ता, कर्म तथा क्रियापद के क्रम का विशेष आग्रह नहीं रखा है। जिन वाक्यों में ऐसी क्रमहीनता पायी जाती है, ऐसे कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

"माँस, रक्त और हड्डियाँ मेरी लोहा है या लकड़ी!"[3]

इस वाक्य में सर्वनाम मध्य में दिया गया है।

"ठीक ही कहा था उन्होंने।"[4]

1- दे कबाडी का ताजमहल, पृ0 131-32

2- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 170

3- वही, पृ0 144

4- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 42

इसमें सर्वनाम वाक्य के अंत में पाया जाता है ।

"हत्या की है तुमने ।"[1]

इस वाक्य में क्रिया को कर्ता से पूर्व स्थान दिया गया है ।

"था कमी आँसुओं का सोता ।"[2]

क्रिया का स्थान इसमें वाक्य के आरंभ में है ।

"वह पहुँचा एक घर में ।"[3]

प्रस्तुत वाक्य में क्रिया मध्य में है । इन सभी वाक्यों में कर्ता, क्रिया आदि अपने-अपने उचित स्थान पर नहीं है, तथापि इस क्रमहीनता से न तो वाक्य समझने में किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित होती है, न ही भाषा के सौंदर्य में बाधा पहुँचती है।

इन सब गुणों के होते हुए भी वाजपेयी जी की कहानियों की भाषा सर्वथा निर्दोष नहीं है । व्याकरण सम्बंधी हुए अनेक दोषों ने उनकी भाषा को अशुद्ध बना दिया है । यहाँ हम मुख्यरूप से वाजपेयी जी द्वारा हुए लिंग-दोष देखेंगे ।

लिंग दोष :

वाजपेयी जी की कहानियों के वाक्यों में लिंग-विपर्यय बहुधा प्राप्त होता है ।

(1)"पानी यद्यपि बरस रहा था, फुहार गिर रहा था, तो भी वह रेन-कोट पहनकर और छाता लेकर मकान से निकल पड़ा ।"[4]

फुहार गिर रही थी होना चाहिए ।

(2)"फिर उसने अपना जेब देखा । रेनकोट के भीतर सिल्क कोट का जेब पहले उसने ऊपर से टटोला ।"[5]

इसमें 'अपनी जेब देखी' तथा 'सिल्क कोट की जेब --- टटोली' होना चाहिए ।

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 148

2- वही, पृ0 149

3- वही, पृ0 180

4- उतार-चढ़ाव, पृ0 147

5- वही, पृ0 148

(3)" किवाड़ पर ज़रा-सा आहट हुआ ।"[1]

"जरा -सी आहट हुई ।" होना वाहिए ।

(4)"इधर कौशल की आँखों से आँसुओं के बूँद टपक रहे थे ।"[2]

"आँसुओं की बूँद टपक रही थीं" होना वाहिए ।

(6)"तभी तो ज्यों ही यह मेरे घर आया, त्यों ही इसके इच्छानुसार मैं साथ हो लिया ।"[3]

"इसकी इच्छानुसार" होना वाहिए ।

वाजपेयी जी की भाषा के दोषों के विषय में यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उपर्युक्त दोष का कारण उनका अज्ञान नहीं, वरन् असावधानी ही है । यदि भाषा ~~संवारने~~ सँवारने में वाजपेयी जी ने किंचिन्मात्र भी सावधानी से कार्य लिया होता, तो उनकी भाषा में जो दोष रह गये हैं, उनका निराकरण असंभव न था ।

वाजपेयी जी की कहानियों की भाषा के विषय में विवेचन करने के पश्चात् अब उनकी कहानियों की शैली के विषय में विचार करना भी समीचीन प्रतीत होता है । वाजपेयी जी की कहानियों की संख्या इतनी अधिक है कि किसी एक शैली का प्रयोग उनमें नहीं पाया जाता । आवश्यकतानुसार उन्होंने विविध शैली में अपनी कहानियों की रचना की है, इतना ही नहीं, एक ही कहानी में एकाधिक शैली का भी प्रयोग किया है । वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों का सृजन प्रमुखत: वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, तथा मिश्रित शैली में किया है । इस सम्बंध में विस्तृत विवेचन हम इसी खण्ड के द्वितीय अध्याय में कर चुके हैं । अपने उपन्यासों की भाँति वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में भी विविध शैलियों का प्रयोग किया है । यहाँ हम शैली के वाह्य रूप के अंतर्गत काव्यात्मक, अलंकृत तथा आंतरिक शैली के अंतर्गत विश्लेषणात्मक, आवेश, प्रलाप शैली आदि एवं

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 138

2- मधुपर्क, पृ0 51

3- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 225

मिश्रित शैली के अंतर्गत [illegible] रूप चित्रण और दृश्य चित्रण की शैली पर क्रमश: सोदाहरण अपना विवेचन प्रस्तुत करेंगे ।

मूलत: वाजपेयी जी कवि हैं, यह हम इस अध्याय के प्रारंभिक पृष्ठों में देख चुके हैं । उनके इस संस्कारों का प्रभाव उनकी शैली पर भी हुआ है । इसके परिणाम-स्वरूप कहानी पढ़ते समय भी हमें ऐसी अनुभूति होती है कि जैसे हम कविता पढ़ रहे हैं । अपने कथन की पुष्टि के लिए 'राजपथ' कहानी से यहाँ एक उदाहरण हम दे रहे हैं -

"आज क्यों इस समय आकाश कुछ-कुछ धुएँ के रंग का हो रहा है ? क्यों कहीं गहराई जो थोड़ी देख पड़ती है, उसमें कालिमा अधिक बोलती है और क्यों कहीं हलकापन जो लक्षित होता है, तो धुंधलापन भी उजला-उजला-सा लगता है । क्यों घनों की यह श्यामलता कोरों पर आकर श्वेत झलक मारती है । क्यों बीच-बीच में उजले-उजले धब्बे ऐसे फूट पड़े हैं, जैसे कोई विद्युत-पिंड हो । नगर के बीच लम्बी-लम्बी अट्टालिकाओं के ऊपर हरीतिमा की जो ऊँची-नीची पंक्ति दीख पड़ती है, वह नीम के सघन वृक्षों की शिरोराशि क्यों है ? क्यों धीरे-धीरे संध्या रजनी के दुकूल में छिपी जा रही है और क्यों चंचल विहंगावलियाँ दक्षिण से उत्तर की ओर द्रुतगति से उड़ी जा रही हैं ?"[1]

प्रस्तुत गद्यांश पढ़ने पर ऐसी अनुभूति होती है कि जैसे हम कोई गद्य-काव्य पढ़ रहे हैं । ऐसे कितने ही स्थल वाजपेयी जी की कहानियों में पाये जाते हैं , जो गद्य-काव्य का-सा आनंद देते हैं ।

अपनी कहानियों की भाषा को निखारने के लिए वाजपेयी जी ने विभिन्न अलंकारों का अवलम्ब लिया है । अलंकारों के प्रयोग से भाषा में निखार तो आ ही गया है, साथ-साथ वातावरण भी सजीव हो उठा है । इस प्रकार की अलंकृत शैली कविता के अधिक निकट पहुँच गई हो, ऐसा प्रतीत होता है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

(1)" जब तक मैं हूँ, तब तक 'मय' भी साथ चलेगी, फिर जब मैं ही न रहूँगा, तो 'मय' कहाँ से आयेगी, किसके पास आयेगी !"[2]

1- होटल का कमरा, पृ0 33-34
2- वही, पृ0 118

(2)"मन भर लकड़ी का गट्ठर सिर पर लादे हुए आगे-आगे रमजानी चला ; पीछे-पीछे भारी हो रहे मन को लेकर राधे ।"[1]

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में श्लेष का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

(3)"आकांक्षाओं का सरोवर सूख गया है ।"[2]

इसमें रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है ।

(4) "सोना तो जीवन भर है । एक बार रात भर जागरण में बिता सकूँ, तो यह रात सोने की न हो जायगी ?"[3]

यमक अलंकार का यह उत्कृष्ट उदाहरण है ।

(5) वसन्त आया और कोने-कोने में झाँककर चला गया । वर्षा की रिम-झिम रातें इठलाती हुई आयीं और मुस्कराती हुयी चली गईं ।"[4]

अंग्रजी भाषा से सजीवारोपण(Personification) अलंकार इसमें प्रयुक्त हुआ है । वसंत एवं वर्षा की रातों को सजीव मानकर उनका वर्णन किया गया है । इस अलंकार का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है -

(6)"एक बार बिजली लपकी, तो इमली का पेड़ एक झलक में जैसे अपने आप बोल उठा -"मैं अस्सी वर्षों से इसी प्रकार खड़ा हूँ । ऐसी आँधियाँ हर साल आया करती हैं । रात-बिरात बिजली न चमके, तो इस निर्जन प्रान्त में काली-काली रजनी के बीच मेरा यह हरा-भरा विशालकाय रूप कौन देख पाये ।"[5]

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 34

2- बात एक नाते की, पृ0 70

3- वही, पृ0 43

4- होटल का कमरा, पृ0 22

5- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 168

इसके अतिरिक्त 'होटल का कमरा' नामक संपूर्ण कहानी इस अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है ।"[1]

(7)" रुक इसलिए नहीं जाते कि रुकना चाहते हैं । रुक इसलिए जाते हैं कि रुकना नहीं चाहते ।"[2]

प्रस्तुत उद्धरण में विरोध अलंकार का प्रयोग किया गया है ।

(8)" फूल -सा कोमल जिसका शरीर, गुलाब के गुच्छे जैसा सुन्दर खिला हुआ जिसका मुखड़ा और पूर्णिमा की चंद्रिका-सी जिसकी कांति, उसे भी खाने-पीने का कष्ट ।"[3]

इसमें उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में अलंकृत शैली का उपयोग कहानी के कथा-प्रवाह को स्पष्ट करने, चरित्रों को उभारने तथा भावों को निखारने के लिए किया है । अलंकारों का प्रयोग भाषा में स्वाभाविक रूप में हुआ है । उनके प्रयोग से कहानी को किसी प्रकार की हानि नहीं हुई , किन्तु उसकी भाषा के सौंदर्य में वृद्धि हुई है ।

वाजपेयी जी के मूक दिखाई देनेवाले पात्र भी भीतर से शांत नहीं है । ऐसे पात्रों के अंतर्मन तक प्रवेश करके उन्होंने पात्र के मानसिक अंतर्द्वन्द्व के चित्र अपनी कहानियों में प्रस्तुत किये हैं । जहाँ अपने चिंतनशील पात्रों के अंतर्द्वन्द्वों का चित्रण लेखक ने विश्लेषणात्मक शैली का आश्रय लेकर किया है, वहाँ इसकी भाषा मृदु, सजीव, स्पष्ट एवं चित्रात्मक है । वाजपेयी जी की सन् 1950 के बाद की कहानियों में ऐसे अनेक स्थल पाये जाते हैं ।एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है ।'उर्वशी' कहानी में बिहारी सोचता है -

---

1- वे. होटल का कमरा, पृ0 9 से 16

2- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 16

3- मधुपर्क, पृ0 161

'उर्वशी के साथ मेरा क्या सम्बंध है ? क्यों मैं उसके पीछे पड़ा हूँ ? केवल रूप का मोह, केवल वासना-पूर्ति की मिथ्या कल्पना ही तो इसका मूल कारण है । फिर उर्वशी की अपनी भी सीमाएँ हैं । और वे आज मेरे लिए सर्वथा नयी भी नहीं है। ----- लेकिन यह चंदा भी आखिर क्यों ऐसे आदमी के पीछे अपना जीवन उत्सर्ग कर रही है ? क्या रस है उसके जीवन में ? ऐसे आदमी के प्रति उसके मन में प्रेम कैसे रहता है? इसी के लिए उसने आँखें सुजा लीं ? इसी के लिए वह रोयी ? स्वास्थ्य की कोई चिंता नहीं की ? विश्राम उसने जाना नहीं होता कैसा है ? क्या यह सब आत्म-प्रवंचना नहीं है । आदि से लेकर अंत तक जीवन का हाय ही हाय क्या इसमें नहीं लक्षित होता ?'[1]

प्रस्तुत मानसिक अंतर्द्वन्द्व के एक ही उद्धरण में हम देख सकते हैं कि बिहारी ने अपनी निर्बलता, जौहरी जी की विशेषताओं (उनका विलासी स्वभाव आदि), चंदा की अपने पति के प्रति उत्सर्ग भावना आदि का उल्लेख किया है । इस प्रकार के अन्य उदाहरण 'परीक्षा के वे दिन'[2], 'अँधेरी रात'[3], 'समर्पण'[4], 'साँप का बिल'[5], 'ललना'[6] आदि कहानियों में भी प्राप्त होते हैं ।

वाजपेयी जी की कहानियों के पात्र जब किसी अन्य पात्र पर अप्रसन्न होते हैं, तब उनके आंतरिक क्रोध को व्यक्त करने के लिए उन्होंने आवेश शैली की सहायता ली है । यहाँ हम वाजपेयी जी की प्रथम कहानी 'यमुना' से एक उदाहरण दे रहे हैं -

'यमुना की भौंएँ तन गईं । चिढ़कर बोली-'पराए मुँह चनों की अच्छी लगती

1- होटल का कमरा, पृ0 129

2- दे. बात एक नाते की, पृ0 78-79

3- दे.स्नेह, बाती और लौ, पृ0 140-41

4- दे.वही, पृ0 22

5- दे.वही, पृ0 76

6- दे.उतार-चढ़ाव, पृ0 49

है । खसम की कमाई में यह दानशीलता दिखाएगी, तब देखूँगी । ऐसी बात कहती है, जैसे किसी ताल्लुकेदार की बेटी कहे । बाप-दादे ने भी कभी ऐसी उदारता दिखाई थी ? जब से देहली पर पैर रखा, तबसे हर साल रोजगार में घाटा होता है । अभी उनको (पति को) बुलाकर सब गहना उतार लूँगी , और लखनऊ (नैहर) भिजवा दूँगी । देखूँ तो कैसे तू मेरे मुँह लगती है ?" [1]

इस उद्धरण में यमुना के आंतरिक रोष को बड़े ही प्रभावात्मक ढंग से लेखक ने प्रस्तुत किया है । यमुना सास थी ; अत: अपनी बहू के प्रति इस प्रकार का उसका व्यवहार स्वाभाविक लगता है । इस शैली का एक और उदाहरण देना हमें उपयुक्त प्रतीत होता है ।'प्रलोभन ' कहानी में अपनी नातिन की रोटी बनाने की बात सुनकर बुढ़िया कहती है -

'क्यों नहीं-क्यों नहीं ? तू भी राँड उन्हीं के मन की करेगी । अच्छा देखती हूँ, तू कैसे रोटी बनाती है । उसी दम-उसी दम में तुझे झाड़ु मारकर घर से निकाल दूँगी । शैतान की आंत-मेरा कहना नहीं मानती । जैसे तेरी माँ मर गई, वैसे ही तू भी मर जाती, तो मुझे चैन मिलता । हरामखोर कहीं की ।" [2]

प्रस्तुत उद्धरण में भी बुढ़िया की बात करने की रीति स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुई है । अपनी नातिन के प्रति बुढ़िया के हृदय में कि स्नेह होने पर भी अर्थ के अभाव में नातिन का उसे खाना बनाने के लिए कहना उसको क्रोधित करता है । विवशता के कारण वह गुस्सा होती है, परिणामस्वरूप शैली भी आवेशपूर्ण हो गई है । शब्दों की पुनरावृत्ति भी इसी आवेश का परिणाम है ।

उपन्यासों की भाँति ही वाजपेयी जी की कहानियों में भी व्यंग्य अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होता । उनकी एक कहानी 'महापुरुष ' व्यंग्यप्रधान रचना है ।

1- मधुपर्क, पृ0 187

2- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 28

व्यंग्य का एक और उदाहरण उनकी 'रात के दो बजे' शीर्षक कहानी में मिलता है।-0000000000000000000000000,इस कहानी का एक पात्र मथुराप्रसाद कारा-वास में सोचता है -"----- कुता हूँ मैं। और वे लोग, जो केवल जीविका,परिवार, पेट और प्रेम-चोचलों के नाम पर किसानों और मजदूरों की गाढ़ी कमाई का रुपया उनकी आँखों में धूल फेंककर और अपने आपको धोखा देकर, झूठ बोलकर मस्तिष्क का व्यायाम मात्र दिखलाकर नित्य डकारते रहते हैं, वे ?

वे वन्दनीय हैं, क्योंकि नेताओं और महान व्यक्तित्व के लोगों को अपनी कोठियों में ठहराते और उन्हें दावतें देते हैं। वे अपनी इस आय का दो-तीन प्रतिशत सार्वजनिक संस्थाओं को दान जो कर देते हैं। छींक भी हो जाने पर उनका समाचार संवादपत्रों में छप जो जाता है। अपनी माता के संपादक उनके यहाँ दौड़ते जो हैं। साहित्य, संगीत और कला के प्रदर्शन की गोष्ठियाँ जो उनके यहाँ होती हैं ?"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में शोषकों पर व्यंग्य कसने के लिए लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली का अवलम्ब लिया है। इस शैली का भी लेखक ने अन्य शैलियों की भाँति ही कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है।

मिश्रित शैली के अंतर्गत प्रमुख रूप से रूप चित्रण तथा दृश्य चित्रण की शैली पर विचार किया जायगा। रूप चित्रण की शैली में रेखा चित्रों तथा सौंदर्य वर्णनों का समावेश होता है। प्रथम हम इस शैली के विषय में सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत करेंगे। अपनी कहानियों के पात्रों के रेखा-चित्र लेखक ने इतनी कुशलतापूर्वक साकार किये हैं कि पाठक को लगता है जैसे पात्र स्वयं उसके समक्ष खड़ा है। पहले हम यहाँ एक पुरुष पात्र का शब्दचित्र दे रहे हैं -

"इसी क्षण एक दूसरे साहब दीख पड़े। खसखसी दाढ़ी है आपकी। बाल अभी सफेद नहीं हुए हैं। लेकिन इच्छा उनकी ऐसी ही जान पड़ती है। गौर वर्ण है।

1- बात एक नाते की, पृ0 97

सिर पर गोल सफेद मारकीन की टोपी, पायजामा कुछ ऊँचा, पैरों के गर्द -गुबार से सर्वथा निश्चिंत । हाथी-कान का पुराने ढंग का जूता पहने हुए हैं । शरीर अचकन से चिपका हुआ है या अचकन ही शरीर से चिपक गई है, कौन जाने । ----- बायीं ओर एक दुलाई बगल में दबाये हुए हैं और उसके नीचे चारखाने का एक डस्टर लटक रहा है । दायें हाथ में टोंटीदार एक लोटा भी है ।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण में मुंशी जी की दाढ़ी, शरीर के वर्ण, टोपी,पायजामा, जूता, अचकन आदि का वर्णन रूप-चित्रण की शैली की सहायता से करके लेखक ने हमारे समक्ष मुंशी जी का शब्द चित्र खड़ा कर दिया है । ऐसा ही एक और शब्दचित्र एक नारी का भी देखना हमें उपयुक्त प्रतीत होता है -

"उसका नाम है सुनंदा ।

सुनंदा देखने में कुछ ऐसी बहुत सुंदर नहीं है । गेहुंआ वर्ण है । मुँह में शीतला के छोटे-छोटे दाग़ भी हैं । खादी की एक खुशनुमा साड़ी के ऊपर एक कोट भी पहने हुए हैं । भीतर अण्डरवियर, जैकेट और फुलओवर। कानों में मोतियों की झालरों के रिंग और हाथों में दो-दो चूड़ियाँ । दाहिने हाथ की अनामिका में एक अंगूठी ।"[2]

प्रस्तुत उद्धरण में लेखक ने नारी के सौंदर्य के अपरूप पक्ष का चित्रांकन किया है । इन थोड़े शब्दों से सुनन्दा का चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है । खादी की साड़ी का उल्लेख करके लेखक ने उसकी सादगी की ओर इंगित किया है । इस प्रकार की नारी के वर्णन वाजपेयी जी की कहानियों में अधिक उपलब्ध नहीं होते । उनकी कहानियों में प्राय: सुन्दर नारी के वर्णन प्राप्त होते हैं । ऐसे अप्रतिम नारी-सौंदर्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है ।

1- बात एक नाते की, पृ0 30

2- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 129

"केश बिखरे तो नहीं कहे जा सकते, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है, कंघी का उपयोग किये हुए देर हुई । श्वेत साड़ी से तन ढँका है । जूतियाँ श्वेत हैं लेकिन उनमें सुनहरा काम सौंदर्य की झलक मारता है । एक कलाई में सोने की घड़ी, दूसरी में सुनहरी तीन चूड़ियाँ हैं । ब्लाउज श्वेत है और उसमें श्वेत बूटे बने हुए हैं, कानों में श्वेत हीरे चमक रहे हैं । वस्त्रों के ऊपर फर वाला ओवरकोट पहने हुए हैं । हाथ में पर्स है । अंगुलियों में केवल कनिष्ठिका में नक्षत्र हरे-लाल झलकते हैं । बायीं आँख के नीचे ---- बल्कि कोर पर एक तिल है । बरौनियों के नीचे श्यामता झलक मारती है । बदन छरहरा, वर्ण गेहुँआ और कटीले-से नयन, किन्तु इन सबमें नासिका अत्यंत सुन्दर है और होंठ बड़े प्यारे हैं, बड़े रसीले ।"[1]

इसमें लेखक ने सुन्दरी नारी के अंगों का वर्णन सरस ढंग से किया है । छोटा-सा तिल भी उसकी दृष्टि से बच नहीं सका है । लेखक की दृष्टि में जो-जो आया है, सबको उसने तुरन्त शब्दबद्ध कर लिया है । उपर्युक्त सभी रेखाचित्र बड़े ही सजीव बन पड़े हैं ।

इस दृश्य चित्रण के अंतर्गत विशेषत: प्रकृति-चित्रण वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में देकर अपनी कुशलता का परिचय दिया है । ऐसा ही एक उद्धरण देना उपयुक्त प्रतीत होता है -

"वह दिन बड़ा सुहावना था । मेघमालाएँ घिरी हुई थीं और तरुण जीवन को उत्फुल्ल करने वाला मारुत लाल-लाल लहरी में लीन था । मयूरी निकटवर्ती उद्यान में कभी क्रीड़ा और नृत्य के विविध दृश्यों की झाँकी दिखाती हुई प्रकृति -नटी के रंगमंच में अपनी आलोक माला प्रस्फुटित करती थी, कभी अपनी कुक-माधुरी से साहित्य० साहित्य रसिकों का मनहरण कर उनके हृदयों में आनंद मंदाकिनी प्रवाहित करती थी ।"[2]

प्रकृति-वर्णन का प्रस्तुत दृश्य चित्रण अतीव प्राणवान् प्रतीत होता है ।

1- होटल का कमरा, पृ0 37

2- मधुपर्क, पृ0 155

इस उद्धरण में लेखक ने शुद्ध साहित्यिक शब्दों का ही प्रयोग किया है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अपने संस्कार के कारण वाजपेयी जी की भाषा में मृदुता है । परिस्थिति के अनुसार उसमें अंतर प्राप्त होता है । वाजपेयी जी की भाषा स्वाभाविक, पात्रानुकूल, सजीव, गतिशील, काव्यमय, मुहावरेदार तथा प्रांजल है । जहाँ वे मनोविश्लेषण के फेर में पड़ जाते हैं या असंबद्ध और अनावश्यक विवेचन करने लगते हैं , वहाँ उनकी भाषा में दुरूहता आ जाती है । उनकी कहानियों में प्रयुक्त शैलियों के विवेचन के पश्चात् कहा जा सकता है कि उपन्यासों की भाँति कहानियों में भी उन्होंने आवश्यकतानुसार विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है । वाजपेयी जी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के अनुशीलनोपरान्त अब हम अगले तथा अंतिम अध्याय में समकालीन हिन्दी कथाकारों में वाजपेयी जी का क्या स्थान है इस पर भी संक्षेप में विचार कर लेना उपयुक्त समझते हैं । इससे न केवल कथाकार वाजपेयी जी की गरिमा का ही भान हो सकेगा वरन् वाजपेयी जी की सीमाओं का भी पता चल जायगा।

00000000000
000000000
0000000
00000
000
0

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

(समकालीन कथाकारों में वाजपेयी जी का स्थान)

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

(समकालीन कथाकारों में वाजपेयी जी का स्थान)

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के द्वितीय खण्ड के द्वितीय अध्याय में हम देख चुके हैं कि वाजपेयी जी ने अपने साहित्य-सृजन के प्रारंभिक काल में प्रेमचंद से आंशिकरूप में प्रभाव ग्रहण करके उपन्यासों का निर्माण किया, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने व्यक्ति के मानस का अध्ययन व चिंतन आरंभ कर दिया । उस समय साहित्यिकों द्वारा पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक - फ्रायड, एडलर तथा यूंग आदि पढ़े गये । इस अध्ययन एवं चिंतन के परिणामस्वरूप हिन्दी में भी व्यक्तिवादी उपन्यासों का सृजन प्रारंभ हुआ । अब कथा के स्थान पर चरित्र को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। समीक्षकों ने प्रेमचंद, प्रसाद आदि 'स्कूल' खोले और खोज -खोज करके उपन्यासकारों के नाम अलग-अलग स्कूल में रखे गये । वाजपेयी जी का नाम भी आलोचकों द्वारा अपनी-अपनी रुचि के अनुसार स्व-नियोजित स्कूल में रखा गया । इतना ही नहीं, किसी ने उन्हें सामाजिक उपन्यासों का सृजक कहा, तो किसी ने व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रणेता । एक आलोचक ने उनके विषय में लिखा है -

"वाजपेयी जी की मौलिक रचनाएँ हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं । उनकी गणना प्रेमचंद और प्रसाद के समकालीनों में की जाती है । प्रेमचंद अपने कथा-साहित्य में अधिकांश बहिर्मुखी हैं, प्रसाद अंतर्मुखी, और वाजपेयी जी न तो पूर्णतया बहिर्मुखी ही हैं और न अंतर्मुखी । इन दोनों के समन्वय से जो एक तीसरे प्रकार की विचार धारा बनती है, उसी का प्रतिनिधित्व वाजपेयी जी ने अपनी रचनाओं में किया है ।"[1] इस कथन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद समाज और 'प्रसाद' व्यक्ति के चित्रकार थे । उन दोनों के वर्ण्य विषय में एक

1- 'साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी' में संकलित 'कथाकार वाजपेयी जी' नामक श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ के लेख से । पृ० 100

महत्त्वपूर्ण अंतर यह प्राप्त होता है कि प्रसाद समाज के पंक को उसके समग्र स्वरूप से रखना चाहते हैं, किन्तु प्रेमचंद समाज का चित्र उतारकर उसमें अपनी कल्पना के रंग भरना चाहते हैं। ऐसा करने से चित्र के सौंदर्य और आकर्षण में वृद्धि हो गई। वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में मध्यम वर्ग के जन-जीवन को चित्रण के लिए चुना है। अपने उपन्यासों में यदा-कदा गाँव का चित्रण पृष्ठभूमि के रूप में करते हैं, तब भी मध्य वर्ग उन्हें छोड़ता नहीं। उदाहरण के लिए वाजपेयी जी का 'भूदान' उपन्यास देखा जा सकता है। प्रेमचंद के 'गोदान' की भाँति वाजपेयी जी के 'भूदान' में भी गाँव एवं नगर के जीवन का समानांतर वर्णन प्राप्त होता है। दोनों कृतियों में शैली का बहुत बड़ा अंतर है। 'भूदान' में वाजपेयी जी का वर्णन व्यक्तिवादी अधिक हो गया है। इस उपन्यास के अतिरिक्त 'चलते - चलते', 'राजपथ', 'विश्वास का बल', 'टूटते बंधन' आदि महत्त्वपूर्ण उन रचनाओं के पात्रों के सम्बंध में विचार करने से लेखक का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण और भी स्पष्ट हो जाता है।

'राजपथ' में दिलीप का समाज से सम्बन्ध है, तथापि उसके व्यक्ति का चित्रण महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली प्रतीत होता है। उसके माध्यम से तत्कालीन सामाजिक स्थिति का ज्ञान हमें अवश्य प्राप्त होता है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है जैसे दिलीप के चरित्र में निखार लाने की योजना से लेखक ऐसा कर रहा है। 'चलते-चलते' का राजेन्द्र, 'विश्वास का बल' का त्रिवेणी और रमा तथा 'टूटते बंधन' की मुरली और यशवंत के चरित्र में भी यही बात प्राप्त होती है। इसका प्रमुख कारण यही है कि वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में चरित्र पर बल दिया है। उनके उपन्यासों में अधिकांशत: चरित्रों के जीवन का विकासक्रम प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में चित्रण का व्यक्तिवादी हो जाना स्वाभाविक है।

साहित्यिकों में लेखन-शैली विषयक जो वैभिन्न पाया जाता है, इसका प्रमुख कारण उनके व्यक्तित्व की विभिन्नता है। जिन परिस्थितियों के परिवेश में

लेखक का जीवन व्यतीत होता है, उनका चित्रण उसकी रचनाओं में पाया जाता है । परिस्थितियों, धारणाओं, विचारों और उद्देश्यों की भिन्नता के कारण प्रेमचंद और प्रसाद के उपन्यासों में अंतर पाया जाता है । प्रसाद की तरह वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में यथार्थ का वर्णन नहीं किया है । नग्न, सत्य और कुत्सित यथार्थ का चित्रांकन करने वाली शैली वाजपेयी जी की नहीं है ।

भाषा की दृष्टि से विचार किया जाय, तो प्रसाद और वाजपेयी जी में पर्याप्त अंतर है । प्रसाद के 'कंकाल' की भाषा काव्यमय और साहित्यिक है, जबकि 'तितली' की भाषा में ये गुण प्राप्त नहीं होते । 'वाजपेयी जी की भाषा सामान्य और सरल प्रवाही है । उसमें कविता का गुण नहीं पाया जाता । गद्य का पौरुष वाजपेयी जी की भाषा से सर्वत्र झाँकता रहता है ।'[1] डा० ललित शुक्ल के इस कथन के साथ हम सहमत नहीं है ; क्योंकि सभी उपन्यासों में वाजपेयी जी की भाषा सामान्य नहीं रही है । इसके अतिरिक्त 'गुप्तधन', 'चलते-चलते', 'विश्वास का बल', 'सपना बिक गया' आदि उपन्यासों में ऐसे अनेक स्थल प्राप्त होते हैं, जहाँ भाषा में गद्य-काव्य का गुण पाया जाता है ।

प्रेमचंद तथा वाजपेयी जी ने अपनी रचनाओं में आदर्शोन्मुख यथार्थ का प्रतिपादन किया है । प्रेमचंद ने समाज की भावनाओं को अपनी कृतियों में उभारने का सफल प्रयास किया है । वाजपेयी जी अपनी कला के आधार पर अपने पाठकों को आकृष्ट करते हैं । वाजपेयी जी के उपन्यासों की नाटकीयता भी ध्यान देने योग्य है । इसमें शब्दों का चयन और शैली विशेष रूप से दर्शनीय है -

'पहले उसने सोचा,' मैं इसे क्यों उठाऊँ ? क्या जरूरत है कि मैं इसको उठाकर उसी बेंच के ऊपर रख दूँ ?' फिर वह अपने आपसे पूछने लगा, 'वह अधेड़ स्त्री,

---

1- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : शिल्प और चिंतन, डा० ललित शुक्ल, पृ० 158

इसकी नौकरानी है कि नींद की नानी ? जबसे लेटी है टस से मस नहीं हुई । पर --- लो, वह तो जगती है, --- उठती है, उठती है, उठी, उठी । अरे, वह तो चल दी ! ओ:! लैट्रिन को चली गई । ---- बाबू जी सोते क्या हैं, लकड़ी पर खराद के स्वरों की नक्काशी करते हैं । --- लो वह आई, वह आई और फिर लेट रही । पेट क्या है, दलदल की पैरोडी है ! मगर---मगर, लो वह फिर सो गई । जैसे नींद उसकी मुट्ठी में हो ! - दो आने की नींद मुफ्त दे देती तो मैं तेरा बड़ा उपकार मानता, मेरी भावी ससुराल की भैंस ! --- चुप ! यही हाल रहा, तो तुम पागल हो जाओगे । --- तो अब इसी बात पर एक सिगरेट चल सकती है ।"[1]

वाजपेयी जी अपने आदर्शवादी विचारों को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा प्रस्तुत करते हैं । इतना ही नहीं, यथार्थ चित्रण का प्रस्तुतीकरण भी अपने उपन्यासों में इसी प्रकार करते हैं । यहाँ प्रेमचन्द और प्रसाद से उनमें अंतर पाया जाता है । प्रेमचंद ने जिस तरह ग्राम्य-समाज के रूप तथा प्रसाद ने समाज के पाखण्ड, वासना आदि को निकट से देखा है, इसी तरह वाजपेयी जी ने मध्य वर्ग को समीप से पहचान कर उसका मूल्यांकन अपनी कृतियों में किया है । वाजपेयी जी ने व्यक्ति के अंतर्मन उसके हृदय के नाना व्यापारों - तक पहुँचकर उन्हें अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है ।

वाजपेयी जी के समकालीन कथाकारों में मुख्य रूप से वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, प्रतापनारायण श्रीवास्तव तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि के नाम लिये जा सकते हैं । वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक और वाजपेयी जी ने सामाजिक कृतियों का सृजन किया है । अत: दोनों के विषय-वस्तु में मूलत: अंतर पाया जाता है ।

1- एक प्रश्न, पृ0 7

दोनों की भाषा-शैली के विषय में विचार किया जा सकता है । वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में सामयिक एवं आंचलिक शब्दों के भी प्रयोग किये हैं । वाजपेयी जी की भाषा भी सम-सामयिक है । वर्ण्यवस्तु की भिन्नता के कारण दोनों की शैली पर भी प्रभाव पड़ा है, 'मृगनयनी' तथा 'विराटा की पद्मिनी' इस दोष से मुक्त है । वर्मा जी के उपन्यासों में अतीत और वाजपेयी जी के उपन्यासों में वर्तमान का महत्त्व है ।

जैनेन्द्र जी और वाजपेयी जी दोनों ने अपनी-अपनी शैलियों के लिए विशेष रूप से प्रतिष्ठा अर्जित की है । दोनों अपनी शैली के लिए पूर्णरूपेण सजग हैं । शैली की सजगता तथा सतर्कता दोनों का एक विशेष गुण है । जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' की मृणाल और वाजपेयी जी के 'टूटते बंधन' की मुरली में बहुत कुछ साम्य प्रतीत होता है । दोनों में अंतर केवल इतना है कि मृणाल की बातें अनकही होने पर भी कही हुई लगती हैं, जबकि मुरली स्पष्ट है । दोनों के चरित्रों का विकास मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का अवलम्ब लेकर किया गया है, किन्तु शैली की भिन्नता के कारण दोनों की प्रवृत्तियाँ क्रमशः अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी चित्रित की गई हैं । समाज की अव्यवस्था से जैनेन्द्र का उपन्यासकार क्रुद्ध हुआ है । उसने 'त्यागपत्र' में बुआ के माध्यम से नारी-चरित्र को चित्रित किया है और 'असह्य' कहकर उसकी वेदना को अभिव्यक्ति दी है । इसके परिणामस्वरूप जैनेन्द्र के यथार्थ चित्रणों में आदर्श की धारा भी क्षीण होती दिखाई पड़ती है । 'टूटते बंधन' की मुरली के साथ समाज ने जो व्यवहार किया है, उसका चित्रण वाजपेयी जी ने एक कुशल शिल्पी की भाँति उक्त उपन्यास में करके अपनी कुशलता का परिचय दिया है । 'त्यागपत्र' में बुआ की बात जैनेन्द्र जी ने एक अधिकारी के माध्यम से कही है । मुरली की पीड़ा को उसके आँसुओं ने वाणी दी है, परन्तु प्रभाव एक प्रशासनिक अधिकारी द्वारा प्रस्तुत किया गया है । वह कहता है -

" मैं आपको देखते ही समझ गया था कि आप बहुत दुःखी हैं ; और भी

एक बात है, आपको मेरे सम्बंध में शायद कुछ न मालूम हो । इसलिए मैं आपको इतना और बता दूँ कि अब तक मैं अकेला ही हूँ और अकेला रहता भी हूँ । लेकिन मैं प्रलोभन से हीन हूँ । मेरे पास किसी प्रकार का आश्वासन भी नहीं है, न अभी से मैं कुछ कह ही सकता हूँ । लेकिन मानवता के लिए मेरे दिल में जगह है और काफी है । आप चाहें, तो मेरे यहाँ चलें, वैसे मैं कोई ज़ोर भी नहीं देता । मुझे जनता की व्यथा-कथा सुनने में थोड़ी दिलचस्पी है । इसके अलावा आपको मालूम ही है कि मेरी अपनी एक मर्यादा है, मैं एक प्रशासनिक अधिकारी हूँ ।"[1] जैनेन्द्र के साहित्य में मर्यादा का अतिक्रमण पाया जाता है, जबकि वाजपेयी जी अपने उपन्यासों में मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करते ।

मनोविश्लेषण का सही और आकर्षक रूप देने वाले उपन्यासकारों में इलाचंद्र जोशी प्रमुख हैं । मन की गहराइयों में पैठकर उन्होंने कितनी ही नवीन बातों का पता लगाया है और अपने पात्रों में उन बातों को घटित भी किया है । इस प्रक्रिया में उनका मनोविश्लेषणावादी दृष्टिकोण उभरकर सामने आ गया है, इसके कारण उनके उपन्यासों में चरित्रों का स्वाभाविक विकास नहीं हो सका है । वाजपेयी जी के उपन्यासों में मनोविज्ञान के उपयोग की अतिशयता नहीं पायी जाती । इसका एक कारण यह भी है कि उन्हें मनोविज्ञान का शास्त्रीय ज्ञान नहीं है । चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कला में जोशी जी और वाजपेयी जी में पर्याप्त अंतर पाया जाता है । यह बात सही है कि दोनों ने मनोवैज्ञानिकता का ढंग अपने उपन्यासों में अपनाया है , किन्तु जोशी जी ने उसका उपयोग साध्य और वाजपेयी जी ने साधन के रूप में किया है ।

भगवतीचरण वर्मा ने अनुराग तथा विराग, भोग एवं त्याग के द्वंन्द्व को

1- टूटते बंधन, पृ0 190

अपने उपन्यासों में दिखाते हुए अपनी निजी भावना को मान्यता दी है, जो सर्वथा यथार्थवादी है । उनके 'चित्रलेखा' ,'तीन वर्ष','टेढ़े-मेढ़े रास्ते','आखिरी दाँव,' 'रेखा' आदि उपन्यासों के सम्बंध में यह कहा जा सकता है। वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में पाप और पुण्य का प्रासंगिक विवेचन अपने ढंग से किया है । इसमें उनका आदर्शवादी स्वर ऊँचा रहा है । वर्मा जी और वाजपेयी जी के दृष्टिकोण में अंतर है, अत: उनके उपन्यासों की वस्तु एवं शैली में भी भिन्नता पायी जाती है । दोनों के प्रस्तुतीकरण तथा युगबोध में भी अंतर आ गया है । वर्मा जी के 'चित्रलेखा' उपन्यास की कथावस्तु ऐतिहासिक परिवेश में है । शेष उपन्यासों में उन्होंने वर्तमान समाज को चित्रित किया है । वाजपेयी जी ने अपने समस्त उपन्यासों की कथावस्तु केवल समाज से ली है । वर्मा जी ने रूढ़ियों और परम्पराओं को नष्ट करके नवयुग के निर्माण के उपक्रम तैयार किये हैं, जबकि वाजपेयी जी ने रूढ़ियों और हीन परम्पराओं को तोड़ने की बात करते हुए भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है । उनका विचार ध्वंस के बाद निर्माण का नहीं, अपितु इस पाखण्डी और असभ्य समाज के सुधार का है ।

यशपाल की साम्यवादी विचारधारा वाजपेयी जी को प्रिय नहीं है । अज्ञेय की प्रेम-परम्परा और नये बनने की कला वाजपेयी जी के स्वभाव में नहीं है । अश्क की मान्यताएँ तथा नागर जी की वस्तु और शैली से कहीं-कहीं वाजपेयी जी में साम्य पाया जाता है । विषय-वस्तु के सम्बंध में यह कहा जा सकता है कि प्रताप - नारायण श्रीवास्तव कुछ सीमा तक वाजपेयी जी के निकट हैं । आचार्य शास्त्री ने अपने कथा-साहित्य के वस्तु-चयन के लिए विविध क्षेत्रों को पसंद किया है, किन्तु वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में सब कुछ समाज के मध्य एवं निम्न मध्य वर्ग से ही लिया है । नगर से वे कभी गाँव में, तो कभी बम्बई के चलचित्र -जगत में भी पहुँच जाते हैं ।

वाजपेयी जी के कहानीकार के विषय में विचार किया जाय, तो पता चलता है कि आज से लगभग अर्धशती पूर्व रचनाकाल के आरंभिक दिनों में ही, जब

प्रेमचंद का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर छाया हुआ था, वाजपेयी जी को लघु कथाकार के रूप में 'रिकग्निशन' मिल चुका था।[1] तत्पश्चात् जैसे-जैसे उनकी कला में प्रौढ़ता आती गई, समीक्षकों का औदास्य उनकी ओर बढ़ता गया और सच पूछा जाय, तो बाद में तो उन्होंने भी आलोचकों की ओर ध्यान नहीं दिया। उनका विश्वास था, "एक दिन आयेगा और अवश्य आयेगा, जब समीक्षाकारों का ध्यान मेरे कृतिकार की ओर आकृष्ट होगा।"[2] हिन्दी कहानी-जगत को उन्होंने सुन्दर कहानियाँ दी हैं, तथापि, एक कहानीकार के रूप में उनकी सर्वथा उपेक्षा की गई है। अंतिम कुछ वर्षों से उनके उपन्यासों तथा कथा-साहित्य पर कुछ ग्रन्थों की रचना हुई है। तभी उन्हें महत्त्वपूर्ण कथाकारों में स्थान दिया जाने लगा है।

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं वाजपेयी जी का रचना-काल अत्यंत विस्तृत रहा है। पाँच दशाब्दियों की इस समयावधि में उनका कृतित्व फैला हुआ है। इन वर्षों में हिन्दी कहानी में बहुत परिवर्तन आ गया है। कहानी 'अकहानी' बन गई है, किन्तु वाजपेयी जी अपनी धारणाओं में किंचिन्मात्र भी नहीं बदले हैं। आज भी वे मानते हैं - "वही कहानियाँ चर्चा और परिचर्चा में प्रमुख स्थान और गौरव प्राप्त करने में समर्थ होती हैं, जिनमें शिल्प के पुराने विधान का कहीं-न-कहीं अवलम्ब स्पष्ट झलकता है।"[3] वाजपेयी जी कहानी में कहानीपन के समर्थक हैं। शिल्पगत वैचित्र्य उनकी कहानियों में सहज उपलब्ध है, किन्तु वह केवल साधन रूप के रूप में, साध्य के रूप में नहीं।

चरित्र के विषय में यदि कहा जाय कि वह संवेदना को वहन करने का माध्यम है, तो अनुचित न होगा। उसकी परिकल्पना में वाजपेयी जी का दृष्टिकोण शुद्ध भारतीय है। वस्तुत: उनके पात्र ही उनके कथा-साहित्य के प्राण हैं। चरित्र की

1- ज्ञानोदय, दिसम्बर 1968, पृ0 127

2- वही, पृ0 128

3- वही, दिसम्बर, 1968, पृ0 134

भारतीय व्यवस्था से वे इतने अनुप्राणित हैं कि कहानी में भी वे चरित्र को व्यक्तित्व के रूप में ग्रहण नहीं करते, अपितु चरित्र की नैतिक, आदर्शात्मक सरणि के रूप में स्वीकार करते हैं - "क्योंकि एक दिन मनुष्य इस संसार से उठ जाता है, किन्तु उसका चरित्र बना रहता है। हो सकता है, आप यह कहें कि यहाँ मैं कलाकार नहीं हूँ, विचारक हूँ, किन्तु मैं कला को किसी विचार से कम नहीं मानता।"[1] इस दृष्टिकोण ने उनकी कहानियों को विशिष्ट स्वर दिये हैं। इसी का अवलम्ब लेकर उनके वैशिष्ट्य की मीमांसा की जा सकती है।

चरित्र-विषयक उपरिकथित धारणा ने ही वाजपेयी जी को मूलत: आदर्श-वादी कथाकार बना दिया है। भारतीयता में आस्था होने के कारण त्याग और आत्मोत्सर्ग - उनके पात्रों की सामान्य भावभूमि रहे हैं। यथार्थ की वाजपेयी जी ने उपेक्षा नहीं की है। वस्तुत: उनकी कहानियों के पात्र जीवन की यथार्थ स्थिति को जीते हैं, उसमें आर्थिक शोषण की स्थिति भी है और नारी के रूढ़िवादी उत्पीड़न की भी, उसमें न सामाजिक कुरीतियों की अवहेलना है और न गांधी जी द्वारा दी गई चेतना की ही अवहेलना है। वाजपेयी जी के यथार्थ के अंकन में किसी प्रकार की मिलावट नहीं है, किन्तु केवल इसलिए किसी कलाकार को यथार्थवादी नहीं कहा जा सकता। स्थितिगत यथार्थ पर खड़े होकर भी लेखक की आँखों में जो झलमलाता है, वही महत्त्वपूर्ण है। वाजपेयी जी समस्त सामाजिक या आंतरिक यथार्थ को बीन्हकर भले उसकी कटुता को स्वीकार नहीं करते, किन्तु उसे आदर्श-मधुर अवश्य बना देते हैं।[2] चरित्रगत यह वैशिष्ट्य गंगाप्रसाद पाण्डेय के शब्दों में, पात्रों पर 'एक दिव्यता का झीना आवरण'[3] डाल देता है। इस विशिष्टता को हरिभाऊ उपाध्याय ने 'सात्विकता'[4] से

1- ज्ञानोदय, पृ0 130

2- दे. लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 135

3- हिन्दी कथासाहित्य, गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ0 154

4- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ0 ग

अभिहित किया है । वाजपेयी जी ने मध्यवर्गीय समाज का उत्थान-पतन एक आलोचक की निर्मम दृष्टि से देखा है । उनकी कहानियों की विशेषता के विषय में एक समीक्षक का कहना है कि" अपनी परम भावुकता और भारतीयता के स्पर्शों से समाज के कुचक्रों, भयानक विवर्तों में पड़े हुए घायल-उदास-असहाय व्यक्तियों के हृदय रंग देना इन कहानियों की अपनी विशेषता है ।"[1]

चरित्रगत इस धारणा ने ही वाजपेयी जी की कला को व्यक्तिवादी स्वर प्रदान किया है । चरित्र की यह मान्यता नि:संदेह सामाजिक है, किंतु वैयक्तिक नहीं, तथापि जिस प्रकार उसका उद्‌घाटन उनके पात्रों के जीवन में हुआ है, वह उनका वैयक्तिक वैशिष्ट्य बनकर रह गया है । भारतीय संस्कृति ने सदैव सामाजिक परिप्रेक्ष्य को महत्त्व दिया है, परन्तु उस परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति की साधना को प्रमुखता दी है । भारतीय चिन्तन का कर्मवाद पुनर्जन्म की आस्था से संवलित होकर मानवीय आदर्शों में जीता रहा है, किन्तु उसने व्यक्ति के अस्तित्व, उसकी महानता तथा उदारता को प्रमुखता दी है । सामाजिक और मानवीय आदर्शों से अनुप्राणित होकर व्यक्ति-चिंतन, सुधार या आत्मोत्सर्ग के आयाम में पहुँचता है और समष्टि-चिंतन, सुधार या व्यंग्य के आयाम में । प्रेमचंद और यशपाल से 'प्रसाद' जी और वाजपेयी जी में यहीं पर अंतर पाया जाता है । मध्यवर्ग उनके कथा-साहित्य का कथ्य है और व्यक्ति उनके कथा-साहित्य की इकाई । इस मत को पुष्टि देते हुए एक आलोचक ने उचित ही लिखा है -'व्यक्ति की उन्नति द्वारा ही वह समाज का कल्याण चाहते हैं, इसलिए उन्होंने व्यक्तियों की समस्याएँ अपनायी हैं और उन्हीं को अपनी कहानियों और उपन्यासों का माध्यम बनाया है ।"[2] 'शबनम' की शबनम, 'हृदगति' की फूलमती, 'तारा : एक प्रेरणा' की तारा और 'बाती और लौ' की बिन्दो' आदि सभी पात्र इसी कोटि के हैं । 'टिकुली' 'मैना' और 'मिठाई वाला' सामाजिक दृष्टि से कदापि वर्गगत पात्र नहीं बन सकते । वे सदैव

1- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी, डा0 लक्ष्मीनारायणलाल के 'वाजपेयी जी की कहानियाँ : शिल्पविधान' नामक लेख से, पृ0 37

2- वही, राजेन्द्रसिंह गौड़ के 'कथाकार वाजपेयी जी' नामक लेख से, पृ0 101

वैयक्तिक रहेंगे । उनके चरित्रोद्घाटन में वाजपेयी जी ने व्यक्ति की उदारता, उदात्तता तथा महानता की खोज की है,, किसी समष्टि-सत्य की नहीं । यह भावभूमि वाजपेयी जी को व्यक्तिवादी बनाये रखती है ।

व्यक्तिवाद, मानवतावाद तथा साथ-साथ उनकी सहज कलात्मक व्यंजना ने उनके कथा-साहित्य को एक वैशिष्ट्य प्रदान किया है । हिन्दी कहानी का व्यक्तिवादी यथार्थ प्राय: आत्यंतिक विश्लेषण की ओर झुक गया है ; चाहे वह जैनेन्द्रकुमार का दार्शनिक विश्लेषण हो या इलाचन्द्र जोशी का मनोविश्लेषण, किन्तु वाजपेयी जी के कहानीपन के मोहने रचनाओं की सरलता को प्राय: नष्ट नहीं होने दिया है । उनकी कहानियाँ मनोविश्लेषण एवं वैचारिक मीमांसा पर अवलम्बित हैं, आत्यंतिक विश्लेषण और सैद्धांतिक आधार पर नहीं । इस दृष्टि से देखा जाय, तो उनकी कहानी-चेतना अपेक्षाकृत अधिक सशक्त है ।

चरित्र की मानवतावादी धारणा ने उनके कथ्य को रूपायित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । फलत: उनकी कहानियों में नारी-पात्रों की प्रधानता दिखाई देती है । मध्यवर्गीय मान्यताओं के कलुषित बंधनों में बँधी हुई नारी की तड़पने वाजपेयी जी के मृदु एवं अति भावुक हृदय को आकृष्ट किया । उनकी सर्वप्रथम कहानी 'यमुना ' की रचना की प्रेरणा भी उन्हें ऐसी ही एक घटना से मिली थी । उनकी कहानियों के पुरुष पात्र तो इस भावुकता और समवेदना को वहन करने वाले प्राय: माध्यम मात्र हैं ।

वाजपेयी जी की कहानियों का मुख्य विषय प्रेम है । आधुनिक हिन्दी कहानी में जिस अर्थ में 'सेक्स '(Sex) का चित्रण हुआ है, वह यहाँ अभीष्ट नहीं है । संपूर्ण जीवन-सौख्य केवल सेक्स में निहित नहीं है । चिन्तन के लिए विवश कर देने वाली व्यथा या मुग्ध कर देनेवाली किलकारी भी जीवन-सौख्य का एक अंग है । स्वयं वाजपेयी जी का इस सम्बंध में कथन है-"मैं नहीं मानता कि इनको देखने और इनका

रस लेने में भी हम सैक्स से विजड़ित या ओतप्रोत रहते हैं।"[1] वस्तुत: प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड भी इसी विडम्बना का शिकार रहा है। उसने अपने मूल लेखों में 'इरॉस' (Eros) शब्द का प्रयोग किया है। यह शब्द वास्तव में 'काम' का पर्याय है, यौन-वासना का नहीं, किन्तु अंग्रेजी अनुवाद में 'सैक्स' शब्द के प्रयोग ने 'इरॉस' की मूल चेतना को नष्ट कर दिया। वस्तुत: 'काम' में वासना का प्राधान्य होता है। किन्तु 'सैक्स' शब्द के प्रयोग ने उसे केवल वासना बना दिया। वाजपेयी जी इस ऐकांतिक 'काम' से मुक्त रहे हैं। उनकी कहानियों में सैक्स के उच्छृंखल चित्र प्राप्त नहीं होते। उनकी मानवीय चेतना के आदर्श ने उन्हें सैक्स से रीझने नहीं दिया है, अत: उनकी कहानियों के पात्रों में यौन-आसक्ति नहीं है। केवल संकेतों द्वारा उसका ग्रहण तथा व्यंजना है। यही कामेच्छा उन्हें आत्मोत्सर्ग की तत्परता प्रदान करती है।

आत्मोत्सर्ग की पद्धति से प्रगतिशीलता का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न संबद्ध है। वाजपेयी जी की कहानियों के अध्ययन करने के पश्चात् यह प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित होना स्वाभाविक है कि उनके पात्र जिस ढंग से और जिन परिस्थितियों में आत्मोत्सर्ग करते हैं, वह ढंग क्या पूर्णत: स्वस्थ है? कुछ कहानियाँ उदाहरण के रूप में लेना हमें समीचीन प्रतीत होता है। उनकी प्रथम कहानी 'यमुना' में यमुना अनुताप में प्राण-त्याग करती है। 'पेंसलस्केच' की कुन्दन का आत्मोत्सर्ग अपनी पुत्री की इच्छा की रक्षा के लिए आरोपित-सा है। 'झाँकी' का प्रेमांकुर अपनी माँ का रूढ़िवादी मोह भंग करके 'ठठ्ठा मारकर हँस पड़ता है और विक्षिप्त-सा होकर जोर-जोर से चिल्लाने लगता है।' चरित्र की ऐसी परिणति वाजपेयी जी की प्रारंभिक कहानियों में प्राय: हुई है, किन्तु बाद की कहानियाँ इससे नितांत बच सकी हैं, ऐसा कहना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। 'एक आँसू खून का' में सखाराम इतनी शक्ति से जिन्दगी पर लानत भेजता है कि उसकी आँखें सदा के लिए खुली रह जाती हैं, भृकुटियाँ तनी हुई रह

1- ज्ञानोदय, दिसम्बर-1968, पृ0 128

जाती हैं और दाहिना हाथ भी आवेश में उठा का उठा ही रह जाता है । जीवन की अपमानजनक स्थिति का मुकाबला वह जीवन में नहीं कर पाया, अत: मृत्यु होने के बाद करता है ।'स्पर्द्धा' कहानी का बनवारी मृत्यु के लिए भी स्पर्द्धा करता है, तथापि इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आरंभ की बंगला भावुकता वाजपेयी जी की परवर्ती कहानियों में शिथिल होती गई है । वाजपेयी जी का कथन है -"आरंभ में बंगला साहित्य मुझे प्रिय अवश्य था, विशेषकर शरत्बाबू और रबीन्द्रबाबू का ; लेकिन फिर प्रगतिवादी विचारधारा ने मुझे प्रभावित किया और तबसे मेरे लेखन में विराट परिवर्तन हो गया ।"[1] इस विराट परिवर्तन में एक तो आत्मोत्सर्ग की पद्धति के प्रति मोहभंग ही है । "मनुष्य यदि चारों ओर से निराश होकर प्राणत्याग करता है, तो उसका मूल कारण वह स्वयं है । उसकी अपनी वे दुर्बलताएँ हैं, जो कहीं तो मानवीय हो जाती हैं, किन्तु वास्तव में बहुत-कुछ काल्पनिक, भावुकतापूर्ण और आरोपित हैं ।"[2] इस मोहभंग से उनकी प्रारंभिक प्रतिक्रियात्मकता की स्थिति स्पष्ट होती है । द्वितीय परिवर्तन साहित्यकार के दायित्व की मान्यता में हुआ । इस विषय में वाजपेयी जी का कहना है -"अब मैं मनुष्य का कल्याण, उसकी सर्वांगीण तृप्ति कुण्ठाओं से ऊपर उठकर मानवात्मा के उत्कर्षात्मक पक्ष को उभारना और अंत में विकारहीन बनकर मानवीय शांति के लिए सतत प्रयत्नशील रहना ही साहित्यकार का एक-मात्र पावन उद्देश्य मानने लगा ।"[3] किन्तु प्रगतिवाद से यह अभिप्राय किसी को स्वीकार नहीं होगा । इस मान्यता में मानवतावादी, विशाल प्रगतिशील चेतना का स्वर है । वस्तुत: जैसा डा0 उदयनारायण तिवारी का मत है वाजपेयी जी का साहित्य प्रगतिवाद और प्रतिक्रियावाद की उलझन से परे है ।[4] वाजपेयी जी को शुद्ध प्रगतिवाद से बाँधा जा सकता है, किन्तु प्रतिक्रियावादी तो उन्हें किसी भी स्थिति में नहीं कहा जा सकता। वे अपने जीवन में कटुता भोगकर भी वे मधुर रहने के समर्थक हैं ।"मूल में वे भारत के अतीत की धर्म-प्रवृत्ति से अनुप्राणित हैं, मध्य में वर्तमान की संघर्ष-प्रवृत्ति से

1- ज्ञानोदय, दिसम्बर-1968,पृ0 127

2- वही, पृ0 127

3- वही, पृ0 127

4- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी,पृ0 192

और अंत में भविष्य की कर्म-प्रवृत्ति से । अतीत में विकसित ईश्वर की सत्ता उन्हें मान्य है, पर वर्तमान की विषमता को वे उस ईश्वर की इच्छा नहीं मानते और यों भविष्य में मानव की समता उन्हें स्वीकार्य है ।"[1] कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' द्वारा वाजपेयी जी के दृष्टिकोण का किया गया उपर्युक्त विश्लेषण सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है ।

डा० लक्ष्मीनारायणलाल का कहना है कि "इनकी प्रारंभिक और आज की कहानियों को पढ़कर निश्चित रूप से लगता है कि उनके व्यक्तित्व का निर्माण एक ओर शरत्चन्द्र तथा दूसरी ओर प्रेमचंद के व्यक्तित्व के सुन्दर तादात्म्यों से हुआ है ।"[2] यह कथन अधिक सशक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि वाजपेयी जी की केवल प्रारंभिक कहानियों पर ही प्रेमचंद का प्रभाव प्रतीत होता है । बाद की कहानियों का निर्माण वाजपेयी जी ने अपनी स्वतंत्र भाषा-शैली तथा शिल्पविधि से किया है । हाँ, शरत्बाबू की भावुकता वाजपेयी जी की वर्तमान कहानियों में भी विद्यमान है । वाजपेयी जी ने ह्रासोन्मुख जीवन की विविध इकाइयों को अपनी उत्कृष्ट कला में संजोकर अपूर्व ढंग से मानव-संवेदना को स्पर्श किया है । 'खाली बोतल', 'अंधेरी रात', 'मैना', 'हारजीत', 'ट्रेन पर', 'इन्द्रजाल' आदि कहानियों की संवेदनाएँ हमारे समाज तथा उसकी विशिष्ट स्थितियों से अनुभव की गई हैं । इन संवेदनाओं से निर्मित कहानियाँ भावोद्रेक और लक्ष्य की तीव्रता के कारण कहीं-कहीं प्रतीकात्मक हो गई हैं । उदाहरण के रूप में वाजपेयी जी की 'खाली बोतल' कहानी देखी जा सकती है । यह कहानी समाप्त होते हुए सामंतशाही दृष्टिकोण और मनोभावों का प्रतीक है । उपर्युक्त कहानियाँ शिल्पविधि की दृष्टि से अत्यंत पुष्ट हैं । 'खाली बोतल' कहानी वाजपेयी जी की इस कला का उत्कृष्ट उदाहरण है । आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने उनकी कहानियों के विषय में उचित ही लिखा है, 'उनकी कि-

---

1- साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० 192

2- हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, डा० लक्ष्मीनारायणलाल, पृ० 178

कहानियों की तुलना मुक्तक काव्य से की गई है, जिसमें सोने की तौल जैसी सफाई और राई-रती तुली हुई डांडी होती है । आवश्यकता से अधिक एक भी शब्द नहीं होता ।[1] 'इन्द्रजाल' तथा 'मैना' में शिल्पविधि को सूक्ष्म और व्यंजनात्मक बनाने का प्रयत्न किया गया है । वाजपेयी जी की कहानियाँ प्रेरणा और निर्माण कला की दृष्टि से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से विशेष प्रेरित हैं । 'अंधेरी रात', 'मैना' 'हारजीत', 'ट्रेन पर' आदि कहानियों में यह बात देखी जा सकती है । वाजपेयी जी की साठोत्तर कहानियों में चरित्र का मनोविश्लेषण अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में हुआ है ।

वाजपेयी जी की वर्तमान साहित्यिक प्रतिभा देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी कथा-साहित्य में उन्होंने जितनी प्रतिष्ठा अर्जित की है, वह उनके स्वयं के सतत अध्यवसाय, साधना एवं निरन्तर प्रयत्नों का ही सुफल है । उनके कथा-साहित्य से मानवता एवं आत्मविश्वास की जो प्रेरणा प्राप्त होती है, उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके साहित्य का उद्देश्य केवल मनुष्य है । किसी भी प्रकार की अतिशयता को वे महत्त्व नहीं देते । जीवन को निर्मल बनाने का उनका प्रयास प्रत्येक कृति में दृष्टिगोचर होता है । वे अपने साहित्य के द्वारा ज्ञान तथा चेतना से पंगु मानव को जीने की कला बताते हैं । निराश मनुष्य को उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से आशान्वित करने किया है । वे मानते हैं कि मृत्यु के पश्चात् भी जीवन का आलोक ही हमारे समक्ष विद्यमान रहेगा ।

उपर्युक्त समग्र विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संघर्षों से जूझता हुआ हिन्दी का यह प्रतिभासंपन्न कथाकार अद्यावधि साहित्य - सर्जना में अनुरक्त है । जीवन के तिहत्तर वसन्त वह देख चुका है और इस अवधि में उसने लगभग इतनी ही रचनाओं को प्रस्तुत कर हिन्दी-साहित्य के भण्डार को संपन्न किया है ।

1- हिन्दी साहित्य- बीसवीं शताब्दी, नंददुलारे वाजपेयी, पृ0 182

किया है । पाँच दशकों के अंतराल में वाजपेयी जी की भाषा तथा शिल्प में निखार आया है, परिवर्तन हुआ है, किन्तु जीवन मूल्यों के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण अपरिवर्तित तथा अटल रहा है । उनकी रचनाओं की विषय-वस्तु के रूप में मानव को प्रतिष्ठा मिली है और उसी की पीड़ा की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में हुई है । अनेक महान् साहित्यकारों की कला और शिल्प के प्रभाव को लेकर भी वाजपेयी जी ने अपनी प्रतिभा को हतप्रभ नहीं होने दिया है, अपितु प्रभावों के कुहासे से निकलकर इनकी प्रतिभा के सूर्य में अधिक दीप्ति आ गई है, अधिक शक्ति आ गई है जो इनके सतत अध्यवसाय, स्वतंत्र चिन्तन एवं निज की प्रतिभा का सुफल है ।

000000000000000
0000000000000
0000000000
00000000
000000
0000
00

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ -सूची (हिन्दी)

वाजपेयी जी के उपन्यास :	प्रकाशक	संस्करण और प्रकाशनकाल
1- अधिकार का प्रश्न	एस.चन्द एण्ड कं0 फव्वारा, दिल्ली ।	1965
2- अधूरा स्वर्ग	भारतीय ग्रन्थ निकेतन, 133,लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-6	प्रथम संस्करण, दिसम्बर, 1966
3- अनाथ पत्नी	चाँद कार्यालय,इलाहाबाद ।	प्रथम संस्करण, नवम्बर, 1928
4- उनसे न कहना	राजपाल एण्ड संस,कश्मीरी गेट, दिल्ली-6	चौथा संस्करण,अप्रैल, 1966
5- एक प्रश्न	राजपाल एण्ड सन्स	द्वितीय संस्करण,अप्रैल, 1966
6- एक स्वर आँसू का	प्रभात प्रकाशन, 205,चावड़ी बाजार, दिल्ली।	1966
7- कपट निद्रा	नवयुग प्रकाशन,बंगलो रोड़, दिल्ली ।	-
8- कर्मपथ	प्रत्यूष प्रकाशन,रामबाग, कानपुर-12	तृतीय संस्करण,अगस्त , 1968
9- गुप्तधन	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ।	1967
10- गोमती के तट पर	बंसल एण्ड कम्पनी, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32	-
11- चलते-चलते	भारतीय साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली ।	1964
12 चंदन और पानी	रणजीत प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, 4872,चाँदनी चौक, दिल्ली ।	द्वितीय संस्करण, 1966
13- छोटे साहब	सन्मार्ग प्रकाशन, 16,यू0बी0 बेंगलोरोड, दिल्ली-7	प्रथम संस्करण, 1966
14- टूटते बंधन,	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली ।	दूसरा संस्करण, 1968

15-	टूटा टी सैट	भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली-6	द्वितीय संस्करण, 1965
16-	दूखन लागे नैन	वही,	1967
17	दो बहनें	भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।	चतुर्थ संस्करण, सं0 2023 वि0
.18	निमंत्रण	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ।	1967
19	निरन्तर	यंग मैन एण्ड कं0 दिल्ली।	-
20	पतिता की साधना	-	-
21	पिपासा	साहित्य मंदिर, दारागंज, प्रयाग ।	पंचम् संस्करण, 1953
22	प्रेमपथ	पुस्तक भण्डार, पटना ।	सं0 1983 वि0
23	भूदान	श्री भारत भारती (प्रा0) लि0 1, अन्सारी रोड़, दरियागंज, दिल्ली ।	सन् 1955 ई0
24	मनुष्य और देवता	साहित्य-सदन, देहरादून	1954
25	मुसकान	साहित्य मंदिर, प्रयाग।	प्रथम संस्करण, एप्रिल, 1929
26	मोहत्याग	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ।	नवम्बर, 1967
27	राजपथ	जिज्ञासा प्रकाशन, कानपुर ।	जुलाई, 1968
28	रात और प्रभात	राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली।	द्वितीय संस्करण, अगस्त-1958
29	वासना से परे	युगवाणी प्रकाशन, कानपुर ।	-
30	विश्वास का बल	भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली।	1969
31	सपना बिक गया	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।	1965
32	स्वप्नों की गोद	भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली-6	प्रथम संस्करण, 1966
33	सूनी राह	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-6	1968
34	विजय श्री	बाल साहित्य मंदिर, बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा।	प्रथम संस्करण, 1966

कहानी- संग्रह :	प्रकाशक	संस्करण और प्रकाशन काल
1 उतार-चढ़ाव	गौतम बुक डिपो, दिल्ली।	प्रथम संस्करण, 1950
2 कबाड़ी का ताजमहल	नवयुग प्रकाशन, दिल्ली-7	प्रथम संस्करण, नवम्बर 1966
3 खाली बोतल	गौतम बुक डिपो, दिल्ली।	सन् 1950
4 पुष्करिणी	नेशनल इन्फारमेशन एण्ड पब्लिकेशन्स लि0, बम्बई-1	द्वितीय संस्करण, 1948
5 बात एक रात की	भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली-6	प्रथम संस्करण, 1967
6 मधुपर्क	गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ ।	तृतीय संस्करण, 1964
7 मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ	प्रत्यूष प्रकाशन, कानपुर ।	जनवरी, 1965
8 लोकप्रिय कहानियाँ	प्रवीर प्रकाशन, परेड, कानपुर ।	1965
9 स्नेह, बाती और लौ	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-6	1966
10 हिलोर	गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ ।	तीसरा संस्करण, 1964
11 होटल का कमरा	भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली-6	प्रथम संस्करण, 1966

संदर्भ ग्रन्थ :

	लेखक	प्रकाशक	संस्करण और प्रकाशन काल
1 आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य	डा0 शुभकार कपूर	विवेक प्रकाशन, अमीनाबाद, लखनऊ	प्रथम संस्करण, 1965
2 आधुनिक हिंदी - साहित्य का विकास	डा0 श्री कृष्णलाल	हिन्दी-परिषद, विश्वविद्यालय, प्रयाग।	तृतीय संस्करण, 1952

3	आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान	डा० देवराज उपाध्याय	साहित्य-भवन प्रा० लि० इलाहाबाद ।	प्रथम संस्करण, 1956
4	उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी: शिल्प और चिंतन	डा० ललित शुक्ल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, चन्द्रलोक, जवाहरनगर, दिल्ली-7	प्रथम संस्करण, दिसम्बर, 1966
5	उपन्यासकार भगवती-प्रसाद वाजपेयी : व्यक्तित्व और कृतित्व	डा० बैजनाथ गुप्त 'जिज्ञासु'	सरस्वती प्रकाशन मंदिर, मोती कटरा, आगरा ।	प्रथम संस्करण, मार्च, 1966
6-	कहानी और कहानीकार	प्रो० मोहनलाल	आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरीगेट, दिल्ली ।	प्रथम संस्करण, 1952
7	कहानीकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी:संवेदना और शिल्प	डा० गोविंदलाल छाबड़ा, डा० लक्ष्मण दत्त गौतम,	आदर्श साहित्य प्रकाशन, 126।5, वैस्ट सीलमपुर, दिल्ली-31	प्रथम संस्करण, अप्रैल, 1972
8	कहानी का रचना-विधान	डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा	हिन्दी प्रचारक - पुस्तकालय, बनारस ।	प्र० सं० 1956
9	कहानी दर्शन	भालचन्द्र गोस्वामी, 'प्रखर'	साहित्य रत्न भण्डार, आगरा ।	1959
10	काव्यशास्त्र	डा० भगीरथ मिश्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।	तृतीय संस्करण, सन् 1966
11	कुछ विचार	प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद,	1961
12	नया साहित्य : नये प्रश्न	आचार्य नंददुलारे वाजपेयी	विद्यामंदिर, ब्रजनाल, वाराणसी-1	द्वितीय आवृत्ति, 1959
13	प्रेमचन्द्र की उपन्यास-कला	प्रो० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'	वाणी मंदिर प्रेस, छापरा(बिहार)	तृतीय संस्करण, जून, 1949

14	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास की शिल्पविधि	डा० सत्यपाल बुध	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1	प्रथम संस्करण, जनवरी, 1968
15	मनोविज्ञान	डा० यदुनाथसिंहा अनु. डा० गोवर्धन प्रसाद भट्ट	लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, अस्पताल-रोड, आगरा ।	द्वितीय संस्करण, अप्रैल, 1955
16	विश्वास का बल-आलोचनात्मक अध्ययन	राजनाथ शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-3	द्वितीय संस्करण, 1967
17	साकेत-एक अध्ययन	डा० नगेन्द्र	साहित्य रत्न - भण्डार, महात्मा गांधी रोड़, आगरा	चतुर्थ संस्करण, नवम्बर, 1950
18	साहित्यालोचन	डा० श्यामसुन्दरदास	इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग	नवीं आवृत्ति, सं० 2006 वि०
19	हिन्दी उपन्यास	डा० सुषमा धवन	राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, दिल्ली ।	प्रथम संस्करण, 1961
20	हिन्दी उपन्यास	श्री शिवनारायण-श्रीवास्तव	सरस्वती मंदिर, वाराणसी ।	-
21	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डा० त्रिभुवनसिंह	हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-1	चतुर्थ संस्करण, 1965
22	हिन्दी उपन्यास शिल्प: बदलते परिप्रेक्ष्य	डा० प्रेम भटनागर	अर्चना प्रकाशन, 10-सी, जालूपुरा, जयपुर ।	प्रथम संस्करण, जुलाई, 1968
23	हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा	डा० मक्खनलाल शर्मा	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-6	प्रथम संस्करण
24	हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास	डा० प्रतापनारायण टंडन	हिंदी साहित्य भण्डार, गंगाप्रसादरोड, लखनऊ ।	प्रथम संस्करण, 1959

25	हिंदी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास	डा० रणवीर रांग्रा	भारती साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली ।	1961
26	हिन्दी कथा-साहित्य	गंगाप्रसाद पाण्डेय	भारती भण्डार, इलाहाबाद ।	प्रथम संस्करण, 1950
27	हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण	डा० किरण-कुमारी गुप्ता	-	द्वितीय संस्करण, सं० 2007 वि०
28	हिन्दी के प्रमुख कहानीकार	राजनाथ शर्मा		
29	हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास	डा० जगन्नाथप्रसादशर्मा	हिन्दी-भवन, 312, रानी मण्डी, इलाहाबाद-3	1956
30	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।	ग्यारहवाँ संस्करण सं० 2014 वि०

अभिनन्दन-ग्रन्थ :

1	साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी	सं० श्री नंददुलारे वाजपेयी तथा अन्य	सरस्वती सेवा-सदन, पी० रोड़, कानपुर ।	-
2	साहित्य शिल्पी भगवतीप्रसाद वाजपेयी: साधना और उपलब्धि	प्रधान संपादक : डा० विश्वनाथ गौड़	अलका प्रकाशन, 59।51,ए, बिरहानारोड, कानपुर ।	

पत्र-पत्रिकाएँ :

1 आजकल (मासिक), सितम्बर, 57, दिल्ली ।

2 कहानी (मासिक), वर्ष-3, अंक-1, इलाहाबाद ।

3 रमता योगी (साप्ताहिक) आचार्य भगवतीप्रसाद वाजपेयी अभिनंदन अंक 12-10-68, कानपुर ।

4 साप्ताहिक हिन्दुस्तान, अक्टूबर, 63, दिल्ली ।

5 सारिका (मासिक) जुलाई, 69, बम्बई ।

6 साहित्य संदेश, (उपन्यास विशेषांक) अक्टूबर-नवम्बर, 40, आगरा ।

7 विशाल भारत (मासिक) जनवरी, 58, कलकत्ता ।

8. ज्ञानोदय (मासिक), दिसम्बर, 68, कलकत्ता ।

कोश :

हिन्दी उपन्यास कोश - डा० गोपालराय

हिन्दी साहित्य कोश - डा० धीरेन्द्र वर्मा

संस्कृत ग्रन्थ :

काव्यालंकार सूत्र आचार्य वामन

व्यक्तिगत पत्र :

श्री इलाचन्द्र जोशी का दिनांक 2-12-69 का पत्र

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का दिनांक 1-8-69 का पत्र

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी के पत्र

डा० ललित शुक्ल का दिनांक 3-9-69 का पत्र

श्री ब्रजेन्द्र गौड़ का दिनांक 19-4-70 का पत्र

भेंट-वार्ता :

श्री अमृतलाल नागर - दिनांक 21-10-68

डा० भगवतशरण उपाध्याय - दिनांक 23-10-72

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी - दिनांक 20-10-68

डा० रामविलास शर्मा - दिनांक 17-10-68

सहायक ग्रन्थ (अंग्रेजी):

1. Aspects of the Novel - E.M.Forster.

2. New Techniques of Happiness- Albert Edward Wiggam.

3. Principles of Psychology - William James.

4. Self-Mastery through Psychoanalysis. - Fielding.

5. The problem of style - J.Middleton Murry.

****